श्रेय और प्रेय

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयोहि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥"

"श्रेय (कल्याण) और प्रेय (प्रिय) दोनो मनुष्य के सामने आकर खडे होते हैं। समझदार आदमी दोनो की उचित परीक्षा करके उनमे विवेक करता है। समझदार श्रेय को ही पसन्द करता है। मूर्ख मनुष्य योग-क्षेम (ऐहिक सुख-भोग) का साधन समझकर प्रेय को स्वीकार करता है।"

श्रे या र्थी

जमनालालजी

[डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी की भूमिका-सहित]

•

लेखक

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

१९५१

सत्साहित्य प्रकाशन

•

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

पहलीबार, ११ फरवरी १९५१
मूल्य
पक्की जिल्द : साढ़े छह रुपये
सादी जिल्द : छह रुपये

मुद्रक
रामप्रताप त्रिपाठी
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

गोलोकवासिन् !

तुम्हींको अर्पण, श्रेष्ठ ! तुम्हारा गुण-दर्शन ।
गोमाता-दुग्ध-सा शुभ्र, स्वच्छ, प्राणद, पावन ॥

लेखक की ओर से

मित्रों की प्रेरणा तथा 'सस्ता-साहित्य-मंडल' के अनुरोध से मैंने यह जीवनी लिखने का जिम्मा १९४२ में ही लिया था। इसके लिए सामग्री जुटाना शुरू ही किया था कि सरकार के निमन्त्रण पर कोई दो साल (१९४२ से १९४४ तक) नजरबन्द रहना पड़ा। कोशिश करने पर भी जेल के विधाताओं ने वह सामग्री नहीं दी, जिससे मैं जीवनी लिख पाता। बाहर निकलते ही अनेक झंझटों में फंस जाना पड़ा और अब तक इसे पूरा करने का काम टलता ही गया। लेकिन, अब इतना समय व्यतीत हो जाने पर भी, आखिर यह पुस्तक तैयार हो पाई इससे कुछ समाधान होता है। मेरा एक पवित्र फर्ज पूरा हुआ। इतना ही नहीं इसके लेखन-क्रम में स्व० जमनालालजी के गुणों व कार्यों के बार-बार मनन से मुझे उनके प्रत्यक्ष सहवास-जैसा लाभ हुआ है और उनके गुण-कीर्तन से एक प्रकार की धन्यता मालूम होती है। किन्तु, पाठक के पल्ले मैं कितना डाल सका, इसका ठीक हिसाब तो वही लगा सकता है। इसमें और कुछ लाभ मिले या न मिले, एक आत्मार्थी के पुण्य-जीवन के मानसिक संसर्ग का लाभ तो उसे भी मिलेगा ही, यह निर्विवाद है। जो जीते-जागते जमनालालजी के संपर्क के लिए तरसते हैं उन्हें उनके दर्शन का लाभ इससे अवश्य मिल सकता है।

किसी व्यक्ति का जीवन-चरित्र तारीखों और दूर से चमकने वाले कामों में ही नहीं समा जाता। बल्कि ज्यादातर उन घटनाओं में छिपा रहता है जिन्होंने उसके जीवन को बनाने व चमकाने में कुछ कार्य किया है। मनुष्य का जीवन आखिर क्या है? संस्कार, भावना, विचार

व आचार—इन्हींका समुच्चय ही तो । पिछले कर्मों का प्रभाव संस्कार कहलाता है, संस्कार से भावना का जन्म होता है, भावना जब क्रियाशील होने लगती है तब विचार का उदय होता है और विचार जब परिपक्व होते हैं, तब कृतियां होने व चमकने लगती हैं। कृतियां सबसे ज्यादा हमें दिखती हैं, विचार उनसे कम,भावना विचारों से भी कम और संस्कार भावनाओं से भी कम दिखाई देते हैं। परंतु , इनमें जो वस्तु जितनी कम दिखाई देती है, उतनी ही वह मूल-रूप में अधिक शक्ति-शाली होती है, क्योंकि बीज ही में तो सब कुछ समाया रहता है। यदि किसी का जीवन हमें देखना हो तो उसकी कृतियां , किन विशेष अवसरों पर उसने कैसा रुख लिया , कैसा आचरण या व्यवहार किया—यही प्रधानतः देखना होगा। पर उन घटनाओं का कोरा ऊपरी या बाह्य-स्वरूप देख लेने से ही उसके जीवन का मर्म या महत्व हाथ नहीं लगता। अतः हमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं बाहरी बातों तक ही हमारी दृष्टि सीमित न रह जाय। किन विचारों, भावनाओं व संस्कारों ने उन घटनाओं को मूर्त-रूप दिया है जब यह जान लेते हैं, तभी सच्चा जीवन-चरित समझा व लिखा जा सकता है।

इस तरह, जब मैं जमनालालजी का चरित्र लिखने लगा तो सबसे पहले मैंने उनके जीवन के अन्तरतम को समझने का प्रयास किया। वह कौन सी मूल-प्रेरणा थी जिसने काशी-का-बास जैसे मरुस्थल के एक एकान्त कोने में जन्मे बालक को महात्मा गाँधी का "पाँचवाँ पुत्र" बना दिया, गाँधीजी को जिसके लिए "संत", "दिव्य-पुरुष" आदि विशेषणों का प्रयोग करना पड़ा। मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि वास्तव में उन्हें अपना जीवन "दिव्य" बनाने की जबर्दस्त धुन थी। राजनैतिक नेता, समाज-सुधारक, संगठन-कर्ता, व्यापारी, मित्र व सहायक आदि वे सब कुछ थे—पर इन सबसे अधिक, सबसे बढ़कर वे एक परम श्रेयार्थी, सच्चे आत्मार्थी और जबर्दस्त सत्या-

ग्रही थे। उनके निकट संपर्क और सतत परिचय से तो मुझे ऐसा लगता ही था, परंतु मेरे अध्ययन ने भी इसकी पुष्टि की है। इसी धागे को पकड़ कर मैंने उनके जीवन-घटनाओं के पुष्प जहाँ-तहाँ से चुने हैं और उस धागे में पिरोकर एक माला गूंथने का यत्न किया है। उसीको आज पाठकों की सेवा में उपस्थित कर रहा हूँ। मुझे निश्चय है कि उसके सुवास और परिमल से उनका हृदय तथा मस्तिष्क जागृत व प्रफुल्लित हुए बिना न रहेगा।

अपनी इस साधना में जमनालालजी ने गंभीर आत्म-परीक्षण, नितान्त साहस, दृढ़ता व आत्म-दमन से काम लिया है। लेखक पर उनका इतना सरल स्नेह व विश्वास रहा है कि वे मन के प्रायः प्रत्येक उतार-चढ़ाव उसके सामने खोल कर रख देते थे। अपने गुरुजनों व आत्मीयों के सामने अपनेको खुला रख देने का उनका स्वभाव या नियम था इसमें वे अपनी सुरक्षा ही नहीं, प्रगति का भी साधन देखते थे। ऐसी क्षमता व ऐसा साहस, भगवान् के महान् अनुग्रह से बिरलों में ही पाया जाता है। श्रेयार्थी या आत्मार्थी का यह पहला लक्षण होता है। अपने विकार, विचार व भावनाओं के ठीक स्वरूप को देखते रहना व समझना—भले ही उनका रूप अरुचिकर ही क्यों न हो, मामूली साधना नही है। फिर उनका चित्र अपने गुरुजनों व आत्मीयों के सामने खोलकर रख देना और भी कठिन बात है। सत्य—केवल सत्य की साधना का ही जिसने व्रत लिया हो, उसीमें ऐसा करने की हिम्मत रहती है। जमनालालजी में यह उत्कटता व ऐसा साहस कूट-कूट कर भरा हुआ था और इसमें उनकी महानता कम छिपी हुई नहीं है। जो साधना उनकी पूर्ण हो चुकी, जिसका फल उन्होंने और दुनिया ने देख लिया, उसकी अपेक्षा उनकी महानता उन प्रयत्नों—उन हार्दिक योजनाओं में कहीं अधिक समाई हुई है, जिनका साक्षी जगत् नहीं हो पाया, जो केवल उनकी व

उनके आत्मीयों की जानकारी तक ही सीमित रह गई है। वह बतलाती है कि जमनालालजी कोरे एक शाब्दिक सत्याग्रही ही नहीं थे—अपने विकारों, बुराइयों, कमियों को खोजनेवाले वास्तविक श्रेयार्थी तथा उनसे दिन-रात युद्ध करनेवाले महान् वीर व योद्धा थे। अपने बाहरी शत्रुओं से लड़नेवाले यदि वीर व योद्धा कहलाते हैं, तो अपने भीतरी शत्रुओं से अहर्निश लड़नेवाले अवश्य ही महावीर व महायोद्धा कहलाने के अधिकारी हैं। जमनालालजी ऐसे ही एक महावीर थे। उनकी इस महावीरता को खोजकर मैं धन्य हुआ, पाठक भी उसे पाकर ऐसी ही धन्यता का अनुभव करेंगे, ऐसा मेरा मन गवाही देता है।

मुझे कई बार मन में यह हुआ है कि इस जीवनी को लिखने का अधिकारी मैं कहाँ तक हूँ और यह भी कि कहाँ तक मैं अपने विषय के साथ न्याय कर पाया हूँ। भाईजी की योग्यता और उच्चता की दृष्टि से तो मैं इसके लिखने का अधिकारी नहीं ठहरता हूँ—मुझे तथा मेरे कुटुम्बियों को सेवा-कार्य में प्रवृत्त करने तथा लगाये रखने में जितना प्रत्यक्ष कार्य घर के एक बुजुर्ग की तरह उन्होंने किया है उतना और किसीने नहीं। घर के बड़े के लिए कुटुम्बियों का जो सहज कृतज्ञता-भाव होता है, उसने मुझे इस पुस्तक के लिखने का थोड़ा-बहुत अधिकार दे दिया हो तो भले ही। मैं जानता हूँ कि मुझसे भी अधिक उनके भक्त, उनका निकट सह-वास रखनेवाले, उनसे घनिष्ठ परिचित, उनकी प्रत्यक्ष सेवा व सहायता करनेवाले, अधिकारी व्यक्ति मौजूद हैं। जो संभवतः इस कार्य को अधिक तल्लीनता, योग्यता और आत्म-विश्वास के साथ करते और कर सकते हैं; उनके लिए यह पुस्तक यदि सामग्री-संचय के रूप में भी उपयोगी हो सके तो मेरे लिए काफ़ी है।

जमनालालजी का जीवन एक समुद्र की तरह है—व्यापक भी और गंभीर भी। जो सामग्री मुझे प्राप्त हुई है उसे भी इन थोड़े से पृष्ठों में

ठीक ढंग से बाँधना, सो भी मुझ जैसे उनके 'स्वजन' के द्वारा, बहुत कठिन काम हो पड़ा है। इसके कारण, कई घटनाओं को सजीव बनाने का मोह छोड़कर उनके थोड़े वर्णन या उल्लेख-मात्र से संतोष मान लेना पड़ा है। फिर जो सामग्री अभी तक मेरी पहुँच के बारह रही है उसका तो कहना ही क्या ? इससे पुस्तक की रोचकता में कमी आई होगी, सर्वांग सुन्दर तो वह बन ही नहीं पाई है , यह मैं जानता हूँ। किन्तु इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे सामने जमनालालजी के समग्र जीवन के मर्म को, जैसा मैंने समझा है, वैसा पाठकों के सामने चित्रित करने का जो लक्ष्य था, वह बहुत हद तक पूर्ण हुआ है। साथ ही जिस तरह से यह चरित्र लिखा गया है वह भी पाठकों को हिन्दी में नया-सा लगेगा।

इसमें घटनाओं की सत्यता की जाँच श्रद्धेय भाईजी के अत्यन्त निकटतम व्यक्तियों से कर ली गई है। मान्यवर जाजूजी ने एक बार पुस्तक के कच्चे मसविदे को सुन लिया है और विश्वस्त जानकारी तथा परिपक्व सुझाव दिये हैं। श्री जानकीमैयाजी ने भी बहुत ध्यान से कई अध्यायों को सुना है। और निजी जानकारी बड़े चाव से दी है। बजाज-परिवार के खास-खास सभी व्यक्तियों ने इसे बहुत-कुछ देखा है। भाई दामोदरदासजी ने तो सारी पुस्तक ही एक निगाह से देख ली है । सबने अपनी अमूल्य सम्मतियों व सुझावों से लाभ पहुँचाया है । उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ , किन्तु उसे प्रदर्शित करने की धृष्ठता कैसे करूँ ? उन सबके फूल, जल, यव, तिल आदि मिलकर ही तो यह नम्र श्रद्धांजलि उनकी पुण्य-तिथि पर भक्ति-भाव से समर्पित करने में समर्थ हुआ हूँ।

इस समय यह दुःख भी मन में अवश्य है कि यह अंजलि बहुत पिछड़ गई है। मुझे सचमुच बड़ा आश्चर्य है कि इस पुस्तक के प्रणयन में इतना विलम्ब क्यों कर हुआ। मेरे अंगीकृत किसी काम की पूर्ति में इतना अधिक समय आज तक नहीं लगा। जब-जब मैंने इसे पूरा करने का प्रयास

किया, कोई-न-कोई अनिवार्य बाधा आ गई। इसी सिलसिले में उनकी कुछ डायरियाँ, उनके कई बढ़िया अल्बम रास्ते चलते खो गये। मेरी पुस्तक के इन्तजार में दूसरे मित्र अपनी-अपनी पुस्तकें तैयार करने में रुके रहे। इसमें भी मुझे कुछ दैवी संकेत प्रतीत होता है। आरंभ में तो भाईजी को अपने बारे में सुनने और कहने का बड़ा चाव था। लेकिन, अन्त में वे इस सम्बन्ध में उदासीन हो गए थे। बापू के प्रति आत्म-समर्पण में उन्होंने अपने को खो दिया था। कहीं उनकी इस आत्म-विस्मृति ने तोउ नके इस गुण-गान में रुकावटें न डाली हों? जो हो, पुस्तक जैसी बन पड़ी पाठकों के हाथ में और भाईजी के चरणों में समर्पित है। वे तो केवल भक्ति-भाव को ही देखेंगे। पर पाठकों से मैं कुछ और भी आशा रखता हूँ। उनकी टीकाओं, सुझावों का मैं शिष्य-वृत्ति से आदर करूँगा और अगले संस्करण को सर्वांगपूर्ण बनाने में उनसे लाभ उठाने का पूरा प्रयत्न करूँगा।

पुस्तक के तीन भाग हैं—पहला घटना-प्रधान, 'जीवन-ज्योति'। इसमें भिन्न-भिन्न घटनावलियों में उनका जीवन गूंथा गया है। उनके जीवन को बदलनेवाली या चमकानेवाली घटनाओं को मुख्यतः लेकर एक-एक अध्याय लिखने का प्रयत्न किया है। दूसरा गुण-प्रधान 'गुण-गौरव'—जिसमें विविध-रूप में उनका दर्शन करने की कोशिश की है। तीसरा परिशिष्ट—जिसमें विविध, उपयोगी, उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाली, महत्त्वपूर्ण सामग्री एकत्र की गई है।

जिन-जिन व्यक्तियों का परिचय या वर्णन इसमें आया है, उनके संबध में मैंने अपनेको कई बारधर्म-संकट में पाया है। भाईजी के जीवन के उठाव की दृष्टि से, भाईजी का जीवन बनाने में जान या अनजान में उनका जो भाग रहा है, उसका दिग्दर्शन करने की सहज आवश्यकता व उत्सुकता से, भाईजी के कारण उनसे अब भी लोग जो अपेक्षायें रखते हैं व रख सकते हैं इस दृष्टि

से मुझे वह पुस्तक का अनिवार्य अंश मालूम हुआ। किन्तु, साथ ही उनमें कुछ भाई-बहनों की तरफ से अपने वर्णन, परिचय या नामोल्लेख के विषय में विरोध या नाराजगी प्रकट की गई है। उसे मैं समझ तो सका, परन्तु पुस्तक में से उन्हें अलग रखने का विचार या भाव मेरे मन व बुद्धि को पकड़ न सका। हाँ, उनकी भावनाओं का आदर रखते हुए मैंने उनका परिचय दिया है। फिर भी उनकी इच्छा का पालन न कर सकने की अपनी असमर्थता के लिए उनसे क्षमा माँगना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इसकी सामग्री देने और जुटाने में, पुस्तक के प्रणयन तथा प्रकाशन में जिन-जिन मित्रों, साथियों से तथा पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांको एवं लेखों तथा कतरनों से मुझे तथा प्रकाशकों को तरह-तरह से सहायता मिली है उनकी नामावली 'परिशिष्ट' में सधन्यवाद दी गई है।

हमारे सम्मान्य और लोकप्रिय राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे अनुरोध पर अपनी सदा की सदाशयता के अनुसार इस पुस्तक की भूमिका लिख देने की कृपा की है। खुद जमनालालजी उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे। वे एक जगह लिखते हैं—

> "आज कई वर्षों से मैं पूज्य राजेन्द्र बाबू को अपने बड़े भाई की तरह मानता हूँ और चाहता हूँ। इसी कारण उनके सारे कुटुम्बी मेरे कुटुम्बी भी बन गये हैं।"

अतः एक बड़े भाई का छोटे भाई के लिए यह प्रेम-स्मरण पाठकों के लिए और भी स्फूर्तिदायक होगा।

पूज्य विनोबा ने अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में से और शरीर से कुछ अस्वस्थ होते हुए भी इस पुस्तक के बारे में चर्चा करने का, कुछ अध्यायों को स्वतः पढ़ लेने तथा कुछ को सुन लेने का समय देने की जो कृपा की है उसके लिए उन्हें प्रणाम है। जमनालालजी को तो सदैव उनसे

उषःपान और अवभृथ-स्नान मिलता रहा है; परन्तु उनके इस 'गुण-दर्शन' को भी उनका इतना 'मौन व्याख्यान' (आशीर्वाद) मिला, यह लेखक तथा प्रकाशक के लिए परम सौभाग्य की बात है।

हिन्दी-प्रकाशन-मन्दिर,
इलाहाबाद
मकर-संक्रान्ति, २००७ वि०

हरिभाऊ उपाध्याय

भूमिका

सेठ जमनालाल बजाज आधुनिक भारत के उन व्यक्तियों में हैं, जिन्होंने महात्मा गाँधीजी का साथ प्रायः उसी समय से दिया, जब उन्होंने भारत में स्वराज्य-सम्बन्धी महान् प्रयत्न आरम्भ किया और अपने जीवन की अंतिम घड़ी तक उसीमें लगे रहे। यह शायद सब लोग नहीं जानते हैं कि जमनालालजी का जन्म एक साधारण परिवार में जयपुर के अधीन सीकर-राज्य के एक गाँव में हुआ था और उनको बचपन में ही वर्धा के प्रसिद्ध और धनी सेठ बच्छराज ने गोद लिया था। थोड़ी उमर में ही घर का कार-बार उनको सम्भालना पड़ा और इसलिए, यद्यपि उनकी बुद्धि तीव्र थी, पढ़ने में वह स्कूल-कालेज की शिक्षा बहुत नहीं ले सके। थोड़े ही दिनों में उन्होंने व्यापार में ही अच्छी सफलता प्राप्त की और केवल वर्धा में ही नहीं, बम्बई में भी प्रमुख व्यापारियों के साथ उनका सम्पर्क हो गया और व्यापार दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा। पर इनके हृदय में आरम्भ से ही कुछ ऐसी भावना थी कि—यद्यपि वह एक धनिक परिवार में गये है और विपुल सम्पत्ति के मालिक हो गए हैं, वह सारा धन उनका अपना नहीं है और उसे वह अपने एशो-आराम में ही लगाने के हकदार नहीं हैं। यह भावना महात्मा गाँधीजी से सम्पर्क हो जाने के बाद और भी दृढ़ हो गई। महात्माजी का प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि वह आरम्भ से ही इस प्रयत्न में लग गए कि वह कैसे उनकी शिक्षा को अपने जीवन में धारण करें और उतारें। उनकी बड़ी अभिलाषा और महत्वाकांक्षा यह थी कि वह महात्मा गांधी के पुत्रवत् हो जायँ। हर प्रकार से सेवा-कार्य में, जिसमें महात्मा गाँधीजी लगते थेह, व

भी अपनेको उसमें उत्सर्ग कर देते थे। नागपुर में कांग्रस का अधिवशन १९२० के दिसम्बर में हुआ। स्वागत-समिति के अध्यक्ष जमनालालजी हुए और असहयोग के आन्दोलन में उत्साहपूर्वक आ गए। महात्माजी ने वकीलों को वकालत छोड़ने के लिए कहा। उनमें बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो असहयोग में आना तो चाहते थे; पर परिवार के भार के कारण कठिनाई महसूस करते थे। ऐसे लोगों के जीवन-निर्वाह के लिए जमनालालजी ने एक लाख का दान दिया और एक प्रकार से 'तिलक-स्वराज्य-कोष' का आरम्भ भी इसीसे हुआ, जो पीछे चल कर एक करोड़ से अधिक हुआ।

असहयोग-आन्दोलन में पड़ जाने के कारण जमनालालजी को अपने व्यापार में समय लगाना दुष्कर हो गया और इसलिए वह सारा कारबार कर्मचारियों के हाथ में सौंप कर सार्वजनिक काम में अपना समय लगाने लग गये; पर वह इतने व्यापार-कुशल थे कि जब कभी थोड़ा समय निकाल सकते तो उतने ही में कर्मचारियों से सब बातें समझ कर उनको उचित आदेश और परामर्श भी दे दिया करते थे। यद्यपि कई दिशाओं में, विशेषकर नैतिक कारण से, उन्होंने व्यापार कम कर दिया था, तो भी काम एक अच्छे पैमाने पर चलता ही रहा और बाजार में उनकी पीढ़ी की बहुत अच्छी साख बनी रही।

यद्यपि वह अंग्रेजी बहुत नहीं जानते थे तो भी इतनी तीव्र बुद्धि थी कि अंग्रेजी में भी कांग्रेस में उपस्थित किये जाने वाले प्रस्तावों का जो मसौदा बनता उनमें बारीक-से-बारीक प्रश्न निकालते और शंकाओं का निराकरण कराते। इसलिए सरदार वल्लभभाई मजाक किया करते कि वह वकिंग-कमिटी के वकील हैं। अपनी व्यापार-कुशलता के कारण कांग्रेस के अन्दर उनकी व्यवहारी बुद्धि से सभी लोग लाभ उठाते। १९२१ से उनकी मत्यु के समय तक वह बराबर कांग्रेस-वकिंग-कमिटी के मेम्बर

और बहुत करके खजांची भी रहे। इस लम्बे अर्से में कोई काम, विशेषकर के रचनात्मक काम, ऐसा नहीं हुआ होगा जिसमें उनका कुशलहस्त पूरी तरह से काम में न आया हो।

जब खादी का काम आरम्भ हुआ तो वह उसमें अग्रगण्य थे। हरिजन-उत्थान का काम उन्होंने क्रियात्मक रूप से बहुत किया। जब कौंसिल-प्रवेश का वाद-विवाद आरम्भ हुआ तब उन्हींकी प्रेरणा से महात्माजी के सिद्धान्तों में विश्वास करके रचनात्मक काम करने वालों की संस्था 'गाँधी सेवा संघ' के नाम से कायम की गई, जिसके वह केवल धन से ही नहीं, बल्कि और सब प्रकार से सहायक और पोषक बने रहे। महात्माजी से उनका प्रेम इतना घनिष्ठ हो गया कि महात्माजी भी उनको पुत्रवत् मानने लग गए और उनकी प्रेरणा से ही जब १९३० और ३४ के सत्याग्रह के बाद महात्माजी ने अपने प्रण के अनुसार साबरमती-आश्रम न जाने का निश्चय कर लिया तो वह पहले वर्धा में और पीछे सेवाग्राम में जाकर रहने लगे तथा वहीं उनके अन्तिम १२-१३ वर्ष व्यतीत हुए। और वहीं अनेक रचनात्मक संस्थाएँ स्थापित हुई। वर्धा में पहले से ही, जब महात्मा गाँधीजी साबरमती सत्याग्रह-आश्रम में रहा करते थे तो, आश्रम की एक शाखा स्थापित हो गई थी; जिसको बहुत कर के श्री विनोबा भावेजी चलाते थे और उसमें महात्माजी भी प्रतिवर्ष जाकर कुछ समय बिताया करते थे। वही आश्रम १९३४ के बाद एक प्रकार से बढ़कर कितनी ही संस्थाओं के रूप में चल रहा है। गांधीजी कुछ दिनों तक उस स्थान में रहे जहाँ आज मगनवाड़ी—अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ तथा संग्रहालय है। वहाँ पहले जमनालालजी का एक बड़ा नारंगी का बगीचा था, जिसको उन्होंने इस काम के लिए दान दे दिया। उसके बाद सेवाग्राम के चुने जाने के कारणों में भी एक यह कारण था कि उसमें जमनालालजी मालिक की हैसियत से एक हिस्सेदार थे, और वह सम्पत्ति भी इसी काम में लग गई।

जब कभी किसी भी सार्वजनिक संस्था के काम से, खादी और अछूतोद्धारके काम के लिए, औरविशेषकर रुपया जमा करने के लिए, जमनालाल जी ने सारे देश का कई बार दौरा किया तो रुपये भी काफी मिले। बिहार में भूकम्प के बाद जो सहायता का काम किया गया उसके लिए कई महीनों तक वहाँ रह कर उन्होंने उस काम के संचालन में बहुत भाग लिया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कांग्रेस के वह केवल खजांची ही नहीं थे, बल्कि उसकी नैतिक सम्पत्ति के भी कोषाध्यक्ष और संरक्षक थे। अपनी सम्पत्ति होते हुए भी उन्होंने अपने जीवन और रहन-सहन को बहुत सादा रखा। लोगों से मिलना और सबके दुःख-सुख में पूरी दिलचस्पी लेना, उनका विशेष गुण था। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में अनेकों को उन्होंने कितनी ही प्रकार से सहायता दी होगी। उनको कांग्रेस के लोगों का आतिथ्य करने में विशेष आनन्द मिलता था। जहाँ-कहीं कांग्रेस का अथवा अखिल भारतीय काँग्रेस-कमिटी का अधिवेशन हो वहाँ उनका अपना अलग प्रबन्ध रहता था, जिससे बहुतेरे लोग लाभ उठाते थे। और जबसे महात्माजी वर्धा या सेवाग्राम में रहने लग गये, प्रायः वर्किंग कमिटी की सभी बैठकें वहीं हुआ करती थीं और वर्किंग कमिटी के लिए जितने लोग जाते थे, सब उनके ही अतिथि हुआ करते थे। बहुतेरे लोग देशी और बिदेशी, जो महात्माजी से मिलने आते थे, वे भी उनके ही अतिथि हुआ करते थे। इस तरह बहुतेरे लोगों से उनकी बहुत घनिष्ठता हो गई थी और उनका कुछ अपना मिजाज भी ऐसा था कि वह हिल-मिल जाते थे।

मेरी मुलाकात असहयोग-आन्दोलन के पहले ही उनसे हो गई थी और उसके बाद मेरा ऐसा सौभाग्य हुआ कि उनसे बड़ी घनिष्ठता हो गई जो अन्त तक बनी रही। मेरे साथ उनका व्यवहार इतना अच्छा रहा और उनके उपकार इतने हैं कि मैं उनको भूल नहीं सकता। सार्वजनिक

कामों में तो साथ रहा ही। और हर मौके पर उनसे सहायता मिलती ही गई। पर निजी काम में भी उन्होंने हमेशा एक भाई जैसा साथ दिया।

उनकी जीवनी से बहुत लाभ उठाया जा सकता है। वह केवल व्यापारी-वर्ग के ही नेता अथवा प्रतिनिधि नहीं रहे; बल्कि देश के सभी प्रकार के लोगों का उन्होंने विश्वास और प्रेम अपनी देश-सेवा, त्याग और सत्यनिष्ठा से प्राप्त किया।

गवर्नमेन्ट हाउस,
नई दिल्ली

विषय-सूची

[पूर्वार्ध]

[उत्तरार्ध]

[परिशिष्ट]

पूर्वार्द्ध

[जीवन-ज्योति]

"संतत सजग सजीवन रहकर, जीवन-ज्योति जगाई थी।"

: १ :

भगवान का हाथ

"उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं"—तुलसीदास ।

"मैं गोद की प्रथा को उस समय भी पसन्द नहीं करता था। मुझे याद है कि मुझे अपने जन्म के माता-पिता से भी बहुत अर्से तक इस बात की शिकायत रही कि उन्होंने मुझे गोद दे दिया। मेरी इच्छा के विरुद्ध भी पिताजी के प्रति अन्त तक यह भाव थोड़ा बहुत बना रहा। हालांकि मैं तो सब तरह से सुखी घर में गोद दिया गया था।"

—जमनालालजी

एक नक्षत्र मरुभूमि के एक कोने में उदय हुआ, और ठेठ मध्य-प्रदेश में जाकर चमका। जमनालालजी सीकर—राजस्थान—में जन्मे और वर्धा में फले-फूले। कनीरामजी जैसे साधारण बनिया के घर पैदा हुए। साढ़े चार साल की अवस्था में ही बच्छराजजी के यहाँ गोद गये। और फिर युवावस्था में एक महान् युग-पुरुष 'बनिया' के जबरदस्ती गोद बैठे, 'पाँचवें' पुत्र बने—उनकी ये गोद जाने की उत्तरोत्तर विलक्षण घटनाएं एक ईश्वरीय आयोजन जैसी लगती हैं। यों जमनालालजी गोद देने की प्रथा को पसंद नहीं करते थे। उनके सगे पिता श्री कनीरामजी की मृत्यु के बाद एक रोज जमनालालजी ने किसी प्रसंग पर बातचीत चलते हुए मुझसे भी ऐसे ही दुःख के वचन कहे थे जैसे ऊपर दिये गये हैं। कही

इसका प्रायश्चित्त ही करने के लिए तो वे खुद होकर गांधीजी के गोद न गये हों ?

अक्सर गोद देने में माता-पिता का हेतु कुछ धन-प्राप्ति हुआ करता है, और इस तरह लालच से अपनी संतान को जो मां-बाप बेंच देते हैं, यह उन्हें बहुत खलता था। फिर भी, वे अपने माता-पिता को बहुत आदर की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि कनीरामजी ऐसे माता-पिताओं में नही थे। उन्होंने व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती बिरधी बाई ने उन्हें किसी लोभ-लालच से गोद नहीं दिया था। पैसा भी बदले में नहीं लिया। बल्कि जब जमनालालजी बच्छराज जमनालाल पेढ़ी के मालिक बन गये तब भी श्री कनीरामजी ने कभी एक पैसे की इच्छा जमनालालजी से नहीं रखी।

यों कनीरामजी बड़े स्वाभिमानी व तेजस्वी थे। साहसी इतने कि बिना जीन व काठी वाले ऊँट पर खड़े होकर उसे दौड़ाते थे और कभी कभी तो एक पाँव से खड़े हो जाया करते।

एक बार कनीरामजी की एक राजपूत से किसी बात पर कहा-सुनी हो गई। उस मामूली कहा सुनी पर ही ठाकुर ने तलवार निकाल ली, ठाकुर साहब ही तो ठहरे! देखनेवाले सब लोग घबरा रहे थे, परन्तु कनीरामजी निर्भीकतापूर्वक वहीं डटे हुए, शांति तथा धैर्य से उन्हें समझाते रहे। अंत में ठाकुर साहब ने अपनी गलती मंजूर की, पश्चात्ताप किया। इतना ही नहीं, कनीरामजी से जाकर मांफी मांगी। बाद में तो दोनों में इतना प्रेम हो गया कि ठाकुर साहब बिना कनी-रामजी के पूछे कोई भी काम नहीं करते। यह घटना यों दीखने में चाहे छोटी हो, परन्तु अहिंसक प्रतिकार का एक ऐसा नमूना है कि जिसका अपना एक महत्व है। जमनालालजी के जीवन में हमें बार बार इसी साहस और वीरता के संस्कारों के दर्शन होते हैं। ये गुण

सीधे उन्हे कनीरामजी से मिले थे ।

गोद देने की भी एक दिलचस्प कहानी है । सेठ बच्छराजजी, उनकी पत्नी सदी बाई, गोद के पुत्र रामधनदास, व उनकी पत्नी चारो वर्धा से अपने देश सीकर गये, जहाँ कि रामधनदासजी की छोटी उम्र मे निस्सतान एकाएक मृत्यु हो गई । बच्छराजजी और उनकी पत्नी तथा पतोहू शोक-विह्वल हो गये, किन्तु, कर क्या सकते थे ? कुछ दिन सीकर रहे और बाद मे बच्छराजजी ने तथा उनकी पत्नी ने सोचा कि अब यहाँ से कोई लडका लेकर ही वर्धा चलना चाहिए । अपनी पतोहू के लिए लडका गोद लेने की तलाश मे वे कासी का बास गये जो कि सीकर-राज्य मे है । रामधनदासजी बच्छ-राजजी के गोद के पुत्र थे । बच्छराजजी की पत्नी सदी बाई ने कासी का बास मे कनीरामजी की पत्नी बिरधी बाई से बातचीत के सिलसिले मे इस बात पर दु ख प्रकट किया कि उनका बस डूब रहा है, कोई लडका नही है । कनीरामजी के तीन लडके थे, बिरधी बाई ने स्त्रियो-चित सहज सहानुभूति से कहा, 'तीनो बालक आपके ही तो है ।' बिरधी बाई की यह बात सुन सदी बाई ने अपनी ओढनी के पल्ले गाठ बाध ली, मानो बिरधी बाई ने वादा कर लिया है ।

जमनालालजी की दादी अर्थात् कनीरामजी की माता को मरे अभी दो मास ही हुए थे । जब जमनालालजी ने जोकि साढे चार वर्ष के बालक थे, और वही खेल रहे थे, सदी बाई को देखा तो उन्हें दादी समझा, और 'दादी आ गई, दादी आ गई !' कहकर उनकी गोद मे जा बैठे । सदी बाई उन्हे चूमने पुचकारने लगी । सेठ बच्छ-राजजी के जो उस वक्त साथ में थे, बादाम, मेवा, आदि देने पर उनकी गोद में जा बैठे ।

जब बच्छराजजी जाने लगे तो उनकी पत्नी ने कनीराम जी

की पत्नी से जमन की मांग की कि उसे मेरे साथ भेज दो। बिरधी बाई हक्का-बक्का रह गईं। सदी बाई ने कहा—यह तो मेरा लड़का हो चुका। आप ही ने तो उस दिन कहा था कि तीनों आपके हैं। अब तो बिरधी बाई अपनी सहज भूल या असावधानी को समझ गई। इधर बच्छराजजी ने भी जमन को ले जाने की हठ पकड़ ली, धरना दे दिया। गांव वालों की भी बच्छराजजी के साथ सहानुभूति हो गई थी, उन्होंने भी कहा कि लड़के को ले जाने देना चाहिए। जमन लगता भी सलोना था। बिरधी बाई ने कनीरामजी से किस्सा कहा। कनीरामजी ने कहा, सहज भाव से ही क्यों न हो, यदि तुम्हारी जबान ऐसी निकल गई तो फिर सोचने की बात है।

अब बच्छराजजी ने जमनालालजी को वर्धा ले जाने के लिए कनीरामजी से कहा। कनीरामजी ने अपने बड़े भाई परशरामजी से सारी कथा सुनाई तो उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया। इस पर बच्छराजजी ने बड़ी अनुनय-विनय की, कई तरह के प्रयत्न किये। गांववालों से पुनः जोर डलवाया और जब बच्छराजजी ने धरना दे दिया कि चाहे जो हो, मैं तो जमन को लेकर ही जाऊँगा, तब कनी-रामजी धर्म-संकट में पड़े। इधर तो भाई की रुकावट, उधर पत्नी का वचन—चाहे वह बातों ही बातों में क्यों न दिया गया हो, फिर इनका और गांववालों का आग्रह। आखिर उन्होंने जमनालाल को वर्धा ले जाने की स्वीकृति दे दी।

पाठक देखेंगे कि पूर्वोक्त दोनों घटनाओं में मानों ईश्वरीय संकेत काम कर रहा हो। कासी का बास जैसे छोटे-से गांव में एक साधारण व्यवसायी माता-पिता के यहाँ जिस जीव ने जन्म लिया था, उसे वर्धा पहुँच कर, बहुत उज्वल बनकर, अपनी मधुर स्मृतियां व अनमोल परंपरा पीछे छोड़ जानी थी।

गोद दिये जाने पर बच्छराजजी ने कनीरामजी को कुछ धन देने का भी प्रयत्न किया था। किन्तु, उस तेजस्वी व स्वाभिमानी पिता ने साफ नाहीं कह दिया। जब बच्छराजजी बहुत पीछे पड़े तो अपने गांव में सब ग्रामवासियों के लिए एक कुँआ खुदवा देने का सुझाव उनके सामने रखा। उन्होंने कहा, मुझे अपने लिए किसी चीज की जरूरत नही, जमन के लिए उसकी मां वचन दे चुकी है, तो उसे ले जाओ। मैं पैसे का भूखा नहीं हूँ। आप कुछ खर्च करना चाहते ही है तो गांववालों का कुछ कष्ट दूर कर दीजिए। गांव में कोई कुँआ नही है। पास के गाँव, कदमा का बास, से सिर पर दो दो घड़े पानी लाना पडता है, उसमें सब गाँववालों को बडा कष्ट होता है, सो कुँआ भले ही बनवा दीजिए। जमनालालजी के गोद का स्मारक यह कुँआ अब भी कासी का बास में मौजूद है।

कूप-निर्माण की यह घटना बताती है कि मानों जमनालालजी के गोद-प्रकरण के मूल में ही सेवा का बीज वपन हो गया था और यही से उनके सेवाभावी होने का अंकुर फूटा हो। इस लेखक ने वह पुराने ढग की छोटी-सी पूर्वाभिमुख हेवेली, वह कमरा करीब ८।१२ फीट जिसमें जमनालालजी पैदा हुए, और वह कुँआ सब के दर्शन किये है। उनके गोद दिये जाने की स्मृति में जो कुँआ ही बनवाया गया—इस घटना में भी मानों भगवान का हाथ हो। जमनालालजी बचपन में दातुनों से खेल खेल में खड्डे खोदा करते थे—कोई पूछता तो कहते कुँआ खोदता हूँ। इस कुँए का पानी भी बहुत मीठा व रोगहारक निकला जो कि जमनालालजी के उज्ज्वल व सेवामय भविष्य को सूचित करता था।

जमनालालजी कहा करते थे कि मुझमें जो निर्भीकता, तेजस्विता, दबंगता, ठऐं है वह तो पिताजी के स्वभाव का अंश है व जो धार्मि-

कता, स्नेह-सौजन्य, उदारता, दयालुता है वह माताजी से मिली है। आज भी हमें उनकी माता के इन गुणों का दर्शन हो जाता है। अब उन्हें बहुत कम दिखाई देने लगा है, सुनाई भी बहुत ऊँचे से बोलने पर पड़ता है। स्वास्थ्य काफी डगमगा गया है। फिर भी आज उनका जीवन बहुत-कुछ स्वावलंबी-सा है। वे प्रातः ३ बजे करीब उठ जाती हैं, रात में ही थोड़ा निवाया पानी चूल्हे पर रखवा लेती हैं, उठते ही निमट निमटाकर नहा धो लेती है और शान्त मन से माला फेरने लग जाती हैं। सैकड़ों कथा कहानी व हरयश जितने याद है वे सब गा बोलकर दुहरा लिया करती हैं। सूर्योदय के समय दर्शन कर लेती हैं; बाद में दिन भर कुछ न कुछ करते ही रहने का उनका उत्साह बना रहता है।

शरीरश्रम का सिद्धांत उनके रक्त में सहज ही समाया हुआ है। पहले बहुत पीसा था, खेत में काम किया है, व सैकड़ों गज कपड़े का सूत कात लिया है। हरेक स्वजन व प्रियजन को अपने हाथ-सूत की एक एक चद्दर व साड़ी या कुछ न कुछ कपड़ा देने का सदा प्रयत्न किया है। अब भी वे कातकर इतना खुश होती हैं कि मानों कोई बड़ा सहारा उन्हें मिल गया हो। परिचित जनों से वे मिल कर बहुत ही प्रसन्न हो जाती हैं। हरेक से स्वागतपूर्वक अत्यंत प्यार व हित-भावना से कुशल-मंगल पूछना उनका सहज प्रेमल स्वभाव है।

जमनालालजी कई बार सुबह जल्दी उठकर मां की गोद में लेटकर कथा, भजन सुनने का अवसर कभी कभी ढूँढ़ निकालते थे। एक बार बिरधी बाई ने कहा भी 'जमन, मुझे तो शरम लगती है।' वे आज भी जमनालालजी के बचपन की विलक्षणताओं को सुनाती रहती हैं। विधाता की यह ऐसी निष्ठुर करनी है कि न केवल कनीरामजी व जमनालाल जी के सब बड़े भाई काल के गाल में चले गये बल्कि खुद जमनालालजी भी चल बसे व उनकी बूढ़ी करीब ९० बरस की मां उन सब का बिछोह

सहने व उनकी कथाएं सुनाने के लिए पीछे मौजूद रह गईं । अपने पति व बेटों के कन्धे चढ़ जाना, जहाँ एक पत्नी व मां के लिए सुख की बात हो सकती है वहाँ बाद में रहकर उनके वियोग को इतनी शांति व धैर्य से सहना क्या एक तपश्चर्या नहीं है ? आखिर तो मनुष्य की अंतिम गति इस बात पर अवलंबित नहीं रहती कि कौन कब मरता है, कबतक जीवित रहता है, बल्कि इसी बात पर अवलंबित रहती है कि उसने अपने जीवन की घटनाओं का मुकाबला किस दृढ़ता, शांति, धैर्य व अविचलता से किया है ।

: २ :

"निस्पृहस्य तृणं जगत्"

"आज मिती ताईं तो हमारे बारे में अथवा जो हमारे ताईं खर्च हुयो सो हुयो बाकी आज दिन सूं आप कनेसूं एक छदाम कोडी हमा लेवांगा नहीं अथवा मंगवांगा नहीं। और आपके मनमां कोई रीत का विचार कर जो मत ना। आपकी तरफ हमारो कोई रीत का हक आज दिन सों रह्योछे नहीं। और आपके मन में हो की सब पीसा का साथी है, पीसा तांईं सेवा करे छे, तो हमारे मन मां तो आपका पीसा की बिलकुल छे नहीं और भी ठाकुर जी करेंगा तो आपके पीसा की हमारे मन में आगे भी आवेगी नहीं। कारण हमारी तगदीर हमारे साथ छे। और पीसा हमारे पास होकर हमां काईं करेंगा। म्हाने तो पीसा नजीक रहने की बिल्कुल परवाह छे नहीं। आपकी दया से श्री ठाकुरजी का भजन सुमरन जो कुछ होवेगा सो करेंगा। सो इस जनम मांही भी सुख पावेंगा और अगला जनममां ही भी सुख पावेंगा।

"सब झूठा नाता छे। कोई कोई को पोतो नहीं और कोई, कोई को दावो नहीं। सब आप आप का सुख का साथी छे। सब झूठा पसारो छे। आप हाल तांईं मायाजाल मां ही फंस रह्या छो। हमां आज दिन आपके उपदेश सूं मायाजाल सूं छूट गया छां। आगे श्री भगवान संसार सूं बचावेगा।"

इन उद्‌गारों को आप किसी साधु-महात्मा, बड़े-बूढ़े, भुक्त-भोगी या संत के न समझ लीजिएगा, ये १७ साल के एक नवयुवक के हैं जिसने

अभी संसार की हवा भी नहीं देखी थी। इनका महत्व इस बात में है कि ये स्वयं-स्फूर्त हैं। न तो जमनालालजी उस समय किसी महापुरुष के संपर्क में आए थे, न किसीसे सलाह-मशवरा ही किया था। ये असली अछूते जमनालाल के अन्तरतम को प्रकट करते हैं, बाद के गुरुजनों के प्रसाद-प्राप्त जमनालाल के नहीं। दादा बच्छराजजी ने, जिनका स्वभाव ही क्रोधी था, जमनालालजी को एक विवाह के अवसर पर जाते हुए गहने न पहनने पर झिड़का और बुरा-भला कहा। यह भी कहा कि तुम्हें धन से घमंड हो गया है, मुझसे तुम्हारा प्रेम नहीं। कोमल-हृदय परन्तु, स्वाभिमानी व तेजस्वी बालक जमनालाल को यह बरदाश्त नहीं हुआ। एक तो उन्हें यह बात पहले से ही चुभ रही थी कि कनीरानमजी ने उन्हें गोद कैसे दे दिया, दूसरे उन्हें रुपये-पैसे, ऐश्वर्य-भोग में आसक्ति न थी, अतः दादा का क्रोध चोट कर गया। मनस्वी युवक बिलबिला उठा। इस वेदना ने जिन भावों का रूप ग्रहण किया, उसकी एक झलक ऊपर के विलक्षण उद्गारों में है। इनमें सारा भावी जमनालाल उदय होता हुआ दिखाई देता है। जिस क्रम से इसमें विराग, निस्पृहता, आत्मतेज, ईश्वर-श्रद्धा, आत्म-विश्वास, संसार को मिथ्या-मायाजाल समझने की दार्शनिक दृष्टि का परिचय मिलता है वैसा ही विकास आगे जमनालालजी का हुआ है। गरीब को यदि अचानक सम्पदा हाथ लग जाय तो वह बौरा जाता है, धन व ऐश्वर्य के मद में अपने व पराये किसीको कुछ नहीं गिनता, परन्तु, महापुरुषों की रीति उल्टी होती है।

"निशा जो सर्व भूतों की उसमें जाग्रत संयमी
जागें जिसमें सभी जीव सो ज्ञानी-मुनि की निशा।"

जमनालालजी धनीमानी बनकर भी गरीबी का जीवन व्यतीत करने का सदैव प्रयत्न करते रहे। वे गरीबी के जीवन को तरसते थे। उसमें

आनंद व गौरव अनुभव करते थे। कई बार उन्होंने यह कोशिश की कि अपनी उपार्जित सम्पत्ति का सार्वजनिक ट्रस्ट कर दें व खुद २००) मासिक लेकर दूसरे सेवकों की भाँति गरीबी से अपनी गुजर करें। ट्रस्टवाली बात तो उनकी मृत्यु के बाद एक हदतक पूरी हुई। और गरीबी से गुजर बसर करने की अभिलाषा बहुत हद तक। उन्होंने ऐसा संकल्प कर लिया था और उसे पूरा निभाया भी। ५००) मासिक में अपना सारा खर्च, याने अन्न-वस्त्र, सफर-खर्च, डाक-तार-खर्च व निजी सेक्रटरी के वेतन का खर्च चलाते थे। उनके जैसे धनी, प्रतिष्ठित व प्रभावशाली नेता का ५००) मासिक में अपना सारा व्यय चला ले जाना मामूली बात नहीं है। जो दिल से गरीब है, विरक्त है, दरिद्रनारायण का पूजक है, उसके पास बाहरी धन-संपत्ति मान-ऐश्वर्य कहने को उसके हैं, पर वास्तव में वे उनके लिए हैं जिनकी उन्हें सब से ज्यादा जरूरत होती है। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला उन्हें विनोद में कंजूस कहते थे व उनकी सादी रहन-सहन का मज़ाक उड़ाया करते थे। यों वे आदर्श त्यागी तो थे ही; परन्तु, उनकी वास्तविक भूमिका एक तपस्वी की रही है। जमनालालजी जरूर कंजूस थे, मगर अपने लिए, दूसरों के लिए मित्र, भाई, पिता की तरह हमदर्द व उदार थे। यही कारण है कि उनके वियोग में आज भी कितने ही परिवार अपने सगे, स्वजन, आप्त व आत्मीय का वियोग अनुभव कर रहे हैं।

जिसने पैसे को जीत लिया, उसने दुनिया जीत ली। जमनालालजी के आत्म-तेज की यही कुंजी है। न केवल साथियों, अधिकारियों, कुटुम्बियों के प्रति ही बल्कि खुद महात्माजी के प्रति भी वे सदैव निर्भीक, स्पष्टवादी और दबंग की तरह रहते थे। किसी बात पर महात्माजी से लड़ने का साहस रखनेवालों में उनका अग्र स्थान था। राजाजी, शंकरलाल भाई, किशोरलाल भाई, महादेव भाई, जवाहरलालजी महात्माजी से दलील

बहस करने में अग्रणी समझे जाते हैं। परन्तु, जमनालालजी उन्हें खरी-खोटी भी सुना देते थे। उनका 'लट्ठमार' तरीका नये आदमी को तो चौंका व कभी कभी भगा भी देता था। परन्तु, उनके निकटवर्तियों के लिए वह उनके स्फटिक की तरह निर्मल अन्तःकरण का सूचक था। "बापू जी, आप तो मेरा बोझ बढ़ा देते हैं, मेरी शक्ति इतनी नहीं है", "आपको यह कहने का क्या अधिकार था?" ऐसे वाक्य इस लड़वैये भक्त के मुंह से अक्सर निकलते रहते थे। क्योंकि वे निःस्पृह जैसे थे। उनके मन में सिवा "सेवा" व "आत्मोन्नति" के दूसरी चाह नहीं रह गई थी।

"चाह गई चिंता गई, मनुआ बेपरवाह
जा को कछू न चाहिए सो जग शाहंशाह"

इस उक्ति की मस्ती में वे रहते थे। बापू को उन्होंने पिता बनाकर उनकी आशीष व पावन स्फूर्ति ग्रहण की। उनकी इसी बिरासत पर वे फूले नहीं समाते थे। पर, दूसरी ओर एक सत्पुत्र की तरह उन्होंने अपना सर्वस्व बापू-पिता के अर्पण कर रखा था। वर्धा व सेवाग्राम की तमाम गाँधी-संस्थायें, सारा सेवाग्राम ही नहीं, बल्कि गाँधी-द्वारा प्रेरित, स्थापित, संचालित, आन्दोलित ऐसी कोई संस्था, कार्य, या कार्यक्रम नहीं जिसे जमनालालजी ने "अपनी चीज" न समझा हो व उसमें सच्चे सपूत की तरह जुट न पड़े हों।

संसार एक मायाजाल है, इस दार्शनिक सत्य पर उनका बचपन से ही विश्वास था। प्रायः प्रत्येक हिन्दू इसी विश्वास को लेकर जन्मता है। परंतु, जमनालालजी ने केवल रूढ़ अर्थ नहीं, बल्कि इतनी छोटी अवस्था में ही सच्चा मर्म भी समझ लिया था। "यह झूठा पसारा है" इसका अर्थ यह नहीं कि जो कुछ हमें दीखता है, यह हमारी कोरी कल्पना या भ्रम है, बल्कि यह कि मेरे लिए इसका उपभोग करना, इसमें फंसे रहना

बेकार, निरर्थक व हानिकर है। यह संसार ईश्वर का साकार रूप है। अतः उसकी सेवा करना तो ठीक है, क्योंकि वह ईश्वर की सेवा-पूजा ही है। परंतु, उसे अपने भोग-ऐश्वर्य का साधन बनाना ईश्वर-पूजा से विमुख होना है, बल्कि पाप है। अतः वे संसार से या समाज से उतना ही लेने का अधिकार समझते थे कि जितना साधारण निर्वाह के लिए आवश्यक है। वे अपना सब-कुछ संसार या समाज को समर्पित करने की भावना रखते थे। इसका सब से बड़ा प्रमाण है अपने निज के बारे में उनकी कमखर्ची की आदत व अपनी कमाई का ट्रस्ट बना देने की इच्छा व योजना, जो उन्होंने पूरी तरह तैयार कर रखी थी, और उसे अमल में लाने वाले ही थे कि संसार से चल बसे। बाद में तुरन्त ही उनके पुत्रों ने उनकी इच्छा के अनुसार ही उसे पूरा कर दिया।

जमनालालजी के उस त्याग-पत्र का बड़ा असर वृद्ध बच्छराजजी पर हुआ। उनका स्वभाव तो सरल और हृदय दया-माया से भरा था, परन्तु, वाणी कटु थी। अक्सर लोगों को गालियाँ भी दिया करते थे। लेकिन, दूसरे ही क्षण वे प्रसन्न भी हो जाते थे। नौकर-चाकरों पर गुस्सा होते, परन्तु बाद में पेड़े मिठाई मँगा कर देते। लोग उनकी गालियाँ व कड़वी बातों को भी उनका स्वभाव समझ, सहन कर लिया करते थे। बालक जमन के इस त्याग ने बच्छराजजी को गद्गद् कर दिया। पता लगवा कर स्टेशन से मना कर लाये। उन्हें बड़ा पछतावा हुआ और साथ लेकर भोजन किया। इस घटना के कुछ ही दिन पहले की बात है। जमनालालजी चौपड़ खेलते हुए उन्हें दीखे, इसीपर बड़े क्रोध से उबल पड़े। बोले, यह जमन तो अब मुझे चौपट करेगा। इस पर भी स्वाभिमानी जमनालालजी को बड़ा धक्का लगा, और वह अनमने होकर ऊपर कमरे में सो रहे। उस दिन से चौपड़ खेलना छोड़ दिया। बच्छराजजी जमनालालजी को प्यार भी इतना करते थे कि एक क्षण भी उनको अपनेसे अलग नहीं होने देना

चाहते थे, स्कूल भी नहीं जाने देते थे। यही कारण है कि जमनालालजी के इस त्याग या ऊँचे दर्जे के इस सत्याग्रह ने आखिर प्रेमल और वत्सल बच्छराजजी का हृदय पलट दिया। जमनालालजी के स्वाभिमान को चोट जरूर लगी थी, परंतु, इससे वे क्रोध व मलिनता के शिकार न हुए। उनकी निर्लोभता ने अलग अपना जादू दिखाया। उनके इस त्याग को उनके जीवन का—अनजान में क्यों न हो—पहला सत्याग्रह समझना चाहिए। भले ही "सत्याग्रह" शब्द का तथा उसके प्रयोग का भी जन्म उस समय हिन्दुस्तान में न हुआ हो, परन्तु जमनालालजी के मन व संस्कार में वह पहले से रमा हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है।

धन संपत्ति मिलने पर भी उससे मोह न होना या उसके सदुपयोग की भावना मन में रहना सद्बुद्धि का लक्षण है। जमनालालजी जब कभी भगवान से प्रार्थना करते तो ऐसी सद्बुद्धि के लिए ही। वे लिखते हैं—"मैंने जब जब व जितनी मर्तबे ईश्वर से प्रार्थना की है, गुरुजनों से आशीर्वाद माँगे हैं, इन पच्चीस वर्षों में प्रायः सद्बुद्धि के दूसरी प्रार्थना नहीं की है। मैं तो मानता हूँ कि मेरी प्रार्थना सफल हुई। इसी कारण मुझे कई प्रकार के विकट अवसरों में से निकल जाने का मौका मिला है। मैं हमेशा अपने मन में विचार करता हूँ कि मैं धन का त्याग कर सकूंगा। स्त्री-पुत्रों का वियोग सहन कर सकूंगा। गुरुजन अथवा मित्रों की मृत्यु भी बरदाश्त कर सकूंगा। किन्तु, वासना के जीतने का विश्वास नहीं होता था, पर आज थोड़ा विश्वास होने लगा है।"

बहुत बाद के उनके ये उद्गार उनके उस महान त्याग-पत्र की स्पिरिट् से कितना मेल खाते हैं! ऐसा लगता है मानों विधि ने उस पत्र के हार्द के अनुसार उनके भावी जीवन को ढालने का पहले से ध्यान रखा है और बापू, विनोबा, के रूप में अपना मांगल्य उन्हें प्रदान किया है।

: ३ :

अनुपम दान

"उस समय यह सौ रुपया देकर मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ था, वह अब लाखों देकर नहीं होता ।"

जमनालालजी

"विद्या विवादाय धनं मदाय
शक्तिः परेषां परिपीडनाय
खलस्य साधोर्विपरीतमेतत्
ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ।"

अर्थात्, "महज विद्या, धन या शक्ति के होने से ही कोई महान् नहीं हो जाता, उसके सदुपयोग या दुरुपयोग से ही सज्जन व दुर्जन की पहचान होती है।"

लगभग इसी अवस्था में जमनालालजी को एक ऐसा दान करने की प्रेरणा हुई जो उनकी सात्विकता व राष्ट्रीय भावना पर अच्छा प्रकाश डालती है और जो धनी व्यक्ति के घर में गोद आने को सार्थक ही नहीं सुशोभित करती है। पिछले अध्याय में जो त्याग-पत्र उन्होंने दिया, उससे जहाँ उनकी सहज निःस्पृहता फूट पड़ती है, वहाँ इस दान में उनकी उज्वलता अधिक झलकती है। यों तो यह एक सौ रुपये दान की घटना है। संख्या की दृष्टि से यह एक न-कुछ रकम है। लेकिन, इसके नैतिक मूल्य का नाप करना कठिन है। जमनालालजी को १३ साल की अवस्था से ही अखबार

पढ़ने का शौक था। 'हिन्दी-बंगवासी' से उसकी शुरूआत हुई। सन् १९०६ में स्व० माधवरावजी सप्रे ने नागपुर से "हिन्दी केसरी" निकालने का आयोजन किया। यह लोकमान्य तिलक के मराठी "केसरी" का हिन्दी रूपान्तर था। लोकमान्य उन दिनों राष्ट्रीय भारत के बेताज के बादशाह हो रहे थे। उनका एक एक लेख हिन्दुस्तानी नौजवानों में रूह फूंकने का काम कर रहा था। होनहार युवक जमनालाल उसके प्रभाव में आये बिना कैसे रहता? मध्य-प्रांत से यही एक राष्ट्रीय पत्र (शायद पहला) निकलने वाला था। उस छोटी अवस्था में भी जमनालालजी ने राष्ट्र की पुकार को अपने अन्तर्मन से सुना और मानों अपनी जिम्मेदारी को भी महसूस कर के उसकी सहायता के लिए १००) भेजा। यह रुपया बच्छराजजी के कोष का—एक सेठ का नहीं था। बल्कि जमनालालजी की अपनी निजी बचत का था। जमनालालजी को दूकान से १) रोज हाथ-खर्च मिलता था, उसमें बच्छराजजी की मंशा तो यह थी कि इस लोभ से जमनालालजी दूकान का काम-काज सीख लें, किन्तु, जमनालालजी बचपन से ही फिजूल-खर्च नहीं थे। न बाजार की चीजें खाने-पीने का खास शौक था, न नाटक आदि खेल-तमाशों में ही रुचि थी, जैसा कि धनी युवकों में अक्सर यह व्यसन पाया जाता है। अतः यह रुपया पूरा खर्च नहीं होता था। इस तरह कुछ रुपये उनके जमा हो गए थे। इसी बचत में से ये १००) उन्होंने "हिन्दी केसरी" के सहायतार्थ भेजे। यह उनकी खरी बचत का रुपया था। एक व्यापारी और फिर धनी के बेटे की बचपन से ही ऐसी भावना उसके भावी महापुरुष होने का चिह्न था। भले ही इसका भान स्वतः उन्हें तथा दूसरों को भी उस समय न हुआ हो। यह घटना तो उनकी दानशीलता की भागीरथी का केवल उद्गम मात्र थी, जहाँ से प्रारंभ होकर वह उत्तरोत्तर बढ़ती गई। पहले उन्होंने जाति-हित के कामों में अपनी उदारता का परिचय दिया और बाद में यह उदारता समाज, राष्ट्र और देश तक

व्यापक होती गई। उन्होंने सभी पवित्र कामों में खुले हाथों दान दिया। न हिन्दू का भेद किया न मुसलमान का, न सवर्णों का भेद किया न अछूतों का और न अपनों का भेद किया न परायों का। इन दानों में उनका लक्ष्य तो समाज की सर्वांगीण उन्नति था। इसमें वे कोई ऐहिक लाभ नहीं चाहते थे। समाज-सेवा और समाज-सुधार के प्रत्येक काम में वे बड़ा रस लेते थे। स्वयं तो देते ही थे, दूसरों से भी दिलाने का उन्हें शौक रहता था। लाखों देकर भी उन्हें तृप्ति नहीं होती थी।

एक वैश्य व्यापारी के लिए दान देना फिर आसान है, परंतु, दान लेना तो अधर्म जैसा है। एक बार तो वे स्वयं दान लेने के लिए तैयार हो गए। सन् ११९० के आसपास की बात है। जयपुर में वे अपने एक मित्र रामविलासजी खेतान से मिले। रामविलासजी पहले अपने पुत्र के विवाह में सम्मिलित होने का वायदा जमनालालजी से करवा चुके थे, लेकिन निमंत्रण देना भूल गये। जमनालालजी के उलाहना देने पर रामविलासजी ने इसके लिए क्षमा माँगी। जमनालालजी ने कहा—"मैं आपको ऐसे क्षमा नहीं कर सकता, आपको कुछ दण्ड देना पड़ेगा। रामविलासजी ने पूछा क्या दण्ड दूं? आप बोले कि मारवाड़ी विद्यार्थीगृह के लिए १००००) चन्दा दीजिए। रामविलासजी कहने लगे—"यदि आप दान लें तो देने को तैयार हूँ।" जमनालालजी झट् तैयार हो गए और बोले, "मैं अच्छे काम के लिए दान लेना बुरा नहीं समझता।" पास ही बैठे एक पंडितजी ने संकल्प पढ़ा और जमनालालजी ने भिक्षुक ब्राह्मण की तरह दान ले लिया। १००) दान देने में तो दानशीलता की ही परीक्षा थी, जल छुड़ा कर दान लेने में तो उन्होंने बड़ी साहसिक क्रांति-भावना का परिचय दिया। कौन कह सकता है कि इसका नैतिक मूल्य दिव्यता में पूर्वोक्त दान से भी नहीं चढ़ जाता? पीछे से, जैसा कि होना ही था, पुराने विचारवालों में काफी चर्चा हुई, टीका भी हुई। लेकिन, जमनालालजी टस

से मस न हुए, क्योंकि उनका उद्देश्य पवित्र था। उद्देश और भावना की पवित्रता ही मनुष्य को ऐसा अपरिमित साहस प्रदान किया करते हैं। अतः उन्हें चिन्ता भी क्यों होने लगी? दानशील भी ऐसे कि लाखों का दान देकर भी अघाते नहीं थे। लाखों की संपत्ति होने पर भी वे एक सच्चे कार्यकर्ता की तरह जीविका के निर्वाह की इच्छा रखते रहे और शुद्ध हृदय से अपनी गाढ़ी से गाढ़ी कमाई का रुपया दान देकर उस तृप्ति व समाधान को ढूंढ़ते रहे जो 'हिन्दी केसरी' को १००) देकर उन्हें मिला था।

इस अवस्था तक वे अपनी स्कूली पढ़ाई छोड़ चुके थे। चार क्लास तक मराठी और दो, तीन महीने तक अंग्रेजी पढ़कर ३१ मार्च १९०० में स्कूल छोड़ दिया। १ फरवरी १८९६ को आपकी पढ़ाई शुरू हुई, कुल चार साल में जो कुछ पढ़ा सो पढ़ा। बाद में आपको हिन्दी, गुजराती और मराठी का भी काम-चलाऊ अभ्यास हो गया था। इतनी कम शिक्षा पाकर भी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, टूटी-फूटी क्यों न हो, धड़ल्ले से बोल लिया करते थे। इनमें से किसी एक भाषा को वे न शुद्ध लिख सकते थे न बोल सकते थे; फिर भी, चिट्ठियों, लेखों, वक्तव्यों, व्याख्यानों आदि की भाषा में शब्दों की पकड़ और विषयों की आलोचना ऐसी खूबी और गहराई से करते थे कि बड़े बड़े बुद्धिशाली और कानूनदां भी दंग रह जाते थे। आपके इस गुण या शक्ति की धाक कांग्रेस की कार्यसमिति पर भी थी। पंडित मोतीलालजी ने एक बार कहा था कि जमनालालजी से बढ़कर साफ दिमाग रखने वाला (क्लियर हेडेड) व्यक्ति कार्यसमिति में और नहीं है। स्व० भूलाभाई देसाई ने लिखा है—"कार्यसमिति में उनके बिना काम नहीं-सा चलता था। उनकी सलाह हमेशा स्वयं-स्फूर्त, व्यावहारिक और शुद्ध विवेकपूर्ण होती थी। सब समस्याओं को देखने की उनकी दृष्टि सच्चे रूप में राष्ट्रीय और असाम्प्रदायिक होती थी।" विद्वानों और सद्गुरुओं में उनकी श्रद्धा थी, उनसे मिल कर प्रेरणा लेने का शौक था,

उनके सत्संग से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, तथा अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण अपने अनुभव से जो सीखा, वह पुस्तकीय ज्ञान से कहीं अधिक उपयोगी और सच्चा था। इससे हर बात में वे इतने सावधान और चौकन्ने रहते थे कि गाँधीजी ने उन्हें "ईगल आइड" (गरुड़ दृष्टि) या (तीव्र दृष्टि) लिखा था। उनकी प्रतिभा और चौकन्नापन आम लोगों के इस विश्वास को एक चुनौती है कि केवल शिक्षित लोगों में ही प्रतिभा का विकास होता है।

"हिन्दी-केसरी" संबंधी इस दान के समय से ही जमनालालजी के राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक शुरूआत समझनी चाहिए। इस क्रम में वे पहले लोकमान्य के व फिर १९१५ में गांधीजी के परिचय और संपर्क में आए। १९०६ से १५ तक के ये ९ साल उनके राष्ट्रीय भाव दृढ़ होने का समय था। इसमें श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू का संपर्क हुआ जो उनके जीवन को सेवा-क्षेत्रों की ओर खींचने में बहुत सहायक हुआ।

: ४ :

मार्ग-दर्शक की खोज

"जीवन सवामय, उन्नत, प्रगतिशील, उपयोगी और सादगी-युक्त हो, यह भावना जब से मैंने होश संभाला, तब से अस्पष्ट रूप से मेरे सामने थी। इसीकी पूर्ति के हेतु, सामाजिक, व्यापारिक, सरकारी और राजकीय क्षत्रों में कुछ हस्तक्षेप करना मैंने प्रारम्भ किया। सफलता मेरे साथ थी। पर, मुझे सदा यह विचार भी बना रहता कि जीवन की संपूर्ण सफलता के लिए किसी योग्य मार्गदर्शक का होना जरूरी है। मैंने अपने विविध कार्यों में लगे रहने पर भी इस खोज को चालू रखा। इसी मार्गदर्शक की खोज में मुझे गांधीजी मिले। और सदैव के लिए मिले।

"मार्गदर्शक की खोज में मैंने भारत के अनेक व्यक्तियों से संपर्क पैदा किया। महामना मालवीयजी, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जे० सी० बोस, लोकमान्य तिलक, श्री खापर्डे, श्री केलकर आदि अनेक नेताओं तथा व्यक्तियों से मैंने कम-अधिक परिचय प्राप्त किया। उनके संपर्क में रहा। उनके जीवन का निरीक्षण किया। मेरी इस खोज में एक बात ने मेरे दिल पर सब से बड़ा असर रखा था। और वह थी समर्थ रामदासजी की उक्ति—"बोले तैसा चाले, त्याची वंदावी पाउलें" अनेक नेताओं से मेरा परिचय होने पर मुझे उनके जीवन में मेरे इस सिद्धांत की प्राप्ति जिस परिमाण में होनी चाहिए, नहीं हुई। भिन्न भिन्न व्यक्तियों के भिन्न भिन्न गुणों का मुझ पर असर पड़ा। सब के प्रति मेरी श्रद्धा और आदर भी बना रहा। पर अपने जीवन के मार्गदर्शक के स्थान पर किसी को आसीन नहीं कर सका।"

—जमनालालजी

मार्गदर्शक की उनकी यह खोज सच पूछिए तो उनकी आध्यात्मिक व्याकुलता का एक परिणाम थी। उनकी सेवाओं ने यद्यपि राष्ट्रीय और सामाजिक स्वरूप ग्रहण किया, लेकिन उनकी अन्तःकरण की वृत्ति तो मुख्यतः आध्यात्मिक और धार्मिक ही रही। राष्ट्रीय और सामाजिक सेवा के भाव श्री जाजूजी के प्रोत्साहन और संगोपन में बढ़ने लगे और पुरानी पद्धति की धार्मिकता की प्रेरणाएँ श्री बिरधीचन्दजी पोद्दार से मिलती रहीं। पोद्दारजी पहले वर्धा रहते थे। विचार उनके उदार थे और वेदान्त का उन्हें शौक था। वे जमनालालजी के बालसखा और ममेरे भाई थे। वे प्रारंभ से ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति रहे हैं और साधु-संतों की संगति में उन्हें काफी रुचि रही है। सद्ग्रंथों का पठन और उनसे भी बढ़ कर संत-समागम, इन्हीं दो पंखों के द्वारा साधक-रूपी पक्षी आत्मिक जगत् में ऊँची उड़ानें मार सकता है। जमनालालजी की रुचि बचपन से ही इन दोनों बातों की ओर थी। वे साधु-संतों को खिलाने-पिलाने और पूजा-पाठ में भी रुचि रखते थे। ये संस्कार उनकी दादी, बच्छराजजी की पत्नी सदीबाई के संसर्ग से उन्हें मिले थे। वे साधु-संतों का बड़ा सत्कार करतीं और उन्हें खिलाने-पिलाने में आनन्द अनुभव करती थीं। जमनालाल जी भी बचपन में अपनी दादीजी की यह भक्ति भावना देखते और प्रभावित होते। आगे जाकर यह अतिथि-सेवा की प्रवृत्ति उनकी इस हद तक विकसित हो गई थी कि मानों वे "अतिथि देवो भव" की प्राचीन परंपरा के अनुसार अतिथि को देवता मानकर ही उनकी आव-भगत करते थे। इसी तरह बगीचे में, जोकि आजकल मगनवाडी है, ठाकुरजी थे और उनकी पूजा-अर्चा में वे काफी रस लेते थे। पोद्दारजी के एक साधु-मित्र से उनका अच्छा परिचय हो गया था। उनके साथ बैठकर, धार्मिक बातें सुनने में उनको आनंद आता था। बाद में, जब जमनालालजी धर्म के वास्तविक रूप को समझने लगे तब बिरधीचन्दजी के विचारों से

मतभेद रहने लगा, क्योंकि बिरधीचंदजी तो पुरानी धार्मिक परंपरा को मानते थे और जमनालालजी उस रूढ़िवादिता और धार्मिक कट्टरता को हानिकर मानते थे। आगे चलकर तो उनकी यह धर्म-वृत्ति दो धाराओं में बंट गई। एक तो सीधी ठाकुरजी की पूजा-अर्चा में, लक्ष्मीनारायण मंदिर की सेवा-पूजा आदि में कायम रही। दूसरी ने आधुनिक युग की आवश्यकताओं के अनुकूल, मंदिर के प्रसंग से, भजन-कीर्तन, कथा-पुराण आदि के द्वारा, समाज-सुधार, धर्म-संशोधन, सर्वधर्म-समभाव, और समाजसेवा की प्रवृत्तियों का रूप धारण किया।

राम की भक्ति में भरत का आदर्श उन्हें अत्यन्त प्रिय था। और वे भरत का एक मंदिर भी बनवाना चाहते थे; परन्तु, उनकी यह इच्छा उनके मरने के बाद बड़े विचित्र ढंग से पूरी हुई। परंधाम, पौनार मे पूज्य विनोबा को गड्ढा खोदते हुए भरत-मिलाप की एक प्राचीन मूर्ति मिली, जिसकी उन्होंने अपने ढंग से स्थापना भी कर दी है।

जमनालालजी का आखिर में बुद्ध भगवान् की ओर भी झुकाव होने लगा था। वे बुद्ध की मूर्ति की भी प्रतिष्ठा करना चाहते थे और उसका एक समीचीन निमित्त भी पैदा हो गया था। एक बार सेवाग्राम में बापू के पास तिब्बत के कुछ लामा लोग आये थे। उन्होंने बापू से पूछा था कि वहाँ कोई बौद्ध मंदिर भी है। बापू को इंकार होना पड़ा। मंदिर की यह कमी जमनालालजी को खटकी। वे सदा इस बात की टोह में रहते थे कि बापू की कोई शुभ-इच्छा हो और वे उसे पूर्ण कर सकें। उन्होंने एक बौद्ध मंदिर बनवाने का इरादा कर लिया था, परन्तु उसके बाद फौरन वे इस संसार से ही चल बसे। अस्तु।

विनोबा जैसे धार्मिक पुरुष को उन्होंने जो गुरु-रूप में स्वीकार किया था, और माता आनंदमयी की गोद में जाकर अन्त को उन्हें जो

मन-चाही शान्ति मिली थी, उसका मूल जमनालालजी की उगती उम्र में रहनेवाले इस सत्संग और धार्मिक संस्कारों में ही था।

उनकी राष्ट्रीय धारा के संचालक जाजूजी रहे। उनकी सलाह से वे पहली बार १९०६ में कलकत्ता कांग्रेस में शरीक हुए। मारवाड़ी विद्यार्थी गृह और मारवाड़ी हाई-स्कूल की स्थापना और दूसरे सामाजिक और सार्वजनिक कामों में उनकी रुचि को जाजूजी प्रोत्साहित करते रहते थे। सेठ बच्छराजजी को जाजूजी का यह प्रभाव अखरता था। उनको यह आशंका हो गई थी कि जाजूजी की संगति में जमन कहीं किधर का किधर न बह जाय!

जाजूजी के पुरखे बीकानेर (राजस्थान) के रहनेवाले थे, परन्तु, वर्धा आने से पहले पड़ौस के आर्वी नामक स्थान में रहते थे। वहाँ से १९०५ में वर्धा आकर उन्होंने वकालत शुरू की। उधर के माहेश्वरी समाज के वे पहले ही बी० ए० बी० एल० थे। कलकत्ता-विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में पहले नम्बर आए थे। वे ठेठ से ही शिक्षा-प्रेमी, सुधारक और साधुमना हैं। बड़े चरित्रवान और निरभिमानी। शिक्षा और सुधार में उनकी बड़ी रुचि है। उस वक्त राजनीति में आप लोकमान्य तिलक को मानते थे। कर्मधर्म संयोग से जमनालालजी की इनसे मुलाकात हो गई। जमनालालजी को मनचाहा साथी और सलाहकार मिला और जाजूजी को सेवा और सुधार के बीज बोने के लिए अनुकूल क्षेत्र जमनालालजी के रूप में मिला। दोनों में घनिष्ठता इतनी बढ़ गई कि जमनालालजी ने ऐसा कोई कार्य घरू, व्यावसायिक और पारिवारिक नहीं किया जिसमें श्री जाजूजी की सलाह न ली गई हो। एक चतुर माली की तरह जाजूजी जमनालालजी के जीवन की काँट-छाट करते रहते थे, जो प्रायः अन्ततक जारी रही। बल्कि आगे चलकर जमनालालजी की महानता के प्रति उनके मन में आदर रहने लगा था। इसके बहुत साल बाद जमनालालजी की एक

वर्ष-गाँठ के अवसर पर जाजूजी ने उन्हें लिखा था—"मेरा हृदय तो आपको सदा प्रणाम करता है। फिर ऊपर से आशीर्वाद लिख दूं या और कुछ। हमारा शुभ-चिन्तन है कि जो कायम रहें वे आपकी १२१ वीं वर्ष-गाँठ मनावें। यह तो हमारी दृष्टि है, इस विषय में आपकी दृष्टि क्या होनी चाहिए? किसी पर्व का उपयोग पिछला हिसाब देखने और भविष्य में शुभ-संकल्प करने के लिए होना चाहिए। सो आप करते ही हैं। मनुष्य के लिए जन्म महत्व की वस्तु नहीं होती है।"

शुरू में, जाजूजी को ऐसा लगा कि जमनालालजी नाम के चक्कर में पड़ गये। उन्होंने उन्हें सावधान करने की एक तरकीब सोची। जमनालालजी एक आदर्श की तरफ तो जाना ही चाहते थे। उन्होंने अपने जीवन को बनाने की दृष्टि से कुछ अच्छे वचन लिख कर अपने कमरों में टँगवा दिये थे। उनमें एक इस प्रकार का था:—

"एक दिन मरना अवश्य है। अन्याय करने से सदा डरो।
निस्वार्थ बुद्धि से जातीय उन्नति के काम किया करो।"

जाजूजी ने इसके नीचे इतना और बढ़ा दिया:—

"दूसरों को अपनी प्रशंसा करनी चाहिए, ऐसी इच्छा मत रखो।"

चतुर जमनालालजी ने इससे आवश्यक सबक ले लिया।

एक तीसरे पारसी सज्जन थे जिनका प्रभाव इन दिनों जमनालालजी पर पड़ा। श्री पिस्तमजी सोराबजी पाठक बम्बई के एक प्रसिद्ध घराने के बैरिस्टर थे। उन दिनों वे वर्धा के कलेक्टर थे। बड़े विद्वान्, सहृदय, पाप-भीरु, सच्चे और ईमानदार थे। उनके हृदय में देशभक्ति की फल्गु-नदी बहा करती थी। जमनालालजी को ऐसा राज्याधिकारी यह पहला ही मिला और वे उनसे प्रभावित हुए। इधर पाठकजी ने भी जमनालालजी के गुणों को परख लिया। जमनालालजी कहते थे कि पाठकजी न्याय,

सत्य, और कर्म का जो उपदेश देते थे उसका मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी कथनी और करनी एक थी। जमनालालजी मनुष्य की परीक्षा इसी कसौटी पर कसकर करते थे। जमनालालजी ने उनसे सचाई और निर्भीकता का पाठ सीखा।

जमनालालजी का जीवन जो आगे जाकर एक वट-वृक्ष की तरह फैलता चला गया उसका सूक्ष्म बीज इस त्रिमूर्ति के सिंचन से ही अंकुरित हुआ, जिसकी पूर्णता गाँधीजी, विनोबा और अंतिम समय में माता आनन्दमयी को प्राप्त कर के हुई। जिन जाजूजी को उन्होंने अपना प्रारंभिक पथ-प्रदर्शक माना, वे बाद में "शिष्यादिच्छेत् पराजयम्" के न्यायानुसार खुद भी जमनालालजी की महत्ता के कायल होते गए और उनका उचित अभिमान भी रखते हैं। उन्होंने जमनालालजी को इस बात का प्रमाण-पत्र दिया है कि "सत्य के अमल में उन्हें काफी अड़चनें आती थीं लेकिन वे अपनी निष्ठा से डिगते नहीं थे। बड़े बड़े व्यापारियों के मुँह से सुनने में आता है कि कुछ न कुछ असत्य के बिना व्यापार का काम चल ही नहीं सकता। श्री जमनालालजी सदा इस धारणा को गलत साबित करने का प्रयत्न करते रहे। युवावस्था में ही उनको इसका ध्यान था कि सारा व्यवहार न्याय, नीति एवं शुद्धता से हो। अपने व्यापार में उन्होंने बड़ी बड़ी आमदनी के काम भी स्वयं खुशी से छोड़ दिए। अदालत में सत्य-निष्ठा की पूरी कसौटी होती है। पर, जमनालालजी वहाँ भी अपने सत्य-व्रत पर निश्चल रहे।"

"श्री जमनालालजी के स्वर्गवास से देशभर में विशेष शोक छा गया था। उस समय भारत के लाखों स्त्री-पुरुषों ने महसूस किया कि एक अपना ही व्यक्ति चल बसा। सहस्रों परिवारों ने अनुभव किया कि अपने परिवार का एक मुखिया गया। जमनालालजी ने बड़े बड़े काम कर के कीर्ति कमाई। उनके कामों का प्रकाश भी खूब फैला, पर उनके हृदय की

विशेषता कुछ निराली ही थी। उनमें लोगों के लिए इतना अपनापन था कि जिनसे संबंध आता उनसे निजी रिश्ता जुड़ता ही जाता।

"उनके गुणों को शब्दों का जामा पहनाना आसान बात नहीं है। उनकी तमाम साधन-संपत्ति और शक्ति जन-सेवा में पूर्णतः अर्पित रही। निजी जीवन नाममात्र का रह गया था। सारा जीवन शुभ-कार्यों से घना भरा रहा। जगत् के सामने तो उनके कर्म का स्वरूप ही है। वह आदरणीय और विशाल है, परन्तु, उनका अन्तःस्वरूप भी उतना ही उदात्त था। षड्रिपुओं को जीतने का भरसक प्रयत्न करके अन्तःकरण की शुद्धि की और जीवन का उत्तरोत्तर विकास करते रहे। उनके निर्मल चरित्र के कारण उनका इतना प्रभाव बढ़ा और सब के प्रिय होकर, हमारे लिए एक अनुकरणीय जीवन का उदाहरण छोड़ गये।"

: ५ :

सेवा-क्षेत्र की ओर

"श्री लक्ष्मीजी सुं प्रार्थना है कि सद्बुद्धि देवे तथा सत्य के साथ बेपार करन की तथा रुजगार मां ही लाभ होवे जीको देश तथा दुःखी जनता के कार्य मांही लागन की बुद्धि देवे।"

(बहीखाते में प्रार्थना)

"मुझे पूरा विश्वास है कि निस्वार्थ भाव से जनसेवा करते रहने से ही शीघ्र मोक्ष प्राप्त हो सकती है। अगर कोई मुझे यह कहे कि इस तरह देश-सेवा करने वालों को सौजन्म में भी मोक्ष-प्राप्ति नहीं होगी तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं होती। एक प्रकार से आनंद ही होता है। पवित्रता के साथ जनसेवा करते करते कई जन्म भी हो जावें तो क्या फिक्र? केवल मनुष्य को इस बात का विचार रखना चाहिए कि कहीं वह मायाजाल में फँस कर मनुष्य-जन्म के आदर्श को न भूल जाए और अभिमान में प्रवृत्त होकर इस नरदेह का पतन न करे।"

—जमनालालजी

जैसा कि बताया जा चुका है, जमनालालजी ने कोई विशेष शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। उन्हें हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती और मराठी का साधारण ज्ञान था। लेकिन, प्रतिभा के विकास के लिए वास्तव में जिस सामग्री की जरूरत थी, वह उन्हे प्राप्त थी। आत्म-निरीक्षण, विचार-युक्त जीवन, सतत जागृति, विचार, उच्चार और आचार में मेल साधने की प्रवृत्ति इनसे उनकी बुद्धि में एक चमक आ गई थी। पुस्तकी ज्ञान उनके

लिए थोथा हो गया था। वे वास्तविक ज्ञान की ओर बढ़ते जा रहे थे। इसलिए, शिक्षा की कमी उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक नहीं हो सकी।

बच्छराजजी की मृत्यु होने पर उन्हें सारा कारोबार संभालना पड़ा। उस समय उनके पास ज्यादा संपत्ति नहीं थी। बच्छराजजी केवल पाँच, छः लाख की स्थावर और जंगम संपत्ति छोड़ गये थे। इस सम्पत्ति में से भी उन्होंने ७५०००) श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर के लिए दान कर दिया था। मारवाड़ी स्कूल आदि के लिए भी बच्छराजजी ने दान किया था। जमनालालजी ने कारोबार की बागडोर संभाली और व्यापारिक क्षेत्र में बड़ी तेजी से उन्नति कर ली। बच्छराजजी से उन्हें जितनी संपत्ति मिली उससे कई गुना ज्यादा संपत्ति तो उन्होंने एक से अधिक बार दान में ही दे दी। यह उनकी व्यापारिक कुशलता का नमूना नहीं तो क्या है?

सन् १९०८ में ही सरकार ने उनको आनरेरी मजिस्ट्रेट बना दिया। उस समय उनकी अवस्था केवल १८ वर्ष की थी। लेकिन, यह इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने थोड़े समय में ही सरकार को भी प्रभावित कर दिया था। आगे चल कर तो उन्होंने उच्च कोटि का व्यापारिक अनुभव प्राप्त कर लिया था। लेकिन इस छोटी-सी उम्र में भी व्यापारिक क्षेत्र में उनके विचार प्रमाणभूत माने जाने लगे थे। यही कारण था कि इन्हीं दिनों उन्हें बम्बई चेम्बर आफ कामर्स की ओर से कमीशनों के सामने गवाही देने का मौका मिला था। उनका रुई का व्यापार खूब बढ़ा, वे कई कंपनियों के संस्थापक और डाइरेक्टर बने और कई विदेशी व्यापारियों से घनिष्ठता प्राप्त कर के बड़े बड़े व्यापारियों में गिने जाने लगे। लेकिन यह सब उन्होंने केवल अपने लिए नहीं किया। व्यापार तो एक साधन-मात्र था। व्यापार से जितना मिलता उसमें से अधिकांश वे देश और समाज के कल्याण में खर्च कर देते थे। उनका सिद्धान्त-वाक्य था :—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग नाऽपुनर्भवम्,
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति-नाशनम्।।"

दुःखी लोगों के दुःख को मिटाने में ही वे अपना पैसा खर्च करते थे। इसे ही वे अपना धर्म समझते थे। वे व्यापार में पड़े, तो जब तक व्यापार किया डट कर और खूब मन लगा कर किया, थोड़ी पूंजी रख कर भी उत्तम श्रेणी के व्यापारियों में आ गए। किन्तु, उनकी तमाम व्यापारिक और आर्थिक प्रवृत्तियों ने उन्हें सेवा-क्षेत्र की ओर ही ढकेला। वे चाहते तो बड़े बड़े करोड़पतियों में उनका नम्बर आसानी से आ सकता था। परंतु, व्यापार में उनका आदर्श तो भामाशाह से भी ऊँचा था। जो कुछ धन कमाया, उसे अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए खर्च करने में उन्हें आनन्द आता था।

यद्यपि वे धन कमाते थे, फिर भी, धन के प्रति उनके मन में अरुचि जैसी थी, जो उनके दिये दान तथा सीधे-सादे जीवन से पद पद पर प्रकट होती है। सेवामार्ग में अग्रसर होने की दृष्टि से ही उन्होंने सादगी का व्रत अपनाया था। रहन-सहन, खान-पान, खर्च-व्रर्च सब में बहुत मित-व्यय व हार्दिक संयम से काम लेते थे। यों स्वभाव से स्वादिष्ट भोजन में उनकी बड़ी रुचि थी, किन्तु, उन्होंने सादा भोजन-पान का अभ्यास कठोर नियम-पालन द्वारा डाल लिया था। उनके कोठी और बंगला था, परंतु, उनका कमरा क्या, एक दरबान के रहने जैसी कोठरी—बंगले के एक किनारे पर। खान-पान में क्या मेहमान, क्या नौकर सबके साथ एक-सा बर्ताव रखते थे। स्वास्थ्य के कारणों से यदि उनकी थाली या पत्तल में कोई विशेष वस्तु आती तो वह उन्हें मन में अखरती थी। बाजरे की राबडी या ज्वार की रोटी उन्हें बहुत प्रिय थी। उनके चप्पल, पाँवों की बुरी हालत, कपड़े-लत्ते, सब आजकल के समय, समाज की दृष्टि से फूहड़ जैसे लगते थे। पाँवों में बिवाई फटी हुई है, लंगड़ाते चल रहे हैं,

साथी मजाक उड़ाते है, मगर उनकी सादगी या कष्ट-सहिष्णुता में अन्तर नहीं आने पाता। उतने ही विनोद के साथ वे उन आलोचनाओं का उत्तर देते हुए सादे जीवन का गौरव उन्हें बताते। उनकी यह सादगी कोरी अन्ध-भक्ति या अन्धानुकरण नहीं थी। उसके मूल में गहरा विचार और एक सिद्धांत रहता था। धन को वे भोग की वस्तु नहीं मानते थे—सेवार्थ उसका उपयोग करना चाहते थे। बापू के ट्रस्टीशिप का आदर्श उनके हृदय में बैठ गया था। बच्छराजजी की धन-संपत्ति का वे एक बार त्याग कर चुके थे। यद्यपि बच्छराजजी के समझाने-बुझाने से वे स्टेशन से वापस घर आ गए, और कामकाज में भी लग गए, फिर भी, उनकी धन-दौलत को तो वे मन से छोड़ चुके थे। हरिश्चन्द्र ने जैसे स्वप्न के दान को निबाहना अपना धर्म समझा वैसे ही जमनालालजी हृदय से इस त्याग का पालन करना चाहते थे। वे उस धन पर अपना कोई नैतिक अधिकार नहीं मानते थे। और अपनी इस धारणा के अनुसार उन्होंने बच्छराज जी की सारी सपत्ति को जोड़कर और उस पर ब्याज लगाकर उतनी रकम दान दे दी। सो भी एक बार नहीं, दो-तीन बार और फिर भी, उन्हें पूरा समाधान नहीं होता था।

सेठ-शाही से आपको चिढ़ थी। हम परिचित लोग कभी लिफाफे पर "सेठ जमनालालजी" लिख देते या चिट्ठियों में "मान्यवर" या "प्रिय सेठजी" लिखते तो उन्हें बुरा लगता और वे दुःख-भरा उलहना हम लोगों को दिया करते।

जब बम्बई में आपने कई मित्रों के लोभ और महत्त्वाकांक्षा को देखा तो उससे आपके जी को बड़ा दुःख हुआ और अन्त में विराग-सा आ गया। आप सदैव मानते हैं कि धन-दौलत आत्मोन्नति में बाधक रहती है। और इसलिए उसका उपयोग सेवाकार्य में करना चाहिए। उनकी ऐसी धारणा ने भिन्न भिन्न संस्थाओं की स्थापना के रूप

में जन्म लिया। वर्धा की शिक्षा-संस्थाओं के बाद बम्बई की ओर उनकी निगाह गई। बम्बई व कलकत्ता ये दो मारवाड़ियों के जबर्दस्त केन्द्र हैं। कलकत्ते वाले धन और संख्या में बढ़े हुए थे, जबकि बम्बईवाले सुधार और जागृति में। इससे लाभ उठाकर जमनालालजी ने वहां के नवयुवकों में मारवाड़ी-विद्यालय खड़ा करने की प्रेरणा की, जो १९१५ में स्थापित हुआ। इसी सिलसिले में किसी एक सभा में श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने उन्हें पहली बार देखा। उस समय जो छाप उनके मन पर पड़ी वह उन्हींके शब्दों में सुनिए:—

"शायद १९१२ की बात है। बम्बई में मारवाड़ी पंचायतबाड़ी में विशिष्ट मारवाड़ियों का एक छोटा-सा समाज मन्त्रणा के लिए इकट्ठा हुआ था। बम्बई में एक मारवाड़ी विद्यालय की स्थापना का आयोजन हो रहा था। समाज के धनी और वृद्ध सभी लोग उपस्थित थे। किन्तु, किसी ने स्कूली शिक्षा नहीं पाई थी। इसलिए उन्हें यह पता नहीं था कि क्या करना है; पर, धन एकत्रित करना, यह तो सभी जानते थे।

सभा में तरह तरह के लोग थे। अप्रस्तुत बातें भी चलती थीं। विषयान्तर भी होता था। पर, एक मनुष्य था जो जब अपना मुंह खोलता तो लोग उसे ध्यान से सुनते थे। मैंने भी उसे ध्यान से देखा। वह पुरुष नितान्त युवक था। पचीसी के इसी ओर था। गौर वर्ण, स्थूल शरीर, गोल मुंह, शरीर में रेशमी कोट और सिर पर काश्मीरी काम की टोपी। खादी की तो उस समय किसी को कोई कल्पना भी नहीं थी। स्वदेशी की परिभाषा में उस समय जापानी कपड़ा तक त्याज्य नहीं माना जाता था। इसीसे युवक की वेश-भूषा के सारे कपड़े स्वदेशी नहीं थे। ठाठ-बाट अमीराना था। चेहरे पर नजाकत थी, पर आँखों से सरलता और एक तरह की तेजस्विता टपकती थी। शिक्षित तो साधारण-सा ही मालूम

होता था। पर बोल रहा था निर्भयता और पूरे आत्म-विश्वास के साथ। और वह लोगों को प्रभावित भी कर रहा था।

मैं तो उस नवयुवक से भी छोटा था, बीसी के इसी पार। पर मुझसे उमर में थोड़ा ही बड़ा वह युवक जिस आत्म-विश्वास, अनुभव और प्रभाव के साथ बोल रहा था, वह देखकर मुझे कुछ डाह-सी हुई। मैंने किसी से पूछा कि यह युवक कौन है तो पता लगा कि इस नौजवान का नाम जमनालाल बजाज है। इस छोटी-सी उम्र में देहात में रहनेवाला एक साधारण शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति सामाजिक कामों में इतनी लगन और सचाई से रस ले सकता है, यह जान कर कुछ आश्चर्य और कुछ कुतूहल हुआ। मुझे जानना चाहिए था कि गुदड़ी में भी लाल होते हैं। बस, वहीं से मेरा जमनालालजी से परिचय हुआ, और उनसे उस दिन से जो मैत्री हुई वह फिर जमती ही गई।"

शिक्षा और समाज-सुधार की धुन में आपने १९१० में मारवाड़ प्रांत का दौरा किया और अनेक शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण किया। १९१२ में वर्धा में आपने मारवाड़ी हाय-स्कूल खोला। असमर्थ विद्यार्थियों के लिए रहने और पढ़ने का अच्छा प्रबन्ध किया गया। कन्याओं के लिए आपके प्रोत्साहन से एक कन्या-पाठशाला भी खोली गई। बम्बई में मारवाड़ी-विद्यालय को भी आप काफी सहायता देते थे। उसकी स्थापना में आपका मुख्य हाथ था ही। इन्हीं दिनों आप के प्रयत्न से सीकर में माधव विद्यार्थी-गृह खुला। इस छात्रावास में राजपूत छात्रों को विशेष रूप से दाखिल किया जाता था, जिसमें जमनालालजी का एक खास आशय यह था कि शिक्षित होने पर राजपूत-जाति में कन्या-जन्म के समय जो भ्रूण-हत्याएँ होती हैं, वह रुक जायँ। और वे यह समझने लगें कि जीवन में स्त्री और पुरुष याने बालिका और बालक का स्थान एक-सा है। पहले आप इसको पूरी सहायता देते थे। पीछे से "शेखावटी शिक्षा-मण्डल" की

स्थापना भी आपने की। इस प्रकार उन दिनों शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का काम आपने काफी किया। जाजूजी के प्रभाव से समाज-सुधार और समाज-सेवा का जो सूत्रपात हुआ वह १९१५ में महात्माजी के संपर्क के बाद उनके जादू से राष्ट्रीय, राजनैतिक व रचनात्मक कार्य-क्षेत्रों में विकसित होता गया। गंगोत्री की गंगा कलकत्ते में सहस्र-मुख होकर गंगा सागर बन गई। वर्धा में महात्माजी के आशीर्वाद से यही हाल जमनालाल जी के जीवन का हुआ। यों उनके जीवन की धारा वर्धा से ही बही और वर्धा में ही विलीन हुई। परन्तु, वह वर्धा-केन्द्र से चल कर हिन्दुस्तान के प्रत्येक प्रान्त, प्रत्येक जाति, प्रायः प्रत्येक उपयोगी संस्था और व्यक्ति के जीवन को सरसाती हुई वर्धा में ही महासागर हो गई। एक साधारण बनिया कनीराम के घर जन्मे, एक विश्व-वन्द्य महात्मा की गोद में अपना शरीर छोड़ गए।

: ६ :

महात्माजी की छत्रच्छाया में

"जिस दिन मैं महात्माजी के पुत्र-वात्सल्य क योग्य हो सकूंगा, वही समय मेरे जीवन के लिए धन्य होगा। महात्माजी की अनुपम दया से अपनी कमजोरियों को तो कम से कम थोड़ा बहुत पहचानने लगा हूँ।"

"महात्माजी के कार्य में मैं अपने आपको विलीन हुआ पाने लगा। वे मेरे जीवन के मार्गदर्शक ही नहीं, पिता-तुल्य हो गए। मैं उनका पाँचवां पुत्र बन गया।"

—जमनालालजी

"वह किस तरह मेरे पुत्र बन कर रहे सो हिन्दुस्तानवालों ने कुछ कुछ अपनी आंखों देखा है, जहां तक मैं जानता हूँ, मैं कह सकता हूँ कि ऐसा पुत्र आज तक शायद किसीको नहीं मिला।"

—गाँधीजी

गाँधीजी के सम्पर्क में जमनालालजी किस प्रकार आये इसका वर्णन खुद जमनालालजी ने इस प्रकार किया है:—

"जब मैं मार्गदर्शक की खोज में था तब गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका में सेवा-कार्य कर रहे थे। उनके विषय में समाचारपत्रों में जो आता उसे मैं गौर से पढ़ता था, और यह स्वाभाविक इच्छा होती थी कि यदि यह व्यक्ति भारत में आवे तो उससे संपर्क पैदा करने का अवश्य प्रयत्न किया जाय। सन् १९०७ से १९१५ तक इस खोज में मैं रहा। और जब गाँधी जी ने हिन्दुस्तान में आकर अहमदाबाद के कोचरब मोहल्ले में किराये का

बंगला लेकर अपना छोटा-सा आश्रम आरंभ किया तब उनसे परिचय प्राप्त करने के हेतु मैं तीन बार वहाँ गया। उनके जीवन को मैं बारीकी से देखता। उस समय वे अंगरखा, कठियावाड़ी पगड़ी और धोती पहिनते थे। नंगे पैर रहते थे। स्वयं पीसने का काम करते थे। स्वयं पाक-गृह में भी समय देते थे। स्वयं परोसते थे। उनका उस समय का आहार केला, मूंगफली, जेतून का तेल, और नींबू था। उनकी शारीरिक अवस्था को देखते हुए उनके आहार की मात्रा मुझे अधिक मालूम होती थी। आश्रम में प्रातः-सायं प्रार्थना होती थी। सायंकाल की प्रार्थना में मैं सम्मिलित होता था। गाँधीजी स्वयं प्रार्थना के समय रामायण, गीता आदि का प्रवचन करते थे। मैंने उनकी अतिथि-सेवा और बीमारों की सुश्रूषा को भी देखा और यह भी देखा कि आश्रम की और साथियों की छोटी से छोटी बात पर उनका कितना ध्यान रहता है। आश्रम के सेवाकार्य में रत और निमग्न "बा" को भी मैंने देखा। गाँधीजी ने भी मेरे बारे में पूछ-ताछ करना आरंभ किया। शनैः शनैः संपर्क तथा आकर्षण बढ़ता गया। ज्यों ज्यों मैं उनके जीवन को समालोचक की एक सूक्ष्म दृष्टि से देखने लगा त्यों त्यों मुझे अनुभव होने लगा कि उनकी उक्तियों और कृतियों में समानता है और मेरे "बोले तैसा चाले" इस आदर्श का वहाँ अस्तित्व है। इस प्रकार संबंध तथा आकर्षण बढ़ता गया "

इसके बाद जमनालालजी उनके पाँचवें पुत्र बने—और यहीं तक बस नहीं हुआ—उन्होंने गाँधीजी को "मोल" भी ले लिया। इसका वर्णन स्वर्गीय महादेव भाई ने इस प्रकार किया है:—

"जमनालालजी ने बड़ा जबर्दस्त सौदा किया। उन्होंने गाँधीजी को मोल लिया। सन् १९१६ की बात है, जब वे कोचरब नामक स्थान पर जहाँ पहिले साबरमती आश्रम था, आए थे। साबरमती आश्रम के तब कोई मकान नहीं थे। कोचरब गाँव में एक किराये का बंगला था। उसमें आश्रम

था। जमनालालजी ने बापू को आग्रह करके कहा—"वर्धा आइए, वहीं *आश्रम स्थापित कीजिए*" बापू ने उस समय नहीं माना। उन्होंने कहा:—"मैं गुजराती हूँ, गुजरात में रहकर ही अधिक सेवा कर सकता हूँ। गुजरात की सेवा के द्वारा भारत की सेवा करूँगा।" जमनालालजी वापस चले आए। बाद में उनके पुत्र बने, दान दिया, जेल गये, सर्वस्व का समर्पण करने तक तैयार हो गये। आखिर, १९३४ में बापू मान गए और वर्धा आकर रहे। बल्कि, यह कहूँ कि १९३४ में बापू बिक गए। पार्वती ने शिवजी की आराधना कठिन तपस्या से की। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव जी ने उसे कहा—"क्रीतस्तपोभिः" तुम्हारे तप से तुमने मुझे मोल लिया है। वैसे ही मीरा ने किया, कबीर ने किया। जमनालालजी ने भी अपना सर्वस्व देकर गाँधीजी को मोल लिया, मानों भगवान को ही मोल लिया।"

पाँचवाँ पुत्र बनने की घटना इस प्रकार है—नागपुर के झंडा सत्याग्रह के दिनों की बात है। एक दिन जब कि गाँधीजी वर्धा आये हुए थे। जमनालालजी ने महात्माजी से कहा—"आपसे एक दान माँगता हूँ।" गाँधीजी ने आश्चर्य से पूछा—"क्या?" जमनालालजी बोले—"बस, आप मुझे देवदास का भाई—अपना पाँचवाँ पुत्र—मान लें।" गाँधीजी विचार में पड़ गये। थोड़ा सोचकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—"जैसा तुम चाहो" और जमनालालजी बापू के पाँचवें पुत्र बन गये। उनके इस पुत्रत्व के सम्बन्ध में एक मजेदार बात हो गई। शुरू में गाँधीजी पत्रों में जमनालाल जी को "सुज्ञ भाई, या भाई श्री जमनालालजी" इस तरह संबोधन करते थे। उनके प्रति पुत्र-भाव होने पर चि० लिखने लगे। एक बार उन्होंने फिर "भाई जमनालाल" लिख दिया। जमनालालजी को यह प्रयोग खटका। उन्होंने महात्माजी पर अपना दुःख प्रकट किया और लिखा कि शायद मैं "चि०" के योग्य नहीं रहा। उसके जवाब में महात्माजी ने उन्हें जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है:—

चि० जमनालाल,

तुमको दुःख हुआ उससे मुझे भी दुःख हुआ है। मैंने एक खत में "चिरंजीव" का उपयोग नहीं किया, क्योंकि वह मैंने खुला भेजा था। उस समय में इस बात का निर्णय नहीं कर सका कि "चिरंजीव" विशेषण को सब लोग पढ़ें तो यह उचित होगा या अनुचित। इससे मैंने भाई शब्द का प्रयोग किया है। तुम चि० होने के योग्य हो या नहीं अथवा में बाप का स्थान लेने लायक हूँ या नहीं, इसका निर्णय कैसे हो? तुम को जैसे तुम्हारे विषय में शंका है, वैसे ही मुझे मेरे बारे में शंका है। यदि तुम सम्पूर्ण हो तो मैं भी हूँ। बाप बनने से पहले मुझे अपने बारे में ज्यादा विचार कर लेना चाहिए था। तुम्हारे प्रेम के खातिर मैं बाप बन गया हूँ। ईश्वर मुझे इस स्थान के लायक बनावें। यदि तुममें कमी रहेगी तो वह मेरे ही स्पर्श की कमी रहेगी। हम दोनों प्रयत्न करते करते अवश्य सफल होंगे, यह मुझे पूर्ण विश्वास है। इतने पर भी, यदि निष्फलता हुई तो भी भगवान जो कि भावना का भूखा है, और हमारे अन्तःकरण को देख सकता है, हमारी योग्यता के अनुसार हमारा फैसला कर लेगा। इसलिए, जबतक मैं ज्ञानपूर्वक अपने अन्दर मलिनता को स्थान नहीं देता हूँ, तबतक तुमको "चिरंजीव" ही मानता रहूँगा।

बापू के आशीर्वाद

यह पत्र एक ओर जमनालालजी की पुत्रत्व की योग्यता बढ़ाने की उत्सुकता और उसके छिन न जाने की चिन्ता को प्रकट करता है, तहाँ दूसरी ओर महात्माजी की पुत्र-वत्सलता, व्यवहार-दक्षता और अन्तःकरण को निर्मल रखने की तीव्र लगन को भली-भाँति व्यक्त करता है। जमनालालजी की यह पुत्र-भक्ति देखकर महात्माजी १९३४ में वर्धा आए और इससे उन्हें काफी संतोष रहा। जैसा कि जमनालालजी ने स्वयं वर्णन किया है, गाँधीजी से मिलने की और उनसे संपर्क स्थापित करने की एक प्यास

कई दिनों से उनके मन में थी। वे सर्वप्रथम अहमदाबाद के कोचरब में उनसे मिले। वे तरस रहे थे किसी ऐसे व्यक्ति को पाने के लिए जिसके सामने अपना हृदय खोल कर रख दे। अपनी भलाई-बुराई का सारा चित्र उनके सामने रख दे। बापू के मिल जाने पर उन्होंने सदैव अपने मन के सब उतार-चढ़ाव उनके सामने रखे हैं। जब कभी ऐसा अवसर नहीं मिला है तो उनके मन पर बड़ा भार बना रहा।

महात्माजी के जीवन व संपर्क का कैसा प्रभाव जमनालालजी पर पड़ा, यह खुद उन्हींके एक पत्र में पढ़ लीजिए जो उन्होंने ता० २ अक्टूबर १९२२ को "हिन्दी नवजीवन" के संपादक को लिखा था:—

"महात्माजी के प्रति अगर मेरा खाली आदरभाव ही रहता तो उनके विषय में मैं कुछ लिख सकता। पर, महात्माजी ने मुझे इस तरह से अपनाया है कि उनके प्रति मेरे मन में पिता और गुरु के समान ही भाव पैदा होता है। बचपन से ही सार्वजनिक जीवन का प्रेम होने के कारण बहुत से सरकारी प्रतिष्ठित कर्मचारी तथा देश के प्रख्यात नेतागण से मेरा परिचय हुआ। पूज्य लोकमान्य तिलक महाराज और भारतभूषण मालवीयजी जैसे महान नरों का परिचय मेरे लिए लाभदायक हुआ। लेकिन, महात्माजी ने तो मेरी मनोभूमिका ही बदल दी। मेरे मन में कई बार त्याग के विचार पैदा हुआ करते थे। उन्हें कार्य-रूप में लाने का रास्ता बता दिया। उनका निर्मल चरित्र, शीतल तेजस्विता, गरीबों की कलक, मनुष्य-मात्र से सत्य व्यवहार, अनुपम प्रेम और धर्म-श्रद्धा देखकर ही मेरा मन उनकी ओर खिचता गया और मेरे जीवन की त्रुटियाँ मुझे प्रतीत होने लगीं एवं यह महत्वाकाँक्षा बढ़ने लगी कि इस जीवन में किस तरह महात्माजी के सहवास के योग्य बन सकूँ।"

: ७ :

राजनैतिक क्षेत्र

"यों तो हमारे यहां कई राजनीतिज्ञ हैं और प्रसिद्ध हैं, जिनकी सेवा और सार्वजनिक कार्य का लेखा अच्छा है, लेकिन जमनालाल बजाज उनमें एक ही थे, और उनकी जगह भर सकने वाला दूसरा कोई नहीं रहा।"

—जवाहरलाल नेहरू

"१९२० से देश की सेवा में उन्होंने अपना जीवन समर्पण कर दिया था। तब से जीवन के अंत तक वह देश की सेवा करते रहे। वह अपनी विविध प्रवृत्तियों के कारण प्रथम श्रेणी के राष्ट्रीय नेता हो गए थे।"

—मौलाना आजाद

"हमारे स्वराज्य पाने के ये सब प्रयत्न इसलिए जरूरी हैं कि हम अपने वर्तमान जीवन से ऊब उठे हैं और नवीन जीवन के सुन्दर स्वप्न देख रहे हैं। उस भव्य और दिव्य जीवन का निर्माण सर्वथा हमारे हाथ में है। हम जैसे होंगे वैसा ही हम समाज और जीवन बनाएँगे। इसलिए हमारी—चाहे हम अधिकारी या राजवर्ग में आते हों, चाहे शासक या जनता के वर्ग में—जिम्मेदारी सब से बढ़कर है। ईश्वर हमें उसके योग्य बनने का बल और अवसर दे।"

"हमारे राजा और महाराजाओं से मैं निवेदन करूँगा कि वे दिल से भी सचमुच ही राजा महाराजा की तरह ऊँचे और महान बनें। अपनी प्रजा की मांगों पर विचार करें। साहस के साथ और बिना किसी बात को दिल में रखे शासन-सुधार की दिशा में आगे बढ़ें, और उन्हें स्वराज्य

वास्तविक रूप में दें, न कि उसकी छाया। यह अक्लमन्दी है कि वे स्वेच्छा-पूर्वक झुकें और प्रजा के वास्तविक अधिकार और मांग क्या है इसको समझने की स्पिरिट से उन्हें सौंपें, बजाय इसके कि, वे इस मामले में, अपनी अनिच्छा बतायें और आखिर में हालात से मजबूर होकर ही कुछ दें।"

"हम कार्यकर्त्ता शासन व समाज की त्रुटियाँ जरूर बतायें और उन्हें दूर भी करें। लेकिन, इससे ज्यादा जरूरी है कि खुद अपनी त्रुटियों को भी देखें और उन्हें दूर करते रहें।"

—जमनालालजी

१९०६ से, जब से जमनालालजी कलकत्ता-काँग्रेस में शरीक हुए उनके राजनैतिक जीवन का श्रीगणेश समझना चाहिए। दादाभाई नौरोजी और लोकमान्य तिलक जैसे काँग्रेसी नेताओं से उनका परिचय हो चुका था। यह उस समय की बात है जब काँग्रेस वैध मार्ग पर चल रही थी। डेपुटेशन भेजना, कुछ प्रस्ताव पास कर लेना आदि तक ही उसका कार्य-क्षेत्र सीमित था।

१९०६ में कलकत्ता-काँग्रेस का अधिवेशन भारत के पितामह दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में हुआ। उन्होंने काँग्रेस का उद्देश्य एक शब्द में रख दिया, "हमारा सारा आशय केवल एक शब्द में "स्वशासन या स्वराज्य" (जैसा इंगलैण्ड या उपनिवेशों में है) में आ जाता है। हालांकि प्रस्ताव के रूप में रखने का जब प्रश्न उठा तो इसे नरम कर दिया गया। इसी अधिवेशन में विदेशी माल के बहिष्कार का प्रश्न उठाया गया जिस पर लोकमान्य तिलक ने कहा था—"हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ़ निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए" और स्वदेशी, बहिष्कार और स्वराज्य की आवाज बुलन्द हुई। इसमें राष्ट्रीय शिक्षा और जोड़

दी गई। इस तरह उन दिनों यह स्वराज्य की चतुःसूत्री बहुत प्रसिद्ध हो गई थी। १९०५ में ही वंगभंग पर काशी की काँग्रेस में विधिवत् विरोध प्रकट किया गया था और माँग की गई थी कि वह रद्द कर दिया जाय। १९०६ में कलकत्ता-काँग्रेस में इसने बहुत जोर पकड़ा और उसके बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया था उसका मूल कारण यह वंगभंग ही था। लार्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन से भीतर ही भीतर लोगों में क्षोभ बढ़ता जा रहा था। अतः १९०५ में जिस साहस का अभाव था वह १९०६ में आ गया। कांग्रेस ने नुकसान सह कर भी स्वदेशी वस्तुओं को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया था। इस समय की राजनैतिक जागृति ने १९०७ में सूरत में कांग्रेस को नरम और गरम दो टुकड़ों में बाँट दिया था। इन नेताओं के राजनैतिक विचारों और आन्दोलनों का जमनालालजी पर असर पड़ता जा रहा था। यों सरकार की ओर से आनरेरी मैजिस्ट्रेट बन चुके थे। सेठ बच्छराजजी की पहुँच वर्धा और नागपुर के सरकारी क्षेत्रों में काफी थी। अतः सरकारी हलकों में जमनालालजी का मान-सम्मान काफी था। कलक्टर, कमिश्नर ही नहीं, गवर्नर तक उनके मेहमान होते थे। इससे छोटे-बड़े सरकारी अफसरों पर उनकी काफी धाक थी। वे चाहते तो जैसे बड़े से बड़े सेठ बन सकते थे वैसे ही सरकारी हल्कों में भी काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकते थे। परंतु, जमनालालजी काफी स्वाभिमानी और देशप्रेमी थे। जिस तरह उन्हें व्यापार में जुआ-चोरी से नफरत थी, उसी तरह राज-कर्मचारियों के भी रौबदाब और खुशामद आदि से उन्हें घृणा थी। सरकारी अफसरों के सामने प्रायः लोग बनावटी नम्रता दिखाते हैं और हाँ में हाँ मिलाया करते हैं। परंतु, जमनालालजी तो खरे थे। न वे अन्याय बरदाश्त कर सकते थे, न अपमान। जहाँ लोग सरकारी अधिकारियों द्वारा होने वाले अपमान

की कड़वी घूंट पीकर रह जाते वहाँ ऐसा अवसर आने पर जमनालालजी डट कर उसका मुकाबला करते थे। अव्वल तो उनके साहस और स्वाभिमान के सामने बड़े बड़े अधिकारी भी ऐसी हिम्मत नहीं कर सकते थे कि उनके स्वाभिमान को कोई ठेस पहुँचे। फिर भी, ऐसी कई घटनाएँ उनके जीवन में हुई हैं, जिन्होंने उनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाई है और उनका ध्यान सरकार की ओर से हटाकर देश की तरफ कर दिया है। उनके बचपन में पुलिसवालों की जुल्म-ज्यादती के नमूने देखने में आए। एक बार उनके गाँव में सरकारी खजाना लेकर पुलिसवालों ने पड़ाव किया। उनके गाँववालों ने रसद का सब इन्तजाम तो कर दिया लेकिन दूध-घी पूरी मात्रा में नहीं दे सके। इस पर, सिपाहियों ने एक को इतना मारा कि महीनों इलाज करने पर ठीक हुआ। बच्छराजजी इन दिनों आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। उनकी बड़ी दौड़-धूप के बाद सिर्फ एक सिपाही का तबादला किया गया। एक बार उनके मुनीम के कुटुम्बी के घर में आग लग गई। वे कीमती चीजें जहाँ रखी थीं वहाँ से उन्हें हटा रहे थे। पुलिस ने उन्हें वहाँ से हटाना चाहा, पर वे नहीं हटे। इसपर पुलिस ने उनको इतना पीटा कि वे खाट पर धर लाये गए। यही नहीं. बल्कि प्रभावशाली बच्छराजजी ने जब इसपर कोई कार्यवाई करनी चाही तो पुलिस वालों ने उल्टा धमकाया कि दस्तन्दाजी में धर देंगे। सेठजी चुप हो रहे। इन घटनाओं का जमनालालजी के ऊपर बड़ा बुरा असर पड़ा। हिन्दुस्तानियों को और उनमें भी इज्जतदार और प्रभावशाली लोगों को ऐसे अपमान की कड़वी घूंट पीकर रह जाना पड़ता है यह उन्हें नागवार गुजरता।

इन आघातों ने उन्हें सरकार के विरोधी राजनैतिक दल में लाकर खड़ा कर देने में भी मदद पहुँचाई। यों वे राजनैतिक जीव नहीं थे। परंतु, देश में रहनेवाली गुलामी की यातनाओं को देखकर

वे राजनीति से अपने आपको अछूता नहीं रख सके। देश के नेताओं के परिचय के बाद उनसे संपर्क बढ़ाना तो उन्होंने कलकत्ता कांग्रेस से ही शुरू कर दिया था। महापुरुषों के संपर्क में आने,उनके जीवन का बारीकी से अध्ययन और निरीक्षण करने और उसमें से अपने काम की बात ढूंढ़ लेने का उन्हें बड़ा शौक था। इसी धुन में, औरों की तरह, महामना मालवीयजी और सर जगदीशचन्द्र बसु जैसे प्रख्यात नेता और महान् पुरुषों से उनकी प्रगाढ़ता हो गई थी। सर बसु तो जमनालालजी को उनकी इच्छा के अनुसार पुत्र की तरह मानते थे।

अपने एक पत्र (१४-९-१९१९) में वे जमनालालजी को लिखते हैं—

"तुम मेरे लिए पुत्र-समान हो और मुझे यह सोचते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि मेरे पास कम से कम एक व्यक्ति ऐसा है जो अपने देश की अधिक से अधिक सेवा करने मे समर्थ होगा।"

इसी तरह महामना मालवीयजी न जो पत्र जमनालालजी को लिखा है उससे उनके निकटवर्ती संबंध का पता लगता है :—

प्रिय जमनालालजी,

अनेक आशीष। मै आपको इतने दिनों तक पत्र नहीं लिख सका। इसका कारण केवल कार्यों का बाहुल्य था। आपसे मिलने की बहुत इच्छा ही है और मैं आशा करता हूँ कि मैं दो महीने के भीतर आप से मिलूंगा।

चि० राधाकान्त को आप जो बड़े भाई के समान प्रेम से उपदेश करते और रोकते हैं इससे मुझे तो बहुत प्रसन्नता होती है। मैंने भी उन्हें वही सम्मति दी है जो आपने दी है। मुझसे उन्होंने कहा है कि वे आपकी राय के विरुद्ध कोई व्यापार का काम नहीं करेंगे।

मैं चाहता हूँ कि आप काशीजी आवें और जो-कुछ कार्य हो चुका है

उसको देखकर प्रसन्न होवें। इस कार्य के लिए मुझे इस वर्ष ४० लाख रुपया आवश्यक है। इसके संग्रह करने के लिए में १५० दिन की यात्रा अप्रैल में आरंभ करूँगा। बम्बई, कलकत्ते में १५-१५ दिन रहूँगा। आपको वहाँ मेरे साथ देश और धर्म की रक्षा और उन्नति के लिए भिक्षा माँगने में सहायता देनी पड़ेगी। समय से आपको सूचना दूंगा।

और सब यहाँ कुशल है। अभी दिल्ली जाता हूँ। कुशल समाचार लिखिएगा।

प्रयाग — आपका हितचिंतक
चैत्र कृष्ण १ सं०१९७६ — मदनमोहन मालवीय

इस समय के राजनैतिक वातावरण के साथ उनके जीवन का संक्षिप्त चित्र खुद जमनालालजी के इन शब्दों में देखिए :—

"१९१५ के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन था। लार्ड सिन्हा अध्यक्ष थे। महात्माजी भी पधारे। मारवाड़ी विद्यालय में उनके ठहरने की व्यवस्था थी। उनके प्रबन्धकर्ताओं में मैं भी एक था। महात्माजी के सामने दक्षिण अफ्रिका का सवाल था। वहाँ की परिस्थिति के विषय में काँग्रेस द्वारा उन्हें एक प्रस्ताव स्वीकृत करवाना था। इस कार्य के लिए उस समय के प्रधान नेताओं से मिलना और उन्हें सारी परिस्थिति समझाना अत्यन्त आवश्यक था। कारण अफ्रिका के प्रश्न के विषय में सब को पूरी जानकारी नही थी और वहाँ के कार्य के विषय में नेताओं में नीति-विषयक मतभेद भी था। उस समय कांग्रेस में सारे आगत नेताओं के एक साथ ठहरने की प्रणाली या व्यवस्था नहीं थी। अलग अलग और दूर दूर ठहरे हुए नेताओं से बम्बई में मिलना कठिन काम था। समय भी बचाना था। अतः गाँधीजी ने चाहा कि यदि मोटर की व्यवस्था हो जाय तो कार्य में सुविधा हो। समय भी बच जाय। उन दिनों खानगी मोटरें बहुत कम थीं।

टेक्सी तो मिलती ही नहीं थी। मैंने प्रथम दिन मुझसे व्यापारिक संबंध रखने वाले एक कंपनी के मित्र की मोटर माँग कर काम चलाया, पर प्रति दिन यह ठीक न समझ कर मैंने एक नयी मोटर महात्माजी के उपयोग के लिए खरीद दी। महात्माजी उस मोटर का अपने लिए उपयोग करने लगे और मुझे भी यह लाभ हुआ कि मैं भी मोटर में महात्माजी के साथ नेताओं के यहाँ आने जाने लगा। श्री वाछा, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, लार्ड सिन्हा, भूपेन्द्रनाथ बसु, आदि नेताओं के यहाँ महात्माजी के साथ जाने का मुझे पूरा स्मरण है। बातचीत तथा वाद-विवाद अंग्रेजी में होता। मुझे पूरी तरह अंग्रेजी नहीं आती थी। पर भावार्थ समझ लेता था। महात्माजी का अपनी बात को शांति के साथ समझाना, विरोध का जवाब कुशलता के साथ देना, किसी भी परिस्थिति में निराश न होना आदि बातें मैं उस मिलाप के सिलसिले में देख सका। अन्त में देखा कि काँग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति में, जिसका मैं भी सभासद था, महात्माजी ने अपना प्रस्ताव बहुत थोड़े परिवर्तन के पश्चात् स्वीकार करवा लिया। महात्माजी के व्यक्तिगत जीवन का मुझ पर असर हो ही रहा था। उनकी कार्य-कुशलता ने भी मुझे पकड़ा और उसी समय मैं महात्माजी को भारत के भावी नेता और काँग्रेस के सर्वेसर्वा होने के रूप में देखने लगा।"

इसके बाद १९१७ में काँग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। श्रीमती बेसेंट उसकी अध्यक्षा थीं। महात्माजी चंपारन से कलकत्ता पहुँचे थे। उनके तमाम साथियों सहित उनके ठहरने का प्रबन्ध जमनालाल जी ने ही किया था। महात्माजी का इस तरह जमनालालजी का सदल बल मेहमान बनना क्या था, जमनालालजी का उनके प्रेमाकर्षण से खिचकर राजनैतिक मैदान में कूद पड़ना था, तब से बापू का पथ-प्रदर्शन उन्हें मिलने लगा।

: ८ :

सत्याग्रही बनने की तैयारी

"मेरे इस भारत देश में, खासकर मेरे कुटुम्ब के सच्चे सत्याग्रही जितने ज्यादा हो सकेंगे उतने बनाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।"

"बालकों का शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या इसी प्रकार के कोई उच्च ध्येय तथा चरित्र बल वाले तपस्वी सज्जन जहां कार्य करते हों वहां रख कर देने का प्रबन्ध करें।"

(मृत्यु-पत्र कार्तिक शु० ११-१९८९ वि०)

"उस समय उनकी सत्संगति का बहुत लाभ मिला। उसी समय मुझे सरकार की तरफ से रायबहादुरी की पदवी मिली थी। सुबह होते ही मैंने महात्माजी से कृष्ण-गोशाला जाते हुए रास्ते में पदवी का हाल सुनाया। पहले तो उन्होंने पूछा तुम्हें पदवी किस तरह मिली? मैंने अपनी समझ के अनुसार कारण बताए। फिर मने पूछा कि आपकी क्या राय है? पदवी स्वीकार करूं या नहीं? उन्होंने जवाब दिया—'जहां तक यह पदवी देश-सेवा में और अपने सिद्धांतों की रक्षा में मदद देती हो, वहां तक स्वीकार करने में हर्ज नहीं, परन्तु जिस दिन इसके कारण देश-सेवा में बाधा पड़े अथवा सिद्धांत को हानि पहुँचे, उसी दिन इसका मोह छोड़ देना चाहिए।' इसी विधान के अनुसार मैंने मौका आने पर अपनी पदवी का त्याग कर दिया था।"

(जमनालालजी का निजी लेख)

१९०७ में कांग्रेस के जो दो टुकड़े हुए उसके मूल में मनोवृत्तियों का संघर्ष था। स्वराज्य जल्दी प्राप्त कर लेने की भूख बढ़ती जाती थी।

और युवक दल व उनके नेताओं को अनुनय-विनय के वैध मार्ग से अरुचि होती जा रही थी। लाल-बाल-पाल यह त्रिमूर्ति इस लहर का नेतृत्व कर रही थी। उधर मेहता, गोखले और मालवीय---यह त्रिमूर्ति उसी पुराने ढर्रे का प्रतिनिधित्व करती थी। तब से १९१५ तक--लखनऊ कांग्रेस तक--नरम और गरम दल की अलग अलग कांग्रेसें होती रहीं। १९०९ में कांग्रेस ने भी जो कि नरम दल के प्रभाव में थी यह अनुभव किया कि उनके सारे अनुरोध विनय आदि का कोई परिणाम नहीं निकला। तब खुद श्री गोखले ने अपने भाषण में अधिकारियों के विश्वासघात और गांधीजी के नेतृत्व में भारत के लम्बे और शान्त संग्राम का जिक्र किया। सत्याग्रह क्या है इसको समझाते हुए श्री गोखले ने कहा था---"यह अपने आप में बिल्कुल रक्षणात्मक है और नैतिक व आध्यात्मिक शस्त्रों के द्वारा इसमें युद्ध किया जाता है। एक सत्याग्रही स्वयं कष्ट सहन कर, अत्याचार का मुकाबला करता है। वह पशुबल के सामने आत्मबल का प्रयोग करता है। वह मनुष्य के पशुबल के विरुद्ध उसके देवत्व को प्रेरित करता है, वह अत्याचार के विरुद्ध सहिष्णुता दिखाता है। वह शक्ति का विरोध अन्तरात्मा से, अन्याय का विरोध विश्वास और श्रद्धा से तथा अनुचित का विरोध उचित से करता है।"

१९१४ में लोकमान्य तिलक माण्डले जेल से छूट कर आये थे। तभी से वे लगातार इस बात का प्रयत्न कर रहे थे कि होम-रूल का विराट आन्दोलन चलाया जाय। कुछ सद्भावनावाले मित्रों का यह प्रयत्न जारी था कि कांग्रेस के दोनों दलों को एक सूत्र में बाँध दिया जाय। १९१५ और १९१६ में तिलक ने अपने दल को संगठित करने के लिए घनघोर प्रयत्न किया। उनका विचार था एक सुदृढ़ दल के लिए (१) आकर्षक नेता, (२) एक विशेष लक्ष्य और (३) एक विशेष कार्यक्रम जरूरी हैं।

इतने में लखनऊ कांग्रेस आई। वह अपने ढंग की अद्वितीय थी।

एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना तैयार हुई। और कांग्रेस के दोनों दलों में जो कि १९०७ से पृथक पृथक थे, एका हो गया। वास्तव में यह दृश्य देखते ही बनता था—लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासबिहारी घोष और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी एक ही साथ एक ही स्थान पर बराबर बैठे थे। श्रीमती बेसेंट भी अपने दो सहयोगी—अरण्डेल और वाडिया साहब के साथ जिनके हाथों में होम-रूल के झंडे थे, वहीं बैठी थीं। मुसलमानों में से राजा महमूदाबाद, मजहरुल हक और जिन्ना साहब भी उपस्थित थे। गाँधीजी और मि० पोलक भी वहीं विराजमान थे। काँग्रेस-लीग योजना पर, जिसे काँग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी। फिर १९१७ से काँग्रेस उत्तरदायी शासन की ओर बढ़ी। होम-रूल आन्दोलन के सिलसिले में नजरबन्द लोगों को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह की योजना बनने लगी। यह समय होम-रूल आन्दोलन की उन्नति के शिखर पर पहुँच जाने का था। इधर महात्माजी ने चंपारन में अपनी सत्याग्रह-शक्ति का परिचय सफलता के साथ दे दिया था। काँग्रेस में स्वराज्य के सम्बन्ध में मुख्य प्रस्ताव पास हुआ था जिसमें सम्राट् के भारत-मंत्री द्वारा साम्राज्य सरकार की ओर से भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की घोषणा पर संतोष प्रकट किया गया था।

ऐसे जोशीले वातावरण में जमनालालजी कलकत्ता-काँग्रेस में पहुँचे। वहाँ महात्माजी के सीधे प्रभाव में आए। वे उस समय भी अपनी जिम्मेदारी को समझते थे। वे जानते थे कि महात्माजी की हवा में आने का मतलब है घोर कष्ट-सहन और सर्वस्व-बलिदान। फिर भी महात्माजी के जिस बल ने जमनालालजी को उनकी ओर खींचा वह था, मुख्य रूप से उनका सत्याचरण। त्याग सत्य-साधना का पहला कदम है। मान-सम्मान का, सुख-सुविधाओं का, धन-संपत्ति का, प्रियजनों का, आवश्यकतानुसार

दृढ़ता से, पर साथ ही प्रसन्नता से त्याग करना पड़ता है। महात्माजी का रँग चढ़ते ही, सत्याग्रही बनने की दिशा में कदम बढ़ाते ही, जमनालालजी के सामने उनकी कसौटी के रूप में एक कठिनाई आ गई। सरकारी क्षेत्रों में जमनालालजी का प्रभाव बढ़ता ही जा रहा था। वे आनरेरी मजिस्ट्रेट तो थे ही। उनके शिक्षा-प्रेम और नयी नयी शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना से मध्यप्रांत के चीफ कमिश्नर सर बेंजामिन राबर्टसन् बहुत प्रसन्न रहने लगे। सन् १९१७ दिसम्बर ३१ के दिन अचानक खबर मिली कि आपको रायबहादुर की उपाधि मिल गई है। दूसरे ही दिन इस सम्बन्ध में गाँधीजी से बातचीत हुई। गाँधीजी ने पूछा—"इतनी छोटी सी उमर में तुम्हें रायबहादुरी कैसे मिल गई?" आपने कहा—"मैंने इसके लिए कोई प्रयत्न तो नहीं किया था। हाँ, नागपुर के कमिश्नर के तार देने पर मैंने ५००००) के वार-बाँड अवश्य खरीद लिए थे। मध्यप्रांत के कमिश्नर मेरे शिक्षा-प्रचार और सरल व्यवहार से भी बहुत खुश हैं। सभव है, इन दोनों में से कोई कारण हो। अब आप मुझे आशीष दीजिए" गाँधीजी ने कहा—"मैं क्या आशीष दूं? सम्मान का अच्छा उपयोग करो। अपमान मनुष्य की उतनी क्षति नहीं करता जितना कि सम्मान करता है। सम्मान एक भयंकर वस्तु है, जिसका लोगों ने सदुपयोग तो कम किया है। तुम उसका सदुपयोग करो। मेरी आशीष है कि यह सम्मान तुम्हारे आत्मोत्थान में बाधक न हो।"

गाँधीजी की इस आशीष के साथ जमनालालजी ने रायबहादुरी स्वीकार की। यह उपाधि आई तो थी, शायद जमनालालजी को फँसाने, परन्तु, जाग्रत जमनालालजी और कुशल कर्णधार महात्माजी ने उसे एक सदुद्देश्य का साधन बना लिया। जो मोहिनी थी वह दासी बन गई। आगे जब असहयोग-आन्दोलन का बिगुल बजाया गया तब उपाधि-त्याग करनेवालों में शायद जमनालालजी ही पहिले थे। इस त्याग के द्वारा

उन्होंने गले की फाँसी को फूलों का हार बना लिया। सत्याग्रही के लिए मान-सम्मान, वैभव-ऐश्वर्य, सुख-सत्ता सब-कुछ आनंद और भोग के लिए नहीं, बल्कि सेवा, परोपकार, आत्मोन्नति और आत्मसंतोष के लिए होता है। महात्माजी के संपर्क में जमनालालजी यह पाठ दिन प्रति दिन सीखने लगे। सरकार की यह उपाधि सरकार के ही लिए उपाधि बन गई।

उपाधि-त्याग के पहले १९१८ के आसपास की एक दो घटनाएँ ऐसी हैं कि जिन्होंने जमनालालजी के मन में अंग्रेज-सरकार की ओर से पूरी पूरी अरुचि उत्पन्न कर दी थी। नागपुर के कमिश्नर श्री मास्किग ने उन्हें मिलने बुलाया। वह नागपुर पहुँचे। कमिश्नर के पास एक बड़ी-सी फाइल रखी थी जो शायद उनके संबंध में तैयार की हुई सी० आई० डी० की रिपोर्ट थी। कमिश्नर ने पहले आव-भगत कर के पूछा—"आप गाँधी जी के पास जाया करते हैं?" "जी हाँ" "क्या आपके यहाँ मिसेज नायडू नेकीराम शर्मा, देवीप्रसाद खेतान आदि राजनैतिक कार्यकर्ता ठहरा करते हैं?" "जी हाँ," "आपको मालूम होगा कि गवर्नमेन्ट आपको बहुत मान की दृष्टि से देखती है और गवर्नमेन्ट में आपका बहुत मान है", "जी हाँ", "आपपर ज्यादा जवाबदारी है।"

"यह ठीक है, पर जो लोग मेरे यहाँ ठहरते हैं, उनके राजनैतिक विचारों से मेरा कोई संबंध नहीं है। मेरे विचारों के बारे में आपके पास कोई खास रिपोर्ट हो तो आप मुझसे जवाब माँग सकते हैं। मैं उनका खुलासा कर सकता हूँ। पर, राजनैतिक मतभेद रखते हुए भी मैं अपने मित्रों से या अपनी समझ के अनुसार जो देश की सेवा करते हैं उनसे संबंध न रखूं, न मिलूं या अपने यहाँ उन्हें न ठहरने दूं, यदि सरकार की यह मंशा है तो यह ज्यादती है। उसका पालन करना किसी भी मनुष्य के लिए, जो अपने आपको मनुष्य समझता है, असंभव है।"

"आप गाँधीजी के पास जाते हैं या राजनैतिक लोग आपके यहाँ ठहरते हैं, इससे आपपर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। आप तो समझदार आदमी हैं। पर दूसरे लोगों पर इसका बुरा असर पड़ना सम्भव है। इसलिए आपको विशेष सावधानी से काम लेना चाहिए।"

"मेरे पूर्व परिचित लोग चाहे वे किसी भी विचार के क्यों न हों, मेरे यहाँ आयेंगे तो उनका आतिथ्य करना मेरा धर्म है। मैं उन्हें रोक नहीं सकता। गाँधीजी के प्रति मेरा पूज्य भाव है। मैं उनसे संबंध नहीं छोड़ सकता।"

उसने बहुत क्रोध के आवेश में कहा—"तो आपके विद्यालय की नयी इमारत का उद्घाटन चीफ कमिश्नर नहीं करेंगे।"

सर बेंजमिन राबर्टसन् उन दिनों चीफ कमिश्नर थे। मारवाड़ी विद्यालय की नयी इमारत का उद्घाटन उन्हींके हाथों होना निश्चित हो चुका था। कमिश्नर की बातों से मालूम हुआ कि चीफ कमिश्नर केवल जमनालालजी के कारण विद्यालय की नयी इमारत का उद्घाटन नहीं करेंगे। जमनालालजी चीफ कमिश्नर से खूब परिचित थे। विद्यालय की संस्था से चीफ कमिश्नर को प्रेम भी बहुत था। जमनालालजी ने कमिश्नर को उत्तर दिया—"विद्यालय कमेटी की इच्छा चीफ कमिश्नर के हाथ से उद्घाटन कराने की है। यदि वह नहीं करना चाहते तो उनकी खुशी की बात है। मैं क्या कर सकता हूँ?"

इसपर कमिश्नर ने मारे क्रोध के टेबल पर जोर से हाथ पटक कर कहा—"आपको सरकार की ओर से रायबहादुरी मिलने के बाद से ही आपने इन लोगों से मिलना-जुलना शुरू किया है।"

जमनालालजी ने कमिश्नर का भाव यों समझा कि पहले तो उन्होंने सरकार से रायबहादुरी ले ली अब इधर पब्लिक में नाम कमाने की इच्छा से राजनैतिक क्षेत्र में जा पहुँचे। उन्होंने उत्तर दिया—"मैंने तो राय-

बहादुरी के लिए सरकार से कभी कहा नहीं, न किसीसे कोशिश ही कराई। आपका यह समझना कि रायबहादुरी मिलने के बाद मेरा संबंध इन लोगों से हुआ है, बिलकुल गलत है। मेरा इन लोगों से बहुत पुराना संबंध है। यदि आपके सी० आई० डी० वालों ने पहले इस बात की रिपोर्ट न की हो तो यह आपके डिपार्टमेन्ट की भूल है। आप जानना चाहें तो मैं अपने कागज-पत्रों से यह साबित कर सकता हूँ कि इन लोगों से मेरा संबंध रायबहादुरी मिलने के बहुत पहले का है।"

"अच्छा आप कलेक्टर से मिलकर समझौता कर लीजिए।"

"इसमें समझौते की कोई बात मालूम नहीं होती। जो लोग मेरे यहाँ ठहरते आए हैं वे फिर भी ठहरेंगे। जब कितने ही सरकारी अफसर, जिनको मैं जानता हूँ, कि उनमें कइयों के आचरण ठीक नहीं हैं और जिनके लिए मेरे मन में जरा भी प्रेम नहीं, मेरे घर ठहरते हैं और मुझे उनसे संबंध रखना पड़ता है तो जो लोग देश की सेवा करते हैं और जिनका चरित्र ठीक है, केवल राजनैतिक मतभेद से मैं उन्हें अपने यहाँ न ठहरने दूं, या उनसे संबंध न रखूं इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता। यदि वास्तव में सरकार की यह इच्छा है तो यह बहुत ज्यादती है।"

इतना कह कर जमनालालजी कमिश्नर के यहाँ से उठ कर चले आए। उन्हें कमिश्नर की मनोवृत्ति पर क्लेष हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। और यह भी समझ गए कि उनका रास्ता एक-दूसरे से जुदा बल्कि विरुद्ध है। अबतक जो सहयोगी था वह असहयोग के पथ का पथिक हो गया।

: ९ :

दीक्षित हुए

"त्याग और कष्ट-सहन में वे किसी कांग्रेसवादी से पीछे न रहे। कई बार जेल गए और तीसरे दर्जे के कैदी की अनेक मुसीबतें सहीं।"

—महादेव देसाई

"महात्माजी का प्रभाव, कार्य-क्षेत्र तथा उनकी व्यापकता बढ़ती गई और देश की राजकीय क्रांति के वे केन्द्र बनते गए एवं कांग्रेस की बागडोर संपूर्णतया उनके हाथों में आती दिखाई दी। १९१८ में लाला लाजपतराय की सदारत में स्पेशल कांग्रेस हुई। महात्माजी के आग्रह से मैं भी वहां गया। महात्माजी का असहयोग-संबंधी प्रस्ताव पास करने के लिए भरसक प्रयत्न किया। प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। देश के राजनैतिक वातावरण में बिजली दौड़ गई।"

—जमनालालजी

"सच पूछिए तो उसी दिन उन्होंने दीक्षा ली। उसके बाद दिन पर दिन उन्होंने अपना उत्कर्ष ही किया है। दिन पर दिन वे अपने गुरु अपने को पुनर्जन्म देने वाले पिता के पात्र होने के लिए अधिकाधिक योग्य होते गए।"

—महादेव देसाई

"मेरी राय में आज भारत में गरीबों के साथ यदि कोई एक जीव हुआ है तो वह महात्माजी हैं। महात्माजी मानों कारुण्य की मूर्ति हैं। गरीबों के कष्ट दूर करने में अमीरों के साथ भी अन्याय न होने पावे और भिन्न भिन्न वर्गों के बीच द्वेष-भाव तनिक भी पैदा न हो उसकी वे हमेशा

चिन्ता रखते हैं। इसलिए भारतवर्ष के सब वर्ग, धर्म और पन्थ के लोग उनको आत्मीय की दृष्टि से देखते हैं। चातुर्वर्ण्य का तो मानों उनमें सम्मेलन ही हुआ है। भारतवर्ष पर जो उनका असीम प्रेम है उसके लायक यदि हम भारतवासी बनें तो भारत का उद्धार अवश्य हो जाय।

मेरी समझ में तो महात्माजी का सहवास जिसने किया है या उनके तत्वों को समझने की कोशिश की हो वह कभी निरुत्साही नहीं हो सकता। वह हमेशा उत्साह-पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता रहेगा। क्योंकि देश की स्थिति को सुधारने में—स्वराज्य मिलने में चाहे भले ही थोड़ा विलम्ब हो, परन्तु जो व्यक्ति महात्माजी के बताये हुए मार्ग से काम करता रहेगा मुझे विश्वास है कि वह अपनी निजी उन्नति तो जरूर कर लेगा अर्थात् अपने लिए तो वह स्वराज्य अवश्य पा सकता है।"

—जमनालालजी

१९१८ का रौलट ऐक्ट और मान्टेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार हिन्दुस्तान के इतिहास में खास महत्व रखता है। सुधार-योजना जहाँ भारतवासियों के सामने स्वराज्य की झलक दिखाती थी तहाँ रौलट ऐक्ट और उसके बाद के दमन ये ब्रिटिश सरकार का असली रूप प्रकट करते थे। उसीका फल था जालियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड और महात्माजी के सत्याग्रह का अवतरण। इस तरह १९१९ में अहिंसा मूर्त-रूप में प्रगट हुई।

"खिलाफत", "पंजाब", "स्वराज्य" ये उस समय के युद्धघोष बने और अमृतसर-कांग्रेस में एक ओर गाँधीजी और दूसरी ओर लोकमान्य और देशबन्धु इस तरह दो पक्ष बन गये। अन्त को समझौता होकर यह तय हो पाया कि मान्टेग्यू सुधारों को अपूर्ण, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण बताया जाय और आत्मनिर्णय के सिद्धांत के अनुसार काँग्रेस ने अनुरोध किया कि भारतवर्ष में पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लियामेन्ट शीघ्र कार्रवाई करे। इसी काँग्रेस में महात्मा गाँधी ने बहुत

संक्षेप में अपने संग्राम की योजना और भावी नीति का दर्शन कराया। इस कांग्रेस में सत्याग्रह की नीव पड़ी और १९२० में नागपुर में असहयोग का जन्म हुआ। इसी विख्यात कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष जमनालालजी हुए थे। उस समय डा० मुंजे, परांजपे आदि नागपुर-कांग्रेस के अधिकारी वर्ग में थे। परंतु, इन सब ने एक-मत से जमनालालजी को ही स्वागताध्यक्ष चुना था। जमनालालजी तो अब गाँधीजी के शिष्य हो चुके थे। अतः उन्होंने यह मामला उनके सामने पेश किया और गाँधीजी को यह समझाना चाहा कि वे स्वागताध्यक्ष न बनाये जायं तो अच्छा हो, जैसा कि बापूजी के नाम के उनके इस पत्र से स्पष्ट होता है, और निर्णय महात्माजी पर छोड़ दिया।

"मान्य श्री बापूजी,

आज रोज डा० मुंजे, नागपुर, के कहने से आपको तार दिया है। यह पांडुचेरी श्री अरविन्द घोष को नागपुर-कांग्रेस के सभापति के लिए आग्रह करने गए है। अगर आप मुनासिब समझे तो, श्री अरविन्द घोष को यह पद स्वीकार करने के लिए लिखें। संभव है, आपने तार दिया होगा। कृपया लिखिएगा, आपकी राय से नागपुर-कांग्रेस के सभापति कौन सज्जन होना चाहिए?

२—डा० मुंजे आज मुझे कहते थे कि कई लोगों की राय है कि मैं स्वागत-कारिणी सभा का सभापति बनाया जाऊँ। इस पर वह मेरी राय पूछते थे। मैंने उन्हें कहा है कि मैं इस पद के लिए अपनेको योग्य नहीं समझता हूँ। कारण एक तो मेरा विद्याध्ययन बहुत कम है। दूसरे, अवस्था व अनुभव भी कम है। इसपर उनका कहना पड़ा कि हिन्दी में तुम अपना भाषण पढ़ सकते हो। स्वामी श्रद्धानंन्दजी ने भी हिन्दी में ही कहा था। व दूसरा कारण उन्होंने कहा कि इस प्रांत का व्यापारी-वर्ग बहुत डरता

है। खासकर, मारवाड़ी समाज पैसे देने को तैयार है, परंतु आगे आना नहीं चाहता। अगर तुम हो जावगे तो व्यापारी समाज पर भी असर होगा व वह भी आगे आने लग जावेंगे। इस तरह इनका व मित्रों का कहना है। मैं जहाँ तक सोचता हूँ वहाँ तक मेरा मन मुझे इस पद के योग्य नहीं बताता। मैंने इस पद के लिए श्री शुक्लजी को सोच कर रखा है, परंतु, कौंसिल के लिए वह खड़ा रहना चाहते हैं। उन्हें असहयोग में हाल तक श्रद्धा नहीं है। इसलिए, आप सब बातों का विचार कर जो उचित हो सो लिखें। आपका पत्र आने पर मैं पूर्ण तौर से आपकी आज्ञा पर विचार करूँगा। पत्र ता० २९ तक पहुँचना चाहिए।

ता०-२४-९-२० जमनालाल

स्वागताध्यक्ष का पद प्रायः उसको मिलता है जो उस प्रांत का, जिसमें काँग्रेस होती है, प्रभावशाली नेता होता है। महात्माजी ने जैसे भी उन्हें इस पद के योग्य समझा इससे उनकी राजनैतिक क्षेत्र की योग्यता और प्रतिभा का पता लगता है। कई दिन लगातार २०, २० घंटे जागकर उन्होंने इस अधिवेशन में काम किया था। उनके इसी परिश्रम व यत्न से नागपुर-काँग्रेस बड़ी सफलता से हुई थी। उस समय काँग्रेस-प्रचार के लिए प्रांतों में जो उद्योग हुआ उसमें और खासकर व्यापारी-वर्ग में जागृति फैलाने के लिए जमनालालजी के व्यक्तित्व का अच्छा उपयोग हुआ। अब तक व्यापारी-वर्ग राष्ट्रीय आन्दोलनों से अलग रहता था। लेकिन, जब उन्होंने देखा कि हमारे ही समाज का एक प्रमुख व्यक्ति सरकारी उपाधि और मान-सम्मान को छोड़ कर राष्ट्रीय सेवा के यज्ञ में अपनी आहुति दे रहा है तो फिर उनका भी उत्साह बढ़ गया। खुद जमनालालजी ने भी जगह जगह जाकर व्यापारी समाज को काँग्रेस में लाने का प्रयत्न किया। इसी सिलसिले में उन्होंने चाँदा और कई स्थानों पर पंचायती अदालतें कायम कराई। और किसानों तथा मजदूरों को अदालत में न जाकर

पंचायत के द्वारा अपने मामले फैसल करा लेने की प्रेरणा की। सो प्रांत भर में अकेले व्यापारी ही नहीं, बल्कि वकील, डाक्टर, किसान सभी वर्ग कांग्रेस की ओर खिंचने लगे। जमनालालजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दूर दूर से लोग इस कांग्रेस में महात्माजी की तरह जमनालालजी को भी देखने के लिए आये थे। इसी साल जमनालालजी कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्य बनाये गये जो अन्त तक रहे। आप कांग्रेस के खजांची भी बनाये गए और अन्त तक बने रहे। बीच में कई बार आपने इस पद को छोड़ने का प्रयत्न किया; पर कभी महात्माजी ने और कभी उनके दूसरे साथियों ने उनके इस प्रस्ताव में बाधा डाल दी।

नागपुर-कांग्रेस "असहयोग कांग्रेस" के नाम से प्रसिद्ध है। १९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में दल-बन्दियों से हुआ। उदार अर्थात् नरम दलवाले कलकत्ते में एकत्र हुए थे। कांग्रेस में भी ताजा होनेवाली घटनाओं के कारण बाकी बचे कांग्रेसियों मे फूट के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने बाद अमृतसर में बने दलों की स्थिति उलट गई। गांधीजी ने असहयोग का बीड़ा उठा लिया और जो लोग अमृतसर में उनके असहयोग के विरुद्ध थे वे अब एक बार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये। पंजाब के अत्याचार और खिलाफत के सवाल पर जनता में खलबली बढ़ रही थी।

अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग-आन्दोलन शुरू करने का निश्चय हुआ। गांधीजी के इस समय के प्रभाव को सरकारी क्षेत्र में (इंडिया १९२० में) इन शब्दों में स्वीकार किया गया—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके (गांधीजी के) आत्मबल के उपदेश उनकी सहधर्मी जनता को रुचे। जनता ने उनके आत्मत्याग के सिद्धांत को माना और उनके साधु-जीवन की सराहना की। अपने अनेक देशवासियों के आहत राष्ट्र गौरव को वह मुक्ति का द्वार प्रतीत हुए। उनके आदेश अर्ध दैवी

आदेशों का प्रभाव रखते थे।" अकेले गाँधीजी एक ओर और मोतीलाल जी नेहरू को छोड़कर दूसरे सभी बड़े नेता दूसरी ओर थे। देशबन्धुदास भी उस समय विरुद्ध थे। अन्त को नागपुर में गाँधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई और कॉंग्रेस का ध्येय शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना तय हुआ। नागपुर कांग्रेस से वास्तव में भारत के इतिहास में एक नया युग शुरू होता है। निःसत्व क्रोध और अनुनय-विनय का स्थान जिम्मेदारी के एक नये भाव और स्वावलम्बन की स्पिरिट ने ले लिया था। असहयोग के प्रस्ताव में पदवियों, अदालतों और विदेशी माल का बहिष्कार आदि कार्यक्रम थे। तदनुसार जमनालालजी ने अपनी रायबहादुरी की उपाधि छोड़ दी। इतना ही नहीं, असहयोग-आन्दोलन में उन्होंने पूरे त्याग का परिचय दिया। अपने सारे मामले जो अदालत से संबंध रखते थे, हटा लिए। अदालत का पूरी तरह से बहिष्कार किया। इस समय उनके कई दीवानी मुकदमे चल रहे थे। इस बहिष्कार से उन्हें भारी आर्थिक नुकसान हुआ। लोगों ने भी इस अवसर का बड़ा दुरुपयोग किया और जमनालालजी का रुपया कई लोगों में डूब गया।

इतना होने पर भी श्री नरसिंह चिंतामणि केलकर ने अपने किसी पत्र में जमनालालजी की टीका की कि अदालत-बहिष्कार-आन्दोलन में भी उनकी दुकान का कारोबार और अदालतों से संबंधित काम तो चल ही रहा है। इसपर जमनालालजी ने खुला चैलेंज देकर कहा कि इस बारे में साफ प्रमाण देना चाहिए। तब केलकर महोदय ने जब छान-बीन की तो उनके लेख की सब बातें निर्मूल प्रतीत हुईं और उन्हें जमनालालजी से क्षमा माँगनी पड़ी। बहिष्कार के सिलसिले में जमनालालजी ने अपने यहाँ की तलवार, बन्दूक और उसके साथ शस्त्रों-हथियारों का लाइसेंस भी सरकार के सुपुर्द कर दिया। तिलक स्वराज्य कोष के लिए १ करोड़ रुपया एकत्र करने का भी प्रस्ताव वहाँ पास हुआ था, जिसमें जमनालालजी ने एक

लाख रुपया असहयोगी वकीलों की सहायता के लिए दान दिया। दो, तीन वर्षों में ही जमनालालजी कांग्रेसी नेताओं में गिने जाने लगे। कांग्रेस-कोष से खर्च करने के लिए जो प्रार्थनाएं प्राप्त हों उनके भुगताने का काम एक समिति के सुपुर्द किया गया था जिसमें महात्माजी और पंडित मोतीलालजी नेहरू के साथ जमनालालजी का भी नाम था।

१९०६ की कांग्रेस से देश में स्वदेशी का चलन हुआ। तब से वे स्वदेशी कपड़े पहिनने लगे थे। इस असहयोग-आन्दोलन से उन्होंने मिल के कपड़े बिलकुल छोड़ दिये और केवल खद्दर पहिनने लगे। आपने अपने और मित्रों से भी उपाधियाँ छुड़वाई। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के दिनों में उन्हें तथा उनकी पत्नी जानकी देवी को विदेशी वस्त्रों से इतनी घृणा हुई कि अपने घर के सब के सब कीमती से कीमती वस्त्र, फरनीचर पर का कपड़ा, मंदिर के ठाकुरजी की पोशाक आदि हजारों रुपयों की लागत के वस्त्रों की होली कर दी। वास्तव में यह समय जमनालालजी की सी स्थिति वालों के लिए बड़ी परीक्षा का था। एक ओर भारत की प्रबल शक्तिशाली सरकार का साथ छोड़ना और दूसरी ओर उसके खिलाफ आन्दोलन में आगे बढ़कर लोहा लेना बड़े साहस और आत्मत्याग का समय था। यदि महात्मा गाँधी असहयोग-आन्दोलन के मस्तिष्क थे तो जमनालालजी उसके मेरु-दण्ड थे। उस समय महात्मा गाँधी भारत के वातावरण में व्याप्त हो गए थे। वास्तव में जिस दिन से वे गाँधीजी से प्रभावित हुए और कर्तव्य समझ कर राजनैतिक क्षेत्र में पड़े, तभी से भावी संकटों की कल्पना तो उनके मन में आ ही गई थी और उन्होंने सोच लिया था कि अब अमीरी जीवन से रह सकना कठिन है। असहयोग-आन्दोलन में जब से उन्होंने रायबहादुरी की उपाधि सरकार को लौटा दी तब से सरकार चौंक गई थी कि जमनालालजी अब सरकार के सहयोगी नहीं रहे, बल्कि बागी हैं। घर पर रहते-रहते उन्होंने अपने सादा खानपान, रहन-सहन से कष्ट-

सहिष्णुता की आदत डाल ली थी और यही कारण था कि आगे चल कर जेल-जीवन के कष्टों में भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं प्रतीत हुई।

श्री महादेव भाई अपने एक लेख में लिखते हैं---"नागपुर महासभा के समय वे अपनी रायबहादुरी छोड़ कर राजनीति के क्षेत्र में उतरे। असहयोग के काम के लिए एक लाख रुपये बापूजी के चरणों में अर्पण किए। उस समय उनके मन की स्थिति अद्‌भुत थी। एक दिन उनके बारे में बापूजी ने कहा "इनकी नम्रता का कोई ठिकाना नहीं, मुझसे कहते हैं कि मुझे देवदास की तरह मानिए। मुझे आज्ञा कीजिए, मेरी भूल सुधारिए, मुझे पाँचवाँ पुत्र समझिए।" मित्र और स्नेही के बदले वे नागपुर में पाँचवें पुत्र हुए उस दिन उनकी जिम्मेदारी पहिले से अधिक बढ़ी। उस दिन से वे प्रत्येक काम करते समय अपने दिल से यही पूछते रहते, 'बापूजी यदि मुझे यह काम करते देखें तो उनके दिल पर क्या असर हो?' और उनके अनुसार वे काम किया करते। तब से लेकर अबतक के उनके कार्यों का रहस्य इससे जाना जा सकता है।"

राजनीति में पड़ने की उन्हें कोई जरूरत नहीं थी। कांग्रेस के कोषाध्यक्ष के नाते कांग्रेस के धन की रक्षा कर के वे चुपचाप बैठे रह सकते थे। परन्तु, उनके जीवन-कार्य के लिए यह काफी न था। उनकी स्पिरिट तो सारे देश के धन की रक्षा करने की रहती थी।

इसके बाद उनका जीवन "नदी-मुखेनैव समुद्रमाविशत्" की तरह विविध, व्यापक व विस्तृत होता गया।

: १० :

राजस्थान की ओर

"राजपूताने से मन में अधिक प्रेम रहता है इसी कारण राजपूताने के लिए अधिक दुःख भी होता है। इतने वर्षों के अनुभव से अन्य कार्यकर्ताओं का तो प्रश्न ही क्या, मुझे अपने ही मित्रों की कार्य-पद्धति और व्यावहारिक भूलों के कारण तथा पारस्परिक प्रेम और विश्वास की कमी के कारण कई बार दुःख पहुँचा है।

"राजपूताने के मित्रों के प्रति तथा खासकर आपके प्रति मेरे मन में कितना प्रेम है यह कह कर या लिख कर नहीं बताया जा सकता और इसलिए भी अधिक दुःख हुआ करता है। खैर, अब आप अपने मन पर *इसका बोझ भी न रखें। व इसकी चिन्ता न करें। हम लोगों की सेवा शुद्ध* और सात्विक होगी तो इसका परिणाम अच्छा आवेगा और अगर इसमें कुछ दोष रहा होगा तो उससे भी मुक्त होने का मौका मिलेगा।"

बम्बई ता० २०-१-३५ (लेखक को लिखे गए एक पत्र से)

"अजमेर के मामले में ऐसी खबरें आती हैं तब दिल पर कुछ असर तो हो ही जाता है; परन्तु अब मैं विशेष चिन्ता नहीं करता। राजस्थान के पापों का प्रायश्चित्त तो करना ही पड़ेगा।"

(जमनालालजी के पत्र से)

इस समय मारवाड़ी समाज में व राजपूताने में जो कुछ सार्वजनिक व राजनैतिक जागृति दिखाई पड़ती है, तथा जो भी उत्साही, त्यागी व लगन वाले कार्यकर्ता दीख पड़ते है वे सब प्रायः जमनालालजी के ही प्रयत्न के फल हैं। यद्यपि राजस्थान में राजनैतिक चेतना लाने का प्रथम श्रेय स्व०

श्री दामोदरदासजी राठी, अर्जुनलालजी सेठी, केसरीसिंह जी बारहठ को है ; परन्तु राजस्थान से दूर बैठे हुए जमनालालजी ने उसमें एक नवीन जागृति और स्फर्ति पैदा की, मारवाड़ी समाज में सामाजिक सुधारों के साथ-साथ राजनैतिक चेतना को जबर्दस्त गति दी। इनके कार्य-क्षेत्र में आने से पहले---अर्थात् १९१८ से पहले---मारवाड़ी समाज जो कि व्यापारी वर्ग ही है, राजनैतिक क्षेत्र में आने से डरता था। वह जमनालालजी ही थे जिन्होंने अपने उदाहरण व प्रयत्नों से इस समाज में व राजस्थान में राजनैतिक चेतना बढ़ाई। उनके हृदय में जो सेवा, समाज-सधार व शिक्षा-प्रसार की ऊंची उमगें थीं, वे नागपुर कांग्रेस के समय से एक ओर जन्म-भूमि व दूसरी ओर भारत-भूमि की सेवा की दो धाराओं में बहने लगीं। भारतमाता की सेवा उन्हें कांग्रेस-क्षेत्र में खींच ले गई, व जन्मभूमि की सेवा राजस्थान की राजनैतिक जागृति, संगठन व उन्नति की ओर। इसकी पहली अभिव्यक्ति हुई "राजस्थान-केसरी" नामक एक साप्ताहिक पत्र का वर्धा से जमनालालजी की छत्रच्छाया में निकलना। नागपुर-कांग्रेस ने जिस सत्याग्रह व असहयोग की लहरों को ऊंचा उठाया उसका असर देशी रियासतों पर पड़ना लाजिमी था व राजस्थान भी उससे नहीं बच सकता था। दूरदर्शी जमनालालजी ने अपनी प्यारी वीर-भूमि को जाग्रत करने में इस आन्दोलन से पूरा पूरा लाभ उठाया। राजस्थान सेवा-संघ की बुनियाद भी शायद, इसी समय वर्धा में पड़ी। स्व० श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री सेठी जी, श्री पथिक जी व श्री केसरीसिंह जी बारहठ के सहयोग से "सेवासंघ" व उसके मुखपत्र "राजस्थान केसरी" का जन्म हुआ जिसकी घटी के १०-१२ हजार रुपया जमनालालजी ने दिया। बाद में देशी-राज्यों में काम करने की नीति के संबंध में मत-भेद हो जाने से राजस्थान सेवा-संघ व "राजस्थान केसरी" अजमेर चला आया व पथिकजी के तत्वावधान में दोनों काम चलने लगे।

यह तो कुछ बाद की बात है। इसके पहले सन १९१६ से ही वे इस ओर दिलचस्पी लेने लगे थे। १९१६ की बात है, कलकत्ते में मारवाड़ी सहायक-समिति के तत्कालीन कार्यकर्ता श्री घनश्यामदासजी बिड़ला, ओंकारमलजी सराफ, प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका आदि अपनी जनसेवा की प्रवृत्तियों के कारण सरकार के कोपभाजन बने हुए थे। उन्हीं दिनों श्री जमनालालजी कुछ कार्यवश कलकत्ता गये और मारवाड़ियों में वे शायद पहले ही व्यक्ति थे जिन्होंने उन नौजवान साथियों के साहस की बड़ी सराहना की, उन्हें बधाई दी और उनका उत्साह बढ़ाया। यहां तक कि संभावित कारावास के उपलक्ष्य में मिठाई मंगाकर बांटी गई। इस प्रकार यह पहला ही मौका था कि सरकार-भक्त मारवाड़ी समाज में जो कि सरकारी पदवी प्राप्त करना एक गौरवपूर्ण बात मानता था, सामूहिक रूप से राजनैतिक चेतना का उदय एवं सरकार से संघर्ष लेने का श्रीगणेश हुआ। राजनीति की बातें करना भी जिस समय राजद्रोह के समान माना जाता था उस समय मारवाडी समाज में ऐसा साहस दिखाने का सर्वप्रथम श्रेय जमनालालजी को है।

अपनी रायबहादुरी की उपाधि छोड़कर उन्होंने मारवाडी समाज को स्वातन्त्र्य-प्रियता का एक नया पाठ दिया और सत्याग्रह-संग्राम में जेल जाकर मारवाड़ी समाज से जेल जाने का भय दूर कर दिया। राजनीति में अधिक से अधिक भाग लेने के लिए १९१७ में उन्होंने मारवाड़ी युवकों से जोरदार अपील की और इसलिए १९२० में उन्होंने कलकत्ते में बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटी की स्थापना की। १९२१ के गांधीजी के स्वातन्त्र्य-संग्राम में मारवाड़ी-समाज अधिक संख्या में जो शरीक हुआ, गांधीजी के राजनैतिक सामाजिक, शिक्षा-संबंधी तथा दूसरे महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यों में राजस्थानी युवक-युवतियां संलग्न हुए, इस सारी जागृति का मन्त्रदाता जमनालालजी को कह सकते हैं। अपने ज्वलन्त उदाहरण से उन्होंने

मारवाड़ी समाज का गौरव बढ़ाया और दिखाया कि किसी भी क्षेत्र में, चाहे वह शिक्षा-प्रचार, समाज-सेवा, राजनीति और आर्थिक-उन्नति हो, मारवाड़ी समाज पीछे नहीं है।

जमनालालजी यद्यपि ब्रिटिश भारत में आ बसे थे तथापि वे अपनी जन्मभूमि को कैसे भूल सकते थे ? सीकर में जन्म होने के कारण, जो कि जयपुर-राज्य का एक ठिकाना है, वे अपनेको गुलाम नं० ४ कहते थे। अंग्रेजों का पहला गुलाम ब्रिटिश भारत, दूसरा गुलाम देशी रियासतें, उनका गुलाम सीकर ठिकाना और सीकर के गुलाम जमनालालजी। इस तरह वे अपनी गुलामी का हिसाब लगाते थे। परन्तु, साथ ही उन्हें रियासती होने का गर्व भी था। देशी-राज्यों में राजनैतिक जागृति और आन्दोलन की असली बाधक और विरोधी तो उस समय ब्रिटिश सरकार ही थी। देशी-राजाओं को उन्होंने ही अपने फौलादी पंजों में जकड़ रखा था। अतः गांधीजी मानते थे कि ब्रिटिश भारत में स्वराज्य स्थापित होते ही देशी-राज्यों की पीड़ित जनता अपने-आप बहुत-कुछ स्वराज्य पा लेगी। दूसरे, उस समय देशी-राज्यों की प्रजा भी इतनी पीड़ित और भयभीत थी कि किसी भी प्रकार राजनैतिक कार्य की शुरुआत ही नहीं होने पाती थी। जमनालालजी देशी राज्यों की इस पेचीदा और कठिन परिस्थिति से परिचित थे। अतः वे महात्माजी के नेतृत्व में कांग्रेस-द्वारा देश की राजनैतिक सेवा करने के लिए अग्रसर हुए थे। जब से वे राजनैतिक क्षेत्र में कूदे, तभी से वे रियासती होने के कारण रियासती कामों में दिलचस्पी भी लेने लगे। उसका प्रथम सूत्र-पात "राजस्थान-केसरी" से हुआ।

राजस्थानियों के जीवन का मुख्य आधार कृषि और पशु-पालन ही है। किन्तु, यहाँ के वैश्य दूसरे प्रांतों में बाहर जाकर वाणिज्य व्यवसाय करते हैं। व्यापार-प्रधान होने से औरों की अपेक्षा अधिक भयभीत रहते हैं। जमनालालजी एक तो वैश्य, फिर राजस्थानी, दोनों कारणों से इस

जागृति के मुखिया बन गये और जब तक वे रहे सारे राजस्थानी नेतृत्व के लिए उनकी ओर देखते थे। सामाजिक स्थिति को समझने की दृष्टि से जमनालालजी ने राजपूताने में जो इधर-उधर भ्रमण किया उससे जनता की गरीबी और गुलामी व सामाजिक कुप्रथाओं और नैतिक पतन की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। गरीबी दूर करने के लिए उन्होंने खादी और गृह-उद्योग को अपनाया। चर्खा-संघ के अध्यक्ष और राजस्थान चर्खा-संघ के एजेंट बने। खादी-प्रचार के लिए यात्राएं कीं। गुलामी हटाने के लिए आगे चलकर देशी राज्य-प्रजा-परिषद और प्रजामण्डलों को बल दिया। तथा शिक्षा-प्रचार और कुरीतियों को दूर करने के लिए भिन्न भिन्न संस्थाएं खोलीं। नैतिक पतन की तो ऐसी गहरी छाप उन पर पड़ी कि सदाचार को उन्होंने अपने जीवन में प्रथम स्थान दिया। और जब भी कभी तिल भर उनके मन में किसी भी प्रकार की कमजोरी आई तो उन्हें बिच्छू के डंक की तरह असह्य हो गई। १९३० में वह एक जगह लिखते हैं:—"आज से २४ साल पहले हमारे समाज में चरित्र के संबंध में जो कल्पना और विचार थे उसका चित्र और वर्तमान विचारोंका दृश्य जब सामने आता है तो बड़ा भारी परिवर्तन मालूम होता है। यानी कलियुग में से सतयुग निर्माण होता हुआ दिखाई देता है। मेरे बचपन के जमाने में लोग दूसरे की स्त्री का सतीत्व नष्ट करने में अपना गौरव और बहादुरी समझते थे, किन्तु परमात्मा की दया से १७ वर्ष की उमर तक मेरे स्वभाव में जो संकोच, शर्म और डर का मिश्रण था, उससे मेरी बहुत रक्षा ही हुई। फिर भी, थोड़ा-बहुत धोखा हुआ। सामाजिक सुधार तथा समाज में से गुप्त व्यभिचार, भ्रूण-हत्या, आदि दोष निकालने की जबर्दस्त प्रेरणा उसी समय से हुई और उन अनुभवों से अब भी मुझे बहुत लाभ होता है। पहिले मन्दिरों के पुजारी मुखिया पर मन में श्रद्धा और पूज्यता का भाव बहुत था, फिर जब ऐसे कुछ मुखियाओं के गंदे जीवन का हाल सुना तो यह श्रद्धा कम होने लगी।

नैतिक जीवन को श्रेष्ठ और उज्वल रखने की तीव्र इच्छा हुई। मेरे समाज-सुधार-संबंधी विचारों के पीछे मेरा खुद का और पूज्य बापू जी जैसे का अनुभव तो हैं ही, साथ ही स्त्री और पुरुष के चरित्र की जो कल्पना हम बाहर से कर लेते हैं वह कई बार गलत साबित होती है। मुझे ऐसी दो, तीन घटनाओं का अनुभव है जो बाहर से खराब बातें सुनी थीं परन्तु, परिचय के अन्त में वहाँ पवित्रता का ही अनुभव हुआ। उसी प्रकार जो बाहर से बहुत सदाचारी दिखाई देते थे उनके काले-कृत्यों का भी अनुभव मिला है। इससे मैंने यह निश्चय किया है कि सुनी हुई बातों पर विश्वास करना उचित नहीं है।"

इन अनुभवों और भावनाओं ने उन्हें राजस्थान की सेवा की ओर अधिकाधिक धकेला। भले ही राजस्थान सेवा संघ और "राजस्थान केसरी" वर्धा से अजमेर चले आये, परन्तु, राजस्थान के उत्थान में जमनालालजी की शक्ति दिन दिन अधिकाधिक लगने लगी और आज उनके अभाव में कई राजस्थानी कार्यकर्ता अपने को असहाय-सा अनुभव करते हैं। हालांकि मैं मानता हूँ कि राजस्थान की सेवा का उनका संकल्प अनेक राजस्थानी आत्माओं को उद्वेलित और आन्दोलित करता रहता है।

: ११ :

गुरुचरणों में

"विनोबा के प्रति दिनदिन श्रद्धा बढ़ती जाती है। परमात्मा यदि मुझे इस देह से उनकी श्रद्धा-के योग्य बना सकेगा तो वह समय मेरे लिए धन्य होगा। मुझे दुनिया में बापू पिता व विनोबा गुरु का प्रेम दे सकते हैं, अगर मैं अपनेको योग्य बना सकूँ।"

(डायरी १५ जून, १९४१) **जमनालालजी**

महात्माजी १९१५ में पहिले कोचरब में व फिर साबरमती के तट पर सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना कर चुके थे। जमनालालजी वहाँ समय समय पर जाया आया करते थे और बहुत तीक्ष्ण दृष्टि से महात्माजी के कार्य व जीवन का सूक्ष्म अवलोकन करते थे। एक जगह उन्होंने लिखा है:–

"आज २४ वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया जब से मैं महात्मा जी के संपर्क में हूँ। इन वर्षों में मैंने उनके जीवन के समस्त क्षेत्रों का अवलोकन किया, मैं उनके सहवास में घूमा, उनके आश्रम-जीवन में भी रहा, उनके उपवासों में उनके निकट रहा, बीमारियों के समय उनकी सुश्रूषा में भाग लेता रहा। उनकी अनेक गहन मन्त्रणाओं का मैं साक्षी हूँ और उनके सार्वजनिक व्यक्तियों का भार मैंने शक्ति भर उठाया, सारी अवस्थाओं में उनके अनेक गुणों का मुझ पर असर होता ही गया। मेरी श्रद्धा बढ़ती गई। मैं अपने आपको उनमें अधिकाधिक विलीन करता ही गया। और आज तो वे मेरे आदर्श हैं और उनकी आज्ञा मेरा जीवनादर्श है। उनका प्रेम मेरा जीवन है। महात्माजी में अनेक अलौकिक गुण हैं। इस

प्रकार के शब्दों से मैं अपने हृदय के सच्चे भाव प्रकट कर रहा हूँ। पर विरोध की आशंका न करते हुए इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि उनमें मनुष्योचित गुणों का बहुत बड़ा समुच्चय है। मानवी गुणों के तो वे हिमालय हैं। उनकी नियमितता, सार्वजनिक हिसाब रखने की सूक्ष्मता, बीमारों की सुश्रूषा, अतिथियों का सत्कार, विरोधियों के साथ सद्-व्यवहार, विनोद-प्रियता, आकर्षण, स्वच्छता, बारीक निगाह और दृढ़ निश्चय आदि गुण मुझे उत्तरोत्तर प्रकट होते हुए दिखाई दिये हैं। महात्माजी में मैंने विरोधी गुण भी देखे हैं। उनकी अविचल दृढ़ता, कठोरता, अगाध प्रेम और मृदुता की बुनियाद पर खड़ी हैं। उनकी पाई पाई की कंजूसी महान् उदारता के जल से सिंचित है और उनकी सादगी सौंदर्य से पोषित है।"

महात्माजी की इस दैवी संपत्ति से प्रभावित होकर ही उन्होंने चाहा कि महात्मा जी वर्धा चलें, उन्होंने महात्माजी से कहा भी कि वर्धा चलिए और वहाँ आश्रम स्थापित कीजिए। उन्होंने जवाब दिया:— "नहीं, मैं गुजराती हूँ, गुजरात में रहकर ही मैं अधिक सेवा कर सकता हूँ। गुजरात की सेवा-द्वारा मैं भारत की सेवा करूँगा।" उस समय तो जमनालालजी खाली हाथ वापस लौट आये। पर अन्त में १९३४ में उस दृढ़ संकल्प भक्त के आगे बापू को हार माननी पड़ी।

लेकिन जब गांधीजी ने पहिले इन्कार किया तो जमनालालजी वहीं खामोश न हो रहे। उन्होंने वर्धा में सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना की, पहले श्री रमणीकलाल भाई मोदी वहाँ गये, पीछे जमनालालजी ने विनोबा को महात्माजी से माँग लिया, तब से विनोबा वर्धा की सर्वोदयी प्रवृत्तियों के केन्द्र बन गए। यही विनोबा आगे चलकर जमनालालजी के गुरु की स्थान-पूर्ति करने लगे। महात्माजी उनके लिए पिता थे और विनोबा गुरु।

'गुरु' शब्द इस युग में अरुचिकर-सा हो गया है। फिर भी हमें कदम कदम पर गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु वह है जो हमें बोध दे, सन्मार्ग दिखावे और सत्कार्यों के लिए प्रोत्साहन देता रहे। ऐसे सहायक की किसे आवश्यकता नहीं होती ? कई बार हम अपनी बुद्धि से निर्णय नहीं कर पाते, निर्णय कर लेने पर भी उसे कार्यान्वित करने की सूझ-बूझ या हिम्मत नहीं होती। कष्ट, कठिनाई, विपत्ति के समय धीरज खो बैठते हैं। पाप और बुराई में फँस जाते हैं। कोशिश करने पर भी उनमें से छूटना मुश्किल मालूम पड़ता है। ऐसे समय किसीके आलम्बन की जरूरत सब को होती है। जो ऐसा सहारा देता है वही हमारा गुरु है। जो जिस बात में हमसे बड़ा होता है, वह उस बात में हमारा गुरु है। इसी दृष्टि से दत्तात्रेय ने २४ गुरु बनाये थे। किन्तु जीवन की नौका को पार लगाने वाले गुरु बिरले ही होते हैं। जमनालालजी के हाथ ऐसे ही गुरु, बल्कि सद्‌गुरु, लग गये जिसपर वे फूले नहीं समाते थे। जीवन का कोई गंभीर और कठिन प्रसंग नहीं जिसमें विनोबा उन्हें याद न आते हों, उनके आश्वासन का भरोसा न रखते हों।

विनोबा कोरे विद्वान् और मौलिक या प्रतिभाशाली विचारक नहीं आचार्य और शिक्षक नहीं, ज्ञानी, तपस्वी, योगी व भक्त, स्थितप्रज्ञ, की कोटि के पुरुष है। आज के भारत में गीता व उपनिषद् का जीवन जीने-वाले ऋषि-मुनियों और गुरुओं में वे हैं। ज्ञानदेव, तुकाराम और गांधीजी की त्रिमूर्ति जैसे लगते है। खुद गांधीजी ने उनके बारे में लिखा था १९३९ के व्यक्तिगत सत्याग्रह के अवसर पर, जब कि उन्हें देश का सर्वप्रथम सत्याग्रही नियुक्त किया था—"वे संस्कृत के पंडित हैं, आश्रम के प्रत्येक काम—पाखाना सफाई तक में उन्होंने हिस्सा लिया है। चरखे और तकली कताई में वे निष्णात ही नहीं, हिन्दुस्तान भर में हाथ कताई में उनके बराबर संपूर्णता किसीने प्राप्त नहीं की। कताई पर उनका इतना विश्वास

है कि उसको वह हरएक कार्यक्रम का केन्द्र बनाना चाहते हैं। कताई को मौलिक दस्तकारी मानकर उन्होंने एक मौलिक पुस्तक भी लिखी है। उनका विश्वास है कि चर्खा अहिंसा का बहुत ही उपयुक्त बाह्य चिह्न है। छुआछूत की गंध तक उनके मन में नहीं है। सांप्रदायिक एकता में उनका विश्वास मुझ से कम नहीं। मुसलमान भाइयों के साथ संपर्क बढ़ाने के लिए उन्होंने खास तौर से अरबी भाषा पढ़ी और एक वर्ष तक कुरान का अभ्यास किया ।

"उनके पास कार्यकर्ताओं का एक ऐसा दल है जो उनके इशारे से हर प्रकार के बलिदान के लिए तैयार रहता है। वर्धा से पांच मील दूर पवनार ग्राम से उन्होंने अपने शिष्यों द्वारा ग्रामीण लोगों की सेवा करके उनसे संपर्क स्थापित किया। हिन्दुस्तान के लिए वे राजनैतिक स्वतन्त्रता आवश्यक मानते हैं। वे इतिहास के निष्पक्ष विद्वान् हैं। उनका मानना है कि रचनात्मक कार्य के बगैर गांववालों को आजादी नहीं मिल सकती। विनोबा युद्ध-मात्र के विरोधी हैं, परन्तु वे अपनी अन्तरात्मा की तरह उन दूसरों की अन्तरात्मा का भी उतना ही आदर करते है, जो युद्ध-मात्र के विरोधी तो नही हैं, परन्तु जिनकी अन्तरात्मा इस वर्तमान युद्ध में शरीक होने की अनुमति नहीं देती ।"

बापू ने जमनालालजी की दूसरी पुत्री श्री मदालसा को लिखे पत्र में विनोबा का उल्लेख जिस तरह किया है, उससे उनके प्रति बापू का कितना आत्म-विश्वास झलकता है—

११–१–३३, यरवदा मन्दिर

"जो प्रश्न तेरे मन में उठते हैं वे सब जिज्ञासु के मन में उठते हैं। वाचन और विचार से वे हल हो जाते हैं। जगत् हम खुद ही है। हम उसमें हैं, वह हममें है। ईश्वर भी हमारे अन्दर है। हमारे अन्दर हवा भरी है वह हमें आँखों से तो नहीं दिखाई देती, परन्तु उसे जानने की

इन्द्रिय हमारे पास है। ईश्वर को जानने की इन्द्रिय प्राप्त कर सकते हैं। यदि इसे प्राप्त कर लें तो उसे भी पहचान लेंगे। यह बात तुझे विनोबा बता रहे हैं। धीरज रखना।"

"तू कौन सा पराक्रम कर रही है? जो होना हो सो हो। चिन्ता न करना। इतने अभंग सीखे हैं और विनोबा से ज्ञान-पान किया है उसका ठीक ठीक उपयोग करना।" २९-१२-३९

१०-१०-३२ को गांधीजी ने यरवदा जेल से लिखा था जमनालाल जी को—"विनोबा की संगति से परमात्मा पर आस्था दृढ़ हुई है इसे मैं सबसे बड़ा लाभ मानता हूँ। विनोबा का काम तो सुन्दर है ही।"

स्वर्गीय महादेव भाई ने उनकी स्तुति इन शब्दों मे की थी:—

"......लोग विनोबा का प्रभाव आज नहीं, वर्षों के बाद जानेंगे। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। प्रखर विद्वान् हैं। रचनात्मक कार्य के पुरस्कर्ता और दिन-रात उसीमें लगे रहने वाले हैं। एक निश्चय किया, एक तत्व ग्रहण किया और उसका उसी क्षण से अमल करना उनका प्रथम पंक्ति का गुण है। उनका दूसरा गुण है निरन्तर विकास-शीलता, "योग: कर्मसु कौशलम्" के अर्थ में विनोबा सच्चे योगी हैं। उनके विचार, वाणी और आचार में जैसा एकराग है वैसा बहुत कम लोगों में होगा, इसलिए उनका जीवन एक मधुर संगीतमय है। "संचार करो सकल कर्मे ज्ञान तोमार छंद" कविवर ठाकुर (गुरुदेव) की यह प्रार्थना शायद विनोबा पूर्व जन्म से करके आये हैं।"

जमनालालजी तो उनका गुण-गान करते अघाते नहीं थे। विनोबा का भी उनपर और उनके बालबच्चों पर इतना प्रेम है कि वे अकेले जमनालालजी के ही गुरु नहीं रहे, एक तरह से उनके कुलगुरु ही बन गये हैं। बापू के बाद तो आज बजाज-परिवार के वही पथदर्शक हैं। जानकी मैया जी को उन्हींकी छत्रच्छाया में शान्ति मिलती है। राधाकृष्णजी, मदा-

रूसा तो उनके पट्टशिष्य जैसे ही रहे हैं। कमलनयन का जीवन उन्हींके उपदेशों पर आधारित रहता है और उनके दिये संस्कारों को वह अपनी अमूल्य थाती मानते हैं। बापू के अभाव में आज तो सारा गांधी-मार्गी भारत उनसे प्रेरणा व पथदर्शन की आशा रखता है।

विनोबा कितने अन्तर्मुख रहते हैं ,उनकी भूमिका कितनी आध्यात्मिक है, इसका एक उदाहरण लीजिए। कमलनयन ने अपने अनुभव की एक घटना मुझे सुनाई। बचपन में वह विनोबा के पास विद्याध्ययन के लिए रहे थे—प्राचीन शिष्य जैसे गुरुकुलों में रहते थे। उन्होंने कहा—विनोबा अक्सर पत्रों को पढ़कर रख लिया करते और एक साथ सबके उत्तर लिख दिया करते थे और फिर फाडा करते थे। दुबारा उन पत्रों को नहीं देखते थे ! किन्तु एक बार एक पत्र पढ़कर उन्होंने उसी समय फाड़ डाला। मुझको इसपर आश्चर्य और कौतूहल हुआ और टुकड़े मैंने उठा लिए। वह बापू का पत्र था, जिसमें इस आशय का वाक्य था –"तुमसे बढ़कर उच्च आत्मा मेरी जानकारी में नहीं है।" मैं दंग रह गया। बापू का इतना बड़ा प्रमाण-पत्र और उसका यह हाल ! विनोबा से पूछा—इसे क्यों फाड़ा ? यह तो बड़े काम की चीज है। विनोबा सहज भाव से बोले:—मेरे काम की तो थी नहीं, इसीलिए फाड़ डाला। कमल ने कहा—यह तो सँभाल के रखने की चीज है, आगे भी बहुत काम की है। उन्होंने फिर उसी साधारण भाव से उत्तर दिया—"जो वस्तु मुझे अपने काम की नहीं लगती, उसे भविष्य के लिए क्यों संग्रह करके रक्खूं ? बापू ने अपनी महानता में मुझे जैसा देखा वैसा लिख दिया। त्रुटियाँ उन्होंने कहाँ देखी हैं ?"

इन सहज उद्‌गारों में सारा विनोबा प्रस्फुटित हो रहा है।

विनोबा का प्रभाव जमनालालजी पर तरह तरह से पड़ा। अपनी डायरी में वे एक जगह लिखते हैं:—"मैंने विनोबा से कहा कि अगर आप

मेरी जुम्मेवारी लेने को तैयार हों तो मैं आपकी देख-रेख में काम करने को तैयार हूँ। मेरी कमजोरियाँ, योग्यता आदि देखकर काम सौंप दिया जाय।" इसी समय का जमनालालजी का विनोबा के संबंध में एक वचन जो उनकी डायरी में दर्ज है, इस अध्याय के आरंभ में दिया गया है। १९४१ में नागपुर-जेल में विनोबा और जमनालालजी एक साथ रहे थे। उस समय की डायरी विनोबा के वचनों और उपदेशों से भरी पड़ी है। वह उपनिषदों की तरह नित्य पठनीय और संत-समागम जैसी पवित्र व स्फूर्तिदायी है। इन दिनों उन्हें विनोबा से काफी आध्यात्मिक ज्ञान मिला। जेल से छूटने के बाद तो वेद-वेदान्त, उपनिषद, रामायण आदि ग्रन्थों को पढ़ने और सुनने की काफी लिप्सा उनमें उत्पन्न हो गई थी।

बातचीत के प्रसंग मे उन्होंने एक बार कहा, "साधु-सन्त सब जगह होंगे, परन्तु मुझे विनोबा का विशेष अनुभव आया।" इसी प्रसंग पर यह लोकोक्ति भी सुनाई थी—"घर के जोगी-जोगडा आन गाँव के सिद्ध" इससे विनोबा के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा प्रकट होती है। जेलों में जमनालालजी विनोबा के प्रवचन शिष्य-भाव से सुनते थे और जिनका प्रभाव उनके मन पर विशेष रूप से पड़ता था उसे डायरी में नोट कर लिया करते थे।

एक वेद-मन्त्र के सायणाचार्य-कृत भाष्य पर विचार सुनते हुए ये विचार ग्रहण किए:—"जो धनिक आसपास के लोगों की परवाह न करता हुआ धन इकट्ठा करता है, वह धन प्राप्त करने के बदले अपना वध ही प्राप्त करता है।" जमनालालजी ने तो विनोबा के प्रवचन में बताये गये उस आदर्श त्यागी का उदाहरण मानों हृदयंगम ही कर लिया था, जिसने कि अपने जीवन की सारी कमाई गंगा-माता के समर्पण कर दी, जब उसके ध्यान में यह बात आई कि मेरी तिजोरी मे जो ढेरी है, उसने दूसरी जगह जरूर गड्ढा कर दिया होगा। इसमें विनोबा ने त्याग और दान का फर्क समझाया है कि "त्याग में तो मूल पर ही कुठार मारना होता है

और दान मानों ऊपर ऊपर की कोंपले नोच कर देने जैसा है। त्याग पीने की दवा है तो दान सिर पर लगाने की सोंठ। दवा पीने से रोग जड़मूल से नष्ट हो जाता है, जब कि केवल सिर पर दवा लगाने से दर्द थोड़ा हलका भले ही हो जाय।' जड़ से नहीं नष्ट होता। त्याग से पाप का मूल-धन चुकता है और दान से केवल ब्याज-मात्र।" विनोबा के इस कथन को उन्होंने जीवन के अन्तिम दिनों में गो-सेवा करने के समय तो प्रत्यक्ष ही उतार लिया था--"खादी और गादी की लड़ाई है, लंगोटिया ही सब से बड़-भागी है। कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः।"

विनोबा ने कर्मयोग का अनुभव सुनाते हुए जब यह कहा कि, आठ घंटे एक आसन से बैठकर कातने के बाद भी जब सवा दो आने की ही कमाई कर सका तो सोचा देश की सच्ची अर्थनीति यह मौजूदा अर्थनीति नही हो सकती, क्योंकि सच्चे अर्थशास्त्र में आलसी और अप्रामाणिक लोगों के पोषण का भार राष्ट्र पर नहीं पड़ सकता। विनोबा के इस अनुभव से जमनालालजी ने अपने जीवन में सच्चे कर्मयोग को साधने का मानों संकल्प कर लिया था, जिसके दर्शन हमें उनके अंतिम कार्य "गो-सेवा" में बराबर होते है।

१५ फरवरी १९४१ की डायरी में विनोबा के उपदेश का यह सार अंकित है—"स्वाध्याय की आवश्यकता--ज्ञान व उत्साह का स्थान आज शहर ही है। आत्मा का पोषण रक्षण आजकल शहरों में नहीं होता। अपने को व अपने कार्य को बिल्कुल भूल जाना और तटस्थ होकर देखना चाहिए। फिर उसीमेंसे उत्साह मिलता है, मार्गदर्शन होता है, बुद्धि की शुद्धि होती है।"

१० अप्रैल ४१ को विनोबा ने कहा था—"मित्र वही सच्चा मित्र हो सकता है जो आध्यात्मिक उन्नति में व कमजोरियाँ निकालने में मदद करता हो।"

१९३६ में एक बार जमनालालजी बड़ौदा गये तो वहाँ विनोबा के पिताजी से मिले। उस समय उनके मन पर जो प्रभाव पड़ा वह इन शब्दों में अपनी डायरी में अंकित किया है—"पू० विनोबा के पिताजी के प्रथम बार दर्शन हुए। शरीर सुन्दर सुदृढ़ है। मुख का तेज कहता था कि उनका जीवन युवकों के लिए आदर्श है। उनके आहार के प्रयोग चलते रहते हैं। इस समय ६ पौंड दूध और ६ तोला सोयाबीन लेते हैं। मेरे दिल पर उनके दर्शन का अच्छा प्रभाव पड़ा।"

जमनालालजी तो विनोबा के प्रति आदर-भाव रखते ही थे, वैसे ही विनोबाजी के मन में भी उनके प्रति उतना ही प्रेम, स्नेह, आत्मीयता और कौटुम्बिकता थी। उन्होंने जो पत्र जमनालालजी को लिखे हैं उनसे यह भली भाँति दिखाई पड़ता है। अपनी भी कई बातें वह जमनालालजी को कहते और लिखते थे।

१०–२–३५ के पत्र में वह लिखते हैं—मेरी इच्छा कहो या वासना कहो दो बातें करने की ही होती है। पहली ईश्वर का नाम लेना और दूसरी दिन भर कातना। इसके अलावा और सब बातें-पढ़ाना, लिखना, चर्चा, व्याख्यान,—ये सब मुझे अक्षरशः ० लगती हैं। नामस्मरण और कातना इन दोनों का अर्थ मेरे मत से मुझे एक ही लगता है। इसलिए उन दोनों को मिला के मैं एक समझता हूँ और १ के ऊपर ० रखा तो १०, १०० इत्यादि होंगे। लेकिन १ की सहायता न होगी तो सब शून्य-निरर्थक होंगी। १ की चिंता मैं कर लूँ और शून्य की चिन्ता करने को सारी दुनिया समर्थ है। इसलिए मेरा नित्य कार्यक्रम दिन भर कातना और रात को चिंतन करना इतना ही है। और इतना ही आगे रहेगा। पहले मैंने दो प्रार्थना के बीच के रात के समय में मौन-व्रत शुरू किया, वह नियम खाली आश्रम में ही रखा। बाहर शुरू नहीं किया। आगे चलकर बाहर भी शुरू किया। इसी प्रकार इस कार्यक्रम का होगा ऐसा भविष्य

दिखाई देता है। इस प्रकार पहले मर्यादित नियम का "प्रयोग" और फिर व्यापक नियम का "योग" ऐसा मेरा नियम है। इस तरह ही धीरे धीरे आगे बढ़ने का विचार है। यह भक्ति है, या आसक्ति सो मालूम नहीं।"

इस प्रकार जहाँ वे एक ओर जमनालालजी पर अपने विचार व भाव प्रकट करते थे तहाँ वे उसी तरह स्नेह से और प्रेम से उनकी छोटी-बड़ी सूचनाएँ भी अपने आचरण में लाने का प्रयत्न करते थे।

९-१२-३२ के पत्र में विनोबाजी जमनालालजी को लिखते हैं—"आपकी तरफ से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सूचनाएँ मिलीं। मेरी वृत्ति-अनुसार उन पर अमल करने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। लोगों से भी पहले से अधिक मिलता-जुलता हूँ। जादा-कम पत्र भी लिखता हूँ और हजामत भी नियम से बनाने का प्रयत्न करता हूँ।"

इस पत्र में ही वह दूसरी जगह लिखते हैं:—

"कमलनयन की पढ़ाई के प्रश्न की जवाबदारी उठाने की मुझे इच्छा होगी ही। लेकिन डेढ़ सौ पौंड का वजन उठाने की शक्ति आवेगी कि नहीं यह परमेश्वर जाने (यह वजन की बात उन्होंने विनोद में कमल-नयन की मोटाई को लक्ष्य करके कही थी) उसका सद्भाव और मन की मुक्तता मुझे अच्छी लगती है। लेकिन संयम की और विचार की कमी है।"

श्री मदालसा के बारे में वह लिखते हैं—"परमात्मा ने उसे अशक्तता दी है, लेकिन परमात्मा की यह देन भी कल्याणकारी बनाई जा सकती है, यदि उस प्रकार की दृष्टि हो। उस लड़की में निग्रह अभी थोड़ा कम मालूम होता है, परन्तु हरि-प्रेम है और हरि-प्रेम रखने वाले के प्रति मुझे जो हार्दिकता लगती है उसका वर्णन नहीं कर सकते।"

"श्री जमनालालजी

कल आपका अकारण स्मरण हो रहा था। 'अकारण' कहने का कारण यह कि आपका ईश्वर पर विश्वास होने से स्मरण की आवश्यकता

ही नहीं थी। इसलिए उसके बाद कुछ समय भजन में बिताया। आपका यद्यपि स्मरण हो रहा था तोभी चिन्ता बिल्कुल नहीं थी।

जानकी बाई ने सगुण भक्ति ठीक साधी, मेरे नसीब में तो हमेशा निर्गुण भक्ति ही लिखी हुई है।

१७-११-३४ विनोबा का प्रणाम।"

"श्री जमनालालजी,

मेरे आने से जानकी बाई को संतोष हुआ, इसमें मुझे संतोष है : जानकी बाई के लिए मेरे मन में अनेक कारणों से आदर है। उनमें निर्णय-शक्ति कम है, यह बात सच है। लेकिन उनकी बुद्धि ऑपरेशन करने लायक है ऐसा मुझे नहीं लगता। कुछ बातों में वह जो सूक्ष्म विचार कर सकती है उसे देख कर उनकी बुद्धि के बारे में अनुकूल मत बनता है।

उदाहरण के लिए—दुःख के उद्गार प्रकट करने में जो गुण है वह उन्होंने बताया और सब सहन करके दुःख का उद्गार बिलकुल प्रकट न होने देने में जो हानि है वह भी बताई, उसमें भी एक मुद्दा था। "ओ मा" इ० चिल्लाते रहनेवाला मनुष्य जिस प्रकार आस-पास के लोगों को चिन्ता में डालता है, इसी प्रकार अपने सारे दुःख को दबा डालने वाला भी आसपास के वातावरण में चिन्ता उत्पन्न कर सकता है। इसलिए दुःख में चिल्लाते रहें ऐसा सुझाने का मेरा आशय नहीं। "अति सर्वत्र वर्जयेत्" इतना ही भावार्थ लेना चाहिए।

२२-११-३४ विनोबा का सप्रेम प्रणाम।"

"श्री जमनालालजी,

आपके हाथों से आजतक जितनी सेवा हुई उससे कितनी ही अधिक सेवा ईश्वर को आपसे लेनी है, ऐसी मेरी श्रद्धा है। पिछले साल आपको जो शारीरिक कष्ट भुगतना पड़े उन्हें मैं अगली सेवा का पूर्वचिह्न सम-

भ्रता हूँ। परमेश्वर की दया अद्भुत है। इसका पदार्थ ज्ञान किसको होगा? लेकिन हमको इस ज्ञान की कोई जरूरत नहीं, श्रद्धा ही काफी है।

२१-११-३४ विनोबा का प्रणाम।"

इस प्रकार विनोबाजी का संबंध खाली जमनालालजी से ही नहीं था बल्कि उनके बालबच्चे और कुटुम्बियों के साथ भी उतना ही प्रेम, स्नेह और आत्मीयता थी। उनका पत्र-व्यवहार सिर्फ जमनालालजी से नहीं था बल्कि उनके पुत्र और पत्नी के साथ भी था। जैसे—

१८-१-३२ को जानकी मैयाजी को भेजे पत्र में वे लिखते हैं— "मदालसा की पढ़ाई की चिन्ता न करो। इस संबंध में मैंने योजना कर रखी है। बालकों-बा उसका रामायण लेगा और बन सके तो मैं उसको सितार भी सिखाऊँगा। मेरी इच्छा है कि मेरे हाथों से आप लोगों की सेवा आपकी शर्त के अनुसार हो।"

कमलनयन को लिखे हुए २६-२-३८ के पत्र में वह लिखते हैं—"शिक्षा के बारे में विचार लिखे वह ठीक किया। उद्योग के लिए "उद्योग" को स्वतंत्र स्थान नही है। लेकिन सारी शिक्षा का वह द्वार है, ऐसी दृष्टि है। उद्योग में से प्रश्न उत्पन्न होंगे और उनके जवाब के लिए कुछ समय केवल उपपत्ति के लिए देना पड़ता है, इसलिए देना है।"

जमनालालजी ने अपने परिवार की शिक्षा, दीक्षा और जीवन-सुधार का बहुत कुछ भार विनोबा पर छोड़ रखा था। नीचे जमनालालजी के कमलनयन, जानकी मैयाजी, मदालसा आदि के नाम लिखे कुछ पत्रों के अवतरण दिये जाते हैं, जिनमें विनोबा के प्रति उनकी भक्ति और समर्पण टपका पड़ता है—

कमलनयन के नाम—"मेरा तो प्रश्न अभी रहने दो। यदि पूज्य बापू एवं विनोबा को तुम संतोषित कर सकोगे तो मेरा अधिक कुछ कहना नहीं रहेगा।"

"मुझे आशा है, तुम अपने नियमित पठन, उत्साह व सेवाभाव से पूज्य विनोबा तथा अन्य गुरुजनों का प्रेम सम्पादन करने में सफलता प्राप्त करोगे। अगर तुम चाहोगे तो यह बात तुम्हारे हाथ में है। तुम कर सकते हो। विश्वास और श्रद्धा रखनी चाहिए।" (१२-१-२१)

"डंबेल्स की जरूरत नहीं मालूम होती, अगर मंगाना हो तो पूज्य विनोबा की परवानगी लेकर श्री धोत्रे के मार्फत मंगवा लेना। इस प्रकार परभारे नहीं लिखना चाहिए। तुम्हें पूज्य विनोबा का व अन्य अध्यापक वर्ग का पूर्ण प्रेम सम्पादन करना चाहिए। वह तभी हो सकेगा जब तुम खूब मन लगा कर उत्साह से पढ़ोगे व सब काम करोगे।" (७-८-२७)

"यहाँ से बना तो ता० २८ को आश्रम जाने का विचार है। तुम चिन्ता नही करना। पूज्य विनोबा का पूरा विश्वास प्राप्त करने में ही तुम्हारी बहादुरी और कल्याण है।" (१९२८)

"मेरा मन, स्वास्थ्य उत्तम है। यहाँ पूज्य विनोबा के साथ दोनों समय प्रार्थना आदि मे संतोष से समय बीतता है। तुम अपना जीवन पवित्रता व नीति के साथ बिताने का ख्याल रखना। जेल में जहाँ तक हो सके भूख हड़ताल (हंगर स्ट्राइक) नहीं करना चाहिए, इसका खयाल रखना। अपना स्वाभिमान तो रखना ही चाहिए। आशा है, हम लोग साथ ही बाहर आ जावेंगे।" (१८-४-३२)

"तुम जो निश्चय करो मुझे लिखते रहना। पूज्य बापू, विनोबा का आशीर्वाद जरूर प्राप्त कर लेना।" (२४-१२-३३)

"मेरा जब छुटकारा होगा तब कुछ समय तो इधर ही रहना पड़ेगा। बाद में पौनार विनोबा के पास रहने की इच्छा है। उसके बिना मुझे पूरी शान्ति व समाधान नही मिलेगा। मेरे विचार तुम्हारे खयाल में रहने को लिख दिया है। मेरी इच्छा अब व्यापार का काम देखने या बम्बई आने-जाने की नहीं हो रही है। उसी तरह सार्वजनिक सेवा भी, नेतागिरी

की जवाबदारी से बच कर, आत्मसाधना के साथ जिसमें ज्यादा भाग-दौड़ न करना पड़े व मानसिक सुख व शान्ति मिले उसी प्रकार का सादा जीवन बहुत ही कम खर्च (अपने ऊपर) करते हुए करने का है। आज नया वर्ष का दिन है।.....मुझे आशा है तुम मेरे लिए, जैसी मेरी इच्छा है, वातावरण तैयार कर रखोगे। पचास वर्ष पूरे होते आए हैं। अब दूसरे प्रकार के जीवन का अनुभव लेने की इच्छा बढ़ रही है। वर्तमान स्थिति में या तो मुझे विनोबा के पास समाधान व शान्ति मिल सकती है या मि० पाठक के जो लंदन में हैं। परन्तु, वह तो संभव नहीं है।

आजकल स्वाध्याय (पढ़ने, कातने), विचार करने और एकान्त का तो खूब ही लाभ मिल रहा है। परन्तु, हास्य-विनोद का पूरा अभाव रह जाता है।" (२२-३-३९)

जानकी मैयाजी के नाम—

"आशा है, तुम बापूजी के उपदेश से तथा सत्संगत से अधिक उदार हो कर तथा सिद्धान्त से अपना जीवन बिताने का निश्चय कर यहाँ आवोगी। अब तो सच बात यह है कि तुमसे मुझे मेरे और अपने घर के सुधार, परिवर्तन में पूरी सहायता मिलनी चाहिए। अब थोड़े वर्ष मानसिक सुधारों की बागडोर तुम अपने हाथ में ले सको तो आज मुझे कितना सुख और संतोष मिले, इसका तुम ही विचार कर सकती हो। तुम चाहो तो पूज्य बापूजी, विनोबा की सहायता से अपने जीवन को, घर को, ठीक कर सकती हो। मेरी कमजोरियाँ दूर कर सकती हो। पर यह बात तब हो सकती है जब तुम्हें आत्मविश्वास पैदा हो। तुम्हें आदर्श स्थान का भार अपने ऊपर लेना चाहिए। (वर्धा—का शु० १।८३)

"मेरा मन स्वास्थ्य ठीक है। विनोबा की संगत व प्रवचन से तो खूब ही लाभ, सुख व शान्ति मिल रही है जो जन्म भर काम आवेगी। आशा

है तुम भी सब प्रकार से मजबूत होकर बाहर आओगी।"

(धूलिया जेल, ता० १-६-३२)

"तुम्हें इस तारीख १६ याने माघ वद्य पंचमी सोमवार को बराबर ४० वर्ष पूरे होकर एकतालीसवाँ वर्ष चालू होता है। उस रोज मैं भी परमात्मा से प्रार्थना करूँगा कि तुम्हें सद्‌बुद्धि प्रदान करें। वह तुम्हारा स्वास्थ्य उत्तम रखते हुए तुम्हारे शरीर व मन से सेवा-कार्य, खास कर बापूजी ने तुम्हें पहले लिखे मुताबिक हरिजन का कार्य करने की सब प्रकार से योग्यता प्रदान करें। तुम्हारे जन्मदिन निमित्त मेरा प्रेम-सहित आशीर्वाद स्वीकार करना। तुम भी परमात्मा से सद्‌बुद्धि प्रदान करने की खूब प्रार्थना करना। उस रोज पूज्य विनोबाजी के साथ में नालवाड़ी भी कुछ समय बिताना। विनोबा की राय से भविष्य जीवन का तुम्हारा कार्यक्रम निश्चित करने का प्रयत्न करना।" (१२-१-२३—यरवदा मंदिर)

मदालसा के नाम—

"हिन्दी अभ्यास थोड़ा चलता रहे यह तो जरूरी मालूम होता है तथापि तुम्हें व पूज्य विनोबा को जिस प्रकार सन्तोष हो वैसी व्यवस्था कर लेना। तुम तुम्हारी माँ को समझा सको तो जरूर पूज्य विनोबा की मदद ले कर समझाना, जिससे मेरी हमेशा की चिन्ता कम हो जावे। चि० कमलनयन आने पर विनोबा के पास व साथ रह सकेगा तो मुझे बहुत सुख व सन्तोष मिलेगा। विनोबा ने उसे बहुत जल्दी अंग्रेजी भी उत्तम तौर से पढ़ा देना स्वीकार किया है। उसके बारे में विनोबा से ठीक तौर से बात हो गई है। पूज्य विनोबा की संगत से बहुत सुख व लाभ मिला है, परमात्मा की बड़ी दया हुई।"

जमनालालजी की दृष्टि में विनोबा का दर्जा कितना बड़ा था यह पूर्वोक्त प्रसंगों से स्पष्ट है। जमनालालजी के निधन पर अपनी जलांजली

अर्पित करते हुए स्वयं विनोबा ने जो कुछ कहा उससे जमनालालजी की साधना पर पूरा प्रकाश पड़ता है। शिष्य के सम्बन्ध में गुरु के उद्‌गार बड़े महत्त्व के होते हैं। स्वयं गुरु के ही शब्दों में—

"पिछले बीस वर्षों से उनमें सूक्ष्म आत्म-निरीक्षण की आदत थी। परन्तु मन की जो उन्नत अवस्था वे अबतक न प्राप्त कर सके थे वह इन तीन मास में उन्होंने बड़ी रफ्तार से हासिल कर ली थी। अब की बार ही में देख सका कि जमनालालजी के दिल में देह-भावना का अवशेष भी न रहा, केवल सेवा ही सेवा रही। इससे अच्छी मृत्यु और क्या हो सकती है? अन्तिम समय पर सेवा करते रहने पर मृत्यु का प्राप्त होना कितने भाग्य की बात है।

"चित्त का शोधन करते करते उच्च अवस्था प्राप्त करनी चाहिए और उसी हालत में देह छोड़नी चाहिए। मेरा विश्वास है, जमनालालजी को भी ऐसी ही मृत्यु प्राप्त हुई है। इसलिए यह दुःख की नहीं-ईर्ष्या की बात है।

"उनका विश्वास था कि जिस सेवा का परिणाम चित्त-शुद्धि के रूप में होता है, वही सेवा सच्ची है, जितनी मात्रा में यह परिणाम होता न दिखाई देगा उतनी ही वह सेवा अधूरी और जिस सेवा से चित्त-शुद्धि बिल्कुल ही नहीं होती वह सेवा झूठी। वे चित्त-शुद्धि की कसौटी को ही सेवा की कसौटी मानते थे। मन की ऐसी पवित्र अवस्था में जो शरीर छोड़ कर चला जाता है वह जाता ही नहीं, बल्कि छोटा-सा शरीर त्याग कर समाज रूपी व्यापक देह में प्रवेश करता है। शरीर आत्मा के विकास के लिए है। परन्तु, जिनकी आत्मा महान् है उनके विकास के लिए मानव-देह छोटा-सा पड़ता है। ऐसे समय वे महान् आत्माएँ कभी कभी अपने दुर्बल शरीर को छोड़ जाती हैं व देह-रहित अवस्था में अधिक सेवा करती हैं। जमनालालजी की यही हालत है.........एक छोटी सी

मिसाल में उनकी पत्नी की दूं। वह एक सीधी साध्वी देवी है। विशेष पढ़ी-लिखी भी तो नहीं हैं, परन्तु जमनालालजी की मृत्यु ने उन्हें अपना जीवन सेवाकार्य में समर्पण करने की प्रेरणा दी। अपनी सारी निजी संपत्ति भी देश-कार्य के लिए समर्पण करने का संकल्प उन्होंने किया। जमनालालजी की मृत्यु का यह परिणाम हुआ। सदेह आत्मा जितना असर नहीं कर पाती उतना या उससे कितना ही अधिक विदेह आत्मा कर जाती है। यह एक ऐसी ही मिसाल है। भविष्य में ऐसे और भी उदाहरण हो सकते हैं। क्योंकि महान् विभूतियाँ देह छोड़ने पर ही अधिक बलवान बनती है। संतों के उदाहरण हमारे सम्मुख हैं ही। उनके जीवन-काल में समाज ने उनका आदर करने के बजाय छल ही किया। देह जाने के बाद देह बिना रह कर ही समाज के चित्त पर वह अधिक प्रभावकारी परिणाम कर सके। ऐसे संतों में छोटा-सा ही क्यों न हो, जमनालालजी का महत्वपूर्ण स्थान है।"

: १२ :

सपरिवार यज्ञ में

"खादी को मैं भारत का युग-धर्म मान रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि इस समय यदि ब्राह्मण स्नान-संध्या किसी दिन न कर पावें तो शायद ईश्वर उसे क्षमा कर देंगे। पर यदि वह चर्खा न कातता हो या खादी न पहनता हो तो उसे ईश्वर के यहाँ शायद ही क्षमा मिले। इस प्रकार यदि एक वैश्य किसी दिन मंदिर में जाकर ठाकुरजी का दर्शन न करे तो शायद परमात्मा के दरबार में अपराधी बन कर न खड़ा रहना पड़ेगा। पर यदि वह चर्खा या खादी से मुंह मोड़ता है तो शायद ही उसके कोप से बच सके। मैंने खादी के कपड़े को पहनना पुण्य और विदेशी तथा मिल के कपड़ों को पहना पाप उस दिन से समझ लिया जिस दिन मैंने समझ लिया कि मिल का कपड़ा गरीबों की रोटी और रोजगार को छीनता है और खादी उसे सजीवन करती है।"

—जमनालालजी

नागपुर-कांग्रेस से ही जमनालालजी ने मानों अपनेको सोलहों आना राजनैतिक क्षेत्र में—असहयोग-आन्दोलन में झोंक दिया। अब वे सपरिवार उसकी सफलता में जुट पड़े। एक ओर विदेशी कपड़ों की होली का व दूसरी ओर खादी का, प्रचार-कार्य जोर-शोर से चलने लगा जिसमें जानकी देवी ने भी बड़े उत्साह से भाग लिया और घर-घर प्रचार किया। जमनालालजी ने अपने घर के तमाम विदेशी कपड़े जला दिये, उनकी सेठानी श्रीमती जानकी देवी के सब विलायती कपड़े होली में डाल दिये। १९२३ में एक बार श्रीमती जानकी

देवी ने मुझसे कलकत्ता से पुरी की यात्रा में, शायद साखी-गोपाल में, जिक्र किया—"हरिभाऊजी, हमारे घर के सब विदेशी कपड़े होली में जला दिये गए। मेरे जेवर की पेटी में सिर्फ मखमल बाकी रह गया है, इसे भी क्यों न जला डालूं?" उन्हें इतना भी विदेशी कपड़ा सहन न हुआ। पर जेवर की पेटी जमीन में गाड़ी हुई होने की वजह से रह गई। शादी के कपड़े भी जला दिये गए थे। परन्तु एक छत्र ऐसा था जिसको जलाने में अशकुन होने के भय से मगनवाड़ी के कुए में डाल दिया था। जमनालालजी जब एक बार किसी बात का निश्चय कर लेते थे तो फिर उसे सोलहों आना पूरा किए बिना उनके जी को चैन नहीं पड़ती थी। इस अवसर पर जो कपड़ा जलाया गया था उसका मूल्य उस वक्त के भाव से बीस हजार रुपये से कम न था। होली बालक कमलनयन के हाथ से जलाई गई थी।

१९२० के अन्ततक काँग्रेस गर्म-दल वालों के हाथ में आ गई। नरम दल वालों ने सदा के लिए काँग्रेस से अपना संबंध तोड़ लिया और लिबरल-फेडरेशन नामक संस्था उन्होंने अलग से कायम कर ली। सरकार की ओर से भारतवासियों के मनोभावों को शान्त करने और भारत में नया युग जारी करने के प्रयत्न चलने लगे। सम्राट् पंचम जार्ज के चचा ड्यूक आफ कनाट हिन्दुस्तान आए और उन्होंने एक बढ़िया वक्तृता दी—"मैं अपने जीवन के उस काल में पहुँच गया हूँ जब कि मेरी इच्छा हो सकती है कि पुराने जख्मों को भरूँ और जो अलग हो गए हैं उन्हें फिर से मिलाऊँ। मैं भारत का एक पुराना मित्र हूँ और उसी नाते आपसे अपील करता हूँ कि मृत भूतकाल के साथ पिछली गल्तियों को भी कब्र में गाड़ दीजिए। जहाँ माफ ही करना है, माफ कर दीजिए, और कन्धे से कन्धा मिला कर एक साथ काम कीजिए जिससे उन सब आशाओं की पूर्ति हो जो आज के दिन पैदा हो रही हैं।"

परंतु, न शाही-घोषणा-पत्रों से, और न दमनकारी कानूनों को रद्द

करने के आश्वासनों से, न होम-मेम्बर के द्वारा शासकों की तरफ से खेद-प्रकाशन से, भारतवासियों को कोई तसल्ली हुई। बल्कि, नागपुर-कांग्रेस ने उनमें भविष्य के लिए एक आशा का संचार किया और देश उसके आदेश की पूर्ति में जुट पड़ा। उस समय जमनालालजी महात्माजी के लिए एक भारी शक्ति-स्तम्भ साबित हुए। तिलक-स्वराज्य का एक करोड़ रुपया जमा कराने में उन्होंने खूब परिश्रम किया। चर्खा और खादी-प्रचार के लिए खादी बोर्ड कायम हुआ, जिसके अध्यक्ष जमनालालजी बनाए गए। २६ जनवरी १९२२ को देहली में कांग्रेस कार्य-समिति में इस बात का प्रश्न रखा गया कि विदेश में प्रचार पर जोर दिया जाय तो महात्माजी ने उसका विरोध किया। उन्होंने कहा कि जबतक देश में आंतरिक बल नहीं बढ़ा है, तबतक उनकी आवाज कोई बाहर नहीं सुनेगा। लोगों ने सुझाया कि खुद महात्माजी ही इसकी जिम्मेदारी लें। उसी मौके पर जमनालालजी ने सुझाया कि कांग्रेस में अलग अलग महकमे बनाये जायं, और उसका जिम्मा अलग अलग मेम्बरों को दिया जाय। खादी-कार्यक्रम की पूर्ति के लिए जमनालालजी ने भारत के प्रायः बहुत से प्रान्तों में दौरा किया। उसमें श्रीमती जानकी देवी ने भी उनका बहुत हाथ बटाया। वे खुद घूम-घूम कर स्त्रियों से विदेशी कपड़ा छुड़वाने, पर्दा तुड़वाने और खादी-प्रचार करने के काम में जुट पड़ीं। इधर युवराज के स्वागत का बहिष्कार करने की जोरदार आवाज कांग्रेस की तरफ से उठी, जिसक सिलसिले में "क्रिमिनल ला एमेंडमेंट एक्ट" के भंग के रूप में सारे देश में सत्याग्रह चल पड़ा। इस बहिष्कार और विदेशी कपड़ों की होली ने १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के होते होते लालाजी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशबन्धुदास जेल में रख दिए गए थे। खिलाफत परिषद् (करांची) के सिलसिले में अली भाई आदि पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। इसी अवसर पर

कांग्रेस और सरकार में समझौते की चर्चा चल पड़ी थी। श्री जिन्ना और पं० मदनमोहन मालवीय इसमें मध्यस्थ का काम कर रहे थे। सम्राट् ने ड्यूक आफ कनाट के द्वारा मान्ट-फोर्ट सुधार जारी करने के अवसर पर सन्देश भेजा:—

"वर्षों से, शायद पीढ़ियों से, देश-भक्त और राज-भक्त भारतीय अपनी मातृ-भूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देखते आ रहे हैं। आज आपके लिए मेरे साम्राज्य के भीतर स्वराज्य का श्रीगणेश हुआ है, मेरे अन्य उपनिवेश जिस स्वतंत्रता का उपभोग कर रहे हैं, उसकी ओर बढ़ने का आपके लिए यह सब से अच्छा अवसर है।"

इस सनसनीदार वातावरण में अहमदाबाद कांग्रेस हुई। इसके पहले जमनालालजी सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती में रहने लग गए थे। महात्माजी के जीवन और कार्य की प्राय. हर महत्वपूर्ण बात में वे ध्यान देने लग गए थे।

इन्हीं दिनों अगस्त १९२१ में "हिन्दी-नवजीवन" का जन्म हुआ। मैंने इन्दौर से महात्माजी को एक खत लिख कर सुझाया कि खंडवा से एक ऐसा हिन्दी साप्ताहिक पत्र निकालना चाहता हूँ जिसमें "यंग इंडिया और नवजीवन" के लेखों और टिप्पणियों का अनुवाद रहा करे। हिन्दी मध्यप्रांत उन दिनों काफी पिछड़ा हुआ था, और मैं मध्यभारत की रियासतों में राजनैतिक जागृति करने की धुन में था। उधर महात्माजी के प्राणदायी विचार का प्रभाव भी मुझपर पड़ता जा रहा था। अत: मैंने चाहा कि उनके विचारों के प्रचार के साथ साथ इस सोये हुए प्रदेश को जगाया जाय। महात्माजी ने इस काम के लिए मुझे जमनालालजी के सुपुर्द कर दिया। २८, २९, ३० जुलाई सन् १९२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्वपूर्ण बैठक युवराज के स्वागत-बहिष्कार के संबंध में हुई जिसमें यह तय हुआ कि तमाम कांग्रेसी आगामी एक अगस्त से

विदेशी कपड़ों का उपयोग छोड़ दें। इसके कुछ ही दिन पहले मैं महात्माजी और जमनालालजी से मिलने बम्बई गया। वहीं जमनालालजी से मेरी पहली मुलाकात महात्माजी के कमरे में (मणिभवन, गामदेवी) हुई। इससे पहले, १९१८ में, इन्दौर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मैंने यह सुना था कि सेठ जमनालालजी बजाज को टिकट या पास मौजूद न, रहने के कारण पंडाल में जाने से स्वयंसेवकों ने रोक दिया था; परंतु इच्छा रहते हुए भी उस समय में उनके दर्शन न कर सका। मणिभवन में पूरे लम्बे चौड़े भव्य शरीर तथा तेजस्वी किन्तु प्रेमल नेत्रों को देख कर मैं प्रथम दृष्टि-पात में ही उनसे प्रभावित हुए बिना न रहा। शायद दूसरे या तीसरे दिन उनसे फिर उनकी कालबादेवी वाली दुकान के ऊपर के हाल में मुलाकात हुई। उसमें उन्होंने मुझसे मेरे संबंध में इतने तरह तरह के प्रश्न पूछ डाले कि मैं मन में झल्ला और खिजला उठा। मैं था भावुक और छुई-मुई तबियत का आदमी, वे थे ठोस और व्यावहारिक। एक बार तो मेरे मन में यह भी हो आया कि महात्माजी ने किस जल्लाद से मेरा पाला पटक दिया। अन्त में उन्होंने पूछा—आपका स्वास्थ्य ऐसा खराब रहता है। ८-१० प्राणियों के निर्वाह का बोझ आपपर है। इधर महात्माजी के कामों में पड़ने से तो कभी भी जेल में जाना पड़ सकता है, इसका भी कुछ सोच लिया है ?"

"महात्माजी को पत्र लिखने से पहले ही सोच लिया था। क्या इतनी मोटी बात भी न सोचता ?"

'तो क्या सोचा है ? जेल चले गये तो घर वालों की गुजर कैसे होगी ?'

'कैसे होगी—जैसे भगवान करावेगा वैसे होगी। जबतक मैं आजाद हूँ, जिन्दा हूँ और बीमारी से बिछौने पर पड़ नहीं गया हूँ तबतक मेरा धर्म है कि पहले घरवालों को खिलाऊँ, फिर मैं खाऊँ। जिस दिन मैं जेल चला गया, मर गया या बीमारी से बिछौने पर पड़ गया उस दिन उनका भगवान-

मालिक। मेरे मर जाने पर जो उनका होगा वही जेल जाने पर हो जायगा। कोई खैर-खबर लेने वाला न हुआ तो ५२ लाख भिखमंगों में ८-१० की संख्या और बढ़ जायगी। इससे अधिक क्या होगा? वह दिन मेरी सच्ची परीक्षा का होगा। जेल में यदि मैं सुनूंगा कि मेरे परिवार के लोग भीख मांग रहे हैं तो मैं इसे 'स्वराज्य' के लिए अपना संपूर्ण त्याग समझकर हर्ष से फूला न समाऊँगा। इससे अधिक तो मैंने और कुछ नहीं सोचा है।'

जमनालालजी शायद ऐसे उत्तर के लिए तैयार न थे। वे बहुत प्रभावित हुए। सहानुभूति के स्वर मे बोले—'नहीं, आखिर जो देश के लिए कष्ट सहते हैं, उनके परिवार वालों की चिंता करने वाले लोग भी होते हैं। आपको कोई चिता नही रखनी चाहिए। मैंने तो यह देखने के लिए यह प्रश्न किया था कि आपकी कितनी तैयारी है। आपके उत्तर से मुझे बहुत संतोष हुआ।'

आखिर तय हुआ कि अहमदाबाद से 'हिन्दी-नवजीवन'' निकाला जाय। उसकी सारी व्यावहारिक जिम्मेदारी गांधीजी के नजदीक जमनालालजी पर रही और संपादन की मुझ पर। आश्रम में मेरे रहने का सवाल उठा तो उन्होंने फौरन अपने लिए रहने का रिजर्व मकान मुझे दे दिया और मेरे वेतन का सवाल निकलने पर भी उसका कुछ भाग अपने पास से देने की इच्छा प्रदर्शित की। घाटे की जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली। हालांकि 'नवजीवन संस्था' के द्वारा ही उसके घाटे की पूर्ति होती रही।

अहमदाबाद कांग्रेस ने एक साल में स्वराज्य प्राप्त करने की उमंगें लोगों के दिल में भर दी थी। महात्माजी ने वायदा किया था कि मेरे कार्यक्रम को पूरा कर देंगे तो एक साल में स्वराज्य मिल जायगा। बारडोली से सत्याग्रह करने की आखिरी चेतावनी भी उन्होंने वाइसराय को भेज दी थी, परन्तु चौरी-चौरा के हिंसा-काण्ड ने इन सारी उम्मेदों पर पानी फेर

दिया और महात्मा जी को ६ साल के लिए जेल में जाकर बैठना पड़ा। १८ मार्च, १९२२ को महात्माजी को राजद्रोह के लेख लिखने के बहाने ६ साल की सजा दी गई। महात्माजी की गिरफ्तारी के बाद खद्दर-विभाग सेठ जमनालालजी के जिम्मे किया गया और इसके लिए पांच लाख रुपये उनके हवाले किये गए। इन्हीं दिनों जमनालालजी ने वकीलों के भरण-पोषण के लिए एक लाख रुपया और दान दिया। इसी अवसर पर महात्माजी ने साबरमती जेल से जमनालालजी को पत्र लिखा जिसके एक एक अक्षर से गांधीजी का जमनालालजी के प्रति वात्सल्य टपक पड़ता है:—

साबरमती जेल,
गुरुवार की रात
१७–३–२२

चिरंजीव जमनालाल,

जैसे जैसे में सत्य की शोध करता जाता हूँ, मुझे प्रतीत होता है कि उसमें सब कुछ आ जाता है। प्रायः यह प्रतीत होता रहता है कि अहिंसा मे वह नहीं है परन्तु उसमें अहिंसा है। निर्मल अंतःकरण को जिस समय जो प्रतीत होता है वह सत्य है। उसपर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है। इसमें मुझे कहीं धर्म-संकट भी मालूम नहीं होता। लेकिन अहिंसा का निर्णय करने में प्रायः कठिनाई का अनुभव होता है। जन्तु-नाशक पानी का उपयोग भी हिंसा है। हिंसामय जगत् में अहिंसामय बनकर रहने की बात है। सो तो सत्य पर दृढ़ रहने से ही हो सकता है। इसलिए मैं तो सत्य में ही अहिंसा को फलित कर सकता हूँ। सत्य से प्रेम की प्राप्ति होती है। सत्य से मृदुता मिलती है। सत्यवादी सत्याग्रही को नितान्त नम्र होना चाहिए। जितना उसका सत्य बढ़ेगा उतना ही वह नम्र बनता जायगा, मैं प्रतिक्षण इसका अनुभव कर रहा हूँ। इस समय सत्य का मुझे जितना ख्याल है उतना एक वर्ष पहले न था और इस समय

मैं अपनी अल्पता को जितना अनुभव कर रहा हूँ उतना एक साल पहले नहीं कर पाता था ।

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" मेरी दृष्टि में इस कथन का चमत्कार दिनों दिन बढ़ता जाता है । इसलिए हमें सदैव धैर्य रखना चाहिए । धैर्य पालन से हमारी कठोरता कट जायगी । कठोरता के न रहने पर हम में सहिष्णुता बढ़ेगी । अपने दोष हमें पहाड़ से प्रतीत होंगे, और संसार के राई से । शरीर की स्थिति अहंकार को लेकर है । जिसके अहंकार का सर्वथा लोप हुआ है वह मूर्तिमन्त सत्य बन जाता है । उसे ब्रह्म कहने में कोई बाधा नहीं हो सकती ।

इसलिए परमेश्वर का प्यारा नाम तो दासानुदास है । स्त्री, पुत्र, मित्र, परिग्रह सब कुछ सत्य के अधीन रहना चाहिए । जो सत्य की शोध में इन सब का त्याग करने को तत्पर रहता है वही सत्याग्रही बन सकता है । इस धर्म के पालन को अपेक्षाकृत सहज बनाने के हेतु से मैं इस प्रवृत्ति में पड़ा हूँ । और तुम्हारे समान लोगों को होमने में भी नहीं झिझकता । इसका बाह्य स्वरूप भारतीय स्वराज्य है । अभी एक भी ऐसा शुद्ध सत्याग्रही उत्पन्न नहीं हुआ है । इसी कारण यह देर हो रही है । किन्तु, इसमें घबराने की तो कोई बात ही नहीं । इससे तो यही सिद्ध होता है कि हमें और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिए ।

तुम पांचवें पुत्र तो बने ही हो, किन्तु मैं तुम्हारे योग्य बनने का प्रयत्न कर रहा हूँ । दत्तक लेने वाले का दायित्व कोई साधारण दायित्व नहीं है । ईश्वर मेरी सहायता करे और मैं इसी जन्म में उसके योग्य बनूं ।

शुभेच्छुक बापू के आशीर्वाद"

इस पत्र के द्वारा बापूजी ने 'पांचवें पुत्र' के परवाने पर अपनी मोहर लगा दी । इसको समझकर उनकी गैर-हाजिरी में जमनालालजी ने अपने पुत्रधर्म को बड़े उत्साह और दक्षता के साथ निबाहा । नहीं, अन्ततक

वे अपने 'पांचवें पुत्र' होने के गौरव और कर्तव्य को एकाग्रता और लगन के साथ निभाते रहे।

महात्माजी के जेल जाने के बाद कांग्रेस की छावनी में दो दल हो गये। एक जो सत्याग्रह और धारा-सभा के बहिष्कार में विश्वास रखता था और महात्माजी के कार्यक्रम पर ही डटा रहना चाहता था वह अ-परिवर्तन-वादी कहलाया और जो धारा-सभा का बहिष्कार उठा,देना चाहता था वह परिवर्तनवादी कहलाया। पहिले दल के नेता चक्रवर्ती राजाजी, वल्लभ भाई पटेल, राजेन्द्र बाबू, जमनालालजी और गंगाधरराव देश-पांडे थे और दूसरे दल के थे देशबन्धु दास और पं० मोतीलाल नेहरू। उस समय पहिला पक्ष सामूहिक सत्याग्रह की तैयारी करना चाहता था जब कि दूसरा पक्ष कहता था कि उसके लिए देश तैयार नहीं है।

अन्त को एक जांच कमेटी पं० मोतीलालजी, डा० अंसारी, श्री विट्ठल भाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजाजी, और सेठ छोटानी को मिलाकर बनाई गई। हकीम अजमल खां उसके अध्यक्ष थे। उसके जिम्मे यह काम हुआ कि वह भिन्न भिन्न प्रांतों में घूम कर यह रिपोर्ट दे कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार है या नहीं। जमनालाल जी ने इस कमेटी की नियुक्ति को मंजूर किया, क्योंकि उनका विश्वास था कि कुछ नेताओं और कार्यकर्ताओं के दिल भले ही मुर्झा गये, पर देश की जनता के हृदय में सत्याग्रह ने घर कर लिया है। आगे चलकर नागपुर के झंडा-सत्याग्रह ने उनके इस विश्वास को सच्चा साबित कर दिया।

जमनालालजी बड़े वास्तववादी (रियलिस्ट) और दूरदर्शी पुरुष थे। अभी महात्माजी जेल ही में थे कि उनके मन में यह विचार आने लगा कि ऐसा कौन-सा काम शुरू किया जाय जो आगे चलकर महात्माजी के स्मारक के तौर पर देश के सामने रखा जा सके। किसी भौतिक स्मारक की अपेक्षा उनकी तीव्र बुद्धि ने एक आध्यात्मिक स्मारक को खोज लिया।

महात्माजी के सिद्धांतों और उनके बताये कार्य-क्रम पर श्रद्धा रखने वालों व उनके द्वारा देश की सेवा करने वाले त्यागी सेवकों का एक संघ क्यों न बनाया जाय ? और महात्माजी के अनुपस्थिति में ही एक ऐसा संघ— गांधी सेवा-संघ—उन्होंने स्थापित कर दिया। क्योंकि वे जानते थे कि गांधीजी के जेल से छूटने के बाद अपने नाम पर किसी संघ या संस्था को स्थापित होन देना वे पसंद न करेंगे। उस समय जमनालालजी को क्या पता था कि खुद उन्हींके स्मारक का प्रश्न उनके बापू के सामने आ खड़ा होगा और उनके करुण कठोर पिता को उसे हल करना पड़ेगा।

: १३ :

झंडे के लिए

"इस प्रांत की शासन-संस्था ने ता० १३ अप्रैल के दिन जालियांवाले बाग की स्मृति में निकाले हुए राष्ट्रीय झंडे के जुलूस में रुकावट डाल कर हमारे राष्ट्रीय झंडे के स्वाभिमान को चुनौती दी है। इसलिए में अपने प्रदेश की ओर से यह घोषित करता हूँ कि सरकार की इस चुनौती को हम स्वीकार करते हैं और अहिंसात्मक युद्ध को लड़ने के लिए इस प्रान्त का संगठन करने में हम अपनी समस्त ताकत लगा देंगे।"

जमनालालजी की घोषणा

"धर्म समझकर में इस आन्दोलन में शामिल हुआ हूँ। धर्म के मार्ग में आनेवाले कष्टों को पूर्ण शान्ति और आनन्द के साथ स्वीकार करूँ यही मेरा कर्तव्य है। परमात्मा मुझे उन कष्टों को सहन करने का बल दे, इसके सिवा मुझे कुछ नहीं कहना है।"

अदालत में जमनालालजी का बयान

"किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय झंडे की जरूरत हुआ करती है। इस झंडे के लिए लाखों आदमी अपना सिर दे चुके हैं। यह एक प्रकार की मूर्तिपूजा है जिसे नष्ट करना महान पाप है। झण्डा एक आदर्श प्रतिमा है। 'यूनियन जैक' को देखकर अंग्रेजों के हृदय में जो गंभीर भाव उत्पन्न होते हैं, उन्हें कोई समझ नहीं सकता। भारत में भी हिन्दू, मुसलमानों, इसाइयों, यहूदियों और पारसियों के लिए एक झण्डा होना चाहिए।

राष्ट्रीय झण्डे पर चर्खे का चिह्न होना चाहिए। समस्त भारत को चर्खे के लिए निछावर हो जाना चाहिए। प्रत्येक स्त्री यह बात कह सकती है कि चरखे का लोप हो जाने से भारत की समृद्धि नष्ट हो गई है।"
—महात्मा गांधी

गया कांग्रेस में अपरिवर्तनवादियों की विजय हुई जिसके फलस्वरूप एक ओर सत्याग्रह की तैयारी, दूसरी ओर रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर दिया गया। महात्माजी के जेल जाने के बाद धारा-सभा वादियों ने धारासभा-प्रवेश की जो हल-चल शुरू की उससे देश में सीधे हमले अर्थात् सत्याग्रह का वातावरण शिथिल होने लगा। अतः गांधीवादियों ने सत्याग्रह की भावना को अमली जामा पहिनाने के लिए सत्याग्रह-समिति की १ जनवरी, १९२३ वाली मीटिंग में यह तय करवाया कि ३० अप्रैल, १९२३ तक २५,००,००० रुपया एकत्र किया जाय और २५,००० स्वयंसेवक तैयार किये जायें। इतनी तैयारी के बाद आवश्यकता हो तो इन शर्तों को कुछ ढीला करके भी जहाँ सुविधा हो सत्याग्रह करने की छूट दे दी गई थी, परन्तु सत्याग्रह की बुनियाद पक्की होती है रचनात्मक कार्यक्रम से। अतः इस काम के लिए एक शिष्ट-मंडल नियुक्त किया गया जिसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजाजी, जमनालालजी बजाज और देवदास गांधी थे। इधर १ मई १९२३ में नागपुर पुलिस ने राष्ट्रीय झण्डे के जुलूस के प्रश्न को लेकर सत्याग्रह करने का मौका देश को दे ही दिया, जिसके कि नेता जमनालालजी बने। उन दिनों राष्ट्रीय झण्डा फहराने का आन्दोलन जबलपुर में चल रहा था। १३ अप्रेल, १९२३ को नागपुर में स्वयंसेवकों ने जलियांवाला बाग की स्मृति में राष्ट्रीय झंडे का जुलूस निकाला। पुलिस सुपरिन्टेण्डेट ने जुलूस को रोक दिया। किन्तु राष्ट्रीय स्वयंसेवक पुलिस को देखकर जरा भी विचलित नहीं हुए। पुलिस ने जुलूस पर आक्रमण कर दिया और उसे

आगे बढ़ने से रोक दिया। झंडे के साथ वाले बहुत-से स्वयंसेवक गिरफ्तार कर लिये गए और उनको सजाएं दी गईं।

राष्ट्रीय आन्दोलन में खासकर असहयोग-आन्दोलन के इतिहास में झण्डा-सत्याग्रह का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह पहिला सत्याग्रह था जो राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर शुरू किया गया था और जिसमें भाग लेने के लिए देश के कोने कोने से स्वयंसेवक लड़ाई के मैदान में पहुंचते थे। इस सत्याग्रह के श्री-गणेश करने का श्रेय जमनालालजी को ही है। उन्हीं के नेतृत्व में यह चला। १३ अप्रैल के दिन नागपुर में राष्ट्रीय झण्डे का अपमान देखकर नागपुर के युवकों लिए उसे सहन करना कठिन हो गया। इन्ही दिनों जमनालालजी कलकत्ता से वर्धा आ रहे थे। ये युवक जमनालालजी से नागपुर स्टेशन पर मिले। जमनालालजी ने सब बातें बड़े ध्यान से सुनीं और उनसे कहा कि जबतक मैं वर्धा से लौटकर आऊँ तबतक आप संयम से काम लीजिए। २२ अप्रैल के दिन वे वर्धा से लौटे। एक सार्वजनिक सभा हुई। इस सभा में भाषण देते हुए उन्होंने घोषणा कर दी कि झंडे का अपमान सहन नहीं किया जा सकता। उसके विरोध में एक मई से सत्याग्रह शुरू कर दिया जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि—"मैं अपने उत्तरदायित्व और अपने प्रान्त की तैयारी देखकर और सोच समझकर ही सत्याग्रह प्रारंभ करने की बात कह रहा हूँ। राष्ट्रीय झण्डे का अपमान सारे राष्ट्र का अपमान है। जो लोग इस अपमान को अनुभव करते हैं वे अंतिम सीमा तक कष्ट सहने की तैयारी कर लें। सत्याग्रह का मुख्य तत्व यही है कि दूसरे के प्रति प्रेम और सद्‌भावना रखते हुए स्वयं कष्ट सहन किया जाय और बड़े से बड़े स्वार्थ त्याग के लिए सदा तैयार रहा जाय।" आपकी यह घोषणा सारे प्रांत में संदेश के रूप में फैल गई। प्रांत में चारों ओर सत्याग्रह की तैयारियां होने लगीं। जमनालालजी अगले दिन ही नागपुर आ गये और वहीं रहकर सत्याग्रह की तैयारी में जुट गए।

पहिली मई के दिन असहयोगाश्रम से १० युवक राष्ट्रीय झण्डा फहराते हुए और 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' गाते हुए लड़ाई के मैदान (झण्डा चौक) की ओर चले। यह स्थान आश्रम से तीन मील की दूरी पर था। मार्ग में स्थान स्थान पर उन वीरों की पूजा हुई और उनका पुष्पहारों से अभिनन्दन किया गया। झण्डा चौक का दृश्य तो देखने योग्य था। वे सत्याग्रही वहाँ जाकर पुलिस की छाती से छाती अड़ाये खड़े हो गये। उनके दो फर्लांग पीछे १० वीरों का दूसरा जत्था खड़ा था। इन दोनों के बीच में थे जमनालालजी। लगभग तीन फर्लांग की दूरी पर दर्शकों का एक बहुत बड़ा समुदाय था। पुलिस भी सदल-बल वहाँ तैयार खड़ी थी। जिला मजिस्ट्रेट ने जमनालालजी से कहा कि दफा १४४ लगा दी गई है और आगामी २ मास में कोई भी जुलूस सिविल लाइन्स में नहीं निकाल सकेगा और न २५ व्यक्तियों से ज्यादा की सभा ही हो सकेगी। जुलूस अपने निर्दिष्ट स्थान से निकल गया और उस दिन और कोई घटना नहीं हुई।

असली लड़ाई २ मई से शुरू हुई। अब तो प्रति दिन दस दस युवकों के जत्थे जाने और गिरफ्तार होने लगे। उन निहत्थे युवकों के जत्थे को गिरफ्तार करने के लिए पुलिस की बड़ी जबर्दस्त तैयारी रहती थी। घुड़सवार, पैदल, सैनिक, इन्स्पेक्टर, कप्तान, सिटी मजिस्ट्रेट आदि का एक बहुत बड़ा समूह रहता था। सत्याग्रही युवकों के जत्थे को बिदा करने के लिए प्रति दिन १०-१५ हजार व्यक्ति उपस्थित रहते थे। कभी कभी तो यह संख्या २०-२५ हजार तक पहुँच जाती थी। लगभग डेढ़ महीने तक सत्याग्रह चलता रहा। इस बीच में उसे अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने अपना लिया। अब तो भारत के कोने कोने से जत्थे जाने लगे। प्रान्त की नौकरशाही बौखला उठी। १८ जून को अन्य प्रान्तों के स्वयंसेवक बुलाये गये थे, अतः उसने १७ की शाम को ही जमनालालजी

का, संचालक उपसमिति के सदस्य महात्मा भगवानदीन और बाबा साहब देशमुख के साथ गिरफ्तार कर लिया। इस दिन दफा १४४ की अवधि और दो मास के लिए बढ़ा दी गई और निषिद्ध सीमा भी रेलवे लाइन तक कर दी गई। १८ तारीख से सत्याग्रह और जोर से शुरू हुआ। १७ तारीख की रात को ही जो २५० सत्याग्रही आश्रम में थे उनको सोते में ही घेर लिया और उन्हें आवारा कहकर १०९ धारा के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया। दूसरे प्रान्तों से आये हुए स्वयंसेवक तथा प्रकाशन और भोजन-विभाग में काम करने वाले सभी कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। इस दिन गिरफ्तार होने वालों में आचार्य विनोबा भावे भी थे। इन सब लोगों को १०९ दफा के अन्तर्गत एक एक वर्ष की कैद की सजा दी गई। अब तो स्टेशन पर ही सत्याग्रहियों को गिरफ्तार कर लिया जाने लगा। श्री जमनालालजी को डेढ़ वर्ष की कड़ी कैद की सजा दी गई। इसके अतिरिक्त उन पर ३ हजार रुपये का जुर्माना भी किया गया।

इस प्रसंग पर स्व० महादेव भाई लिखते हैं:—

"जब झण्डे का जुलूस निकल रहा था तो रास्ते में दूसरी ओर एक दूसरा शादी का जुलूस बड़े ठाठ-बाट से निकल रहा था। जमनालालजी ने कहा कि 'यह जुलूस मेरे ममेरे भाई की शादी का है।' मैंने कहा, 'तो फिर आप जुलूस में कैसे नहीं गए?' जमनालालजी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। जब कि जमनालालजी झण्डे के युद्ध के लिए जुलूस ले जाते हों तब उन्हें शादी के जुलूस में जाने की फुरसत कहाँ? उस जुलूस के मारवाड़ी सज्जन जमनालालजी को प्रणाम करते थे और जेल जाने के लिए तैयार त्यागवीरों को देख कर शर्मिन्दा होते थे।"

जमनालालजी के नेतृत्व के बारे में श्री देवदास गाँधी लिखते हैं—"जो श्रेय आज तक विलायती राजनीति में प्रवीण लोगों के हिस्से में आता था वह आज जमनालालजी की श्रेणी के लोगों को प्राप्त हो रहा है। वे इतनो

सावधानी और सफलता के साथ नागपुर-युद्ध का संचालन कर सकेंगे यह बात सिर्फ उनके निकट रहनेवाले लोग जानते थे। बाकी लोग आमतौर पर 'सेठ' नाम को देखकर अन्दाज लगाते थे।"

इस प्रकार जमनालालजी सत्याग्रह की लड़ाई में जुट पड़े। उनके प्रभाव से आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ लिया। अधिकारियों ने आन्दोलन को दबाने के लिए सभी संभव प्रयत्न किए, लेकिन जमनालालजी की दृढ़ता के सामने सब को परास्त होना पड़ा। उस समय के काँग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री जवाहरलालजी नेहरू उस दिन वहीं थे। उन्होंने नागपुर की एक सभा में कहा—"नागपुर आने पर मेरे दिमाग को कुछ शान्ति मिली। नागपुर ने बता दिया कि यहाँ पर कुछ काम हो रहा है। बड़ी बड़ी तकरीरें और बहसों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मुझे तो एक ही बात पसन्द आती है—काम करना। और एक ही बात में लुत्फ आता है वह है लड़ाई लड़ना। नागपुर ने आज जो कर के दिखाया है वह अन्य प्रान्तों के लिए भी अनुकरणीय है। मैं इस झंडे की लड़ाई को खास तौर पर पसन्द करता हूँ, क्योंकि यह स्वार्थों की नहीं, उसूलों की लड़ाई है।"

जेल में जमनालालजी के साथ विशेष व्यवहार की आज्ञा हुई; किन्तु जमनालालजी ने उसे स्वीकार नहीं किया। इस गिरफ्तारी और दण्ड के बारे में उन्होंने कहा—"मैं विश्वास करता हूँ कि परमात्मा की दया से तथा बापू और अन्य गुरुजनों के आशीर्वाद से मैं इस कारावास को हिम्मत और शान्त चित्त से सहन कर सकूंगा और उस समय को आध्यात्मिक चिन्तन में लगा सकूंगा।"

इसपर चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने लिखा है—"ऊपर लिखे सीधे साधे शब्दों में छिपी सच्ची हार्दिकता और भाव-गंभीरता को हम पहचान सकते हैं। जमनालालजी की उदारता, अपने ध्येय सिध्यर्थ हर प्रकार के असीम त्याग के लिए तैयार रहने की प्रवृत्ति को देश भली-भाँति जानता

है। संपत्ति , उच्चपद, प्रतिष्ठा, प्रभाव और महान् आत्माओं की दुर्लभ मित्रता और प्रीति यह सब गार्हस्थ्य जीवन के सुख-सौभाग्य सेठ जमनालालजी को प्राप्त होते हुए भी एक मिनिट में उन्होंने अपनी जीवन-सरिता का स्रोत बदल दिया और लड़ाई में कूद कर एक अत्यन्त नम्र कार्यकर्त्ता की तरह सेवा करने लगे। कौन कह सकता है कि इससे हमारे राष्ट्र का सिर ऊँचा नहीं हुआ?"

यह वह समय था जबकि देश में बहुत कम जागृति थी। चारों ओर निराशा का वातावरण था। श्री विट्ठल भाई पटेल ने उस समय लिखा था—"मारवाड़ी कौम का अजहद प्रेम मैंने जमनालालजी पर देखा। उन्होंने उस कौम की सेवा भी बजाई है। क्या जमनालालजी की उग्र तपस्या मारवाड़ियों के दिल को न पिघलावेगी? जब चारों ओर देश में अंधकार और निराशा फैली हुई थी ऐसे समय में अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी अकेले हाथों त्याग और बलिदान का प्रचंड वातावरण फैला कर जमनालालजी ने समूचे देश का ध्यान खींचा।"

सजा तो हो गई, अब पुलिस जुर्माना वसूल करने के लिए जमनालाल जी की कोठी पर पहुँची। वह एक मोटर, एक बग्घी और एक पेटी जिसमें ४००) रु० थे जब्त कर के ले गई। मोटर और बग्घी दोनों ही कई दिनों तक वर्धा में पड़े रहे। दो बार उनका नीलाम किया गया। लेकिन कोई बोली लगाने को ही तैयार नहीं हुआ। जनता तो दूर, सरकारी अफसरों ने भी उसे नहीं खरीदा। अन्त में मोटर राजकोट भेज दी गई। वहाँ किसी सरकारी अंग्रेज अफसर ने मामूली दामों में ली। इस घटना से प्रकट होता था कि जमनालालजी के प्रति लोगों में कितना जबर्दस्त प्रेम था। जब मोटर राजकोट भेजी गई तो गुजराती के "सौराष्ट्र" नामक पत्र ने लिखा—"वर्धा में तथा मध्यभारत में भी कोई देश-घातक नहीं मिला। अब ये गाड़ियाँ देश-घातक की तलाश में काठियावाड़ लाई गई हैं।"

इस अन्याय के बारे में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य कहते हैं—"जमनालालजी को दी हुई सजा से अंग्रेजी सरकार ने न्याय-देवता को अपनी दासी बना लिया है, इस बात पर सन्देह रखनेवालों का संदेह निकल जायगा।" सरकार को लगता था कि आन्दोलन ६ महीने तक चलेगा, इसलिए उन्होंने जमनालालजी को तीन दिन की हाजिरी से तीन बार जुर्म मान कर तिगुनी सजा दी; किन्तु जमनालालजी ने कहा कि मैं तो और भी मौकों पर हाजिर था।

इस मुकदमे की एक मनोरंजक घटना है—"जमनालालजी से अनेक सवाल पूछे जाते थे। उनका जवाब वे हिन्दी में देते थे। मि० स्लेनी के साथ एक मजिस्ट्रेट दुभाषिया के तौर पर बैठा हुआ था। जमनालालजी ने कहा—'मुझे जितनी कड़ी सजा दी जा सके उतनी दीजिए।' दुभाषिया मजिस्ट्रेट ने तर्जुमा किया—"दूसरे सब लोगों से मैंने ज्यादा अपराध किया है, इसलिए मुझे सब से अधिक सजा दीजिए।" सरकारी वकील चक्कर में पड़ा। उसने कहा—"जमनालालजी के कहने का आशय तो यह मालूम होता है कि कानून के अनुसार मुझे जितनी अधिक सजा दी जा सकती हो उतनी दीजिए।" इसपर चर्चा होने लगी। आखिर, इन्साफ करने का भार जमनालालजी पर पड़ा। उनसे पूछा गया—"आपका आशय क्या था?" जमनालालजी ने शान्त भाव से उत्तर दिया—"दोनों बातें कहने का भाव एक ही था।" मजिस्ट्रेट दंग रह गया।

झण्डा-सत्याग्रह एक अखिल भारतीय आन्दोलन बन गया। अब सरदार वल्लभ भाई पटेल से अनुरोध किया गया कि वे सत्याग्रह की जिम्मेदारी लें। वल्लभ भाई के नेतृत्व में आन्दोलन चलता रहा। विट्ठल भाई पटेल ने भी आन्दोलन को बल दिया। कांग्रेस कार्य-समिति ने विट्ठल भाई को इसके लिए साधुवाद दिया। अब फिर जोरदार आंदोलन करने का निश्चय किया गया। वल्लभ भाई पाटेल ने १८ ता० को जुलूस

निकालने की घोषणा की। जुलूस का रास्ता निश्चित कर दिया गया। अभी १४४ दफा बदस्तूर लगी हुई थी, 'लेकिन पुलिस ने जुलूस को नहीं रोका। जुलूस शान्ति से निकल गया। सत्याग्रह सफल हुआ। सरकारी बयान के अनुसार इस सत्याग्रह में कुल डेढ़ हजार के करीब स्वयंसेवक गिरफ्तार हुए थे, और जमनालालजी के साथ ही सब छूटे थे। 'सरकार ने सारे प्रतिबन्ध उठा लिए। ३ सितम्बर को सारे सत्याग्रही छोड़ दिए। जमनालालजी के लिए मोटर गई थी लेकिन वे पैदल ही आये। जनता ने उनका बड़ा ही शानदार जुलूस निकाला। उनके पास बधाई के बहुत से पत्र और तार आए।

मौलाना मुहम्मद अली ने अपने तार में लिखा—"मेरे बहादुर बनिया, खूब किया। तुम्हारे पैर चूमने को तरस रहा हूँ।" दिल्ली कांग्रेस ने नागपुर के झंडा-सत्याग्रह के आयोजन को और स्वयंसेवकों को अपने वीरतापूर्ण बलिदान और कष्ट-सहिष्णुता द्वारा युद्ध को अन्त तक निबाहने और इस प्रकार अपने देश के गौरव की रक्षा करने के लिए हृदय से बधाई दी।

जमनालालजी सफल सत्याग्रह के नेता के रूप में चमक उठे।

: १४ :

रचनात्मक प्रवृत्तियाँ

"ऐसा कोई काम मैंने नहीं किया जिसमें उनका (जमनालालजी का) पूरा सहयोग तन मन धन से न रहा हो। जिसको राज-काज कहते हैं उसका न मुझे शौक था, न उनको। वे उसमें पड़े, क्योंकि मैं उसमें था। लेकिन मेरा सच्चा राज-काज तो था रचनात्मक कार्य और उनका भी राज-काज यही था।"

—गांधीजी

"उन्होंने मेरे सभी कामों को पूरी तरह अपना लिया था। यहाँतक कि मुझे कुछ करना ही नहीं पड़ता था। ज्योंही मैं किसी नये काम को शुरू करता वे उसका बोझ खुद उठा लेते थे, इस तरह मुझे निश्चित कर देना मानों उनका जीवन-कार्य ही बन गया था।"

—महात्मा गांधी

"रचनात्मक कार्यक्रम का कोई अंग ऐसा न था जिसमें उन्होंने रस न लिया हो, और पूरी तरह हाथ न बँटाया हो। यदि मनुष्य को सेवा से छलकता हुआ ऐसा जीवन मिले तो वह भगवान से और क्या चाहे? सेवा-रूपी यशोधन उन्हें मिल गया था।"

—महादेव देसाई

"गांधीजी के रचनात्मक कार्य के प्रत्येक अंग के चलाने में उनका बड़ा भारी हाथ था। वे नये भारत के निर्माण-स्तम्भ थे। उनके पवित्र हाथों और शुद्ध हृदय से चलाये हुए कार्यों से ही, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन और प्राणशक्ति से सींचा, भारत उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा था।"

—रामेश्वरी नेहरू

'मेरे बाद जो कुछ स्थावर जंगम जायदाद रहे, वह मेरे अधूरे रहे हुए काम में जो उचित समझें वह रकम या स्टेट लगावें। मुझे सब से प्रिय काम तो खादी-प्रचार का है, दूसरा अन्त्यज-उद्धार का है तथा हिन्दी-प्रचार है। परन्तु, हिन्दी-प्रचार में तो और भी सहायता मिलना संभव है। इसलिए खादी-प्रचार व अन्त्यज-उद्धार में ही जो कुछ लगाना हो, वह लगाया जावे।"

—जमनालालजी के मृत्यु-पत्र से, (कार्तिक शुक्ल, ११,१९८९वि०)

जमनालालजी महात्माजी के रचनात्मक कार्यों में सोलहों आना विश्वास रखते थे। वे महात्मा जी के अन्ध-भक्त नहीं थे, रचनात्मक कार्यों की महत्ता उनकी व्यवहार-बुद्धि को जंच गई थी। वे समझते थे कि जबतक हम अपनी भीतरी कमजोरियों को दूर नहीं कर लेंगे तबतक स्वराज्य का मिलना कठिन है। और किसी तरह धूम-धड़क्के से मिल भी गया तो फिर किसी बाहरी शक्ति से छीन लिया जायगा। अतः गांधीजी के जेल जाने के बाद सत्याग्रह की ज्योति को जगमगाते रहना अपना परम कर्तव्य समझे तथा रचनात्मक कामों के द्वारा देश की भीतरी कमियों को दूर करने एवं जनता को सत्याग्रह के लिए अधिकाधिक तैयार करने में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। पहिली बात का प्रमाण उनके नागपुर-झंडा-सत्याग्रह के सफलतापूर्वक संचालन से मिलता है और दूसरी का उनके खादी-प्रचार से तथा अस्पृश्यता-निवारण, राष्ट्रीय शिक्षा-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, राष्ट्रभाषा-प्रचार और अन्त में गो-सेवा कार्य में रत रहने-संबंधी उनके अविश्रांत परिश्रम से।

अभी नागपुर का झंडा-सत्याग्रह समाप्त हुआ ही था कि वे एक रोज किसी काम से नागपुर गये। रास्ते में सुना कि वहाँ हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हो रहा है। इस खबर से उनके हृदय को बड़ा आघात लगा। और वे उसी ओर चल पड़े जहाँ दंगा हो रहा था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि

दंगा हो रहा है और हिन्दू-मुसलमान मतवाले होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। जमनालालजी तांगे से नीचे उतर पड़े। उन्होंने घायलों को अपनी गाड़ी में बिठाकर भेजने का आयोजन किया और दूसरे घायलों के लिए भी इसी प्रकार का प्रबन्ध करने लगे। उपस्थित हिन्दुओं और मुसलमानों ने जमनालालजी से कहा कि वे वहाँ से चले जायँ, लेकिन जमनालालजी जाने के लिए तैयार नहीं हुए। वे घायलों को छोड़कर वहाँ से नहीं हटना चाहते थे। दंगा भयंकर रूप धारण कर रहा था और जान जाने का भी खतरा पैदा हो गया था, लेकिन जमनालालजी ने इसकी परवाह नहीं की। प्रत्येक दल दूसरे दल को खुली लड़ाई की चुनौती देने लगा। पत्थर लगने से आपके हाथ में गहरी चोट लगी। लेकिन फिर भी जमनालाल जी दृढ़ता से खड़े रहे और झगड़े को शान्त करने का प्रयत्न करते रहे। परिणाम यह हुआ कि झगड़ा बढ़ने नहीं पाया। उसी समय उन्हें अस्पताल ले जाया गया जहाँ पर कि हाथ की चोट को टांके लगे। बिना शीशी सुंघाये ही आपने टाँके लगवा लिये आपकी इस बात पर मुग्ध होकर काशी के बाबू भगवानदासजी ने उन्हें एक पत्र में लिखा:—

"मैं आपको हृदय से नमस्कार करता हूँ। आपने दो घायल मुसलमानों की रक्षा करते हुए नासमझों के हाथ से गहरी चोट खाई और जान की जोखिम उठाई। आपने अपनेको महात्माजी के सिद्धांतों का पक्का अनुयायी दिखाया जो हम लोगों से नहीं करते बना। आपने सब सच्चे हिन्दुओं और सच्चे कांग्रेसवादियों और देशवासियों का सिर ऊँचा किया है।" इसपर गाँधीजी ने उन्हें इस प्रकार शाबासी दी—

"तुमको चोट पहुँची, इससे मुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ। मैं तो मानता हूँ कि हम जैसे बहुतों को शायद बलिदान होना पड़े। जहर इतना ज्यादा फैल गया है और अप्रामाणिकता इतनी ज्यादा फैल गई है कि कुछ शुद्ध व्यक्तियों का बलिदान हुए बिना हमारा छुटकारा इस आपत्ति से

नहीं हो सकता। हो सके तो झगड़े की जड़ का पता लगाना। क्या कोई ऐसे समझदार हिन्दू या मुसलमान नहीं हैं जो इसको समझें और झगड़े के कारणों को दूर करें ?"

इस घटना के बाद तो वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के और भी पक्षपाती बन गये। एक बार तो वे जेल से ही यह निश्चय कर के आए थे कि एक मुस्लिम परिवार को अपना बनाएंगे और उन्होंने ऐसा किया भी। इसी प्रकार जब सीकर में १९२६ में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ तब भी वे झगड़े को शान्त करने के लिए अपनी सेवाएं देने को तैयार हो गये थे। लेकिन उसका अवसर ही नहीं आया।

सन् १९२३ में कोकोनाडा कांग्रेस के समय अखिल भारतीय खादी-मंडल की स्थापना की गई, जिसके सभापति जमनालालजी बनाये गये। इसको सफल बनाने के लिए उन्होंने देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक भ्रमण किया। राजस्थान में चर्खा और खादी प्राचीन समय से अबतक जीवित चले आ रहे हैं। अतः वहाँ खादी को पुनर्जीवित करने की बहुत आशाएँ थीं। सो १९२४ में उन्होंने राजपूताने में दौरा किया। अपने इस दौरे में उन्होंने जयपुर, जोधपुर, सीकर, उदयपुर, बीकानेर, जावरा, किशनगढ़, कोटा आदि राज्यों के राजाओं और दीवानों से भेंट कर खद्दर-प्रचार के कार्य में उनकी सहानुभूति और सहायता प्राप्त की। आपने अजमेर में ए० जी० जी० से भी मुलाकात की और खादी के संबंध में उनकी सहानुभूति प्राप्त की। इसी संबंध में आपने नसीराबाद, चूरू और रतनगढ़ की भी यात्रा की। बीकानेर रियासत के कस्बों में खादी-यात्रा के समय जमनालालजी पर रियासत ने प्रवेश-निषेध का हुक्म जारी किया, इस पर महामना मालवीयजी ने उस समय के बीकानेर-नरेश श्री गंगासिंह जी को एक पत्र लिखा था, जिससे जमनालालजी की खादी-भक्ति और सेवाभाव के लिए पूज्य मालवीयजी का आदर झलकता है—

काशी विश्वविद्यालय
५ अप्रेल, १९२५

माननीय श्री महाराजा साहब
बीकानेर

मान्यवर,

मैं सेठ श्री जमनालाल बजाज को, जो बंबई और वर्धा के एक सम्मानीय व्यक्ति हैं, व्यक्तिगत-रूप से बहुत वर्षों से जानता हूँ। वह एक सेवा-भावी व्यक्ति हैं। मुझे उनके चरित्र के संबंध में बहुत आदर है। उन्होंने अनेक शिक्षण-संस्थाओं को उदारता के साथ दान दिया है। आपको याद होगा कि सन १९२० में बंबई की एक सभा में, जिसमें आपने भाषण किया था, उन्होंने काशी विश्वविद्यालय को ५० हजार रुपये दिये थे। वे अखिल भारतवर्षीय खद्दर बोर्ड के अध्यक्ष थे। ....चूकि मैं उन्हें वर्षों से व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ, इसलिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वे स्टेट में ऐसा कुछ भी नहीं करेंगे जिससे किसी प्रकार की हलचल अथवा अशांति की संभावना हो। मुझे ऐसा बतलाया गया है कि सेठ जमनालाल बजाज को ४ वर्ष पूर्व एक आज्ञा निकाल कर बीकानेर स्टेट में प्रवेश करने से रोक दिया गया है। कदाचित् पहिली आज्ञा के कारण ही वर्तमान आज्ञा पास की गई है, पर जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूँ कि सेठ जमनालाल बजाज के जाने का कोई दुष्परिणाम न होगा, बल्कि उसका फल शुभ ही होगा। .... ।"

इसी वर्ष आपने बिहार का भी दौरा किया और पटना, भागलपुर, मलकाचक और मधुबनी आदि स्थानों पर गये। सर प्रफुल्लचन्द्र राय के साथ कुमिल्ला और चाँदपुर तक खादी-कार्य का निरीक्षण किया और इसके बाद भी अन्ततक खादी की उन्नति में अपनी शक्ति लगाते रहे।

महात्माजी की अनुपस्थिति में उनके हरएक काम को पूरे जोर से

जारी रखना जमनालालजी ने अपना पुत्रधर्म समझा। देश में जहाँ कहीं भी सत्याग्रह संगठन हुआ, उन्होंने उसको प्रोत्साहन और सहयोग दिया। झंडा-सत्याग्रह के पहिले बोरसद और गुरु का बाग सत्याग्रह हो चुके थे। उसके बाद प्रसिद्ध गुरुद्वारा आन्दोलन शुरू हुआ जिसमें सिक्खों ने महात्माजी का यह कथन चरितार्थ कर दिया कि लाठी सहने के बजाय गोली खाना आसान है। पर जो लाठी को सहते है वे आदर के पात्र हैं। सिक्खों के इस कष्ट-सहन को देखकर एण्ड्रूज साहब ने कहा था— "अबतक मैंने जितने हृदयविदारक और करुणोत्पादक दृश्य देखे हैं यह उनमें सबसे बढ़कर है। अहिंसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे हैं।" इन तमाम सत्याग्रहों में जमनालालजी का किसी-न-किसी रूप में बराबर सहयोग रहता ही था।

आखिर, ५ फरवरी १९२४, को महात्मा गांधी छूट गये, जिससे अपरिवर्तनवादियों को यह आशा हुई कि कांग्रेस का एंजिन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पड़ेगा। महात्माजी ने कांग्रेस के दोनों दलों को मिलाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु स्वराज्य-दल के नेताओं ने धारा-सभा के कार्यक्रम को नहीं छोड़ा। इधर देश में जगह जगह सांप्रदायिक दंगे शुरू हो गये। दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर इनके शिकार बने। सबसे भयंकर दंगा कोहाट में हुआ जिसने देश की कमर ही तोड़ दी। हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए गांधीजी ने २१ दिन का उपवास किया। इन दंगों ने सत्याग्रह के अनुकूल वातावरण बनाने की रही-सही आशा को भी मटियामेट कर दिया। इसी वातावरण में १९२४ में महात्माजी बेलगांव कांग्रेस के सभापति हुए— खासकर कांग्रेस के द्वारा रचनात्मक कामों को जोर देने के लिए। १९२८ तक महात्माजी ने अपना अधिकांश समय रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में लगाया और राजनैतिक काम प्रायः स्वराज्य दल के नेताओं के हाथ में

छोड़ दिया। इस नीति और कार्यक्रम में जमनालालजी महात्माजी के पूर्ण सहायक हुए थे।

महात्माजी के जेल में रहते ही जमनालालजी ने गांधी-सेवा-संघ स्थापित कर दिया था और उसके लिए अढ़ाई लाख रुपया सहायता दी थी। देश के सच्चे त्यागी, सेवा-भावी कार्यकर्ताओं को घर की चिंता से मुक्त करके गाँधी-मार्ग से देश-सेवा में लगाने का यह सुन्दर उपक्रम था। प्रत्येक प्रान्त के प्रायः चोटी के कार्यकर्ताओं का संग्रह इसमें वे कर सके थे। गाँधी प्रवृत्तियों के लिए यह रीढ़ की हड्डी की तरह था। देश की बहुत ही सुसंगठित, व्यवस्थित, अनुशासनबद्ध और क्रियाशील संस्थाओं में यह थी। खुद जमनालालजी बरसों तक इसके अध्यक्ष रहे। उनके हटने के बाद श्री किशोरलाल भाई मश्रुवाला रहे।

महात्माजी की तरह जमनालालजी में भी यह गुण था कि वे उसी बात का उच्चार करते थे जिसको आचार में लाते थे, या ला सकते थे। जमनालालजी साबरमती-आश्रम में रहने लग गये थे। वहां उन्होंने अपने लिए एक छोटा-सा अलग मकान भी बनवा लिया था। जबतक आश्रम में सब के साथ और सबके हाथ का बनवाया हुआ भोजन कर लेने की उनकी तैयारी नहीं थी तबतक इस घर में उनके तथा उनके परिवार के लिए अलग भोजन बनता था। वैसे जमनालालजी समाज-सुधारक भी उच्च कोटि के थे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का श्रीगणेश पहले उन्होंने अपने घर से ही किया था। आरंभ में जमनालालजी ने अपनी पत्नी का परदा छुड़वाया, गहनों का रिवाज कम करवाया, बाल-विवाह रुकवाया। इस बारे में अपने परिवार को आगे बढ़ाने और सारी बातों को अपना लेने की उनकी कितनी उत्कट इच्छा थी, यह बताने के लिए यहाँ हम उनका एक पत्र दे रहे हैं जिसे उन्होंने अपनी पत्नी जानकी देवी को लिखा था—

"परदा घूंघट तो अब तुम्हें कभी करना ही नहीं होगा। तुम अपने

मन की पूरी तैयारी कर लो फिर घरवालों की सहानुभूति मिलना कठिन नहीं। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' ऐसा अपनेको शोभा नहीं देता। अपने को तो तुकाराम महाराज के कहे मुताबिक "बोले तैसा चाले" बनना चाहिए। जितनी बातें हम दूसरों की भलाई की समझते हैं, हम उपदेश करते हैं फिर अपनेको मौका पड़े और न करें तो उसका महत्व ही नहीं रहता। मुझे पूर्ण आशा है, इस भ्रमण से तुम तीनों को खूब लाभ, अनुभव मिलेगा, जो भविष्य जीवन में खूब काम आवेगा। सभ्यता, नम्रता, सेवा-भाव का बराबर खयाल रखाना, संकोच की जरूरत नहीं। परन्तु जिसके घर ठहरना पड़े उसे कम कष्ट पहुँचाकर विशेष प्रेम संबंध उनके साथ हो सके इसका ख्याल पूर्णतया रखना।

तुम्हारे प्रयत्न से जिन जिन बहनों ने परदा त्याग कर घूँघट कभी भी नहीं निकालने का निश्चय कर लिया हो उनके नाम पते लिखना। जो खादी पहनने का निश्चय करें उनके नाम भी। खादी की प्रतिज्ञा स्वराज्य की प्राप्ति तक लेकर बाद में देश-नेता कहेंवैसा खादी या स्वदेशी पहन सकने हैं। जो स्त्रियां खादी पहन ही नहीं सकतीं हों वे विदेशी तो अवश्य बन्द कर दें इसका ख्याल रखना।

जमनालाल"

१९२६ में जब उनकी बड़ी लड़की कमला के विवाह का समय आया तो उन्होंने इसे समाज-सुधार की दिशा में आगे कदम बढ़ाने का एक अच्छा अवसर समझा। उनका मत तो था कि कन्या की शादी १८ वर्ष से पहिले न करनी चाहिए। परन्तु, कमला बाई के विवाह के समय वे १४ वर्ष से आगे नहीं बढ़ पाये थे। वर श्री रामेश्वरप्रसाद नेवटिया की अवस्था १९ वर्ष की थी। जहां तक वर-वधू की अवस्था का संबंध है, यह कोई बहुत आगे बढ़ा हुआ कदम नहीं था। लेकिन मारवाड़ी समाज की तत्काली अवस्था में यह भी बड़ी बात थी। परन्तु, इससे बढ़कर बात थी कमलाबाई

का बिना परदे से विवाह करना। विवाह भी महात्माजी के साबरमती आश्रम में और नई बुद्धिगम्य पद्धति से खादी के कपड़ों में अत्यंत सादगी के साथ और बहुत थोड़े खर्च में हुआ था। इसमें न आडम्बर था और न निरर्थक रूढ़ियों का ही पालन किया गया था। जहां महीनों लगते, वहाँ कुछ दिनों में ही काम चल गया। जहाँ हजारों आदमी इकट्ठे होते वहाँ ३०० आदमियों में ही काम निपट गया। इन तीन सौ व्यक्तियों में बहुतेरे उत्साहवश बिना सूचना के ही पहुँच गये थे। जब पहुँच ही गये तो आखिर खिलाने पिलाने की व्यवस्था तो करनी ही पड़ी। वर-पक्ष भी सौभाग्य से उनको ऐसा ही मिला जो अपने शिक्षा-संस्कार और सुधार-वादियों में मारवाड़ी समाज में अग्रगामी था। विवाह-विधि कई विद्वानों की अनुमति में ग्रह्य-सूत्र के अनुसार कराई गई थी। फेरे की प्रतिज्ञा खुद महात्माजी ने कराई थी। वर कन्या दोनों ने अपनी अपनी प्रतिज्ञा अपने अपने मुंह से बोलकर की। वह प्रतिज्ञा तथा उसमें कन्या की ओर से प्रतिज्ञा का जो उत्तर हिन्दी में दिया गया है, ध्यान देने योग्य है। उसमें "प्रजाभ्यः" "ऋतुभ्यः" शब्दों का व्यापक और समयोचित अर्थ किया गया है, वह इस प्रकार है:—

वर कहता है—प्रजाभ्यः पंचपदी भव। सामामनुव्रता भव। पहले "प्रजाभ्यः" का अर्थ किया जाता था—"सन्तानोत्पादन के लिए।" यहां अर्थ किया गया है "प्रजा की सेवा के लिए पांचवां पग चल।" इस युग में जब जनसंख्या चिन्ताजनक रूप में बढ़ रही है, नवीन मनु को प्रजा की सेवा के लिए यह भाव ही अभीष्ट हो सकता है।

इसी प्रकार ""ऋतुभ्यः षट्पदी भव "का अर्थ किया गया है-"नियम-पालन के लिए"और कन्या से उत्तर में कहलाया है—यम-नियमों के पालन में मैं सदा तुम्हारी अनुगामिनी रहूँगी।

यह सारी प्रतिज्ञा परिशिष्ट में दी गई है।

इसके पहिले दिन प्रार्थना के समय महात्माजी ने जो भाषण दिया वह नव वर-वधुओं के लिए बहुत उपयोगी है। उसका सार इस प्रकार है—

"हिन्दू-जातियों में जो विवाह होता है उसमें आडम्बर और प्रलोभन के कारण विवाह का धार्मिक अंश छिप जाता है। विवाह में पैसे का व्यय इतना होता है कि गरीबों को विवाह करना एक आपत्ति-सी हो जाती है। इस आश्रम का आदर्श है विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना। अतः इसको धर्म-संकट माना जाय। अहिंसा-धर्मी किसीपर बलात्कार नहीं करते। अतः जो ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर सकते उन वर-वधू को हम आशीर्वाद क्यों न दें? और विधि भी अच्छी ही क्यों न चलाएं? स्मृतियों में लिखा है कि जो दंपत्ति नियम से रहते हैं वे ब्रह्मचर्य का ही पालन करते हैं। मैंने इसे बहुत समय तक नहीं समझा था। जो विकारों का नाश नहीं कर सकते और विकारों पर अंकुश रखते हुए जितना अनिवार्य हो उतना ही व्यवहार करते हैं तो वे भी संयमी कहलाते हैं।

जमनालालजी ने निश्चय किया है कि जितनी सादगी से विवाह कर सकें करना चाहिए। इस तरह से विवाह की क्रिया करनी चाहिए कि दोनों विवाह का सच्चा अर्थ समझ सकें। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों है। जमनालालजी और केशवदेवजी का रामेश्वरप्रसाद और कमला का भला सोचना तो स्वार्थ है, और दूसरों को मार्ग बताना परमार्थ। विवाह के समय केवल धार्मिक विधियाँ ही की जायँगी। आप लोगों को निमन्त्रण केवल इस भाव से दिया गया है कि आप इसके साक्षी बनें और प्रतिज्ञा करें कि आप इसका अनुकरण करेंगे।

जमनालालजी दस हजार, बीस हजार, पच्चीस हजार भी फेंक दे सकते हैं और उनके मारवाड़ी भाई भी कहेंगे कि कैसा अच्छा विवाह किया, परन्तु उन्होंने धन होते हुए भी उसका उपयोग नहीं किया। इसका परिणाम अच्छा ही होगा। रामेश्वरप्रसाद और कमला दोनों की ही उमर अब

इस योग्य हो गई कि इस बात को समझ सकें कि विवाह स्वच्छन्दता के लिए, विकार का गुलाम बनने के लिए नहीं है। रामेश्वरप्रसाद को मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि वह कमला को गुलाम नहीं समझें, स्त्री को सहधर्मचारिणी, अर्धांगिनी और मित्र समझना चाहिए। यह दंपत्ति शिव-पार्वती, सत्यवान-सावित्री या राम-सीता की तरह आदर्श-भूत बनें। हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों को इतना उच्च स्थान दिया है कि हम सीताराम कहते हैं, रामसीता नहीं। राधाकृष्ण कहते हैं कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं होती तो राम को, सावित्री नहीं होती तो सत्यवान को, कोई नही जानता। मैं इन दोनों को आशीर्वाद देता हूं कि ये दोनों दीर्घायु हों और धर्म की रक्षा और देश की सेवा करें।"

आगे जाकर हम देखते हैं कि रामेश्वरदासजी ने जमनालालजी के कुछ व्यापारिक कामों का बोझ उठाकर उन्हें निश्चित किया है, दामाद होकर भी पुत्र के स्थान की पूर्ति की है और कमला बहन ने राममेश्वरदास जी के परिवार में सचमुच लक्ष्मी का स्थान प्राप्त कर लिया है। जमनालाल जी की मिलनसारी, कौटुम्बिक भावना, तथा अपनापन की वह खासी प्रतिनिधि कही जा सकती है। यह बतलाता है कि बापू के पूर्वोक्त आशी-र्वाद बिलकुल व्यर्थ नहीं गये।

जमनालालजी का विकास सब दिशाओं में हुआ था। जब शरीर में प्राण बढ़ने लगता है और वृद्धि होने लगती है तो उसका रस और तेज शरीर की सभी इन्द्रियों में संचारित तथा प्रकट होता है। जमनालालजी अपने जीवन को बनाना चाहते थे और सो भी अपने सेवाकर्मों द्वारा। इससे जहाँ उनके जीवन में सर्वांगीण प्रगति दिखाई पड़ती है वहाँ समाज-जीवन का कोई अंग ऐसा नहीं बचा जिसमें जमनालालजी का कोई सेवा-कार्य नजर न आता हो।

अग्रवाल महा-सभा के संस्थापकों में वे थे। उसके अधिवेशनों में

बराबर आते थे और उसके द्वारा अग्रवाल-जाति ही नहीं सारी वैश्य-जाति को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते थे। उनके द्वारा वे केवल सामाजिक कुप्रथाओं के निवारण पर ही जोर नहीं देते थे, बल्कि वैश्य और व्यापारी समाज को देश के हित में धन का उपयोग करने और देशोपयोगी उद्योग-व्यवसाय करने पर भी जोर देते थे। समय आया कि अग्रवालों ने आपको १९२६ के दिल्ली-अधिवेशन का सभापति बनाया।

उस समय अग्रवाल महा-सभा म सुधारक दल का जोर बढ़ रहा था। जोशीले सुधारक चाहते थे कि महा-सभा का काम केवल उनके ही मत से चले। जमनालालजी खुद इस सुधारक दल के थे। किन्तु एक बुजुर्ग की भाँति उदारता और धैर्य रखते थे। उन्होंने सुधारक दल को लक्ष्य करके कहा—"महा-सभा का काम किसी एक आदमी का नहीं है। हर तरह के विचार रखने वाले जाति-भाइयों का है। हमारी सभा में पुराने और नये दोनों ख्याल के आदमी हैं। स्वराज्य के सैनिक भी हैं और उससे उदासीन रहने वाले भी हैं। महासभा उन्हीं बातों को सोचे और करे जिनसे सारी जाति की उन्नति हो। वह तभी हो सकता है जब समाज के हर तरह के लोग इसमें रहें। उदारता-युक्त एकता ही इस महासभा का मूलमन्त्र होना चाहिए।" इस तरह उन्होंने पुराने विचार के लोगों को महासभा में रखने का आग्रह करके दूरदर्शिता और बुजुर्गी का परिचय दिया। परन्तु, साथ ही सुधारों की गाड़ी न रुकने पाए बल्कि और तेज गति से चले इसलिए सुधारकों से कहा—"मेरी राय में सुधारकों को क्रांतिकारी सुधारों का काम अपने ही बल-बूते पर उठाना चाहिए। जिस समय वे अपने निर्मल प्रेम, सच्ची नम्रता और कष्ट-सहन के द्वारा अपने विचारों के लिए लोगों के दिल में जगह कर लेंगे वही समय उन्हें महासभा से अपने विचारों के प्रति आशीर्वाद पाने के लिए उपयुक्त होगा।

जमनालालजी का विश्वास नैतिक शासन पर था। केवल रूढ़ि और

बहुमत के जोर पर जो फैसले किये जाते हैं उन्हें वे खोखला मानते थे। पंचों द्वारा होने वाला बहिष्कार अक्सर रूढ़ि के बल पर हुआ करता है, उसके खिलाफ आवाज उठाते हुए उन्होंने कहा—"महासभा का अधिकार नैतिक रहना चाहिए। जबर्दस्ती का राज्य असभ्यता का चिह्न है। सभ्य समाज के लिए तो नैतिक शासन ही उपयुक्त है। जो लोग स्वयं सदाचारी हों, निष्पक्ष हों, दूसरों पर जिनका नैतिक प्रभाव हो, लोगों को जिनकी सज्जनता का विश्वास हो, जिनका हृदय प्रेम से भरा हो, वही सच्चा न्याय कर सकते है और आवश्यकता पड़ने पर दण्ड भी दे सकते हैं। बहिष्कार करते समय दुराचारी और सुधारक का भेद हमें अपने सामने रखना चाहिए। दुराचारी पर समाज का दबाव रहना जरूरी हो गया है, पर जो लोग अपनी धारणा के अनुसार न्याय और पवित्रता का ख्याल रखकर सदाचार बढ़ाने के लिए देश-काल के अनुसार पुरानी रूढियों मे परिवर्तन करना चाहें, समाज को उनकी सहायता करनी चाहिए। इससे उनके रास्ते में कम से कम कांटे तो न रहेंगे। धर्म के शुद्ध आदर्श के अनुसार यदि हम आवश्यक परिवर्तन न करेंगे तो सामाजिक जीवन सड़ने लगेगा। उचित परिवर्तन जीवन का एक आवश्यक अग है।"

कहीं नवयुवक सामाजिक बहिष्कार से घबरा न जायँ, अतः उनको लक्ष्य कर उन्होंने कहा—'सुधारों के फल-स्वरूप यदि आपको कुटुम्बियों और समाज का विरोध सहन करना पड़े तो उसे नम्रता और सरलता से सह लो। जिसके हृदय में धर्म का उदय हुआ है वह बहिष्कार और उसके कष्टों से नही डरता। धार्मिकता और भय उसी तरह एक साथ नहीं रह सकते जैसे दिन और रात। भगवान ने गीता में दैवी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए निर्भयता को ही पहिला स्थान दिया है। समाज के भय से उसके दोषों को दूर न करना, अपने सिद्धांतों के अनुसार न चलना कायरता है। इससे समाज की असेवा होती है, सामाजिक जीवन सड़ने लगता है"

राजस्थानी भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में बसे हैं, परन्तु वे अपनी जन्म-भूमि राजपूताने की ओर प्राय: उसी भाव से देखते थे जिस तरह मुसलमान भारत में रहते हुए भी मक्का या मदीना की ओर। इससे वे उन प्रांतों के निवासियों द्वारा निन्दा और तिरस्कार का कारण बन रहे थे। 'मारवाड़ी' शब्द शोषण करनेवाले का पर्याय बन रहा था। जमनालालजी ने इस बुराई की जड़ को पकड़ा। मराठी 'केसरी' ने भी इस शब्द का इसी तरह का अर्थ एक बार किया था, जिसपर जमनालालजी ने लोकमान्य का ध्यान खींच कर उसका परिमार्जन कराया था। परन्तु मारवाड़ियों को भी कुछ उद्‌बोधन की आवश्यकता थी। अतः इस सभापति-पद से उन्होंने कहा—"धर्म और नीति के साथ धन जोड़ना बुरी बात नहीं है। पर उसका आदर्श केवल अपना पेट पालना और निरर्थक कामों में अन्धाधुन्ध खर्च करना ही न हो। उसका उपयोग समाज और देश के हित के कामों में करना है। जिस समाज या देश में से हम धन कमाते हैं उसका एक उचित अंश उसी के हित में लगाना हमारा कर्तव्य है। इसलिए हमें चाहिए कि जिस प्रांत या धर्म में, समाज या देश में रहकर हम धन उपार्जित करते हैं उसके हित का पूरा ध्यान रखें और आवश्यकता के समय उत्साह-पूर्वक उसकी सेवा के लिए आगे बढ़ें। हम इस बात को न भूलें कि देश और समाज के हित के सामने व्यक्तिगत हित को प्रधानता न देना ही भारतीय समाज-व्यवस्था का प्रधान गुण है।

रचनात्मक कार्यों को पनपाने, देश-व्यापी बनाने तथा उनमें व्यवस्थित रूप से सजीवता लाने के लिए ही उन्होंने गांधी-सेवा-संघ की स्थापना की थी। उनका ख्याल था कि बापू के रचनात्मक कार्यों पर श्रद्धा रखने वाले योग्य और उच्च कोटि के सेवकों को जब तक आर्थिक चिंता से मुक्त करके पूरे समय और पूरी शक्ति से काम करने की सुविधा नहीं रहेगी, तबतक यह राष्ट्र-निर्माण का महत्वपूर्ण काम हो ही नहीं सकता। ये

विचार उनको सन २३ में ही जंच गये थे। गांधी सेवा-संघ तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा खादी-कार्य, हरिजन सुधार, महिला-जागृति, राष्ट्रभाषा-सुधार, आदि विविध कार्यों और अनेक संस्थाओं को उन्होंने वेग दिया और संगठित किया है। अन्त में गो-सेवा में तो उन्होंने अपना जीवन ही होम दिया था। ग्राम-सेवा और ग्रामोद्योग के प्रति रहने वाले प्रेम के प्रतीक मगनवाडी और सेवाग्राम आज भी उनके स्मारक के समान खड़े हुए हैं।

इन सब कामों में उनका मुख्य भाग रहने पर भी वे प्रायः पद से दूर रहने के लिए बराबर सचेष्ट रहते। गांधी-सेवा-संघ के अध्यक्ष-पद से वे आगे चल कर हट ही गये। इसी प्रकार चरखा-संघ के लिए भी उन्होंने किसी तरह के पद पर नहीं रहने का, बल्कि कांग्रेस कार्य-समिति में से भी हट जाने का आग्रह रखा है, जिसे हम नीचे के पत्रों में स्पष्ट देख सकते हैं :—

"चि० जमनालाल,

तमारी गैरहाजरी तो मने पोताने चरखा-संघ में बहु जणाई ने हवे वर्किंग कमेटी मां जणाशे, पण तमने आग्रह न करवामांज श्रेय जाणूं छू।
२१-१२-४१ —बापू"

"पूज्य बापूजी,

काम ठीक तौर से याने आपके संतोषकारक तौर से चलना संभव है; मैं तो कोई पद लेना नहीं चाहता। हां, वर्धा या सेवाग्राम में कार्यालय रहना निश्चित हो जायगा तो मैं सलाह-मसलत में व थोड़ी आर्थिक व्यवस्था में भाग ले सकूंगा। अन्यथा, वह भी लेने का उत्साह वर्तमान स्थिति में बिल्कुल है ही नहीं। गोपुरी, वर्धा। ३०-१२-४१। जमनालाल"

इस पत्र से उनकी निस्पृहता का पता लगता है। यद्यपि पद-प्रतिष्ठा की चाह उनके मन में नहीं रही थी तो भी, काम और निष्ठा में पदा-

धिकारियों से भी सदैव आगे रहते । चरखा-संघ का बड़े से बड़ा काम बिना जमनालालजी की सलाह के नहीं होता था। राजस्थान में तो चरखा-संघ ने जो भी कुछ किया उन्हींकी उसमें अधिक प्रेरणा और योग रहा। इस तरह जमनालालजी ने निःस्पृह रहकर रचनात्मक कार्यों में अपना पूरा हिस्सा अदा किया है । सचमुच उन्होंने इन रचनात्मक कार्यों द्वारा अपने ही नहीं बल्कि मानवी जीवन की रचना करने का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर दिया है ।

: १५ :

कथनी जैसी करनी

"हम ईश्वर को जगन्माता, जगत्पिता और पतितपावन कहते हैं और उसीके मंदिर में उसके असहाय, निरीह पुत्रों को जाने से रोकते हैं। यह मानना कि जो खुद पतितपावन है वह अछूत के संपर्क से अपवित्र हो जायगा, ईश्वर की विडम्बना करना है।" (एलिचपुर के भाषण से—१९२९)

—जमनालालजी

"इस मंदिर को खुले यद्यपि पूरे २८ वर्ष समाप्त हो गए है, तब भी मेरी समझ में इसमें भगवान की—लक्ष्मीनारायण की—प्राण-प्रतिष्ठा सच्ची तो उस दिन हुई जिस दिन यह हरिजनों के लिए खोल दिया गया।"

—बापूजी

(९ फरवरी १९३६ को मंदिर में भाषण)

जमनालालजी सन्त तुकाराम के इस सिद्धांत को मानने वाले थे "बोले तैसा चाले"। उन्होंने एक पत्र में अपनी धर्म-पत्नी को लिखा है "पर उपदेश कुशल बहुतेरे—यह अपने को शोभा नहीं देता। जितनी बातें हम दूसरों की भलाई की समझते हैं, हम उपदेश करते हैं फिर अपनेको मौका पड़े और न करें तो उसका महत्व ही नहीं रहता।"

सेठ बच्छराजजी अपनी पत्नी सदी बाई के जीवन में तो उनकी इच्छापूर्ति नहीं कर सके, परन्तु सदी बाई के देहान्त के बाद उन्होंने अपनी पत्नी की भावना का ख्याल कर वर्धा में श्री लक्ष्मीनारायण का मन्दिर

बनवाया और उसकी व्यवस्था भी सभी वैष्णव मन्दिरों की तरह उन्होंने कर दी।

श्री जमनालालजी भी वैष्णव—भक्त थे। वे बराबर समय पर मन्दिर में दर्शन करने जाते और अपनी नित्य नैमित्तिक साधना करते। परन्तु उनके हृदय में एक पीड़ा बनी हुई थी कि नारायण तो सभी नर-नारियों में विद्यमान है। फिर क्या कारण है कि मनुष्य-समाज का एक अंग इस प्रकार लक्ष्मीनारायण के दर्शनों से बंचित रहे। उन्हें यह सोच कर घोर वेदना होती थी कि अपने ही भाई-बन्धुओं के साथ हम परायों का-सा व्यवहार करते हैं। एक अपील में उन्होंने कहा था—"यह भाग्य की विडम्बना ही है कि हम एक गौरवपूर्ण वंश की विरासत रखते हुए भी आज अपने ही एक तिहाई बन्धुओं के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं जैसा कि हम शायद अपने घर के पालतू पशुओं के साथ भी नही करते। ये हमारे बुनकर, कुम्हार, भंगी और मेहतर जो राष्ट्र के सच्चे सेवक हैं और राष्ट्र की संपत्ति के उत्पादक हैं, जो हमें स्वच्छ और स्वस्थ रखने में हमारी सच्ची मदद करते हैं और जो जीवन के कार्यों के योग्य बनाते हैं—अपने इन हितैषियों, भोले और निरीह छोटे भाइयों को हम सामाजिक और नागरिक अधिकारों से—संरक्षा, ज्ञान और अन्य व्यापारो से वंचित रखते हैं। इसमें थोड़ा भी आश्चर्य नही यदि कर्म-विषयक दुर्दमनीय नियमों के अनुसार हमसे भी दुनिया परायों और अछूतों की तरह व्यवहार करने लगे।" बापू के वे पक्के अनुयायी थे। जब से कांग्रेस ने महात्माजी का अस्पृश्यता-निवारण-संबंधी प्रस्ताव पास किया तभी से इस शिक्षा में उन्होंने काम शुरू कर दिया था। उस समय के वातावरण के अनुरूप जमनालालजी ने हरिजन बस्तियों में प्रचारक रख दिये थे और हरिजन-छात्रों को छात्रवृत्तियां देना शुरू कर दिया था। इसका सारा खर्च वे अपने पास से देते थे। पर इससे उनका दिल नहीं भरता था। और वे सोचा करते थे कि कोई बड़ा और ठोस काम

इस दिशा में किया जाय। उन्हें सूझा कि हरिजनों को सार्वजनिक कुँओं से पानी लेने की छूट होनी चाहिए और मन्दिरों में देवदर्शन की इजाजत मिलनी चाहिए। उन्होंने अपने घर से सुधार करने का निश्चय किया। परन्तु, मंदिर तथा उनकी वर्धा-स्थित एक धर्मशाला की व्यवस्था ट्रस्टियों के अधीन थी। इसलिए, ऐसा कोई काम बिना ट्रस्टियों की मर्जी के करना अव्यावहारिक था। दूसरे जमनालाल जी मत-स्वतन्त्रता को शुरू से ही मानते आये थे। इसलिए, उन्होंने मन्दिर के तथा धर्मशाला के ट्रस्टियों को बतलाया कि इस समय देश को हरिजनों के साथ न्याय करने की जरूरत है। न्याय की कमी से कम मांग आज यह है कि हम उन्हें गांव के कुँओं से पानी भरने दें, उनके बच्चों को गांव के स्कूलों में प्रारंभिक शिक्षण की वे ही सहूलियतें दें जो हमारे अपने बच्चों को मिली हैं, और उनके लिए ईश्वर के मन्दिर का द्वार और लोगों की तरह ही उन्मुक्त कर दें।" इसलिए उन्होंने कहा कि अपना "मन्दिर और धर्मशाला के कुँए" हरिजनों के लिये खुल जाना चाहिए। पर ट्रस्टी लोग इस तरह कहाँ मानने वाले थे? जमनालालजी सतत प्रयत्न करते रहे और उन्होंने युक्तिवाद से समय समय पर समझाते रहे। अन्त में उनकी धर्मशाला के ट्रस्टी राजी हो गये कि "धर्मशाला के कुँए" हरिजनों के पानी भरने के लिए खोल दिये जायें। इस निर्णय के अनुसार वर्धा की "बच्छराज धर्मशाला" के कुँए सन १९२७ में मनुष्यमात्र के लिए खुले कर दिये गये। इस तरह यह कार्य देश में पहिला ही था और लोगों ने इस काम के लिए जमनालालजी के प्रयत्नों की प्रशंसा की। जब इस कुँए का उपयोग हरिजन करने लगे तब जमनालालजी ने अपनी मालिकी के अन्य कुँए जो बगीचे, गावों और खेतों में थे, खुले कर दिये। इस काम में थोड़ी थोड़ी अड़चनें जनता द्वारा, कर्मचारियों द्वारा आईं पर आहिस्ते-आहिस्ते वे सब दूर हो गईं।

जब जमनालालजी इस काम में सफल हो गये, तब अपना मन्दिर

हरिजनों के लिए जल्दी खोलने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु, काम जितना सरल दिखता था, उससे कहीं अधिक कठिन था। क्योंकि मन्दिर के ट्रस्टी कट्टर सनातनी थे और मानते थे कि इस तरह की कल्पना तक करने में पाप लगता है। ऐसे ट्रस्टियों को प्रेम से समझाना जमनालालजी जैसों का ही काम था। वह समय समय पर उनको यह समझाया करते थे कि देश का वायुमण्डल अब हरिजनों के पक्ष में है और उनके साथ में जो अन्याय अबतक हुआ है उसके निवारण करने का यही समय है। उन्होंने मन्दिर के ट्रस्टियों के नाम अपनी एक अपील में कहा है:—"शताब्दियों से हिन्दुओं के लिए मन्दिर समस्त धार्मिक और सामाजिक आदर्शों के आश्रय स्थल रहे हैं। यह उसके लिए बहुत बड़ा कलंक है कि किसी भी प्राणी को हीन भाव से देखे या सोचे या उसे नारायण की दया के अनुपयुक्त समझे। हमारी गौरवपूर्ण परम्परा जोकि हमें अपने ऋषियों से प्राप्त हुई है निम्न श्रेणियों में जिनमें अछूत भी सम्मिलित हैं, उत्पन्न हुए किसी भी प्राणी को अपनेसे हीन न समझने के लिए प्रेरित करती है। यदि आप अपने मन्दिर इन अछूत कहे जानेवाले लोगों के लिए खोल दें तो आपके कठोर कर्तव्य का पालन हो जायगा। अगर हमने समय की पुकार के साथ काम न किया तो अंत में पश्चात्ताप ही बाकी रह जायगा।" इस तरह वर्षों तक नीति और युक्ति से समझाने पर वे लोग इस बात को तो मान गये कि मन्दिर खुलना तो चाहिए, पर अभी समय नहीं है। पहिले दूसरों को करने दो, फिर देखा जायगा। किन्तु, जमनालालजी का आग्रह था कि अगर आप इसको ठीक समझते हैं तो आप ही इस काम को करने के लिए सब से पहिले आगे आवें। एक बार तो ट्रस्टियों ने यहाँ तक कह दिया कि अगर आप चाहें तो हम लोग ट्रस्टीशिप से त्याग पत्र दे दें और आप नये ट्रस्टी बनाकर फिर यह काम कर सकते हैं। क्योंकि मन्दिर आपका है और ट्रस्टी भी आपके ही बनाये हैं, जो चाहे कर सकते हैं। जमनालालजी ने कहा कि अगर इसी

तरह करना होता तो आजतक आप लोगों को समझाने में नहीं लगा रहता। मेरी तो यह इच्छा है कि आप सब ट्रस्टी मिलकर इजाजत दें और मन्दिर खोला जाय। क्योंकि यह काम व्यक्तिगत विचारों का नहीं है। इसमें सब के सहयोग की जरूरत है। इधर देश का वातावरण दिन दिन हरिजनों के पक्ष में होता जा रहा था और जमनालालजी कुँए खुलवाने के आन्दोलन में काफी आगे बढ़ रहे थे। वर्धा जिले के कई गावों में उनके प्रयत्न से बहुत से कुएँ खुल चुके थे।

अपने कार्य में उन्हें पूरी निष्ठा थी। उन्हें यह पूरा विश्वास था कि इसी प्रकार समाज का कल्याण होगा। यह सत्य-बल ही अनेक कठिनाइयों के बावजूद उन्हें अपने कार्य में सतत-प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देता रहता था। उनके इस सेवा-व्रत के सम्बन्ध में गांधीजी के ये उद्गार ध्यान देने योग्य हैं।

"हमें न्याय के लिए लड़ते हुए तपस्या के द्वारा अपने पंचों को पवित्र बनाने की जरूरत है। यही काम जमनालालजी कर रहे हैं। इस काम में आप यदि उनका अनुसरण नहीं कर सकते तो अपने आशीर्वाद ही दें। क्योंकि एक समय आएगा जब पुराने खयाल के लोग भी यह स्वीकार करेंगे कि अपने कार्यों से हिन्दू-धर्म की जमनालालजी ने वह सेवा की जिसके लिए आगे आनेवाली पीढ़ी उनका आभार मानेगी।"

—"यंग इण्डिया" १३-१२-२८

अन्त को जमनालालजी के प्रयत्नों से मंदिर के ट्रस्टियों के दिल जरा पिघल गए और उन्होंने इन्हें मंदिर खोलने की परवानगी भी दे दी। मंदिर की ट्रस्ट-कमेटी ने वर्धा का "लक्ष्मीनारायण मंदिर" हरिजनों के लिए खुला करने का प्रस्तावपास किया।

इधर जगह जगह के सनातनी प्रचार करने के लिए प्रस्ताव करके जमनालालजी के पास भेजने लगे। अन्त में वर्धा के सनातनियों का एक

बड़ा भारी शिष्टमंडल मंदिर खुलने के दो दिन पहिले जमनालालजी के पास आया। इसमें करीब १५०-२०० बड़े बड़े आदमी आए। इनसे उनका जो वार्तालाप हुआ वह बड़ा मनोरंजक था:—

शिष्ट-मण्डल:—"हम आपके पास इसलिए आये हैं कि आप अपना मन्दिर हरिजनों के लिए न खोलें।"

जमनालालजी:—"क्यों?"

शिष्ट-मण्डल:—"धर्म डूब जायगा।"

जमनालालजी:—'मुझे मंदिर न खोलने से धर्म के डूब जाने का डर है।'

शिष्ट-मण्डल:— "खैर, आप दो पाँच साल तक इस काम को न करें।"

जमनालालजी:—"तो क्या फिर आप पाँच साल के बाद मुझे इस तरह करने में पूरी मदद करेंगे?"

शिष्ट-मण्डल:—"मदद तो नही कर सकते हैं, पर हाँ, हम यह चाहते हैं कि अभी यह नहीं खुलना चाहिए।"

जमनालालजी:—"आप डेपुटेशन लेकर आए हैं मुझे अपनी बात समझाने के लिए। इसलिए आपने जो कहा वह मैं मानने के लिए तैयार हूँ, फिर आपको क्या अड़चन है?"

शिष्ट-मण्डल:—"सेठजी, हम बहस में तो आपसे जीत नही सकते हैं। इसलिए यही कहते हैं कि आप हमारी बात मानें, क्योंकि आप हमारे नेता हैं।"

जमनालालजी—"अगर आप मुझे नेता मानते हैं और चाहते हैं कि आप जो कहें वह मैं करूँ तो फिर मैं भी यह चाहता हूँ कि आप भी मेरी एक बात मानें तो मैं आपकी सभी बात मानूं।"

शिष्ट-मण्डल—"आप हमसे क्या चाहते है?"

जमनालालजी—"आप जो सब लोग यहाँ पर आए हैं वह अगर जीवन भर खादी पहिनने की प्रतिज्ञा करें तो मैं पाँच सालतक मंदिर हरिजनों के लिए नहीं खोलूंगा।"

शिष्ट-मण्डल—"यह बात तो हमसे नहीं हो सकती है। आप कोई दूसरी बात कहें तो हम करेंगे।"

जमनालालजी—"हरिजनों के लिए मंदिर खुलना तो चाहिए, यह बात तो आप भी स्वीकार करते है। पर आप चाहते हैं कि अभी कुछ समय तक ठहर जाना चाहिए। मान लीजिए कि मै एक दूसरा मंदिर वर्धा में बनवा दूं, जिसमें आधी रकम आप लोग दें और आधी मैं दूं। वह मंदिर हरिजनों के लिए खोल दिया जाय तो फिर आपको कोई हर्ज है क्या ? क्या आप लोग इस काम में अपने नेता की मदद करेंगे ?"

सब लोगों ने चुप्पी साध ली।

जमनालालजी—"आप मेरी एक भी बात मानना नही चाहते हैं तो मैं आपकी वह बात कैसे मान लूं जिसे कि मैं ठीक नहीं समझता हूँ ?"

जैसे जैसे मंदिर खोलने की निश्चित तारीख नजदीक आने लगी वातावरण गर्म होता गया। मंदिर खुलने के एक दिन पहिले वर्धा में सनातनियों की एक विरोधी विराट सभा हुई जिसमें बाहर के कई नेतागण आए। निषेधात्मक प्रस्ताव पास हुआ और सुबह मंदिर के आगे सत्याग्रह करने का निश्चय किया गया। इधर जमनालालजी रात-भर आराम से नहीं सो पाये, नयी जवाबदारी का बारबार खयाल आता था और कल न जानें क्या क्या घटनाएँ हो जायंगी इसकी किसीको भी कल्पना नहीं थी।

जमनालालजी का यह तो विश्वास था ही कि वह अच्छा काम कर रहे हैं, उसमें सफलता अवश्य ही मिलेगी। सुबह ६-७ बजे के करीब जमनालालजी व कई अन्य मित्र गण गांधी-चौक में आकर जमा होने लग गये। कांग्रेस के कार्यकर्ता काफी तादाद में आ गए। उधर सनातनी लोग भी मंदिर से करीब ५० गज दूर जमा हो रहे थे। इधर तरह तरह की गप्पों का बाजार भी गर्म था। पुलिसवालों के पास में यह खबर थी कि आज मारपीट होगी--शायद बड़ी खून-खराबी भी हो जाय। अन्त में पुलिस सब-इन्सपेक्टर जमनालालजी के पास आया और अलग ले जाकर कहा कि दंगा हो जाने का डर है, अगर आप कहें तो यहाँ पर 'मन्दिर के आसपास' कुछ पुलिस वालों को तैनात कर दूं। जमनालालजी ने हँस कर कहा कि मुझे तो इस तरह दंगा होने की कोई आशंका नहीं है। और इसकाम के लिए मुझे पुलिस की कतई जरूरत नहीं है।

निश्चित समय पर, याने सुबह ८ बजे, हरिजनों की एक टोली भजन करती हुई श्री परांजपे की अध्यक्षता में आई और मंदिर में प्रवेश किया। फिर आहिस्ते आहिस्ते हरिजनों की और कई भजन-मंडलियाँ आती गईं और वह मंदिर में बैठकर भजन करने लगीं। उधर सनातनी लोग न तो सत्याग्रह ही करने आए और न विरोध ही करने आए। उल्टा वह सड़क साफ करनेवाले मेहतर, मेहतरानियों को पकड़ पकड़ कर मंदिर में भिजवाने लगे। यह काम तो उन्होंने द्वेषवश किया था, पर जमनालालजी के लिए तो वह उल्टा सहायक हो गया। उस दिन १२ बजे तक करीब करीब ३, ४ हजार हरिजनों ने भगवान के दर्शनों का लाभ लिया।

प्रातःकाल से राततक मंदिर के दर्शनों के समय जमनालालजी मंदिर में अछूतों का स्वागत करते हुए प्रसन्न हो रहे थे। उनके मन की भावना उनके इन शब्दों में प्रकट हो पड़ी--"जहाँ न्याय का सवाल है, वहाँ अन्याय से संपूर्ण स्पृश्य समाज को संतुष्ट करने की अपेक्षा न्याय से एक

अछूत को संतुष्ट करने में मुझे अधिक आनन्द मिलता है। एक ज्वाला-सी तीन वर्ष से मेरे मन में जल रही थी, आज वह शान्त हो गई।"

उस समय यह प्रश्न इतना महत्व का हो गया था और इसे लेकर इनता बड़ा तूफान खड़ा हो गया था कि स्वयं गांधीजी का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने जमनालालजी को एक पत्र लिखा—

चि० जमनालाल

जो तूफान आया है उसकी मुझे आशा नहीं थी। लेकिन कुछ परवाह नहीं। उसीमें धर्म की परीक्षा है। .....बात यह है कि हमको पूरा पूरा विनय रखना है। जाति को अधिकार है कि जो व्यक्ति उसके नियम का उल्लंघन करे उसका वह बहिष्कार कर दे। आपने जो जो कुछ किया है उसमें न तो कुछ लज्जित होने जैसा है, न पश्चात्ताप करने जैसा। जाति में आपका प्रभाव कम होगा ही। धन संग्रह करने की आपकी शक्ति भी कम होती है। लेकिन उसकी मैं कोई चिंता नहीं करता। आपको भीख मांगने का समय भी भले ही आ जाय। यदि धर्म के लिए आपको भिक्षुक रहना पड़े तो उसका स्वागत करना चाहिए। आखिर तो जब जाति ही आपके धर्म और नियम को पहिचान लेगी तो खुद नम्र बन जायगी। जाति में सुधार तो होने ही चाहिए। वे आसानी से हो सकेंगे।

बापू के आशीर्वाद"

देश के कोने कोने में इस घटना की धूम मच गई। देश के नेताओं ने जिसमें सर्व-श्री महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, नरसिंह चिंतामणि केलकर, डा० भगवानदास, श्री इमाम अब्दुल कादिर आदि तथा काशी के कई विद्वान् थे, इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। समाचार-पत्रों ने बड़े सुन्दर शब्दों में इस साहस की प्रशंसा की। कई पंडितों ने यह भी लिखा था कि आपका यह कार्य शास्त्र-संगत है। कांग्रेस कार्य-समिति ने भी प्रशंसा की और अन्य मंदिर खुलवाने के लिए एक कमेटी बनाई, जिसमें

जमनालालजी को एक सदस्य बनाया गया। जमनालालजी के इन कार्यों को देखकर ही सर चिनूभाई माधवलाल और उनकी माँ ने गाँधीजी से यह वादा किया कि वे अहमदाबाद में अपने घर का मन्दिर अछूतों के लिए खोल देंगे। मंदिर खोलनेके बाद जो उद्‌गार पूज्य विनोबा ने प्रकट किए थे वे इस प्रकार हैं"—

"*मैं कल प्रथम ही यहाँ के श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर में गया था* और आज सबेरे फिर हरिजनों के लिए खुला करने के बाद आया था। किन्तु आज मुझे श्री लक्ष्मीनारायण और श्री विष्णु की मूर्तियों में ईश्वर का जो दर्शन हो सका था वह कल नहीं हुआ था।"

इधर यह हो रहा था, उधर मंदिर के पुजारी, रसोइया, कथावाचक, नौकर आदि गायब हो गए। कह दिया कि अब हम यहाँ पर काम नहीं करेंगे। ऐन समय इस तरह सब काम करने वालों का गायब हो जाना मामूली बात नहीं है। सारा काम मंदिर का चन्द ही मिनटों में अड़ जाता, पर जमनालाल जी इस बात को पहिले से ही जानते थे, उन्होंने पहिले से ही राष्ट्रीय विचार रखने वाले आदमियों से बात कर रखी थी। इसलिए इन लोगों के जाते ही उनकी जगह पर दूसरे आदमियों ने काम करना शुरू कर दिया। विरोधियों की यह कल्पना थी कि इस तरह एकाएक हो जाने से सारा काम अड़ जायगा, और इन्हें हमारे पास आना होगा। पर जब उन्होंने देखा कि सब काम बराबर हो रहा है तथा किसी भी काम में कोई फर्क नहीं आया तब वह लोग भी दग रह गए।

जब यह काम जमनालालजी का सफलता से पूरा हो गया तो उनके दिल में आया कि मंदिरों के ट्रस्टियों में हरिजनों को ट्रस्टी के स्थानों पर क्यों न लिया जाय ? इस विचार-सरणी के आधार पर जमनालालजी ने अपने मंदिर के ट्रस्टियों में एक हरिजन को भी ट्रस्टी बनाया।

यह काम हो जाने पर हरिजनों से अधिक नजदीक आने के लिए

जमनालालजी ने अपने यहाँ पर हरिजनों को नौकर रखा था तथा उनके हाथ से भोजन आदि करना शुरू किया। अब अपने घर के चौके में हरिजनों को काम के लिए नियुक्त करने की प्रबल इच्छा हुई। क्योंकि वे "कथनी जैसी करनी" के कायल थे; पर साथ ही विचार-स्वातंत्र्य को भी महत्व देते थे। इसलिए बहुत दिनों तक तो इस इच्छा को पूरा करने का अवसर उन्हें नहीं मिला। अन्त को १९३५ में बिहार-भूकम्प के अवसर पर वह पूर्ण हुई; जैसा कि 'यंग इंडिया' (१३-१२-२८) के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है:--

"जहाँ कहीं किसीको तकलीफ में देखते तो वहीं उनका जाने का और सेवा करने का मन और उत्साह होता। फिर बिहार में उस समय कैसे न जाते ?.......वहाँ उन्हें बहुत दिनों तक घर बना कर रहना पड़ा और उन्होंने रसोई में हरिजन नौकर रखवा लिया। तब कहीं जाकर उन्हें चैन मिली।"

इन सब कामों के बाद ही हरिजन आन्दोलन धड़ल्ले से चला तथा गांधीजी ने अपने पत्र "यंग इंडिया" का नाम हरिजन रखा। 'हरिजन' नाम संस्करण भी बाद में ही हुआ था। इस तरह जमनालालजी ने सब से पहिले इन कार्यों को किया और आज यह हर जगह बिना रोक-टोक के हो रहे हैं। इनको करने में उन्हें कष्ट, चिन्ता आदि कई बातों का सामना करना पड़ा; पर दृढ़ विचार तथा निश्चय के सामने उन्हें कोई भी वस्तु नहीं डिगा सकी, यह उनकी खास बात है।

इन सब कामों के करते हुए भी जमनालालजी ने व्यक्तिगत विचार स्वतंत्रता को पूरा महत्व दिया तथा जिन लोगों का इन कामों से भिन्न मत रहा, उन्हें अपने विचारों के अनुसार काम करने की स्वतंत्रता दे रखी थी। कभी भी उन्होंने उनके विचारों में किसी भी तरह की रुकावट नहीं लगाई। अन्य तरह का उनपर दबाव लाना भी वे नहीं चाहते थे।

इसमें उनके रिश्तेदार, नौकरचाकर, मित्र आदि सब शामिल हैं। मगर उन्होंने किसीके भी साथ किसी भी तरह का संबंध नहीं छोड़ा व पूर्ववत् ही उनके साथ में व्यवहार रखा। जमनालालजी कहा करते थे कि जब इनको सत्य के दर्शन हो जाएंगे तब खुद ही इस बात में विश्वास करने लग जाएंगे। अगर इन्हें जबर्दस्ती खींचा तो हमेशा भयप्रद बने रहेंगे। अब इनमें से ७० फीसदी आदमियों का मतपरिवर्तन हो गया और वे जमनालालजी के कार्यों की सराहना करते हैं।

यह वह समय था जब देश में साइमन कमीशन के बहिष्कार का दौरदौरा था और बापूजी अपने रचनात्मक कार्यों का पाया मजबूत बनाने में लगे हुए थे। उधर धारा-सभावादी स्वराज्य दल के नेता धारासभाओं में अपनी जोर-आजमाई कर रहे थे। बापूजी का देशव्यापी दौरा चालू था। जमनालाल जी ने तो बापूजी को ही अपना मार्गदर्शक चुन लिया था। अतः "यद्यदा चरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरे जनाः" वाली बात वे अपने ऊपर लागू कर लिया करते थे। अस्पृश्यता-निवारण-समिति का काम कांग्रेस-कार्यसमिति ने उन्हें सौंपा था। बड़े परिश्रम से वे उसमें जुट पड़े। इस सिलसिले में उन्होंने सीमा-प्रांत, पंजाब, सिन्ध, मध्यभारत, मद्रास और राजपूताने के लम्बे लम्बे दौरे किये। मारवाड़ी समाज में जो सामाजिक रूढ़ियाँ, जात-पाँति की संकुचित भावना और दकियानूसीपन परंपरा से चला आता था, उसे देखते हुए उसमें अस्पृश्यता-निवारण का काम कोई मामूली साहस का काम नहीं था। और वह भी आज के बीस वर्ष के पूर्व, जबकि देश की सामाजिक स्थिति आज से काफी पिछड़ी हुई थी। लेकिन, जमनालालजी कथनी और करनी में फर्क नहीं करते थे। निष्ठापूर्वक जिस काम में हाथ डाला, तन मन से उसमें जुट पड़ते थे।

राजस्थान की खादी-यात्रा के अवसर पर उन्होंने बुनकर बलाइयों तथा अन्य अस्पृश्य माने जानेवाले लोगों के साथ इस प्रेम का व्यवहार

किया कि वे आज भी जमनालालजी का उपकार मानते हैं। विभिन्न स्थानों की म्युनिसिपालिटियों के अधिकारियों से मिलकर आपने अस्पृश्यता-निवारण का मार्ग सुलभ किया। बरावर, मध्यभारत आदि विभिन्न स्थानों पर उन्होंने अस्पृश्य समझे जानेवाले भाइयों के लिए मंदिर और कुएं खुलवाये। आपके ही प्रयत्न से एलीचपुर (बरार) में श्री दत्तात्रेय मंदिर भी उसके ट्रस्टियों ने अछूतों के लिए मुक्त कर दिया और यह विधि भी जमनालालजी के हाथों से संपन्न हुई। इस प्रसिद्ध मंदिर को आम लोगों के लिए खोलते हुए आपने जो भाषण दिया उसका कुछ अंश निम्न प्रकार है:—

"हमारे हिन्दू घरों का यह एक नियम है कि जो बड़ा, बलवान और समर्थ है वह छोटे, निर्बल और असहाय की रक्षा करे। पर, क्या हम अपने छोटे और असहाय अछूत भाइयों के साथ इस नियम का पालन करते हैं? हम ईश्वर को जगन्माता, जगत्पिता और पतितपावन कहते हैं और उसीके मंदिर में उसके असहाय निरीह पुत्रों को जाने से रोकते हैं। यह मानना कि जो खुद पतितपावन है वह अछूत के संपर्क से अपवित्र हो जायगा, ईश्वर की विडम्बना करना है। फिर क्या पिता या माता अपने सब पुत्रों को समान प्यार नहीं करते और क्या उनका स्नेह उस पुत्र के लिए अधिक नहीं उमड़ता जो कमजोर और दुःखी है? और यदि हम ऐसे ही पुत्रों को उसकी माता से जुदा कर रखें तो क्या यह पाप नहीं है? जरा इस स्नेहमयी माता और करुणामय पिता की व्यथा की तो कल्पना कीजिए। फिर क्या ईश्वर का दरबार हम मुट्ठी भर गण्यमान्य लोगों के ही लिए खुला रहता है? और ऐसे स्थान को हम ईश्वर का मंदिर भी कैसे कह सकते हैं जहाँ उसके सब पुत्रों को जाने की छुट्टी नहीं? मंदिर तो वास्तव में ऐसा होना चाहिए जहाँ से आध्यात्मिकता और धार्मिकता टपक पड़ती हो। क्या ऐसे क्षुद्र और अन्यायपूर्ण भेद-भाव को कायम रखकर हम ऐसे उच्च और शुद्ध

आदर्श की प्राप्ति की आशा रख सकते हैं ? ऐसे मंदिर तो हमारे पाखंड के ही प्रदर्शक हैं और हमें दूसरी जातियों और धर्मों के सामने हास्यास्पद बनाते हैं।"

१९३१ में श्री अच्युत स्वामीजी को एक पत्र लिखते हुए जमनालालजी ने अस्पृश्यता को धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त आपत्तिजनक बतलाया है। उन्होंने लिखा—"मनुष्य को पशु से भी हीन समझना किसी भी रीति से धार्मिक बात नहीं हो सकती, यह हिन्दूधर्म पर बड़ा भारी धब्बा है। इसको जबरन् धो डाला जाय तो भी कोई बाधाजनक बात नहीं।"

वैसे छुआ-छूत मानना तो उन्होंने पहले ही से छोड़ रखा था। परन्तु, अछूत के हाथ का भोजन करने का अवसर अचानक १९२८ में रेवाड़ी के भगवद्भक्ति आश्रम में आ गया। उस आश्रम के अधिपति स्व० परमानन्दजी से उनकी खानपान-संबंधी आचार-विचार के विषय में बातचीत हो रही थी। यह लेखक भी उस समय साथ था। बातों ही बातों में स्वामीजी के एक प्रश्न के उत्तर में जमनालालजी ने कहा—"शुद्ध हाथों से, शुद्ध पात्रों में, शुद्ध विधि से बनाया हुआ भोजन जो अभक्ष्य न हो, किसी के भी हाथ का करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" अपनी तरफ से मैंने भी इस विचार का समर्थन किया। पास ही एक अछूत मेहतर-बालक जा रहा था। स्वामीजी ने उसे पुकार कर कहा कि आज जमनालालजी तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे। सावधान जमनालालजी ने फौरन कहा—"इनके घर भोजन करने की अभी मेरी तैयारी नहीं है। पता नहीं कि घर पर इनके बरतन, रसोई आदि किस हालत में हों।" स्वामीजी ने झट् से कहा—"तो जमनादास, तुम नहा-धोकर आश्रम के और बालकों के साथ साफ बरतनों में खाना बनाओ और जमनालालजी और हरिभाऊजी आज तुम्हारे हाथ का खाना खायेंगे।" एक पल में भविष्य का सारा चित्र हमारे सामने खड़ा हो गया। हमारे मन में थोड़ी उथल-पुथल तो मची, पर दृढ़तापूर्वक अपने

वचन को निबाहा। जमनालालजी ने मुझे कहा कि मनुष्य के वचनों की परीक्षा का समय जब आये तब जो दुम न दबाये वही सच्चा मनुष्य है। चूरमा-बाटी बनी और हम लोगों ने भोजन किया। दूसरे ही दिन बड़ी बड़ी सुरखियों में यह समाचार अखबारों में छपा, चारों ओर सनसनी फैल गई।

जमनालालजी तथा श्री जाजूजी बिरादरी से तो पहले ही खारिज कर दिए गए थे। १९२४-२५ की बात है, जब लोगों को जमनालालजी के बारे में यह ज्ञात हुआ कि वे महात्माजी के आश्रम में हरिजनों के साथ व्यवहार रखते हैं और छुआ-छूत को नहीं मानते हैं तो वर्धा में एक दिन बालाजी के मंदिर में सभी ब्राह्मण, अग्रवाल और माहेश्वरी पंचों ने एकत्र होकर जमनालालजी को बिरादरी से बाहर कर दिया। और जाजूजी से पूछा कि आप बिरादरी में रहना पसंद करेंगे या सेठजी के साथ? साधुमना जाजूजी सहज भाव में बोले—"मुझे जमनालालजी के कार्यों में कोई अनौचित्य नहीं नजर आता। उनका साथ छोड़ने का कोई कारण नहीं दीखता।" इसपर जाजूजी भी जाति बाहर किए गए। बहिष्कार की आज्ञा भी विचित्र थी—न्यौता तो दिया जायगा, पर जीमने नहीं आना होगा। जमनालालजी और जाजूजी ने इस सारी कार्यवाही के बावजूद जातिवालों के कार्यों के प्रति कभी विद्वेष या प्रतिक्रिया की भावना नहीं बताई। यदि जमनालालजी चाहते तो सहज ही अपना पक्ष बलवान् बना सकते थे, परंतु, उन्होंने ऐसा करना उचित नहीं समझा और बिरादरी के बाहर ही बने रहे। बिरादरी से बाहर रहते हुए भी अपने स्नेह, सौजन्य और पवित्रता के कारण बिरादरीवाले सभी लोगों के स्नेहभाजन ही बने। उनके प्रति कभी किसीको रोष या विद्वेष नहीं था। इधर जमनालालजी और जाजूजी ने भी आदर्श सुधारक की भाँति इस बहिष्कार को प्रसन्नता के साथ सहन किया और मन में कुछ भी कटुता नहीं आने दी।

सच्चे साधक को भगवान इस तरह अपने-आप आगे ढकेलता है और उसे अनजान में ही अपनी कृपा का आश्वासन देता है। जब असहयोग-आन्दोलन में सेठजी ने मारवाड़ी विद्यालय को हरिजन बालकों के लिए खुलवा दिया, तब भी मारवाड़ी समाज में काफी विरोध हुआ था। मगर निष्ठावान् जमनालालजी अपने विचारों पर दृढ़ रहे। और समाज तथा बिरादरी की आलोचना की बिना परवाह किए अपने कर्तव्य पर आरूढ़ बने रहे।

बापू की ठक्कर बापा-के साथ हरिजन-यात्रा के दिनों में जमनालालजी ने स्वयं भी कई जगह के हरिजन दौरे किए। मंदिर, कुएं, पाठशालाएँ हरिजनों के लिए खुलवाने में काफी परिश्रम किया। कई जगह विरोधियों ने आप पर और आपके साथियों पर तथा मोटर पर पत्थर वर्षा की। रास्ते में ब्राह्मण, पंडे, पुजारी मोटर के आगे लेट जाते। किन्तु जमनालालजी विरोधियों को प्रेम से समझाते और आगे बढ़ते। राजस्थान में अमरसर में आप ही की प्रेरणा से अछूत-सहायक-मंडल की स्थापना की गई। राजस्थान चरखा-संघ के शुरू से ही आप प्रतिनिधि थे और उत्पत्ति केन्द्रों में चलने वाली अछूत पाठशालाओं की ओर आपका विशेष ध्यान रहता था। कई हरिजन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दीं। इस तरह अपने मार्गदर्शक पूज्य बापूजी के चरण-चिन्हों पर चलते हुए जमनालालजी के दर्शन हमें एक सच्चे मानव-सेवक के रूप में होते हैं––

"जमनालालजी ने सेवा के लिए एक विस्तृत क्षेत्र चुना है। उनका सम्बन्ध पूर्णतः किसी एक सम्प्रदाय या जाति से नहीं हो सकता। सम्पूर्ण विश्व उनका कुटुम्ब है और अपनी जाति की सेवा वे मानवता की सेवा के द्वारा ही कर सकते हैं।"

––गांधीजी (यंग इंडिया १३-१२-२८)

उनकी निर्भीक सुधार-प्रियता उनके अन्य समाज-सुधार के कामों में भी झलकती है। यद्यपि उनके विचार सारी मानव-जाति की सेवा के थे,

फिर भी उनका पाँव जमीन पर टिका रहता था। वे अपनी जाति अग्रवाल और वर्ण वैश्य को नहीं भूले थे। अग्रवाल-जाति के सुधार के द्वारा वे सारे वैश्य वर्ण का सुधार चाहते थे और वैश्य-वर्ण के सुधार के द्वारा भारत-माँ का मुख उज्वल करना चाहते थे। १९२६ में वे अग्रवाल-महासभा के दिल्ली अधिवेशन के सभापति हुए। उसके सभापति-पद से जो उन्होंने निर्भीक भाषण दिया उसकी प्रशंसा स्वयं महात्मा गांधी ने इन शब्दों में की थी:—

"अग्रवाल-महासभा के अध्यक्ष श्री जमनालालजी का व्याख्यान पढ़ने और विचार करने योग्य है। इस व्याख्यान में जमनालालजी ने संपूर्ण स्वतंत्रता और निर्भयता दिखाई है। मारवाड़ी-समाज यदि जमनालालजी की सूचनाओं के अनुसार कार्य कर सके तो वह जितनी धन कमाने में आगे बढ़ी हुई है, उतनी ही आवश्यक सुधार करने में भी आगे बढ़ सकेगी। जमनालालजी ने जिन सुधारों के करने पर जोर दिया है उनकी सारे हिन्दुस्तान और समस्त हिन्दू-समाज में आवश्यकता है। बहिष्कार के शुद्ध यन्त्र का दुरुपयोग, नीतिहीन और देश-हित विरुद्ध व्यापार, धनवानों में विलासिता, स्त्रीवर्ग में सुधार, बालविवाह, विवाह के खर्च का बोझ, उपजातियों की वृद्धि, शिक्षा का अभाव इत्यादि त्रुटियाँ हिन्दू-समाज में कई जगह कम-बेशी परिमाण में दिखाई देती हैं। इन त्रुटियों के कारण हम सत्वहीन बन जाते हैं। ये स्वराज्य के मार्ग में रोड़ा अटकानेवाली हैं। जमनालालजी ने अपने व्याख्यान में इन सब हानिकर रीति-रिवाजों पर और अस्पृश्यता-निवारण पर तथा खादी और गोरक्षा के उपायों में संशोधन करने पर काफी जोर दिया है। आशा है, सब सभासद इनपर अमल करेंगे और हिन्दू-जाति का मार्ग सरल करेंगे।"

: १६ :

'असाधुं साधुना जिने'

"जीवन में मैं इस तरह बरतना चाहता हूं कि मरते समय कोई मुझे अपना शत्रु समझनेवाला न रहे।"

—जमनालालजी

"मुझे किसी व्यक्ति का मोह नहीं है। जो कार्यकर्ता अच्छे हैं और अच्छी रीति-नीति से सच्चाई के साथ काम करते हैं, मैं उनका साथी हूं। जिनकी रीति-नीति में खराबी और गंदगी मालूम होती है, उनका साथ छोड़ देता हूं।"

—जमनालालजी

"अपने प्रतिपक्षी से जल्दी समझौता करो। अगर किसी के बारे में तुम्हारे दिल में कुछ गुस्सा है तो उसपर सूर्य को न डूबने दो। सूर्यास्त के पहले ही उसके पास चले जाओ और उससे बातचीत कर लो।"

बापूजी कहते हैं, मेरे लिए ये वाक्य वेदवचन से कम कीमती नहीं थे। यही अहिंसा की जड़ है। अहिंसा को हिंसा के मुंह में चले जाना है।

—२५ जून १९३९ को डायरी में जमनालालजी

सत्याग्रही या साधक की परीक्षा कठिन और विपरीत परिस्थितियों में तथा विरोधियों के बीच जितनी होती है, उतनी अनुकूलताओं और अपनों के बीच में नहीं। अनुकूलताओं और अपनों के बीच जहां उसके राग की परीक्षा होती है तहां प्रतिकूलता और परायों के बीच उसके द्वेष की। यदि अपनों में उसका राग हो गया तो परायों में द्वेष तो हो ही गया। एक तरह से तो राग की परीक्षा ज्यादा कठिन है, बनिस्बत द्वेष की परीक्षा के। क्योंकि द्वेष जल्दी झलक पड़ता है। सामनेवाले के विरोध में उसका पता

जल्दी लग जाता है परंतु अपनों के प्रेम में राग बेमालूम छिपा रहता है जैसे हरी घास में हरा साँप। मुझे जमनालालजी के राग और द्वेष दोनों को परखने के अवसर मिले हैं।

१९२७ की एक घटना मुझे याद आ रही है। श्रीपथिकजी से देशी-राज्यों में काम करने की प्रणाली के संबंध में जमनालालजी का मत-भेद था। इस मत-विरोध के कारण ही पथिकजी वर्धा छोड़कर वहाँ से अजमेर राजस्थान संघ ले जाकर काम करने लगे थे। जमनालालजी को उदयपुर-राज्य के एक मंत्री से पथिकजी के बारे में बातचीत करने का अवसर मिला। मेरे सामने की बात है। मंत्री ने पथिकजी की बुराइयाँ करके कहा कि वे बड़े चालबाज आदमी हैं। हमें उन पर तनिक भी विश्वास नहीं, भले ही आप उन्हें देशभक्त कहें। मैंने देखा कि पथिकजी पर यह हमला देखकर जमनालालजी का चेहरा सुर्ख हो गया। मैं यही देख रहा था कि जमनालालजी कितने गहरे पानी में हैं। उन्होंने कड़क कर जवाब दिया—"आप पथिकजी को क्या मानते हैं, इससे हमें मतलब नहीं, हम तो उन्हें देश-भक्त ही मानते हैं। हमारे उनके विचारों और नीति में मतभेद जरूर है, मगर इससे उनकी देशभक्ति पर आँच नहीं आ सकती।" ये अधिकारी यह चाहते थे कि जमनालालजी यह शर्त करें कि पथिकजी का कोई आदमी बिजोलिया के खादी-कार्यालय में न ठहरने पावे। जमनालालजी ने इसको मानने से साफ इन्कार कर दिया और कहा—"पथिकजी हमारे मित्र हैं। उनके आदमी हमारे कार्यालय में जरूर आवेंगे, और ठहरेंगे। हाँ, अगर वे हमारे कार्यालय में रहकर कोई राजनतिक काम करना चाहेंगे तो हम उन्हें जरूर मना कर देंगे। क्योंकि वह हमारी वर्तमान नीति के विरुद्ध है।" लगभग इन्हीं दिनों महात्माजी के सामने पथिकजी की उपस्थिति में एक अवसर पर जमनालालजी ने उनके विरुद्ध कड़ी से कड़ी भाषा में अपने विचार प्रकट किए थे। महात्माजी भी सुनकर दंग रह गए थे, कि इसके पहले जमनालालजी

ने कभी भी पथिकजी के खिलाफ एक भी बात नहीं कही थी, हालांकि उन्हें इसके कई मौके मिले थे। इन दोनों घटनाओं में जमनालालजी का खरापन और बहादुरी टपकती है। विरोधी के सामने कड़ी बात कहना और पीठ पीछे उसके गुणों की कद्र करना और उसकी प्रशंसा करना द्वेष-शून्यता ही नहीं शौर्य-बहादुरी का भी लक्षण है।

विरोधी विचार के लोगों के हृदय को जीतने की जबरदस्त उत्कटता जमनालालजी के मन में रहा करती थी। वे हमेशा प्रेम से द्वेष को तथा सत्य से असत्य को जीतने का प्रयत्न करते थे। सन् १९२५ की बात है। कांग्रेस में सूत की कड़ी शर्त थी। लोकमान्य तिलक के विचारों के सब से बड़े समर्थक श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर गांधीजी की विचारधारा के बड़े विरोधी थे। लेकिन उन्हें सदस्यता के लिए सूत की आवश्यकता हुई। जमनालाल जी ने स्वयं सूत कात कर उन्हें भेजा। इस सिलसिले में उन्होंने जो धन्यवाद का पत्र मराठी में लिखा उसे हिन्दी में नीचे दिया जा रहा है:—

"आपने जो सूत भेजा वह मिला। आपने मेरे लिए स्वयं सूत कात कर भेजा इसके लिए मैं आपका बहुत ऋणी हूँ। आशा है, आपका स्नेह तथा सद्भाव इसी प्रकार बना रहेगा।"

इसी प्रकार एक महाराष्ट्रीय युवक के पत्र का कुछ अंश भी यहाँ दिया जा रहा है। यह युवक ग्रेजुएट था तथा व्यापार के सम्बन्ध में ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिए वर्धा आया था। कुछ गलतफहमी हो गई और उसने सेठजी के प्रति कुछ दुर्व्यवहार किया लेकिन सेठजी की भावना वैसी ही रही और उनकी उच्चाशयता, उदारता आदि देख कर उसे बड़ा पाश्चत्ताप हुआ और उसने उनके सेक्रेटरी श्री दामोदर-दास जी मूँदड़ा को एक पत्र लिखा:—

"मैंने बिना कारण सेठजी पर दोषारोपण किया और उनका अनादर किया, जिसका मुझे बड़ा दुःख और पश्चात्ताप है, पश्चात्ताप से

पाप जल जाते हैं अतः क्या मैं आशा करूँ कि वे मुझे क्षमा करेंगे ? अज्ञानवश मैंने उनका मन दुखाया अतः मैं उनसे बिल्कुल क्षमा चाहता हूँ। क्या वे मुझे क्षमा का अधिकारीं नहीं मानेंगे ? मैं उनके क्षमा-पत्र की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।"

उत्तर में उसी समय जमनालालजी ने लिखा—"तुम्हें अपनी भूल नजर आई यह तुम्हारे हित की दृष्टि से अच्छा ही हुआ। तुम्हे भविष्य में भी इसी तरह सद्बुद्धि प्राप्त होती रहे यही ईश्वर से प्रार्थना है।" इस पत्र के बाद उस भाई के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया।

जमनालालजी का एक सेवक डरा धमकाकर उनसे पैसे लेना चाहता था। उसने एक बार धमकी दी—"मुझे इतने हजार रुपये दीजिए वर्ना गोली से उड़ा दूंगा।" जमनालाल जी हँसे और बोले—जरूर मार, मैं देखता हूँ। तू कैसे मारता है ? दूसरे दिन उसे काम से छुट्टी दी और परम मित्र भाव से उसे अपने स्थान का टिकट और खर्च के लिए पैसे देकर बिदा किया।

जयपुर-राज्य प्रजामंडल का एकअधिवेशन हो रहा था, जिसके अध्यक्ष जमनालालजी थे। एक नौजवान बीच बीच में सेठजी को तथा प्रजा मंडल को बुरा-भला कहते हुए काम में विघ्न डाल रहा था। अध्यक्ष जमनालालजी ने उससे चुप रहने का कई बार अनुरोध किया, पर व्यर्थ। यह बात कुछ लोगों को अखरी और वे नौजवान पर टूट पड़े—सो ही जमनालालजी खुद लपके और उसे लाकर अपने पास मंच पर बिठाकर शरण दी और स्वयं उसे खिलाफ जो-कुछ कहना था, उसके लिए सभा में बोलने की इजाजत भी दी।

राजस्थान के सार्वजनिक जीवन में दुर्भाग्य से उन्हें कुछ ऐसे कार्यकर्ताओं के विरोध का और विरोधी प्रचार का सामना करना पड़ा जिनको उन्होंने सदैव सहायता दी, अपनाया और आगे बढ़ाया। लेकिन, सैद्धांतिक या नीति-

विषयक आलोचनाओं के अतिरिक्त जमनालालजी ने कभी किसी का न बुरा किया, न बुरा चाहा बल्कि सदैव विरोधी को हृदय से जीतने का प्रयत्न करते रहे। एक भाई जमनालालजी के विरोधी हो गये थे। पहले साथ साथ काम शुरू किया था। उनकी कार्य-योजना पर जमनालालजी मुग्ध थे। अतः चाहते थे कि उनका विरोध-भाव निकल जाय। मुझे उसमें कुछ आशा नहीं दिखाई देती थी। एक बार एक दिन में कई घंटे उन्होंने उनसे बातचीत में बिताये। मैं झुंझला उठा—तो कहने लगे "मैं चाहता हूँ कि मरते समय मेरा कोई विरोधी न रहने पावे। इनका मुझे मोह है, इसलिए इतना परिश्रम करता हूँ। जो झगड़ा करके मुझसे दूर जा पड़े हैं, मेरी कोशिश है कि वे मेरे नजदीक आवें।" ऐसे ही एक भाई ने एक परचा छपाया था कि जिसमें कई व्यर्थ के आक्षेप और परस्पर विरोधी बातें थीं। उसके सिलसिले में मुझे उन्होंने एक पत्र लिखा था जिसके कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं, इनसे जमनालालजी की कई विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है :—

बजाजवाडी, वर्धा

९-७-३९

..........आदि के कुप्रचार को देखकर बड़ा दुख होता है। सीधे मार्ग में न चलकर उनकी बुद्धि उलटे ही मार्ग पर चलती जा रही है। मैंने परचों को देखा है।

........कभी कभी तो उनपर मन में बड़ी दया आती और उन लोगों पर क्रोध भी जो उनकी मानसिक स्थिति का खयाल न करके उन्हें अपना हथियार बना लेते हैं।

.......राजस्थान के सार्वजनिक जीवन और खासकर के राष्ट्रीय जीवन में मैं पिछले २५ वर्षों से दिलचस्पी ले रहा हूँ जैसा कि एक राजस्थानी होने के नाते मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। जो भी कार्यकर्ता मुझे मिले, मैंने

सब का उत्साह बढ़ाया, उन्हें या उनके कामों में आर्थिक सहायता भी काफी दी तथा दिलाई। दुर्भाग्य से अनुभव के बाद बाज बाज में ऐसी खराबियाँ और बुराइयाँ पाई गईं जिनके कारण मैंने बार बार उन्हें समझाने और काफी मौका देने के बाद व उनके द्वारा प्राप्त सुधार करने के आश्वासनों का पालन न होने के बाद अपनी सहानुभूति व सहायता हटा ली। अब इन्हींके पैदा हुए कारणों से इनकी सहायता बन्द हो जाने के बाद इनमें से कोई मुझे बदनाम करने की कोशिश करते हैं तो इसका कोई इलाज नहीं है। ....मैं सेवा या काम के लिए पार्टी या संगठन बनाना बुरा नहीं समझता। लेकिन, उसमें आदमी चरित्रवान होने चाहिए और गंदे तरीके से कोई काम न होना चाहिए। कहीं गंदगी मालूम होते ही उसे फौरन दूर करना चाहिए या उससे अपना संबंध हटा लेना चाहिए। अपना नेतृत्व राजस्थान में जमाने की मुझे कल्पना तक नहीं है। सच पूछिए तो.... आदि ने कई बार ऐसा आग्रह किया है कि मैं राजस्थान का नेतृत्व ले लूं, लेकिन मैंने सदा ही राजस्थान के कार्यकर्ताओं को यह जिम्मेदारी लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। ....वह परचा दाताओं को सावधान करता है कि धन आँखें खोलकर दें। अच्छा हो कि हम लोग इस परचे की एक एक प्रति साथ रखें। और जहाँ कहीं सहायता लेने जायँ पहले उनके हाथ में दे दें। फिर सहायता की बात कहें। मेरी राय में दाता को वहीं धन देना चाहिए जहाँ उन्हें विश्वास हो और वे देखें कि उनकी पाई पाई का सदुपयोग होता है। मैं यह भी मानता हूँ कि स्थानिक कार्यों में स्थानिक धनी और दूसरे लोगों को खूब रस लेना चाहिए। उन्हें खुले दिल से सहायता और सहयोग करना चाहिए। क्योंकि जब वे अपनी जिम्मेवारी पूरी नहीं करते तब बाहर की सहायता लेने पर मजबूर होना पड़ता है।

..........मैं एक जगह मानहानि का दावा करने का चैलेंज

मुझे दिया है। ऐसा मुकदमा चला कर उन्हें जेल भेजने में मुझे कोई खुशी नहीं हो सकती। मैंने तो उल्टा.....जेल से छुड़ाने की भरसक कोशिश की थी।

.......अब रही......पर हमला करने की तथा....पर कब्जा करने की बात, सो यह जानकर उन लोगों की बुद्धि पर तरस आता है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि सच्चे कार्यकर्ताओं पर ऐसी धमकियों का कोई असर नहीं हो सकता। हाँ, जो लोग ऐसे भद्दे तरीके काम में लाते हैं वे अपनी प्रतिष्ठा और भी लोगों की निगाह में घटाते है।"

जमनालाल बजाज

विरोधी का हृदय जीतने की तत्परता का एक प्रत्यक्ष उदाहरण मेरी जानकारी का है। उनके एक रिश्तेदार ने शादी के लिए रुपया उधार लिया। उनकी हालत अच्छी नहीं थी, अतः जमनालालजी ने इशारतन कहा भी कि रुपया न आवे तो हर्ज नहीं, घर की ही बात है। परन्तु, उन्होंने आग्रह करके रुपया नावे लिखवाया। तीन साल की सरकारी मियाद पूरी होने तक भी रुपये नहीं आये। इधर बही खाते पर भी दस्तखत नहीं थे। तब दुकान की ओर से तकाजे गये। इसपर वे बहुत बिगड़े। जमनालाल जी को उन इसके उल्टे व्यवहार वे बहुत दुख हुआ। दुकानवालों ने कायदे से नोटिस दे दिया। अब तो वे जमनालालजी को मौका बे मौका गालियां देने लगे। जमनालालजी रुपये देकर गालियां खाने व बैर मोल लेने के उदाहरण में यह घटना सुनाया करते थे। अदालत में दावा हुआ व डिग्री हो गई। मगर जमनालालजी ने डिग्री का अमल नहीं कराया।

एक बार मैंने जमनालालजी को लिखा कि आप मुकदमा न चलाते तो अच्छा था। उसके जवाब में उन्होंने जो पत्र लिखा वह जमनालालजी की तेजस्विता व न्यायप्रियता पर अच्छा प्रकाश डालता है :—

.........वे मुझे बुरी तरह से गालियाँ देते हैं, इसलिए रुपये

छोड़ना ठीक नहीं। उनका लेन-देन का जो व्यवहार रहा है, वह नीति के विरुद्ध और लेन-देन के विरुद्ध रहा है। उनको रुपये उनके कितने आग्रह करने पर दिये गये थे और उनकी इस रकम को डुबोने की कोशिश हो रही है। इस प्रकार का व्यवहार जिसका हो, वह कितना ही अच्छा कार्यकर्ता क्यों न हो, गालियों के डर से उसमें रकम नहीं छोड़ी जा सकती। मालूम नहीं, उनका मैंने क्या बुरा किया? हाँ, यदि रुपये उन्हें नहीं दिये गये होते तो गालियाँ सुननी नहीं पड़तीं। रकम न तो गालियों के डर से छोड़नी उचित है, न कांग्रेस में ट्रांसफर करनी उचित है। आप लिखते हैं और अनुभव करते हैं कि मुकदमा न चलाया जाता तो अच्छा होता, यह मेरी समझ में नहीं आया। मैं इस सिद्धांत को बिलकुल नहीं मानता कि व्यवहार व मित्रता में जो आदमी नीति और न्याय को छोड़ लोभवश अनुचित मार्ग को ग्रहण करता है, उसे कोरा छोड़ देना चाहिए। परिस्थिति ऐसी आ गई थी कि मुकदमे की मुद्दत जाने का वक्त आ गया था और उन्होंने कई चिट्ठियों का कोई जवाब नहीं दिया। कम से कम रकम न भेजकर रुपये जमा कराने की चिट्ठी ही आ जाती तो मुकदमा करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यही न्याय-निष्ठुर जमनालालजी १९३१ में हम लोगों के आग्रह पर लिखते हैं:—"वैसे तो मैं इसके खिलाफ हूँ कि ऐसा करके झगड़ा मिटाया जाय, उनका अभी जो व्यवहार रहा है वह ठीक नहीं रहा है। मुझे उनके व्यवहार से बिल्कुल संतोष नहीं रहा है। फिर भी, यदि आप लोगों का ऐसा ख्याल है कि मेरे रुपयों के कारण काम में बाधा पड़ती है तो मैं डिग्री को 'रिन्यू' नहीं करता और आपके पास भेज देता हूँ। आप लोग चाहें तो ......के सामने उनसे बता कर उनसे बातचीत करके उसे फाड़कर फेंक देना। जैसा आप लोग ठीक समझें करना। जब उनकी इच्छा हो रुपये दें, नहीं तो उन्हें बट्टे खाते मांड़ देंगे। बाद में उनकी इच्छा हो वैसा करें। अगर इतना करने से आप लोगों का रास्ता साफ हो जाय तो ठीक है।"

साथ ही उन्होंने उन सज्जन के नाम भी एक पत्र लिखा:—

"इस पत्र द्वारा आपको भी लिख देता हूँ कि अब आपकी इच्छा व आपको जिस प्रकार संतोष हो उस प्रकार ही आप रकम देना चाहें तो देवें। अथवा, जब जिस प्रकार देने में सुविधा समझें वैसा करें। मेरी ओर से अब रकम वसूल करने की कार्यवाही न की जायगी। आशा है, आपके मन में जो दुःख व नाराजगी हुई हो उसे भूलकर पूर्ववत् प्रेम रखें व सार्वजनिक काम में आपसी व्यवहार के कारण जो हानि पहुँची उस प्रकार की हानि भविष्य में न पैदा हो इसका पूरा खयाल रखेंगे और ज्यादा खुलासा तो किसी समय समक्ष में मिलना होगा तब हो जायगा।"

वह डिक्री मेरे पास पड़ी रही। बाद को दूसरे कर्जदारों ने इन सज्जन की जायदाद कुर्क करने की कोशिश की तो उन्होंने चाहा कि जमनालालजी अपनी डिक्री इजरा कराके जायदाद पर कब्जा कर लें और फिर जायदाद उन्हें लौटा दें। उनकी मुसीबत देखकर जमनालालजी इस बात पर भी राजी हो गये, पर अन्त में इसकी जरूरत नहीं पेश आई।

इसी प्रकार की एक और घटना की जानकारी भी मुझे है। बच्छराज जी की मृत्यु के बाद उनके एक संबंधी ने जमनालालजी पर मुकदमा चलाया और हर तरह से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि बच्छराजजी की संपत्ति के वारिस अकेले जमनालालजी नहीं हैं बल्कि वे भी हैं। मुकदमा कई दिनों तक चलता रहा। उन्होंने कई तरह के प्रयत्न किये, लेकिन जमनालाल जी ने उनके प्रति कोई वैर-भावना नहीं आने दी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने स्वयं जमनालालजी को पत्र लिख कर क्षमा मांगी और लिखा कि—आपसे मुकदमा किया यह मेरी भूल हुई। सो आप मुझे इस कसूर की माफी दें। मेरी इच्छा है कि आप मेरा जीवन बिगड़ने न दें और मुझे रात दिन की झंझट दुःख व तकलीफ से शान्ति दें। यही हाथ जोड़कर प्रार्थना है।"

एक सज्जन बड़े आर्थिक संकट में आ गये थे। जमनालालजी ने उनकी हर तरह सहायता की। उनकी आँखें खराब हो गईं तब भी उन्होंने आगे बढ़कर बड़ी मदद की। बाद में जब 'चित्रा' तथा 'सावधान' पर मानहानि का मुकदमा चला तो यही महाशय विरोधी पक्ष के वकील बनकर आये और बिना फीस के उनका काम किया, जिसमें जमनालालजी से अशोभनीय और अशिष्ट प्रश्न पूछे। इसपर मुनीम जी आपे से बाहर हो गये और कहा—"भस्मासुर की तरह अपने जीवनदाता को ही मारने पर उद्यत हुए हो।" किन्तु, जब जमनालालजी को मालूम हुआ तो वे मुनीमजी पर बहुत बिगड़े और कहा—"एक तो किसी पर उपकार मत करो और करो तो उसका बखान न करो। हम तो अहिंसाधर्मी हैं न? करो और भूल जाओ।"

एक बार जमनालालजी मध्यप्रांतीय (नागपुर) कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। स्वराज्य पार्टी कांग्रेस-कमेटी को अपने हाथ में लेना चाहती थी और इसके लिए झूठे मेम्बर बनाये गये थे। कमिटी के २४ सदस्यों में से २२ सच्चे मेम्बर मौजूद थे। चुनाव के लिए मीटिंग बुलाई गई थी और जमनालालजी उसका सभापतित्व कर रहे थे। जमनालालजी के पक्ष का भारी बहुमत था, किन्तु जरा-सी बात लेकर मुंजे पार्टी ने एतराज किया जिसे जमनालालजी चाहते तो उड़ा दे सकते थे। किन्तु, उन्होंने अपने पक्ष पर जरा भी आक्षेप आने देना ठीक न समझा और सामने वालों के झूठे मेम्बर होते हुए भी चुनाव नहीं किया। वे जानते थे कि जब हम सीता या सीजर की रानी की तरह सर्वथा संदेह से परे रहेंगे तभी हम विरोधियों को जीत सकेंगे।

एक बार श्री रामकृष्णजी डालमियां का कोई मामला कांग्रेस की कार्य-समिति में पेश होने वाला था। उसमें जमनालालजी को रामकृष्ण जी के पक्ष की कुछ गल्ती दिखाई देती थी। जिनसे जमनालालजी की घनिष्ठता होती थी उनसे भूल न होने पाये और यदि भूल हो जाय तो

न्हें दिखाई जाय और दुरुस्त कराई जाय इसका वे बड़ा खयाल रखते । सच्ची मित्रता वे इसीको मानते थे । तदनुसार उन्होंने रामकृष्ण ो को लिखा (१३--४--३८) "एक बात का खयाल तो हम लोगों ो भी रखना चाहिए । अपनी ओर से जो प्रचार इस सिलसिले में हुआ उस बारे में अतिशयोक्ति का दोष तो हम पर भी आता है। अतः आशा भविष्य में आप इस बात का भी खयाल रखेंगे । इस तरह के प्रचार से ागों में विरुद्ध भाव या द्वेषभाव बढ़ने का कारण हो जाता है। अपनी ओर जो प्रचार-कार्य हो उसमें व्यक्तिगत प्रशंसा या अतिशयोक्ति नहीं रखनी हिए ।"

. १७

दरिद्रनारायण में

"आपका बिजौलिया-निवासियो से खासकर वहा के किसानो व राजकर्मचारियों से अधिक प्रेम व घनिष्ठता का सबध होते देखकर एक प्रकार से ईर्ष्या होती है कि मुझे यह मौका क्यो नहीं मिला। लेकिन ऐसे मौके तो ईश्वर की कृपा से ही मिलते है। विश्वास होता है कि उदयपुर और बिजोलिया के राज्य-कर्मचारियो पर भी हम लोगो के सीधे व सच्चे भाव से सेवा करने के मार्ग का स्थायी तौर से असर होगा और भविष्य में प्रजा का व उनका सबध घनिष्ठ व प्रेममय बना रहेगा।"

"शिवरात्रि के समय तिलस्वाँ में खादी-प्रदर्शिनी तथा गाँव के सब लोगो के मिलने का आयोजन किया यह देख वहाँ आने की बहुत इच्छा होती है। वहा आने से मन को शाति भी मिलती और मन को सतोष भी होना सभव था ....आप मेरी ओर से बिजोलिया निवासियो को खास कर के किसानो को बधाई दें और उनसे प्रार्थना करें कि श्री जेठालाल भाई ने शुद्ध प्रेम-भाव से प्रेरित होकर जो परिश्रम उनके कल्याण के लिए किया है उसका खयाल कर अपने जीवन में खादी के स्वावलबन-मत्र को कदापि न भूलें और अपने इष्ट-मित्र, सगे-सबधियो में इसके महत्व का भले प्रकार प्रचार करें। और सामाजिक त्रुटियां जो कुछ भी हो, उन्हें बहादुरी व हिम्मत के साथ दूर करने का निश्चय करें। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे उन्हें सद्बुद्धि व सन्मार्ग पर चलने के लिए हिम्मत प्रदान करें।"

जमनालालजी (पत्र मद्रास—२७-२-२९)

"मैं आज उमराई रानीपरज (सूरत, जिले गुजरात की एक आदिवासी जाति) परिषद में जाकर आया हूँ। सभा ठीक हुई। रानीपरज प्रजा में

खूब जागृति हुई है। खादी-प्रचार व दारू-निषेध का खास कार्य हुआ है। उनकी जाति में आज हजारों की संख्या में शुद्ध खादी पहननेवाले स्त्री पुरुष हैं। हजारों की संख्या में दारू पीना बन्द कर दिया है। जिस समय वहाँ की बहनें (देवियाँ) सैकड़ों की संख्या में शुद्ध सफेद खादी पहने हुए राजनैतिक जागृति व बारडोली-संघटन, रेंटिया (चरखा) महत्व तथा अन्य सामाजिक सुधार के गीत व भजन अपनी भाषा में व गुजराती में गाती हैं उस समय किसी भी सहृदय भारतवासी के मन में उनकी इस जागृति को देख आनन्द का संचार हुए बिना नहीं रहता। ईश्वर ने किया तो इस पिछड़ी हुई जाति में जिसमें पूज्य बापूजी दरिद्र-नारायण के दर्शन करते हैं, अवश्य पूज्य बापूजी की तपश्चर्या के कारण नवजीवन स्थायी तौर पर स्थापित हो जावेगा। जहाँ पूज्य वल्लभ भाई सरीखे कार्य-कुशल नेता और पूज्य बापू के विचारों में श्रद्धा रखनेवाले अधिक संख्या में कार्यकर्ता सैनिक हों, वहाँ नवजीवन (नवयुग) कायम होना स्वाभाविक है।

"क्या राजपूताने की प्रजा में भी इस प्रकार नवजीवन प्राप्त होगा? मैं समझता हूँ अवश्य होगा। अगर हम लोग सच्ची लगन व प्रामाणिकता के साथ सेवा करते रहेंगे तो। वर्तमान में तो राजपूताने का दुर्भाग्य है। वहाँ न तो सच्चा और कार्यकुशल नेता ही है और न सच्चाई व लगन के साथ काम करनेवाले सेवक ही हैं। हाल तो परमात्मा से प्रार्थना कर के ही संतोष करना पड़ता है कि राजपुताने में नवजीवन का संचार करें।"

—जमनालालजी (पत्र: बंबई २४-४-२९)

उड़ीसा में बापू को दरिद्रनारायण के दर्शन हुए। नारायण तो घर घर में है—परन्तु, दयावान को दुखी में उसके पहले दर्शन होते हैं। भारत की दरिद्रता भगवान का रूप लेकर बापू के सामने आई। वे उसके भक्त व पुजारी हो गये। बापू के भक्तों ने भी दरिद्रनारायण की पूजा शुरू की। जमनालालजी ऐसी भक्ति में अग्रगण्य रहना चाहते थे।

रानीपरज की जागृति को देखकर उन्हें जो उल्लास हुआ वह ऊपर के पत्र में प्रकट है। बिजोलिया के किसानों की सेवा का प्रत्यक्ष अवसर न मिलने से जो खेद उन्हें रहा वह......'ईर्ष्या होती है।' इन शब्दों से अच्छी तरह ध्वनित होता है। हालांकि बिजोलिया में मैं जो कुछ काम कर रहा था वह उन्हींकी प्रेरणा से ,उनके प्रतिनिधि के ही रूप में था। उन्हींका काम था। उनके इस सेवाभाव का प्रत्यक्ष अनुभव मुझे तब हुआ जब उनके साथ बिजौलिया की यात्रा का सुअवसर आया। मई, जून की घनी धूप, पहले मोटर में, फिर ऊँट पर, फिर पैदल, भर दुपहर में बिजोलिया के मंगरे पर जिस उत्साह के साथ वे जा रहे थे वह देखते ही बनता था। बदन पसीने से तर, सूरज की तेजी से सिर को बचाने के लिए, पलाश के पत्ते गांधी कैप में इधर-उधर खोंस लिए थे। एक धाकड़ किसान के घर में उसकी स्त्री के हाथ की मोटी मोटी रोटी जीवन में पहली बार खाकर वे ऐसे ही कृतार्थ हुए थे जैसे राम शबरी के बेर खाकर मगन हुए थे। जब टोकरी में रखी रोटियां निकाल निकाल कर किसान कच्चे आम के साग के साथ- उन दिनों वहाँ साग का नामो-निशान न था—हमें परोस रहा था तब उसका गद्गद् कंठ तथा जमनालालजी का प्रेमभीना चेहरा आज भी ज्यों का त्यों मेरी नजरों में नाच रहा है। इसीको लक्ष्य कर उन्होंने वहाँ की आम सभा में कहा था:—

"हमने हाथ से काम करना छोड़ दिया। देश गरीब हो गया। किसानों की हालत बिगड़ गई। हाथ की रोटी खाना हमें नसीब नहीं होता। हमारे पापों के कारण हमें रसोइया की रोटी खानी पड़ती है। वह मुझे अच्छी नहीं लगती। परिश्रम की चीज प्यारी लगती है। उसमें खर्च कम होता है। शहरों में तो हम रोटी भी मोल लेकर खाते हैं। चूल्हे भी कई जगह नहीं हैं। मनुष्य को अन्न व कपड़े के लिए पराधीन न होना चाहिए।"
वे कई बार कहा करते थे कि मेरा जी चाहता है कि गाँव में बैठकर दरिद्र

बनकर गाँववालों की—दरिद्रनारायण की—सेवा करूं, किन्तु शहर के ऐसे संस्कार पड़ गये हैं, ऐसी परिस्थिति बन गई है कि देहात का जीवन मेरे अनुकूल नहीं हो सकता। जहाँ और लोग देहात में बसने के नाम से घबराते थे वहाँ वे इस सद्भाव से वंचित रह कर अफसोस करते रहते थे। यही तड़प उनको बिजोलिया खींच ले गई। जब बिजोलिया के किसान स्त्री-पुरुषों ने अपूर्व उत्साह से सूतमालाओं द्वारा जमनालालजी का स्वागत किया तो वे गद्‌गद्‌ हो गये और उनके मुँह से ये प्रेमभीने उद्‌गार निकले:—

"पूज्य प्यारे भाइयो, आपने जो प्रेम बरसाया है उसके लिए मैं किन शब्दों में आभार मानूँ? मैं जानता हूँ कि मैं आप लोगों के प्रेम के योग्य नहीं हूँ। आपमें जो शुद्ध भावना, सच्चाई, और सरलता है, परिश्रम करके आप जो शुद्ध पवित्र अन्न खाते हैं और उससे आपके अन्दर जो भक्तिभावना और पवित्रता है उसका कोई भी समझदार आदमी आदर किये बिना नही रह सकता। एवं शुद्ध पवित्र भाई-बहन, वृद्ध की तरफ से जो आशीर्वाद मिलें उनसे आनन्द मिले बिना नही रह सकता।"

बिजोलिया मेवाड़ में एक ठिकाना है, जहाँ किसानों ने अपनी पंचायत का एक संगठन बनाया था। उसका लाभ उठा कर वहाँ वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग हो रहा था जिसमें जमनालालजी की पूरी दिलचस्पी थी। वे विश्वास करते थे कि वस्त्र-स्वावलंबन की पद्धति ही खादी-आन्दोलन का प्राण और बापू के खादी-सिद्धांत का मुख्य तत्व है ,परन्तु, कहते थे कि इस पद्धति को समझने , करने और निष्ठा से लंगोट बांध कर गांव में बैठनेवाले कार्यकर्ता इने गिने भी नहीं हैं। अतः यह पद्धति अभी अधिक कामयाब नहीं हो सकती और जबतक खादी के प्रति शिक्षित कार्यकर्ताओं का ध्यान आर्कषित न हो तबतक वे व्यापारिक खादी के संगठन में अपनी प्रधान शक्ति लगाते थे।

वस्त्र-स्वावलंबन के सिलसिले से जब खादी-कार्यकर्ता बिजोलिया बैठे तो वहाँ के किसानों का एक बड़ा संकट उनकी निगाह में आया जिसे दूर करने के लिए जमनालालजी की सहायता चाही गई। पथिकजी और उनके साथियों ने किसानों के लाग-बाग और लगान संबंधी कष्टों को मिटाने के लिए यह पंचायत संगठन किया था। उसके द्वारा आन्दोलन करके तत्कालीन मेवाड़ सरकार से एक समझौता करके उन्होंने कुछ रियायतें भी करा ली थीं। परन्तु, अन्त में कुछ शिकायतों को लेकर उन्होंने किसानों को सलाह दी कि वे अपनी माल-जमीन का इस्तीफा दे दें। उनका खयाल तो यह था कि सरकार इस्तीफा मंजूर नहीं करेगी। यदि कर भी लेगी तो जमीन को उठानेवाले दूसरे काश्तकार नहीं मिलेंगे। लेकिन, दोनों बातों में उनका अन्दाज गलत निकला और किसान अपनी जमीन खो बैठे। लेने के देने पड़ गये। तब उनके तत्कालीन नेता श्री माणिकलालजी वर्मा ने जमनालालजी की सहायता मांगी, उन्होंने अपने प्रतिनिधि के तौर पर मेरे सिपुर्द पंचायत के सलाहकार का काम किया और उनके पथ-प्रदर्शन में पंचायत से मेवाड़-राज्य का फिर एक समझौता हुआ जिसके अनुसार किसानों की शिकायतें दूर होकर जमीन वापस दिलाना तय हुआ।

कुछ जमीन नहीं लौटाई गई उसको लेकर किसानों ने फिर श्री वर्मा जी के नेतृत्व में सत्याग्रह (१९३०–३१) शुरू किया जिसमें फिर जमनालालजी मध्यस्थ हुए और मेवाड़ के तत्कालीन "एडमिनिस्ट्रेटर" सर सुखदेवप्रसाद से अंतिम समझौता होकर किसानों में शान्ति स्थापित हुई और उनकी शिकायतें भी दूर हो गई।

यद्यपि किसानों में अपने कष्टों और हकों केलिए राज्य से लड़ने की भावना और हिम्मत पंचायत के नेताओं ने उत्पन्न की, परन्तु बाद में जमनालालजी के इधर वस्त्र-स्वावलंबन और उधर जमीनों के मामले को संभालते रहने से मेवाड़ की राजनैतिक जागृति को बड़ा बल मिला। और बिजो-

लिया के किसानों के दिलों में जो अंधेरा-सा छा गया था और निराशा फैल गई थी उसमें फिर आशा और जीवन फैलाने का सबसे अधिक श्रेय जमनालालजी को ही है ।

उस समय देशी-राज्यों में राजनैतिक काम करना असंभव था । स्थानिक लोगों में तत्कालीन नरेशों ने इतना आतंक फैला रखा था कि सत्ताधारियों और शासकों के अत्याचारों के खिलाफ चूं तक करने की हिम्मत नहीं थी, यद्यपि इधर-उधर से यह आवाज उठती थी कि कांग्रेस को देशी राज्यों के राजनैतिक काम की ओर भी ध्यान देना चाहिए। खुद जमनालाल जी ने सन १९२० में ही नागपुर कांग्रेस के अपने स्वागताध्यक्ष के भाषण में देशी-रियासतों के लिए कांग्रेस का ध्यान खींचते हुए ये शब्द कहे थे:—

"कांग्रेस के भावी उद्देश्यों में देशी-राज्य और वहाँ की प्रजा को भी शामिल करना चाहिए। देशी रियासतों में रहनेवाले भी राष्ट्र के एक अंग हैं ।"

देशी राज्य प्रजा-परिषद् ब्रिटिश भारत की हद में बैठकर रियासतों में राजनैतिक जागृति और आन्दोलन करने का प्रयत्न करती थी । परन्तु, महात्माजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने यही नीति स्वीकार की थी कि देशी राज्यों में फिलहाल—रचनात्मक काम ही किये जायँ । उनके द्वारा जबतक जनता मे संगठन और आत्म-विश्वास न उत्पन्न हो तबतक राजनैतिक कार्य और आन्दोलन दूर बैठे-बैठे सफलतापूर्वक नहीं चलाये जा सकते । इसी नीति के अनुसार राजस्थान में जमनालालजी मुख्यतः खादी-काम के द्वारा भिन्न-भिन्न राज्यों में रचनात्मक संघठन करने में अपनी शक्ति लगा रहे थे । यद्यपि उनकी सहानुभूति सभी देशी-राज्यों की जनता के साथ थी फिर भी राजस्थान में जन्म होने के कारण राजस्थानी प्रजा का अपनेपर खास अधिकार समझते थे। इससे पहले शेखावटी में सेवासमितियों और पाठशालाओं आदि के द्वारा स्थानिक जनसेवक कुछ रचनात्मक सेवा करते रहते थे ।

परन्तु, जमनालालजी का ध्यान इस तरफ जाने के बाद इन तमाम प्रवृत्तियों को बहुत बल मिला। खादी-यात्रा में उन्होंने राजपूताना और मध्यभारत की प्रत्येक प्रमुख रियासत में दौरा किया। इसमें उन्हें काफी परिश्रम करना पड़ा व कठिनाइयां भी आईं। देशी-राजा व उनके दीवान आदि बहुत भयभीत रहते थे और हर बात को शंका की दृष्टि से देखते थे। यहां तक कि बीकानेर में तो खादी-यात्रा के लिए भी उन्हें नहीं जाने दिया गया और वहां की पुलिस ने उन्हें बीकानेर की हद से निकाल दिया था। इसपर टिप्पणी करते हुए १७ नवंबर १९२२ के "यंग इंडिया" ने लिखा था:—"बीकानेर-राज्य द्वारा रोक लेने पर, जमनालालजी व उनके साथियों के साथ नासमझी के व बेहूदा दुर्व्यवहार के लिए जब कि वे सिर्फ स्वदेशी खादी-प्रचार के लिए वहाँ गये थे, लोगों ने उसकी जो आलोचना की वह ठीक ही थी।"

खादी-कार्य में जमनालालजी की अपूर्व निष्ठा थी। स्वयं बापू ने उनकी खादी-निष्ठा के बारे में लिखा है:—"खादी-कार्य में उनकी दिलचस्पी मुझसे कम न थी। खादी के लिए जितना समय मैंने दिया उतना ही उन्होंने भी दिया, उन्होंने इस काम के पीछे मुझसे कम बुद्धि खर्च नहीं की थी। इसके लिए कार्यकर्ता भी वे ही ढूंढ़ ढूंढ़ कर मेरे पास लाया करते थे। थोड़े में यह कह लीजिए कि यदि मैंने खादी का मन्त्र दिया तो जमनालालजी ने उसको मूर्तरूप दिया। खादी का काम शुरू होने के बाद मैं तो जेल में जा बैठा। मगर वे जानते थे कि मेरे नजदीक खादी ही में स्वराज्य है। अगर उन्होंने तुरन्त ही उसमें रत होकर उसको संगठित रूप न दिया होता तो मेरी गैरहाजिरी में सारा काम तीन-तेरह हो जाता।"

बापूजी के सिद्धांत और आदर्शों के अनुसार राजस्थान में काम करने की उन्हें बड़ी लगन थी। इसलिए उन्होंने खासतौर पर बापूजी से मांग कर मुझे यहाँ भेजा। उन्होंने सस्ता साहित्य-मंडल की स्थापना १९२५ में ही

अजमेर में कराई। श्री देशपांडे जैसे तेजस्वी और क्रियाशील कार्यकर्ता को अहमदाबाद से लाकर राजस्थान चरखा संघ का मन्त्री बनाया व वे खुद उसके एजेंट रहे। जयपुर, उदयपुर, इन्दौर, ग्वालियर और अजमेर ये पांच इन प्रवृत्तियों के मुख्य केन्द्र रहे। एक ओर जयपुर-रियासत में खादी के उत्पत्ति-केन्द्र चर्खा-संघ की छत्रच्छाया में बढ़ रहे थे, तो मेवाड़ में बिजोलिया के द्वारा सेवा, संघटन और राजनैतिक जागृति का कार्य हो रहा था। मध्यभारत में खादी-फेरी और बिक्री के भंडारों द्वारा काम शुरू हुआ, जिससे मध्यभारत के खादी-भण्डारों की नींव पड़ी। अमरसर (जयपुर) इन्दौर आदि स्थानों पर होनेवाली खादी-प्रदर्शनियों के उद्घाटन किये और उन्हें प्रोत्साहित किया। विभिन्न रियासतों के नरेशों और अधिकारियों से मिलकर खादी पर से चुंगी हटाने व खादी-कार्य में मदद दिलाने का प्रयत्न किया।

सस्ता साहित्य-मंडल के द्वारा अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन के साथ ही "त्यागभूमि" जैसी उच्चकोटि की मासिक पत्रिका निकली जिसके अभाव को आज भी हिन्दी पाठक अनुभव कर रहे हैं। "त्यागभूमि" नाम भी जमनालालजी का ही सुझाया हुआ था। वे भारत को और खासकर राजस्थान को त्यागभूमि मानते थे और जीवन में त्याग को सर्वोपरि महत्व देते थे। १९२१ के युवराज के स्वागत-बहिष्कार के आन्दोलन और "खिलाफत आन्दोलन" के समय स्व० सेठीजी, शारदाजी और भार्गव जी के नेतृत्व में अजमेर का कांग्रेस-आन्दोलन शिखर पर जा पहुँचा था। परन्तु, बाद में आपस की फूट से १९२५-२६ तक कांग्रेस-संगठन छिन्न-भिन्न ही नहीं हो गया था, बल्कि कांग्रेस-कार्यकर्ताओं की प्रतिष्ठा भी नहीं रह गई थी। इन्हीं दिनों महात्माजी के आदर्शों से अनुप्राणित जो कार्यकर्ता राजस्थान में आये थे, उनका ध्यान कांग्रेस की इस दुरवस्था की ओर गया और उनमें से कुछ ने खासकर बाबाजी—नृसिंहदासजी ने संघटन को

शक्तिशाली बनाने का संकल्प किया। जमनालालजी नहीं चाहते थे कि जो लोग रचनात्मक कामों में लगे हुए हैं, वे राजनैतिक कामों में पड़ें; क्योंकि वे मानते थे कि जिन झगड़ों से कांग्रेस-कमेटी छिन्न-भिन्न हुई उनमें ये कार्यकर्ता कोरे उत्साह में आकर पड़ गये तो राजनैतिक काम होना तो दूर, रचनात्मक काम को भी धक्का लगेगा। इसलिए बावजूद इसके जिन्होंने कांग्रेस-संगठन में दिलचस्पी ली उनका इस दृष्टि से मार्गदर्शन करने के अलावा कि कोई गलत और बेजा काम उनसे न हो जाय, कोई अमली दिलचस्पी नहीं ली। वे हमेशा भिन्न भिन्न पार्टियों में समझौता करवाने का प्रयत्न करते रहे।

जब फैजपुर और हरिपुरा-कांग्रेस के बाद देशी-रियासतों में प्रजा-मण्डल और उनके द्वारा भिन्न भिन्न रियासतों में राजनैतिक काम करने तथा स्वराज्य और नागरिक स्वतन्त्रता की मांग रखने की नीति का समर्थन कांग्रेस ने किया तब जरूर उन्होंने राजस्थान के भिन्न भिन्न प्रजा-मण्डलों को प्रोत्साहन दिया। किन्तु तब भी जयपुर राज्य-प्रजामण्डल को प्राणवान बनाने में उन्होंने अपनी अधिक से अधिक शक्ति लगाई। क्योंकि एक तो वे यह मानते थे कि जयपुर-राज्य में जन्म होने के कारण जयपुर की प्रजा का काम उन्हें पहले हाथ में ले लेना चाहिए, और दूसरे वे कहा करते थे कि एक जगह शक्ति लगाकर यदि अच्छा बल और संगठन उत्पन्न कर लिया जाय और जनता की शक्ति के द्वारा उत्तरदायी शासन प्राप्त कर लिया जाय तो दूसरी जगह के प्रश्न अपने-आप हल हो सकेंगे। वे कहा करते थे कि मुकाबला करना हो तो किसी तगड़े से करना चाहिए, किसी गरीब और निर्बल राजा से भिड़ने में न तो बहादुरी ही है और न उस सफलता का असर ही बलवान राजा पर पड़ सकता है। उन दिनों स्व० बीकानेर-नरेश राजपूताना में तगड़े राजा गिने जाते थे। वे उनसे लोहा लेना चाहते थे; परन्तु खुद बीकानेर के निवासी नहीं थे, अतः जयपुर ही में उन्होंने अपनी शक्ति

लगाई। क्योंकि प्रभाव की दृष्टि से राजपूताने में जयपुर भी अपना खास महत्व रखता था।

जमनालालजी जन-सेवा में इतने मग्न होते गये कि उन्होंने व्यापार-वाणिज्य में भी दिलचस्पी लेना कम कर दिया: आगे तो उनका यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि गरीबों की सेवा गरीब बन कर ही की जा सकती है। उन्हें धन-वैभव से अरुचि-सी होन लगी थी। उन्होंने अपनी पुत्री कमला को जयपुर जेल से २७ जून १९३९ को जो पत्र लिखा उसमें लिखा है:—

चि० कमला

तुझे व्यापार में खूब रस आने लगा है। कमल को खूब धनवान बनाना चाहती है। ज्यादा धनवान बन जायगा तो वह फिर तुम लोगों से प्रेम स्नेह भी नहीं रख सकेगा। प्रायः धनवानों का प्रेम जैसे जैसे धन के साथ बढ़ता जाता है वैसे वैसे घर कुटुम्बी, दुखी गरीबों के साथ कम होता जाता है। तुम चाहो तो इसका पता लगा सकती हो।"

एक किसान-परिषद में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—

"व्यापार के दोष को मैं समझता हूँ और मेरी बुद्धि के अनुसार उन्हें कम करता आ रहा हूँ और कम करता रहूँगा। किन्तु मैं मानता हूँ कि जो लोग शरीर से परिश्रम करते हैं उन्हें ज्यादा अधिकार मिलने चाहिएँ। यह बात केवल काश्तकारों के लिए नहीं—खेती के अतिरिक्त जितने भी अन्य धन्धे करने वाले लोग है, उन सब के लिए ठीक है।"

मजदूर-सेवा से यों उनका सीधा संबंध ज्यादा नहीं रहा, किन्तु उन्होंने सदैव मजदूरों का पक्ष लेकर मालिकों को उनके प्रति अपने कर्तव्य पालन के लिए सचेत किया है। डालमियानगर में एक बार उन्हें मान-पत्र दिया गया तो उसके उत्तर में—"संसार के तमाम औद्योगिक देशों के मजदूर-जगत् में जो अशांति फैल रही है उसका जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—दोनों पक्ष की तरफ से ऊट-पटांग मांगें पेश करने का ही

प्रायः यह नतीजा है । मजदूरों की दशा अवश्य सुधारनी चाहिए मगर उद्योग को नुकसान पहुँचाकर नहीं। क्योंकि उसीपर तो मजदूरों का दारोमदार है । पूँजीपतियों को इतना मुनाफा नहीं उठाना चाहिए जिससे मजदूरों को भूखा और नंगा रहने की नौबत आवे. . . .इसमें से कोई मध्यम मार्ग ऐसा निकाल लेना चाहिए जिससे दोनों के साथ न्याय हो । वे एक दूसरे को मित्र और भाई समझें न कि परस्पर को सन्देह की दृष्टि से देखें । तभी औद्योगिक उन्नति संभवनीय है ।

: १८ :

'हीरा पायो गांठ गंठियायो'

वर्धा, बुधवार
२५-१०-१९२२

पूज्य श्री बापूजी,

मेरे बारे में आपने जो रास्ते बताये, उनका मैं उपयोग करूँगा और अवश्य उस मार्ग से लाभ पहुँचेगा, परन्तु, अभी तो यही लज्जा आती है कि अपने मन की ऐसी हालत में मुझे आपके पुत्र बनने का ऐसा क्या अधिकार था जो आपपर यह जवाबदारी डाल दी? परन्तु, वास्तव में जवाबदारी मेरे ऊपर है। ईश्वर आपके आशीर्वाद से यह ताकत देवेगा उस रोज शांति भी मिलेगी......आप चिन्ता न करें। आपके पवित्र आशीर्वाद से कठिन से कठिन कार्य में अवश्य सफलता मिलेगी"

जमनालाल बजाज

"उनका अपना जीवन भी कैसा अनोखा था! एक दिन आकर कहने लगे "मानता हूँ कि आपका मुझपर बड़ा प्रेम है लेकिन मुझे तो देवदास की तरह आपका पुत्र बनना है।" पहाड़ी डीलडौलवाले जमनालालजी को मैं अपना पुत्र कैसे बनाता? परन्तु, आखिर उनके प्रेम और आग्रह के सामने मुझे झुकना ही पड़ा। मैंने कहा—"अच्छी बात है।" लोग बेटे को गोद लेते हैं, लेकिन यहाँ तो बेटे ने बाप को गोद लिया। और गोद भी किस तरह लिया? बोले—"बस, अब तो मुझे अपना अन्तर्बाह्य सब सदा के लिए आपके चरणों पर चढ़ा देना है। मेरे मन में मलिन विचार तो आते ही रहते हैं, लेकिन, अब मैं उन सब को आपके सामने उगल दिया

करूँगा ताकि मेरी शुद्धि हो, और मुझे शान्ति मिले। अपने इस संकल्प का उन्होंने मरते दम तक पालन किया।"

—गांधीजी

जमनालालजी का यह पत्र बताता है कि बापू के पांचवां पुत्र बनने की अपनी जिम्मेदारी को कितनी महसूस करते थे। वैसे १९१६ में ही उन्होंने जब कि पुत्र नहीं बने थे, बापू को निमन्त्रण दिया था कि आप वर्धा में अपना आश्रम स्थापित कीजिए। उन दिनों साबरमती-आश्रम नहीं बनाया था। कोचरब में काम चलाऊ आश्रम खोला गया था। उन दिनों बापूको गुजरात के द्वारा भारत की सेवा करने का लोभ था। परन्तु सन १९३१ में जब उद्योग-मन्दिर (सत्याग्रह आश्रम—साबरमती) में स्वराज्य मिलने तक नहीं लौटने का निश्चय किया उसके बाद वर्धा में बापू जमनालालजी के बगीचे में रहने लगे। यह बगीचा बाद में बापू के भतीजे के स्मारक-रूप 'मगनवाडी' के नाम से कहा जाने लगा। मगनलाल गांधी बापूजी के रचनात्मक कार्य में दाहिने हाथ थे। उनके असामयिक अवसान से जहाँ बापूजी को भारी धक्का पहुँचा था वहाँ जमनालालजी को भी अपने इस अभिन्न-हृदय मित्र के निधन से कम शोक नहीं हुआ था। जमनालालजी ने अपना बगीचा उन्हीं के स्मारक के तौर पर गांधीजी को भेंट किया और उसका नाम 'मगनवाडी' रखा गया। बापू का वर्धा रहना क्या था, मानों जमनालालजी को अपना दाँव साध लेना था। महादेव भाई के शब्दों में "जमनालालजी ने अपना सर्वस्व देकर गांधीजी को मोल ले लिया।"

वर्धा तो जमनालालजी बापू को लाये, पर दो ही साल बाद बापू सेवाग्राम चले गये। बापू के सेवाग्राम जाने के पीछे जो घटना है वह इस प्रकार है। बापू के ग्राम-सेवा के महत्व और प्रेरणा से प्रभावित होकर जब मीरा बहिन ग्राम में जाकर रहना और ग्रामवासियों की सेवा करने का आग्रह कर रही थीं तो बापू ने मीरा बहन को समझाया और मना किया कि

तुम्हारे लिए वहाँ टिक कर रहना मुश्किल होगा। इसपर मीरा बहन ने जोर देकर कहा मुझे ग्राम-सेवा का मौका दीजिए ही। बहुत आग्रह करने पर बापू ने मीरा बहन से कहा कि देखो! सोच-समझकर वहाँ जाना चाहिए यदि वहाँ से तुम्हारा जी ऊबा और तुम वहाँ से हटीं तो मुझे जाकर वहाँ बैठना पड़ेगा। मीरा बहन ने जमनालालजी का गांव —सेगांव— पसंद किया। पर आखिर वह वहाँ टिक नहीं सकीं और बापू को जाना पड़ा। इसी सेगांव का नाम सेवाग्राम पड़ा। बापू के सेवाग्राम जाने के सिलसिले में उस समय जमनालालजी से जो संवाद हुआ उसका रोचक वर्णन महादेव भाई ने किया है:—"बापू के सेवाग्राम आने के पहले जमनालालजी से बड़ी चर्चा हुई थी, उन्होंने बापूजी से कहा था "आपको कष्ट सहन करने पड़ेंगे। वहाँ कोई सुविधा नहीं है, कोई साधन नहीं है, हम सब आपका काम करेंगे। आप फजूल अपनेको गांव में गाड़ना चाहते हैं ?" बापू ने कहा:—"मैं अपना कर्तव्य जानता हूँ। मुझे गांवों की सेवा करना है। आज तक यों ही खेल खेलते रहे। गावों की कोई सेवा न की। सच्ची ग्राम-सेवा करनी हो तो ग्रामीण बन कर करना है।" जमनालालजी हंसकर बोले— "आप क्या ग्रामीण होने वाले हैं, आपके लिए वहाँ भी मोटर आवेगी, वहाँ भी तार आवेंगे।" गांधीजी तो बिक चुके थे, अतः उनके साथ हंसी-मजाक करने का अधिकार जमनालालजी ने ले लिया था। गांधीजी ने जवाब दिया "इन सब के आते हुए भी हम ग्रामीण रहेंगे।" जमनालालजी की जब एक भी न चली तो उन्होंने बनिया के साथ बनिया की दलील की "देखिए, आप वहाँ जाकर बैठेंगे तो आपके सब मेहमानों को रखना, वहाँ पहुँचाना, यह सब भार मुझपर पड़ेगा, कब तक मेरे सर पर बोझ बढ़ाते जाना है ?" गांधीजी ने कहा "वह तो जिस दिन मुझे वर्धा बुलाया था सोच लिया होगा न ?" जमनालालजी हार गये, पर हार में उनकी जीत थी। अपने जीवन के शेष काल में गांधीजी नें जमनालालजी

का गांव ही अपने प्रयोगों के लिए पसंद किया। यह जमनालालजी के जीवन का सबसे बड़ा सौदा था।

जमनालालजी बापूजी के कितने निकट आ गये थे, इसके लिए स्वयं बापू ने उनकी मृत्यु के बाद कहा है—"ईश्वर ने जो पुत्र मुझे दिये थे वे मुझे बाप कहें उसमें क्या नवाई है? पर, जमनालालजी तो चाहकर मेरे पुत्र बने। पुत्र-विहीन पिता पुत्र को गोद लेता है, पर उन्होंने तो पिता को दत्तक लिया। होना यह चाहिए था कि मैं उसके लिए अपनी विरासत छोड कर जाता, पर उसके बदले में वे अपनी विरासत मेरे लिए छोड गये।"

जमनालालजी ने बापू को जो वर्धा बुलाया तो जहाँ एक ओर पिता की छत्रच्छाया में अपने जीवन को पोषण देने की भावना थी, वहाँ पिता का हर तरह का भार हल्का कर सकने की आशा भी थी। बापूजी की विराट प्रवृत्तियों में भरसक हाथ बटाने की भावना थी। वे कभी कभी विनोद में कहा भी करते थे कि वर्धा भारत का हृदय-स्थान है और भारत का नक्शा निकालकर वे यह सिद्ध किया करते थे कि वर्धा भारत के केन्द्र स्थान पर है। वर्धा को राजधानी बनाने का दावा वे अक्सर पेश किया करते थे। उस समय उनकी तल्लीनता मालवीयजी की उस तन्मयता से मिलती थी जब वे काशी-विश्वविद्यालय में आयोजित शिव-मन्दिर की योजना के विषय में साधारण आदमियों से भी चर्चा करते हुए तल्लीन हो जाया करते थे। अपने हृदय में अपने बापू को स्थापित करके अपने अंत समय में उन्होंने बड़े गौरव के साथ महादेव भाई को कहा था—"बड़े बड़े मेहमानों की तो बात क्या, मेरे पास तो जगत् का सबसे बड़ा मेहमान पड़ा है।" और सचमुच तबसे वर्धा भारत के तमाम आकर्षण और प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गया था। फिर तो चरखा-संघ का कार्यालय वहाँ गया, काकाव.ड़ी बनी, सेवाग्राम में तालीमी-संघ का विकास हुआ। मगनवाडी में ग्रामोद्योग संघ और ग्राम-सेवक-विद्यालय और बाद में गो-सेवा संघ। गोपुरी मे जमनालालजी ने

अपनी कुटिया बनाई, जिसपर एक रोज सरदार वल्लभ भाई ने एक मीठा किन्तु फबता हुआ मजाक किया था। वह प्रसंग यों है--वल्लभ भाई किसी काम के लिए जमनालालजी से दान दिलाना चाहते थे, जमनालालजी दे नहीं रहे थे, तब वल्लभ भाई ने मजाक में कहा—"जमनालालजी बनिया ठहरे, वे ऐसी जगह दान देना चाहते हैं जहां से कि चारों तरफ अपना दान दिखाई दे। अब तो उन्होंने झोपड़ी भी ऐसी जगह बना ली है कि जहाँ से सचमुच उनका दिया सारा दान एक निगाह में दीख सकता है, और एक साँस में सब के नाम गिना सकते हैं-यह देखो उस कोने में मेरी मगन वाड़ी, उसके पास मेरी धर्मशाला, फिर यह मेरा हरिजन-छात्रावास, यह मारवाड़ी विद्यालय और यह सामने है महिलाश्रम । वह देखो मेरा सेवाग्राम, फिर यह पास में मेरी गोपुरी, और आगे चर्मालय, व उसके आगे वह परंधाम। उधर रास्ते में ही महारोगी सेवा मंदिर।" सुनकर जमनालालजी और हम सब हंसते-हंसते लोट-पोट हो गये।

गांधीजी वैसे ही विराट स्वरूप थे, उनकी विविध प्रवृत्तियाँ सूर्य-किरणों की तरह प्रकाशित हो रही थीं। परन्तु वर्धा, और सेवाग्राम के बाद उनको जो अधिक प्रकृत स्थिर और मूर्त रूप मिला। इसका मुख्य कारण जमनालालजी का अहर्निश सहयोग है। इसकी महिमा का वर्णन महादेव भाई के इन शब्दों से अधिक सुन्दर और क्या हो सकता है "दिलीप राजा ने तो नन्दिनी की सेवा करके उसे अपनी कामधेनु बनाया। क्या जमनालालजी को कामधेनु मिली? मैं सोचता हूँ कि जिसकी सेवा करते करते उन्हें ऐसी धन्य मृत्यु प्राप्त हुई, उसे कामधेनु कहा जा सकता है। किन्तु यह सब कहा जाय या नहीं कहा जाय—स्वयं जमनालालजी तो लोक-सेवक से बढ़कर गो-सेवक बनने तक गांधीजी के लिए कामधेनु ही थे। अगर वे न होते तो गांधीजी को वर्धा आने की जरूरत न थी। उनके बिना गांधीजी सेवाग्राम में बसने की हिम्मत न करते। एक वही थे जो बाहरी दुनिया के

साथ गाधीजी के सबध को स्वय जीती जागती जजीर बना कर जोड रहते थे। उनके इस महाप्रयाण न इस जजीर को तोडकर गाधीजी का और बाहरी दुनिया का अनमोल धन लूट लिया है

और सारे विश्व भर म उसे लुट जान दिया है।

: १९ :

मातृदेवो भव

"मेरी कन्याओं की सगाई-विवाह १६ वर्ष तक बिल्कुल नहीं किया जावे। बाद में उनकी इच्छा हो उस मुताबिक सगाई-विवाह का प्रबन्ध कर दिया जावे। अगर उनमें से भी कोई आजन्म कुमारिका ब्रह्मचारिणी रहना चाहे तो अवश्य उसका उत्साह बढ़ाया जावे, तथा उस मुताबिक प्रबन्ध कर दिया जावे। बालकों व बालिकाओं का शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या इसी प्रकार की कोई दूसरी संस्था जहाँ उच्च ध्येय तथा चरित्र-बल वाले तपस्वी सज्जन कार्य करते हों वहाँ रख कर देने का प्रबन्ध करें।"

—जमनालालजी (मृत्यु-पत्र)

"महिलाश्रम को ही लीजिए, यह उनकी अपनी विशेष कृति है। उन्हीं की कल्पना के अनुसार यह अब तक काम करता जा रहा है। जमनालाल जी के सामने सवाल यह था कि जो लोग देश के काम में जुट कर भिखारी बन जाते हैं, उनके बालबच्चों की शिक्षा का क्या प्रबंध हो? उन्होंने कहा कि कम से कम उनकी लड़कियों को तो यहाँ सरकारी मदरसों के मुकाबले अच्छी तालीम मिल सकेगी। बस, इसी खयाल से महिलाश्रम की स्थापना हुई।"

—महात्मा गांधी

"स्त्री-जाति की उन्नति के विषय में उनकी श्रद्धा इतनी अटूट थी कि अन्त में वे सफल होकर ही रहे। उन्होंने अपनी लड़कियों को लड़कों के समान ही शिक्षा की सारी सुविधाएं दीं। ब्याह के मामले में उन्होंने उनको अपने साथी का चुनाव करने की स्वतंत्रता दी।

'महिलाश्रम', वर्धा शायद उनकी सब से प्रिय संस्था थी। वे अक्सर मुझसे कहा करते थे कि जीवन के हर क्षेत्र में वे स्त्रियों को सफलतापूर्वक आगे बढ़ता देखना चाहते हैं। वे चाहते थे कि स्त्रियां निर्भय बनें, सादा जीवन बितायें, देश की सेवा में अपने आपको खपा दें और इस योग्य हो जायें कि पुरुषों के सामने दृढ़ता-पूर्वक डटी रह सकें।"

—राजकुमारी अमृतकौर

"स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए एक आदर्श महिलाश्रम खड़ा करने में उन्होंने अपना तन, मन, धन सब कुछ लगा दिया, कोई कसर नहीं रखी।"

—महादेव भाई

स्त्री-शिक्षा और नारी उत्थान का कार्य भी जमनालालजी के जीवन का मुख्य अंग हो गया था। बचपन में अपने आस पास समाज की जो कुछ दुरवस्था उन्होने देखी, स्त्री-पुरुष संबंध में जो ढिलाई उनकी निगाह में आई उसका बड़ा असर जमनालालजी के आगे के जीवन-क्रम पर पड़ा।

बापूजी के संपर्क में आने के बाद तो मानों उनकी जीवनदृष्टि ही खुल गई। स्त्री-पुरुष संबंधो की पवित्रता और उसकी रक्षा के संबंध में उनके विचार और भी दृढ़ हो गये और अपने तथा समाज के जीवन में उसके प्रति आस्था बढ़ाने का वे हार्दिक प्रयत्न करने लगे। स्त्री-जाति की उन्नति-संबंधी उनके विचार परदा-प्रथा को हटाना, गहने इत्यादि का निषेध तक ही सीमित न रहे। समग्र नारी-जीवन के निर्माण की ओर उनका ध्यान गया व रहा, और इसी धुन में से—"महिलाश्रम," वर्धा का जन्म हुआ। श्रीमती जानकी देवी का परदा तो उन्होंने १९२०-२१ से ही छुड़वा दिया था।

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के साथ ही उनके घर में से गहने, खासकर पुराने ढंग के पहनने की प्रथा भी लोप हो चली थी। जमनालालजी ही नहीं,

जानकी देवी भी कुरीतियों को हटाने की मानों प्रचारक ही बन गई थी। १९२६ में अग्रवाल महासभा के सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए उन्होंने महिला-सुधार के संबंध में अपने विचार इस तरह प्रदर्शित किए थे—"हम लोग स्त्री-शिक्षा के लाभ दिन ब दिन समझ रहे हैं पर शिक्षा का रुख पुस्तकों की अपेक्षा सदाचार की ओर अधिक रहना चाहिए। गृह-जीवन की आवश्यकता पर उसमें पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। और शिक्षा-प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमें स्त्रियों के शरीर, मन और आत्मा की उन्नति की पूरी सुविधा रहे। यहाँ मैं तीन बातों की ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ—परदा, पोशाक और गहना।

सच पूछिए तो हमारे यहां परदा होता ही नहीं, जो कुछ है परदे का उपहास या दुरुपयोग है। जिनसे परदे की आवश्यकता नहीं, उनसे परदा किया जाता है और जिनसे सावधान रहने की जरूरत है, उनसे परदा नहीं किया जाता। लाज आँखों में रहनी चाहिए। परदे के कारण स्त्रियों का केवल स्वास्थ्य ही बरबाद नहीं होता, बल्कि उनमें प्रायः नैतिक साहस भी नहीं रह जाता। जिन जातियों में परदा नहीं होता है, उनके पुरुष स्त्रियों की ओर जिस निर्दोष और सरल भाव से देखते हैं उसका परिचय उन लोगों की आँखों में सहसा नहीं मिलता जिनके यहाँ परदे का रिवाज है। इससे स्त्री और पुरुष दोनों का सदाचार बहुत बार कलंकित हो जाता है और समाज की नैतिकता, स्वच्छता में भीतर ही भीतर घुन लग जाता है।

"हमारे समाज में स्त्रियों का पहनाव अस्वाभाविक और बहुत बेतुका है। वस्त्र की आवश्यकता शरीर और लज्जा के लिए है, परन्तु, हमारे वर्तमान पहनाव से शरीर और लज्जा दोनों को नुकसान पहुँचता है। व्यर्थ का खर्च जो उसमें लगता है सो अलग.....मेरी राय में सादी साड़ी और नीचे गुजरात के चणिया जैसे हलका लहंगा तथा बदन में पूरा कब्जा स्त्रियों के लिए काफी और सुन्दर पोशाक है।

"गहनों से लाभ तो कुछ नही, सब तरह से हानि ही है। वास्तविक सुन्दरता गहनों में नहीं, गुणों मे होती है। गहनों में केवल धन का अपव्यय ही नहीं होता, बल्कि स्वभाव में ओछापन भी आ जाता है। कलह और द्वेष भी गहनों के बदौलत बढ़ता है. . . . . .गहनों का उपयोग न शरीर-रक्षा के लिए है न लाज ढांकने के लिए। अत. गहनो का व्यवहार बिलकुल बन्द कर देना चाहिए।

उनकी राय थी कि मंदिरों में ठाकुरजी को भी गहने न पहनाने चाहिए। सोना को वे भगवान् का रूप मानते थे, अतः उसे कमर के नीचे न पहनने के लिए कहा करते थे।

सन् ३१ के एक पत्र मे जो उन्होने श्री अच्युत स्वामी को लिखा था एक स्थान पर उन्होंने बाल-विवाह को एक सामाजिक कुप्रथा मानी है: "विवाह १२ वर्ष से कम उम्र में करना धार्मिक माना जाता है, परन्तु, उसके लिए भी कानून बना। दक्षिण प्रांत मे देवदासी की प्रथा धार्मिक मानी जाती है, किन्तु, उसे भी कानून द्वारा बन्द करने का प्रयत्न चल रहा है। ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जो केवल भ्रम से धार्मिक माने जाते है।"

बाल-विवाह की कुरीति जो उस समय समाज में काफी फैली हुई थी उसकी कड़ी आलोचना करते हुए जमनालालजी ने बाल-विधवाओं की समस्या पर प्रकाश डालते हुए कहा था:—

"बाल-विधवाओं की भारी तादाद हो जाने के कारण तथा उनके चरित्र-रक्षा के अनुकूल निर्मल वायुमंडल न होने के कारण आज कितनी ही विधवाओं को दुराचारियों का शिकार हो जाना पड़ता है।" फिर १९२८ में उन्होंने विधवा-विवाह के संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये: "विधवा-विवाह को मैं आदर्श वस्तु तो नही मानता, पर मैं देखता हूँ कि समाज में विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ गई है। समाज में ऐसे वाता-

वरण की बहुत कमी है कि वे धर्मपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। साथ ही घरों में उनके प्रति सहानुभूति तथा आदर का बर्ताव भी कम होता है। उनकी अन्य शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं की ओर भी समाज में शोचनीय उदासीनता पाई जाती है।

इसके फलस्वरूप हम देखते ही हैं कि समाज में अनाचार किस प्रकार भीतर ही भीतर फैलता जा रहा है। और उन विधवाओं की शक्ति का प्रायः कुछ भी उपयोग कुटुम्ब अथवा समाज की भलाई के लिए नहीं हो रहा है।

इन विधवाओं की दशा को सुधारने का उपाय मेरी राय में इस प्रकार होना चाहिए:—

१. विधवाओं की शिक्षा और अच्छे संस्कारों के लिए तथा घर के वायुमंडल को पवित्र बनाने के लिए आदर्श धार्मिक और सेवामय जीवन व्यतीत करने योग्य परिस्थिति बनायी जावे।

२. जबतक हम इसमें सफल न हों तबतक जो विधवाएं ब्रह्मचर्य-पूर्वक जीवन व्यतीत न कर सकें उन्हें विवाह करने का अवसर मिलना चाहिए और इस प्रकार विवाहित दंपति के साथ समाज में किसी प्रकार का दुर्व्य-बहार नहीं होना चाहिए।

३. जिन लड़कियों का विवाह अज्ञान अवस्था में ही माता-पिताओं ने कर दिया है और जो १५-१६ वर्ष से पहले ही विधवा हो चुकी हैं, उनको तो मैं एक प्रकार से कन्या ही मानना ठीक समझता हूँ। उनके लिए माता-पिता का यह कर्तव्य समझता हूँ कि वे उनका पुनर्विवाह कर दें।

४. जिस विधवा के संतति हो चुकी है, उसके विवाह को मैं आवश्यक तो नहीं समझता, परन्तु भीतर ही भीतर अनाचार फैलाने की अपेक्षा मैं यह ठीक समझता हूँ कि ऐसी विधवाएँ भी विवाह करके नीति-पूर्वक जीवन व्यतीत करें।

५. विधवाओ का विवाह आम तौर पर विधुरो से होना चाहिए परन्तु, बाल-विधावाएँ कुमारो से भी शादी कर सकती है ।

६. पैंतीस वर्ष की अवस्था के बाद विधवाएँ विवाह के लिए उत्साहित न की जायें ।

यदि आज समाज का वायु मडल ऐसा स्वच्छ हो जाय कि जिसमे विधवा और विधुर स्वाभाविक रीति से सदाचार-मय पवित्र जीवन व्यतीत कर सकें तो मैं पहला आदमी हूँगा जो विधवा-विवाह को अनावश्यक करार देगा । विधवा-विवाह के समर्थको से जिनमे मै भी एक हूँ, यह अनुरोध करूँगा कि वे ऐसे स्वच्छ वायु-मडल को बनाने के लिए भी उतने ही प्रयत्नशील रहे जितने कि वे विधवा-विवाह के प्रचार मे रहते है ।' —और ऐसे स्वच्छ वातावरण को बनाने का अच्छा उपाय उनकी दृष्टि मे विधवाश्रमो की स्थापना करना था । इसकी एक योजना भी उन्होने बनाई थी । उनका दृढ विश्वास था कि जीवन की सारी समस्या ही सुशिक्षा पर आधार रखती है । मुझे जहाँ तक याद आता है, अग्रवालो मे पहला विधवा-विवाह श्री नवलकिशोरजी भरतिया (कानपुर) का श्री सुशीला देवी के साथ हुआ था, जिसमें जमनालालजी बडे उत्साह के साथ शरीक हुए थे ।

सामाजिक मामलो मे भी जमनालालजी बड निर्भय क्रान्तिकारी थ । बापू जहाँ तक ले जाना चाहते थे वहाँ तक बस भर दौडने मे उन्हे शूर चढता था । बापू मानते थे कि स्त्रियो को लम्बे बाल रखना ठीक नही । उन्हे अनुभव हुआ था कि लबे बालो के कारण स्त्रियाँ पुरुषो के आकर्षण का विषय बन जाती है । अत सौन्दर्य के सिवा बाह्य आकर्षण को वे बुरा समझते थे । कई लडकियो ने बाल ब कटवा चुके थे । किसी प्रसग से जमनालालजी की लडकी मदालसा का भी नम्बर आ गया । जमनालालजी और जानकी मैयाजी दोनो ने इस अवसर पर बडे साहस का परिचय दिया । सन् १९३३ मे दिवाली की रूप चौदस को खद बापू ने अपने हाथ से

मदालसा के बाल काटे। उनकी एक मजबूत लबी रस्सी बनी, जो बिस्तर बाँधने के काम आती रही। इस सिलसिले में बापू ने ९-९-३३ को नीचे लिखा पत्र लिखा था—

"बाल कटवाने में इतना भय किस बात का? बाल तो घास की तरह फिर उग ही जाते हैं। मैंने देखा है कि कितनी ही लडकियों के बाल काटने पर फिर पहले से भी अधिक लंबे उग गये। सो यदि बालों का मोह न हो तो उन्हे निकाल डालना।"

अतः वे स्त्री-शिक्षा पर अपना ध्यान एकाग्र करने लगे। अपनी यात्राओं मे जमनालालजी उन युवको और युवतियो की तलाश में रहते थे जो उचित और योग्य शिक्षा देने पर अच्छे कार्यकर्ता और कार्यकर्त्री बन सकते थे। राजस्थान-यात्रा में उदयपुर की दो विधवा बहनें—माता और पुत्री—ऐसी मिली जिनके शिक्षण की व्यवस्था जमनालालजी ने की। इसीको महिलाश्रम की स्थापना का श्रीगणेश समझिए। उनके परम मित्र स्व० सेठ सूरज मलजी रुइया की लड़की श्रीमती शान्ताबाई रानीवाला एकाएक विधवा हो गई। उनका जीवन उपयोगी बनकर स्त्रियों की व लड़कियो की सेवा मे लगे जिससे शान्ता बाई का वैधव्य भी अच्छी तरह से कट जाय, सुशोभित हो जाय—एक पंथ दो काज हो जाय—इस खयाल से शान्ता बाई को १९२२-२३ में ही जमनालालजी साबरमती-आश्रम में—महात्माजी की छत्रच्छाया में—ले गये। शान्ताबाई के पिता ने शान्ताबाई को तथा उनकी दो बहनों को जो संपत्ति दे रक्खी थी उसमें से एक लाख रुपया दिया। एक लाख रुपया उनकी छोटी बहन ने तथा सत्तर हजार रुपया उनकी बड़ी बहन ने दिए। इस तरह तीनों बहनों की सहायता के कुल २,७०,०००) उन्होंने जमनालालजी की प्रेरणा से ऐसी किसी संस्था के लिए उनके हवाले कर दिए। उदयपुर की बहनें शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रारंभ में रेवाडी के भगवद्भक्ति आश्रम में रखी गईं। यही महिलाश्रम

के कार्य का बीज वपन हुआ ऐसा कह सकते हैं। ये दोनों बहनें बाद में विले पारले (बंबई) रखी गईं जहां कि स्वतन्त्र रूप से इनकी पढ़ाई की व्यवस्था की गई, यही महिलाश्रम की बुनियाद हुई। महिलाश्रम में पूरी शिक्षा पाने के बाद ये दोनों माता-पुत्री वनस्थली-विद्यालय में काम करने गईं और तब से अबतक दोनों एक-निष्ठा से वहां काम कर रही हैं।

साबरमती में एक कन्याश्रम था, जो बाद में १९३१ में वर्धा लाया गया यह १९३० के नमक-सत्याग्रह में जेल गये राष्ट्र-सेवकों की कन्याओं और पत्नियों आदि के शिक्षण की व्यवस्था का प्रश्न सामने आने पर खोला गया था।

कुछ प्रयोग तथा अनुभव के बाद इसके रूपांतर का प्रश्न चल रहा था। इसी सिलसिले में उनके गुरु विनोबाजी का एक पत्र नीचे दिया जाता है जो उनके परिपक्व विचार के साथ यह बतलाता है कि बहनों की संस्थाएँ कितनी जिम्मेदारी के साथ चलानी चाहिए। जमनालालजी को इसका पूरा भान था।

"श्री जमनालालजी,

कन्याश्रम के बारे में अभी तक निश्चित निर्णय नहीं कर सका। परन्तु, जो कुछ निर्णय होगा वह धर्म-रूप ही होगा। संस्था का रूपांतर करना पड़ेगा या देहान्तर भी करना पड़ेगा। परन्तु, जो कुछ शुभ-कल्याणकारक और आवश्यक होगा वही करेंगे। इसलिए इस संबंध में आप पूर्णरूप से निश्चित रह सकें तो अच्छा होगा। यदि संस्था कठिनाई में आ जाय तो उसको बन्द कर दें ऐसी मेरी वृत्ति नहीं। बापूजी की तो है ही नहीं। परन्तु, यदि बन्द कर देना ही धर्म सिद्ध हो, तो बन्द करने की वृत्ति रखनी ही चाहिए। नहीं तो सेवा करने की इच्छा होते हुए भी असेवा होगी। हमने संस्था आसक्ति से शुरू नहीं की है। जिस हेतु से वह शुरू की है उसका रक्षण करने के लिए जो करना उचित ठहरेगा वही करेंगे।

स्त्रियों की उन्नति के बिना हिन्दुस्तान की सारी उन्नति रुकी हुई है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिए प्रयत्न करना अत्यंत आवश्यक है, यह मैं निश्चित रूप से मानता हूँ। इसके बाद मेरा उपयोग स्त्रियों की सेवा में ही हो—ऐसी भी परमेश्वर की इच्छा हो सकती है।

आपका कल का पत्र मिल गया। जब तक कोई विशेष स्त्री न मिले तबतक स्त्रियों की संस्था चलना कठिन है। यह आपका कहना ठीक है, लेकिन, इसका अर्थ मैं अधिक सूक्ष्म करता हूँ। 'विशेष स्त्री' हम कहाँ से लाएंगे? इसलिए स्त्री-सेवा माने ब्रह्मचर्य ऐसा समीकरण मैंने अपने मन में बना रखा है। इसीके ऊपर यदि आघात हुआ तो कितनी भी विशाल संस्था चलाकर भी क्या सेवा होगी?

भक्त मीराबाई एक दफे वृन्दावन गई थी। वहां पर एक संन्यासी आये थे। उनके यहाँ हजारों लोग (कथा-शास्त्र) श्रवण करने के लिए जाया करते थे। मीराबाई को भी श्रवण करने की आतुरता थी ही। इसलिए, उसको भी वहां जाने की इच्छा हुई। लेकिन, संन्यासी महाराज का नियम था—स्त्रियों का दर्शन नहीं करना। मीराबाई को बुरा लगा। उसने उनको पत्र लिखा:—

"हूँ तो जाणती हती के व्रजमां पुरुष छे एक।
व्रजमां वसीने तमे पुरुष रह्या छो तेमां भले तमारो विवेक॥'

इस शिक्षा के अनुसार यदि हम चलने लगें और दुनिया के एक ही पुरुष को पहचान सकें तो संस्था न चलाते हुए भी सेवा कर सकेंगे, ऐसी मेरी श्रद्धा है। और आपकी भी है यह मैं मानता हूँ। इसलिए यहाँ की परिस्थिति के संबंध में पूर्णरूप से निश्चित रहकर आप पूर्ण विश्रांति—शरीर और मन दोनों से लेंगे तो उचित होगा। वैसा कर सकें तो बापू को भी यहां आराम मिलेगा।

विनोबा का प्रणाम।"

उनकी दृष्टि में समाज-हित के लिए लड़कियों का जन्म लड़कों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व का था। अपनी डायरी में एक जगह उन्होंने लिखा है—"अनसूया को लड़का हुआ, कन्या होती तो ज्यादा अच्छा था।" इसी तरह कलकत्ते के अपने परममित्र श्री सीतारामजी सेखसरिया की पत्नी को बालबच्चा होने वाला था, उस प्रसंग से आप जानकी देवी को लिखते हैं—"चि० पन्ना की माता को बालक हुआ होगा ? लड़की होवे तो भी मेरी ओर से बधाई देना। लड़कोंसे वर्तमान समय में लड़कियों की आवश्यकता है। व उनकी इज्जत व प्रेम करना जरूरी है। लड़की रहने से मन में उदारता व परोपकार वृत्ति बढ़ती है। पुत्र के कारण स्वार्थ की वृत्ति बढ़ती है, यह भी कह देना।" इन्हीं विचारों के अनुसार उन्होंने अपनी सब लड़कियों के जन्म पर विशेष रूप से इनाम आदि बांटा था, जब कि पुत्रों के जन्म पर कुछ भी नहीं किया। आज समाज की विचारधारा बहुत-कुछ बदल गई है, इसलिए यह बहुत बड़ी बात नहीं लगती। किन्तु, जमनालालजी के समय में ये इस प्रकार के विचार नये और क्रांतिकारी ही थे।

१९३१ में यही कन्याश्रम विधिवत् महिलाश्रम के रूप में परिवर्तित होकर हिन्दू-महिला-मण्डल, वर्धा की छत्रच्छाया में चलने लगा, जिसके कि संस्थापक जमनालालजी हुए। यों सूरजमलजी चाहते थे कि हरद्वार या नासिक जैसे किसी तीर्थस्थान पर आश्रम खोला जाय तो ठीक रहे। परन्तु, इन स्थानों पर उन्हें कोई मार्गदर्शक नहीं मिल सकता था जब कि वर्धा में जमनालालजी का सहज लाभ मिला। इतना ही नहीं, जमनालालजी ने अपनी जमीन और मकान जो सत्याग्रह-आश्रम के लिए दे रखे थे महिलाश्रम के सिपुर्द कर दिया। शान्ताबाई ने इसके लिए अपना जीवन समर्पण कर दिया। महिलाश्रम क्या खुला, जमनालालजी की जीवन-गंगा में एक नई धारा फूट निकली। शिक्षार्थिनी लड़कियां और बहनों की तलाश के

साथ ही अच्छे शिक्षकों व शिक्षा-शास्त्रियों के संग्रह का भी उनका एक खास काम हो कया। अच्छे लड़के लड़की मिल जाते तो उनकी शादी कराने का भी जमनालालजी को शौक था। सुधारकों व देश-सेवाकों के बड़े लड़के-लड़कियों की शादी का भी एक विकट प्रश्न रहता ही है। अपनी यात्राओं में जमनालालजी ऐसे वर-वधुओं की तलाश में रहते थे। इस कारण आगे चलकर तो कुछ लोग विनोद में उन्हें 'शादीलाल' ही कह दिया करते थे। यह एक नया महकमा ही उनको मिल गया था। उनकी डायरी में ऐसे उम्मीदवार लड़के-लड़कियों के नाम लिखे रहते थे। एक बार सरदार वल्लभभाई ने उनकी यह डायरी देख ली तो चुपके से उस सूची में 'सरदार वल्लभभाई' भी लिख दिया। देखकर जमनालालजी और दूसरे लोग हँस पड़े तथा उन्होंने सरदार से कहा—मणि बहन से पूछ लिया है न? शादियों में भी अन्तर्जातीय, अन्तर्उपजातीय, अन्तर्प्रांतीय शादियां जुड़वाया करते थे। गांधी-परिवार मोड वैश्यों का है। इसकी दो लड़कियां अग्रवाल-परिवार में गई। इसका श्रेय जमनालालजी को ही है, एक तो स्व० मगनलाल भाई गांधी की लड़की श्री रुक्मिणी बहन बनारस के श्री बनारसीलाल बजाज को, जो जमनालालजी के नजदीकी रिश्ते के हैं, दूसरी श्री जयसुखलाल गांधी की लड़की श्री उर्मिला बहन जो उदयपुर के श्री शंकरलाल अग्रवाल को ब्याही गई। ये दोनों गांधीजी के भतीजों की लड़कियां है। बंबई के एक सालिसिटर-मित्र की लड़की और कांग्रेस की प्रसिद्ध कार्यकर्त्री श्री सोफिया सोमजी की शादी सीमाप्रांत के डा० खान के लड़के श्री गनी से करवाई। सोफिया बहन खोजा और गनी भाई पठान हैं। श्री मार्तण्ड उपाध्याय का (औदुम्बर) विवाह भरतपुर के एक नेता श्री रेवतीशरणजी की भतीजी लक्ष्मी देवी (गौड़) से कराने में अग्रभाग लिया। खुद अपने भतीजे राधाकृष्णजी, जो अब उनके रचनात्मक कामों के उत्तराधिकारी व प्रतिनिधि जैसे हैं, उनकी शादी श्री

जाजूजी (जो माहेश्वरी हैं) की लड़की श्री अनसूया के साथ कराई। उनके बड़े लड़के श्री कमलनयन की सगाई भी पहले अन्तर्जातीय कराने का उनका विचार था, किन्तु वह सफल न हो पाया। ऐसे विवाहों में वर-वधुओं, उनके परिवार वालों तथा विवाह कराने वालों को कितना सामाजिक कष्ट बहिष्कार आदि का सहना पड़ता है यह मुक्तभोगी ही जान सकते हैं। जेल के कष्टों से कहीं अधिक त्रासदायक वे होते हैं। किन्तु जमनालालजी का साहस इन सब को पचा जाता था। इसे एक तपश्चर्या ही कहना चाहिए। उचित व योग्य विवाह-संबंध जुड़ाने, अनमेल संबंधों को कुशलता से न होने देने, वैवाहिक झगड़ों को ढंग व खूबसूरती से निपटाने के मानों वे माहिर ही हो गये थे। बापू तथा उनके आस-पास के लोगों को ऐसे विषयों में जहाँ कोई कठिनाई आई कि उन्होंने जमनालालजी को याद किया और वे भी इस प्रश्न को इस उत्साह से हाथ में लेते थे, जैसे कोई डाक्टर-वैद्य किसी रोगी के प्रश्न को।

महिलाश्रम जल्दी ही राजनैतिक पीड़ितों की लड़कियों, बहनों, पत्नियों का शिक्षा का केन्द्र ही नहीं—आश्रय-स्थान भी बन गया था। आज उसे १८ वर्ष हो गये। भारतवर्ष का कोई प्रांत ऐसा नहीं है जहां महिलाश्रम की निकली बहनें कोई न कोई सेवा-कार्य न कर रही हों। उस दिन मैंने एक मित्र से बड़े हर्ष के साथ कुमारी मृदुला बहन के ये वाक्य सुने कि मैं जहां कहीं जाती हूँ, स्त्रियों में काम करनेवाली बहनों को देखती हूँ तो मुझे हर जगह महिलाश्रम की बहनें दिखाई देती हैं।

एक तरह से बापूजी के महिला-जागृति और शिक्षण-विभाग के इन-चार्ज जमनालालजी और उनकी मुख्य संस्था महिलाश्रम को कहें तो अत्युक्ति न होगी। अब तो कस्तूरबा-कोष-समिति इस काम को प्रधान-रूप से कर रही है। फिर भी, जहां तक गावों का संबंध है, महिलाश्रम का महत्व किसी प्रकार कम नहीं हुआ है। उन्होंने अपने

परिवार की स्त्रियों को खासकर अपनी पुत्री मदालसा को कई बार यह प्रेरणा दी कि वह महिलाश्रम के काम में जुट जाय और उसमें पूरी पूरी दिलचस्पी ले। मदालसा बहन आजकल उस काम में सक्रिय भाग लेती भी हैं।

उनके निकटवर्ती सब इस बात को जानते हैं कि गो-सेवा-संघ का काम लेने के पहले तक उनकी आधे से अधिक शक्ति महिलाश्रम को जमाने में लगती थी। जीवन के अंतिम तीन, चार महीनों तक तो वे महिलाश्रम की प्रार्थना में नियमित रूप से सम्मिलित होते थे तथा कार्य का अत्यंत निकट से निरीक्षण करने लगे थे। उनके एकाएक अवसान से महिलाश्रम के संचालकों और बहिनों ने अपनेको जितना निराश्रय अनुभव किया उतना शायद ही किसी ने किया हो। यदि बापू के वियोग में सारे भारत ने अपने पिता के वियोग को अनुभव किया है तो इसी तरह महिलाश्रम से संबंधित भारत की तमाम बहिनों को जमनालालजी के अभाव में अपने पिता की ही क्षति का अनुभव हुआ है।

जमनालालजी की मृत्यु के बाद महात्माजी ने महिलाश्रम को काफी समय देना प्रारंभ किया था। उनका कहना था कि जमनालालजी की वह अत्यंत प्रिय संस्था थी और उसे जितना अधिक से अधिक सहयोग दिया जा सके, देना चाहिए।

राजस्थान में महिला शिक्षा की संस्थाएँ खड़ी हों, यह उनका प्रयत्न रहा। आज वनस्थली विद्यापीठ, महिला-मंडल उदयपुर, तथा महिला शिक्षा-सदन, हरेंटूंडी (अजमेर) उनकी इस इच्छा की पूर्ति कर रहे हैं, जिनका संचालन उनके द्वारा प्रोत्साहित देवियाँ सर्वश्रीमती रतन बहन शास्त्री कमला देवी श्रोत्रिय, भागीरथी देवी उपाध्याय कर रही हैं।

इसी महिलाश्रम की सेवा के द्वारा उनमें मातृत्व की प्यास जागृत हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि माता आनन्दमयी की गोद में जो मधुर

आनन्द उन्हें प्राप्त हुआ है, उसकी धारा उनके द्वारा होनेवाली महिलाश्रम की सेवा से ही प्रस्फुटित हुई है ।

"मातृवत् परदारेषु" ऐसी अपने मन की भावना बनाने के लिए वे रात दिन प्रयत्न करते रहे थे । यह उनके सौ० मदालसा को लिखे हुए एक पत्र की इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है—"करीब दो घंटे उन्हींके (मां आनन्दमयी) पास रहा........बातचीत करने से संतोष मिला । करीब आध घंटा एकांत में भी बातें हुईं । मैंने उनसे कहा—"मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठ्रवत् । आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ।" इस प्रकार की मेरी भावना इस जन्म में जिस प्रकार हो सके वह मार्ग प्रेमपूर्वक बतावें । उन्होंने कुछ बातें बतलाई हैं ।"

: २० :

राष्ट्रभाषा के लिए

"हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी ईमान की भाषा है, प्रेम की भाषा है, राष्ट्रीय एकता की भाषा है, और आजादी की भाषा है। यह सब ताकत हिन्दी में प्रकट करने की जिम्मेदारी हम सभी की है।"

"देश के जो नुमाइन्दे धारा-सभाओ में गए हैं, उनका यह कर्तव्य है कि वे ऐसी कोशिश करें जिससे राष्ट्रभाषा की तालीम हरेक भारतीय के लिए लाजमी बनाई जा सके। हमारे नुमाइन्दो का यह काम बड़े महत्व का साबित होगा। अगर इस बारे में सचाई और लगन से कोशिश की जाय तो इसकी कामयाबी में मुझे कोई अंदेशा नजर नहीं आता।"

—जमनालालजी

(हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, मद्रास के भाषण से)

"मेरी खुद की राय यह है कि जिस प्रांत के लोगो में काम करना हो उस प्रांत-विशेष की भाषा का ही उपयोग किया जाय।"

—जमनालालजी

(वर्धा जिला किसान-परिषद् के भाषण से)

यद्यपि जमनालालजी पढे-लिखे बहुत कम थे, यहाँतक कि न हिन्दी शुद्ध बोल सकते थे, न लिख सकते थे, फिर भी, उनका हिन्दी-भाषा और साहित्य, राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी और हिन्दी-पत्रकारित्व तथा नागरी-लिपि से बडा प्रेम था। अच्छी पुस्तकें पढ़ने, अच्छे साहित्य और साहित्यकारो को अपनाने, अच्छे पत्र-पत्रिकाओ और ग्रन्थो व ग्रन्थ-लेखको

को सहायता देने में सदैव तत्पर रहते थे। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी और बाद में हिन्दी-हिन्दुस्तानी के प्रचार में आपने सक्रिय भाग भी लिया। इसके कई जीते-जागते उदाहरण हैं। मद्रास व दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के लिए अपने व्यय से प्रारंभ में प्रचारक भेजे तथा स्वयं श्री राजगोपालाचार्य के साथ अर्थ-संग्रह के लिए भ्रमण किया। अग्रवाल महासभा से मद्रास में हिन्दी-प्रचार के लिए ही ५० हजार रूपये एकत्रित करके महात्माजी को भेंट करना, बाद में इसी काम के लिए इन्दौर में होने वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के लिए महात्माजी को भेंट की जानेवाली एक लाख रूपये की थैली के आयोजन और उसकी कमी को पूरा करने में लगभग ४० हजार रुपया अपने पास से देना, महात्माजी से "हिन्दी-नवजीवन" निकलवाना और उसकी सारी जिम्मेवारी लेना, "कर्मवीर", "प्रताप" आदि उस समय के हिन्दी पत्रों को आर्थिक सहायता देना, "राजस्थान-केसरी" के लिए दस, बारह हजार रुपये व्यय करना, इसी प्रकार हिन्दी के कई पत्र-पत्रिकाओं के लिए काफी सहायता और सहयोग देना, बम्बई में "गान्धी हिन्दी-पुस्तक-भंडार" चलाना, और "सस्ता-साहित्य-मंडल" जैसी प्रकाशन संस्था का निर्माण और उससे निकलनेवाली "त्याग-भूमि" जैसी पत्रिका को प्रोत्साहन देना आदि कई कार्य ऐसे हैं, जिनसे उनके हिन्दी-प्रेम और राष्ट्र-भाषा-भक्ति पर काफी प्रकाश पड़ता है। आखिर इन्हीं अथवा इस प्रकार के अनेक गुणों और सेवाओं के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी संस्था ने आपको बहुत शिक्षित न होने पर भी, अपने मद्रास-अधिवेशन का सभापति बनाया। उसके सभापति-पद से दिये गए अपने भाषण में उन्होंने स्वयं अपने बारे में जो कुछ कहा था उससे उनके जीवन के एक भाग पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

"हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का यह अधिवेशन दक्षिण भारत के मुख्य

शहर मद्रास में होना जितने आश्चर्य का विषय है, उतना या उससे कहीं अधिक आश्चर्य का विषय है मेरा इस अधिवेशन का सभापति बनना। साहित्य-सेवा तो दूर रही, साहित्य का यत्किंचित् अध्ययन भी अपने जीवन में आज तक नहीं कर पाया हूँ। साहित्य की दृष्टि से मेरी योग्यता तो प्रथमा फेल तक की भी नहीं समझी जा सकती। १३ साल का था, तभी से मुझे पढ़ना-लिखना छोड़ कर, व्यापार-धंधे के काम में लग जाना पड़ा। व्यापार के साथ साथ समाज-सेवा और बाद में राष्ट्रीय सेवा करने का मौका भी मुझे परमात्मा की कृपा से तभी से प्राप्त हुआ।

"ये सारी प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं कि इनमें साहित्य का अध्ययन करने या उसके रसास्वादन के लिए बहुत कम समय रह जाता है। देश की शक्ति बढ़ाने में साहित्य और शिक्षा का स्थान कितना महत्वपूर्ण है, इसका मुझे खयाल है, इसलिए शिक्षा-शास्त्री और साहित्य-सेवियों के साथ प्रेम और मित्रता का संबंध जोड़ने की मैं हमेशा कोशिश करता आया हूँ। लेकिन , साहित्य न तो मेरा क्षेत्र है और न साहित्य-सम्मान हासिल करने की मुझे कभी इच्छा या आशा ही रही है। हाँ, मुझे बचपन से हिन्दुस्तान के लिए एक राष्ट्रभाषा की तो जरूर आवश्यकता मालूम होती थी। खासकर, (१९०६) की ऐतिहासिक कलकत्ता-काँग्रेस के समय से मैं काँग्रेस में शरीक हुआ था। स्व० दादाभाई नौरोजी की सदारत में काँग्रेस का सारा काम अक्सर अंग्रेजी में हुआ, जो मैं बहुत कम समझ पाया था। उस समय मन में ये विचार आए कि यह कितने दुःख और चिन्ता की बात है कि हिन्दुस्तानी होते हुए भी अपने ही देश में हमें आपस में एक विदेशी भाषा द्वारा काम-काज करना पड़ता है। इसी तरह और भी कई मौकों पर ऐसे विचार आते रहे। देश का राजनैतिक आन्दोलन अंग्रेजी भाषा में चलाने से कैसा निष्फल साबित होता है, यह तो मैं भली-भाँति देख चुका था। इससे आम-जनता को न कोई शिक्षा मिलती है और न

कोई प्रेरणा ही। मेरी दिली इच्छा थी कि मुझ जैसे अध-पढ़ आदमियो को भी देश की हालत अच्छी तरह मालूम हो सके और मामूली आदमी भी मुल्क की कुछ न कुछ सेवा कर सके इसलिए राष्ट्रभाषा की दृष्टि से मै हिन्दी हिन्दुस्तानी का प्रचार देखने के लिए उत्सुक था।

धर्म के बारे मे हमारे साधु-सन्तो ने जैसे शास्त्र की गूढ से गूढ बाते लोगो को अपनी भाषा में लाकर जनता के लिए उद्धार का द्वार खोल दिया है ठीक उसी तरह राजनैतिक क्षेत्र मे अंग्रेजी मे जो कुछ आन्दोलन होता था उसे देशी भाषा मे लाकर लोकमान्य तिलक मालवीयजी महाराज लाला लाजपतराय और पूज्य गांधीजी ने जनता को जगाया और उसकी ताकत बढ़ाई। यह सब देख कर स्वभाव से ही राष्ट्रभाषा के प्रति मेरी श्रद्धा और ममता बढी।

जब पूज्य गांधीजी सन १९१८ मे इन्दौर सम्मेलन के पहली बार सभापति हुए और उन्होने दक्षिण भारत मे हिन्दी प्रचार करने की योजना सम्मेलन के सामने रखी तब तो मेरा उत्साह प्रचार-कार्य मे और भी बढा और मैं इस दिशा मे ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा।

लेकिन इतने से हिन्दी साहित्य-सम्मेलन जैसी महान साहित्यिक सस्था का सभापति बनने का अधिकार तो मुझे हासिल नही हो सकता। मेरे अनुभव या तो सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र के है या छोटे-मोटे सगठन करने के। राष्ट्रभाषा के प्रति श्रद्धा उसकी सेवा करने की लालसा और जरूरी आत्म विश्वास अगर एक साहित्य-शून्य व्यक्ति में हो और उसे यदि यह पद दिया जा सकता है तो मै इसके योग्य हो सकता हूँ　　अगर मैंने अपने गुरुजनो की आज्ञा से इस जिम्मेदारी के पद को स्वीकार करने का साहस किया है तो आप लोग इसमे मेरी अविनय न समझे। अगर सभापतित्व का मतलब सेवा या मजदूरी के लिए निमत्रण ही हो तब तो मै उससे इनकार कैसे कर सकता हूँ? जनता की सेवा करते करते आज

२५, ३० साल के तजुर्बे से मैं यह साफ देखता हूँ कि बिना राष्ट्रभाषा के प्रचार के हमारा लोक-संगठन हो नहीं सकता। हमारी संस्कृति का रक्षण और विकास रुक जाता है। ऐसी हालत में कोई भी आदमी सेवा के पवित्र निमंत्रण को टाल नहीं सकता। इससे अधिक इस विषय पर अब और कुछ कहना स्वाभाविक विनयशीलता से बाहर होगा। इसलिए आप वात्सल्यपूर्ण अन्तःकरण से आशीर्वाद दें ताकि मैं इस क्षेत्र में भी कुछ सेवा कर सकूं।

अब हमें भविष्य में किस प्रकार काम करने की कोशिश करनी चाहिए इस बारे में मेरी कुछ सूचनाएँ हैं:—

(१) सब से पहले मेरी नम्र व आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि हिन्दी और उर्दू का ऐक्य करना होगा। इसलिए दोनों पक्षों के विद्वानों से प्रार्थना है कि वे नजदीक आने का प्रयत्न करें, भेद-अन्तर न बढ़ावें।

(२) देवनागरी-लिपि की शास्त्रीयता को पूर्णतया स्वीकार करते हुए भी, मेरी राय में हिन्दी विद्वानों का कर्तव्य है कि उर्दू लिपि को पढ़ें और समझ सकने जितना जान लें उसी प्रकार मुसलमान विद्वानों का फर्ज है कि वे देवनागरी सीखें।

(३) कौंसिल द्वारा हिन्दुस्तानी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होना जरूरी है।

(४) गवर्नमेंट ने आर्डर द्वारा एसेम्बलियों का कार्य अंग्रेजी द्वारा चलाने को मजबूर किया है, तो भी जनता के प्रतिनिधियों को चाहिए कि एसेम्बलियों का काम प्रांतीय भाषा व हिन्दुस्तानी में चलाने की पूरी कोशिश व प्रचार करें। साइन-बोर्ड व जाहिरात में जहाँ जहाँ हम अंग्रेजी का उपयोग करते हैं वहाँ हिन्दुस्तानी का उपयोग करना चाहिए।

(५) जहाँतक हो सके, किसी हिन्दुस्तानी को, कांग्रेस या सार्वजनिक सभा में अंग्रेजी में व्याख्यान न देने दें, न सुनें। समय थोड़ा अधिक लगे

तो परवाह नहीं, वह अपनी भाषा में बोलें, उसका तर्जुमा प्रांतीय भाषा में कर दिया जाय, याने अंग्रेजी का मोह नष्ट किया जाय।

(६) व्यापारी लोग मुड़िया वगैरह के स्थान पर हिन्दी भाषा में लिखा-पढ़ी, हिसाब, बही-खाते रखें।

(७) हिन्दी टाइप व शार्टहैन्ड सीखनेवालों के लिए वर्ग शुरू करें व इनाम रखें।

ये विचार जमनालालजी ने १९३५ में व्यक्त किए थे, परंतु, भारत की एक राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी होनी चाहिए, इसकी तड़प तो उनके हृदय में शुरू से ही चल रही थी। १९२० में नागपुर कांग्रेस के अवसर पर स्वागताध्यक्ष के पद से जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने कांग्रेस के विधान में स्थान देने के लिए जो दो बातें कही थीं, उनमें एक मुख्य बात यह थी—"अधिकांश भारतवासियों की मातृभाषा और समस्त भारत की भावी अन्तर्प्रांतीय भाषा को भी अपनी व्यवस्था में उचित स्थान दें ताकि शीघ्र इस राष्ट्रीय महासभा की कार्यवाही में हम एक विदेशी भाषा के प्रयोग को कम कर सकें और अधिकाधिक भारतवासियों को कांग्रेस के काम में भाग लेने या उससे लाभ उठाने का अवसर दे सकें।"

वे केवल जबानी जमा-खर्च से संतुष्ट होनेवाले व्यक्ति न थे, जो प्रस्ताव पास हो जाने से ही संतोष मान लें। उनमें तो यह गुण था कि जिस बात को उठा लेते उसे कार्य-रूप में परिणत करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते थे। राष्ट्रभाषा को अंग्रेजी के स्थान पर अमली रूप देने में जो ढिलाई बरती जा रही थी, उसका उन्हें काफी दुःख और क्षोभ था और इसी कारण उन्होंने अपने मद्रास के भाषण में ये उद्‌गार प्रकट किए थे—"हम राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की कार्यवाही राष्ट्रभाषा में करने की कोशिश कब की कर रहे हैं, गांधीजी ने अपनी सारी ताकत लगाकर देखी। आपकी हिन्दी की एक बूंद से जनता के हृदय का सागर उमड़ने लगता है, यह बात

क्यों भूल जाते हैं? मगर मैं देखता हूँ कि दक्षिण के राजनैतिक नेताओं ने हमें पूरी सहायता नहीं दी। इसी कारण जवाहरलालजी, सरदार वल्लभ भाई, और आजाद जैसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी के हिमायती भी हिन्दी पर जोर देने में हिचकते हैं। यहाँ मुझे कोंडा वेंकटप्पय्या, डा० पट्टाभि जैसे राष्ट्र-भाषा प्रेमियों का जरूर आभार मानना चाहिए। क्योंकि वह तो काँग्रेस में भी कभी कभी विनोदपूर्ण हिन्दी सुना दिया करते हैं। काँग्रेस का प्रस्ताव हो चुका है कि उसकी कार्यवाही राष्ट्रभाषा में ही रखी जाय, किन्तु, दुःख है कि हम अब तक इस प्रस्ताव को अमली जामा नहीं पहना सके हैं।

"ग्रामोद्योग-संघ, हरिजन-सेवक-संघ, चरखा-संघ, जैसी अखिल भारतीय संस्थाओं का काम भी अबतक हिन्दुस्तानी के बजाय अंग्रेजी में ही चल रहा है, यह कम दुःख और शर्म की बात नहीं है। हमारी सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं में जो भाषा बोली जायगी वह हिन्दी जानने वाले विद्वान और अपढ़ ससमझ सकें, इतनी साफ और आसान होनी चाहिए।" इसी संबंध में उन्होंने पं० जवाहरलालजी नेहरू को एक पत्र १२-४-२७ लिखा था कि "अपने दफ्तर की काररवाई ज्यादा हिन्दी में होवे उसकी आप सूचना समय-समय पर देते रहें तो तो ठीक रहेगा।"

उनका राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति इतना अटूट प्रेम था कि वे अहिन्दी भाषा-भाषी अपने मित्रों के परिवारों में हिन्दी अनिवार्य रूप से लागू करने के लिए अथक प्रयत्न करते थे। श्री राजगोपालाचार्य के बच्चों को जब जमनालालजी ने जोर देकर इस बारे में लिखा था तो उनके पत्र के उत्तर में राजाजी की पुत्री (श्री देवदास गाँधी की धर्मपत्नी) ने जो पत्र लिखा वह यों है:—

बंगलोर, ८-९-२७

"पूज्य जमनालालजी,

हम सब हिन्दी का अभ्यास करते हैं। मैं आशा करती हूँ कि अण्णा

(राजाजी) कुछ महीनों में हिन्दी में ही आपको खत लिखने लग जायेंगे। वे अब तुलसीदासजी का रामचरित-मानस पढ़ते हैं। और शंकरलालजी के साथ रोज एक घंटा हिन्दी में बातचीत करते हैं।"

—लक्ष्मी

: २१ :

राजस्थान का नवनिर्माण

"हमें न केवल नये जयपुर और नये राजस्थान का ही निर्माण करना है, बल्कि नये भारत का निर्माण करना है। हम स्वराज्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं, क्योंकि हम अपने वर्तमान जीवन से ऊब चुके हैं। हम अब नवजीवन का स्वप्न देख रहे हैं। हमारे सुन्दर और दिव्य जीवन का निर्माण हमारे ही हाथों में है।"

"जबतक प्रजा या जनता का बल अन्दर से नहीं बढ़ाया जायगा, तब तक बाहर की या ऊपर की सहानुभूति एक हद तक ही काम दे सकती है, बल्कि कई बार तो उल्टा साधक के बजाय बाधक भी बन जाती है।"

—जमनालाल बजाज

इस समय तक भारतीय राजनीति के क्षेत्र में जमनालालजी का एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया था। वे मध्य-प्रांत के तो प्रमुख नेता थे ही। अब अखिल भारतीय नेताओं में भी उनका उच्च स्थान हो गया। सेवा के लिए काफी विशाल और व्यापक क्षेत्र उनके पास था। लेकिन, फिर भी, अपनी मातृ-भूमि राजस्थान को भूलना उनके लिए असंभव था। राजस्थान को पिछड़ा हुआ देख कर उन्हें बड़ी व्यथा होती थी और अन्य कामों से समय निकालकर उसके बारे में भी वे सोचते थे और उसकी उन्नति के काम में बड़ी दिलचस्पी लेते थे। राजस्थान में तो रियासतें ही रियासतें थीं, अतः जब कभी रियासतों का प्रश्न कांग्रेस कार्य-समिति में उठता, वे उसपर बड़ी गंभीरता से विचार करते थे। रियासती समस्याओं पर वे जो विचार प्रकट करते थे और जो सलाह देते थे उसका कार्य-समिति में

बड़ा आदर होता था। उनकी सदैव यही इच्छा रहती थी कि प्रगति की दौड़ में राजस्थान किसी अन्य प्रांत से पिछड़ा हुआ न रहे। जब चर्खा-संघ का कार्य प्रारंभ हुआ तो अन्य प्रांतों के साथ राजस्थान में भी उसे पूरी तरह गति देने में, उन्होंने बड़ी दिलचस्पी ली। उन्होंने राजस्थान चरखा-संघ को अच्छी तरह संगठित करने के लिए अहमदाबाद से श्री ब० सा० देशपाण्डे को भेजा, जो बी० एस० सी० कर के कालेज में काम करने लगे थे और फिर असहयोग कर के अहमदाबाद के खादी-भण्डार में काम कर रहे थे। इसी तरह बिजोलिया में वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग करने के लिए श्री जेठालाल भाई को प्रोत्साहन दिया। राजस्थान के लोगों में से भी श्री कपूरचंदजी पाटनी, मदनलालजी खेतान, ओंदत्तजी शास्त्री जैसे अच्छे कार्यकर्ताओं को अपनाया और बार बार दौरा करके काम बढ़ाने का प्रयत्न किया। मदन खादी कुटीर, करौली को व स्व० कुँवर मदनसिंह तथा त्रिलोकचंदजी माथुर को प्रोत्साहन दिया। इसी प्रकार रींगस वस्त्र-स्वावलंबन कार्य जो श्री मूलचन्द्रजी अग्रवाल की देखभाल में चला, गाँधी-आश्रम, हटूंडी तथा जीवन-कुटीर-जिसके जन्मदाता श्री हीरालालजी शास्त्री थे—आदि के निर्माण में भी उन्होंने यथोचित सहायता की। शास्त्रीजी को सार्वजनिक जीवन में खींचने तथा कुछ मतभेद और स्वभाव-भेद रहते हुए भी आत्मीय की तरह पृष्ठ-पोषण करने में उनका बहुत हाथ रहा। श्री लादूरामजी जोशी, श्री नृसिंहदासजी अग्रवाल (बाबाजी) तथा श्री रामनारायणजी चौधरी को भी उन्होंने तरह-तरह से प्रोत्साहित कर के राजस्थान की सेवा के लिए आगे बढ़ाने की कोशिश की। श्री बदरीनारायणजी खोरा को हरिजन तथा पिछड़ी जाति में शिक्षा प्रचार के लिए उत्साहित किया। उन्होंने जिस तरह मध्यप्रान्त, बम्बई आदि स्थानों पर बोर्डिंग हाउस, विद्यालय आदि की स्थापना की थी उसी तरह राजस्थान में भी सीकर जाट-बोर्डिंग, वनस्थली-

विद्यालय, विद्याभवन उदयपुर, चोरडिया कन्या-गुरुकुल तथा आदर्श विद्यालय पोहरी के निर्माण में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मदद की। इनमें से कुछ संस्थाओं के खर्च के लिए भी काफी पैसा दिया और अन्य लोगों से भी दिलवाया। इसके अतिरिक्त जब जब राजस्थान में जागृति की हलचल पैदा हुई तब तब उन्होंने आगे बढ़कर उसे सफल बनाने में पूरा पूरा योग दिया। बीकानेर में स्व० खूबरामजी पर मुकदमा चलने के समय, इन्दौर खादी तथा ग्रामोद्योग-प्रदर्शिनी के समय, वे सहायता के लिए आगे बढ़े थे। मध्यभारत में भी सर्वश्री पुस्तके, बैजनाथजी महोदय, काशिनाथजी त्रिवेदी, कन्हैयालालजी खादीवाला, कृष्ण वासुदेव दाते, व गोखले जैसों को सदैव प्रोत्साहन दिया और कठिनाई के समय उन्हें सभालते रहे। इनके अलावा सैकड़ों विद्यार्थियों और कार्य-कर्ताओं को उन्होंने आर्थिक तथा अन्य प्रकार की मदद और प्रोत्साहन देकर जीवन मे आगे बढ़ाया। वे मनुष्य की परीक्षा करने में सिद्ध-हस्त थे। देशभक्त, परिश्रमी और लगनवाले कार्यकर्ताओं को उसी वक्त पहिचान लेते थे और उन्हें मदद करते थे। आज के राजस्थान, मध्यभारत के बड़े बड़े नेता और प्रभावशाली समाजसेवकों में शायद ही कोई ऐसा हो जिसे जमनालालजी ने अपनाया न हो, जिसकी कठिनाइयाँ हल करने और मार्ग सरल करने में उन्होंने दिलचस्पी न ली हो। कोई संस्था, हलचल या महान् घटना ऐसी नहीं जिसमें उन्होंने रस न लिया हो। नमक-सत्याग्रह के समय खुद अपने बड़े लड़के कमल-नयन को अजमेर भेजा जो पुष्कर में पुलिस के हाथों पिकेटिंग करते हुए पिटे भी थे। इस अवसर पर बापू ने २२-९-३० को कमलनयन को आशीष दी थी—'तू सुख से अजमेर जाना।' प्रवासी राजस्थानियों को अजमेर जाकर सत्याग्रह करने के लिए प्रोत्साहित किया।

उन्होंने अजमेर में सस्ता-साहित्य-मण्डल की स्थापना कर के राष्ट्रीय

साहित्य की अभिवृद्धि की दिशा में एक बड़ा काम किया था। इस काम के लिए श्री जीतमलजी लूणिया को उन्होंने खासतौर पर अपनाया था। इन सब संस्था और हलचलों को प्रोत्साहन और सहायता देकर जमनालालजी ने राजस्थान को बहुत कुछ दिया। अबतक वे मुख्यतः रचनात्मक कार्यों की ओर ही ध्यान देते रहे। उस समय राजस्थान का राजनैतिक क्षेत्र केवल अजमेर ही था। सारे राजपुताना और मध्य-भारत के प्रमुख कार्यकर्ताओं का वही केन्द्रस्थल था। लेकिन अब वह समय आ गया था जब कि उसे अधिक व्यापक और विस्तृत होकर समूचे राजस्थान और मध्यभारत में फैल जाना था। जब रचनात्मक कामों द्वारा जमीन काफी तैयार हो गई तो आगे कदम बढ़ाकर उन्होंने प्रत्यक्ष कार्य द्वारा राजनैतिक काम को बल और प्रेरणा देना प्रारंभ कर दिया। वे खुद सत्याग्रह में प्रत्येक बार जेल गए थे। जेलों में उनकी स्पिरिट एक आदर्श सत्याग्रही बनने की रही। परन्तु, दो सत्याग्रह ऐसे हैं जिनके धुरीण वे स्वयं थे। एक नागपुर का झंडा-सत्याग्रह, दूसरा जयपुर सत्याग्रह। झंडा-सत्याग्रह भारतीय सत्याग्रहों के आरंभकाल में हुआ, जबकि जयपुर-सत्याग्रह अंतिमकाल में। झंडा-सत्याग्रह में जमनालालजी का काम इतना विकट नहीं था, जितना कि जयपुर-सत्याग्रह में। उसमें प्रश्न यद्यपि नागरिक स्वतंत्रता का था, फिर भी वह मुठभेड़ सीधी अंग्रेजी हुकूमत से थी। जयपुर में एक देशी-रियासत बीच में आती थी जहाँ से कि लड़ना अंग्रेजी हुकूमत के लिए आसान और जमनालालजी के लिए बहुत कठिन था। इसलिए जमनालालजी ने हरचंद ऐसी कोशिश की कि जयपुर में बिना सत्याग्रह किए ही मामला सुलझ जाय व राजा-प्रजा में किसी प्रकार की कटुता न आवे तो अच्छा। एक तो सत्याग्रही का यह धर्म ही है कि सत्याग्रह पर तभी कमर बांधे जब और सब उपाय बेकार हो गए हों, दूसरे जमनालालजी को जयपुर महाराजा का भी खयाल था। वे नहीं

चाहते थे कि जयपुर की प्रजा के खयाल और भाव जयपुर-महाराज के लिए खराब होने पावें। वे राजा और प्रजा में प्रेम और सद्भावना कायम रखना चाहते थे। इसलिए उनके दिमाग पर जितना बोझ इस जयपुर-सत्याग्रह का पड़ा उतना नागपुर के झंडा सत्याग्रह का नहीं। फिर इन दिनों उनका स्वास्थ्य भी काफी खराब रहता था। कान का एक खतरनाक आपरेशन हो चुका था, पांव में, घुटने में, काफी तकलीफ रहने लगी थी, फिर भी उन्होंने यह लड़ाई उसी उत्साह से लड़ी जिससे कि झंडा-सत्याग्रह लड़ा गया था। वे यह भी चाहते थे कि यह सत्याग्रह इतनी स्वच्छता, शुद्धता और सफलता के साथ लड़ा जाय कि वह देशी रियासतों के लिए नमूना बन सके। देशी रियासतों में उन दिनों कई छोटे-बड़े सत्याग्रह चल रहे थे। राजपुताने की दूसरी प्रमुख रियासत मेवाड़ में तथा भरतपुर आदि में भी उन दिनों सत्याग्रह चालू हो चुका था। उनकी यह कोशिश रही कि जगह जगह सत्याग्रहों में शक्ति न बिखेर कर एक ही जगह लड़ाई लड़ ली जाय तो उसकी सफलता का लाभ सब जगह मिल जायगा। काठियावाड़ के राजकोट में तो स्वयं बापू को प्राणों की बाजी लगानी पड़ी थी और आखिर वायसराय ने बीच में पड़कर बापू का उपवास तुड़वाया था। नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा और उत्तरदायी शासन—ये दो मांगें उस समय के रियासती राजनैतिक सत्याग्रहों में मुख्य थीं। जमनालालजी की कोटि के किसी पुरुष ने उनका नेतृत्व या संचालन-भार ग्रहण नहीं किया था। जमनालालजी गांधीजी के पांचवें पुत्र तथा अ० भा० कांग्रेस कमेटी की कार्यसमिति के महत्वपूर्ण सदस्य, कांग्रेस हाई कमाण्ड के अंग थे। अहिंसा पर उनका अटूट विश्वास था। कांग्रेस-जन अहिंसा को भले ही एक व्यवहार-नीति मानें, परन्तु जमनालालजी तो उसे एक धर्म के रूप में मानते थे और चाहते थे कि उसका उसी तरह से इस सत्याग्रह में पालन हो। ८-१-३९ को उन्होंने इस आशय का एक वक्तव्य

भी दिया था। इसलिए इस सत्याग्रह की ओर सारे देश की आँखें लग रही थीं और जमनालालजी ने अपनी जिम्मेवारी को पूरी तरह समझ. कर इसे चलाया।

यह सत्याग्रह तो प्रारंभ में "मांगने गई पूत और खो गई भरतार' वाली कहावत जैसा जमनालालजी के लिए हो गया। सीकर ठिकाना और जयपुर रियासत के बीच जो झगड़ा हुआ, उसमें ४–७–३८ को गोली तक चल गई। अपने रावराजा पर मुसीबत आई देखकर सीकर के वीर राजपूतों और जाटों में बड़ी उत्तेजना फैली। वे रावराजा के लिए मरने मिटने को तैयार हो गए। जयपुर-राज्य की फौज भी मुकाबले के लिए आ गई, और भी गोलियाँ चलने एवं निरर्थक खून बहने की आशंका हो गई। बीच बचाव कर के इसे रोकना जमनालालजी ने अपना कर्तव्य समझा। उन्होंने सीकर के राजपूतों और जाटों की इस विशाल शक्ति को देखकर उसकी प्रशंसा की तथा कहा कि यह शक्ति यदि ठीक दिशा में प्रयुक्त हो तो देश के बहुत बड़े काम आ सकती है।

वे सीकर के निवासी थे और सीकर था जयपुर के अंतर्गत। दोनों ही अंग जमनालालजी के अपने। वे बीच में कैसे नहीं पड़ते ? होना तो यह चाहिए था कि जमनालालजी की सेवाओं को सादर निमंत्रित किया जाता, परंतु, खुद चलकर जमनालालजी बीच में पड़े तो उसका पुरस्कार मिला—उन्हें देश निकाला। इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—सीकर के रावराजा तथा जयपुर महाराजा के बीच कुछ पुराना झगड़ा था। परंतु, सीकर के कुंवर श्री हरदयालसिंह को विलायत भेजने के प्रश्न को लेकर एक नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। इस झगड़े ने इतना तूल पकड़ लिया कि दोनों ओर से खासी लड़ाई की तैयारी हो गई। जयपुर की पुलिस ने सीकर के भाई-बेटों-राजपूतों पर ट्रेन में ही गोली चलाई जिससे कुछ व्यक्ति मरे और कई घायल हुए। इस स्थिति को देख कर जमनालालजी

से नहीं रहा गया। अतः उन्होंने इस झगड़े को शान्त करने का प्राण-प्रण से प्रयत्न किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वे उस समय जी-जान से इतना प्रयत्न नहीं करते तो संभव था कि वह आग बहुत बढ़ती और एक भयंकर काण्ड हो जाता। दोनों ओर काफी उत्तेजना थी। मध्यकाल के राजपूत राजाओं के विधिवत् युद्ध जैसा दृश्य था। शस्त्र-बल से ही फैसला करने का एकमात्र मार्ग लोगों को दीख रहा था। अतः जब जमनालालजी ने उसे हल करने का अपना शान्तिमय सुझाव रखा तो प्रारंभ में उन्होंने उसे नही माना। तब १३ मई १९३८ को उन्होंने सीकर की जनता से अपना कलेजा खोलकर अपील की जिसमें उन्होंने उनकी गलत कार्रवाई पर भी निर्भीकता से ध्यान खींचा और अपनी तरफ से वाजिब शर्तें पेश की, जिन्हे यदि जनता स्वीकार कर ले तो उन्होंने आत्मविश्वास के साथ कहा:—

"सीकर की प्रजा मेरा साथ देगी तो मुझको अवश्य ही अधिक से अधिक सफलता मिलेगी। इसमें किसी तरह का धोखा होगा, यह समझने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। अगर धोखा होगा तो वह मेरे साथ तथा प्रजामंडल के साथ होगा। मेरे या प्रजामण्डल के साथ किये हुए धोखे का जवाब मैं और प्रजामंडल सीकर की जनता की तरफ से देने की कोशिश करेंगे और इस कोशिश में यदि मुझे और मेरे साथियों को बड़ी-से-बड़ी मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा तो उसके लिए हम जनता के सेवक अपना बड़ा भाग्य समझेंगे। उस हालत में मैं खुद जनता को शान्तिमय सत्याग्रह आन्दोलन जारी करने की सलाह दूंगा और उस लड़ाई के सिपाहियों में सब से पहले मैं अपना नाम लिखवाने का आपसे वायदा करता हूँ।"

वातावरण में ऐसी सनसनी फैली हुई थी कि किसी भी क्षण गोलीबार हो सकता था। अब गोलियाँ चली—अब चलीं यही आशंका जनता के मन में छाई रहती थी। ऐसे कठिन समय में पं० लादूरामजी जोशी पहले

व्यक्ति थे जिन्होंने छाती ठोंक कर ऐलान किया कि यदि गोली चली तो पहला वार मैं अपनी छाती पर लूंगा। जमनालालजी भी इसी तैयारी से वहाँ गए थे। श्री बदरीनारायण जी सोढाणी इसी लड़ाई के जमाने में चमके। अन्त को इस अपील का जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। और लोगों ने जमनालालजी की बात मान ली। तब उन्होंने अपना कर्तव्य समझकर सीकर ठिकाने और रियासत के बीच समझौता कराने के प्रयत्न किए, जिसमें एक हद तक वे सफल भी हुए। परन्तु, रियासत ने अपनी ओर से इस समझौते को तोड़ डाला। जयपुर के अंग्रेज दीवान को भला सेठजी का प्रभाव कैसे बरदाश्त होता? समझौता तो रियासत की ओर से टूटा ही, साथ ही साथ सरकार ने परदेशी मान कर उनपर जयपुर-राज्य की सीमा में प्रवेश-निषेध का प्रतिबन्ध लगाया, सो भी यह कह कर कि उनके जानेसे शान्ति-भंग होगा---एक शान्ति-दूत के लिए विदेशी शस्त्र, बल के प्रतिनिधि का शान्ति की दुहाई देना? समझौते का तोड़ा जाना जहाँ जमनालालजी के शब्दों में अव्वल दरजे का विश्वासघात था, वहाँ उनके खुद के ऊपर यह प्रतिबंध अव्वल दरजे का अन्याय। जयपुर के प्रजा-जन होने के नाते वे जयपुर-राज्य की सीमा में आना व रहना अपना कर्तव्य तथा अधिकार मानते थे। उसे छीन लेने वाला सात समुन्दर पार का अधिकारी कौन? जो अंग्रेजी साम्राज्य की महज एक कठपुतली है, वह मेरा जन्मजात अधिकार कैसे छीन सकता है?

कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन के बाद देशी रियासतों की जनता में भी राजनैतिक चेतना की एक लहर दौड़ गई थी और विभिन्न रियासतों में लोक-संगठन का काम चालू था। इधर जयपुर-प्रजामण्डल की स्थापना तो १९३१ में ही हो गई थी, परंतु उसे विस्तृत और व्यवस्थित संगठित रूप १९३६ में मिला। जयपुर के कार्यकर्ताओं ने जब जमनालालजी से प्रजामंडल का अध्यक्षपद संभालने को कहा तो उन्होंने सहज में हाँ नहीं की। वैसे

प्रजामण्डल के काम को व्यवस्थित रूप देने में उनका ही मुख्य हाथ रहा है। 'जीवन कुटीर' के १९३६ के जलसे में ही जिसके कि अध्यक्ष स्वयं जमनालालजी थे, प्रजामण्डल को व्यवस्थित और व्यापक रूप देने का विचार जयपुर के नेताओं में हुआ था। उस उत्सव में श्री हीरालालजी शास्त्री का एक ऐसा गरम भाषण जयपुर-सरकार की समालोचना-सा करता हुआ, हुआ जो तत्कालीन शासकों को सहन नहीं होने जैसा था। मैं भी उसमें मौजूद था। उसी समय मैंने स्व० श्री कपूरचन्दजी पाटणी को सुझाया कि अब मामला ज्यादा उलझता दीखता है—शास्त्रीजी पर और वनस्थली के काम पर भी सरकार शायद हाथ डाल दे। इसकी रोक के लिए हमें सामूहिक बल लगाने की जरूरत होगी। इसका सबसे अच्छा उपाय यह है कि आज ही जमनालालजी की मौजूदगी में प्रजामण्डल का नवनिर्माण कर लिया जाय। जलसा समाप्त होते ही रात में जयपुर के सब उपस्थित नेता एकत्र हुए और पूर्वोक्त निश्चय किया तथा दूसरे ही दिन जयपुर में उसका विधान बना लिया गया।

इस प्रसंग के लिए जमनालालजी की डायरी (३१ अक्तूबर १९३६) में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—"जीवन कुटीर का उत्सव। सभापति बनना पड़ा। मानपत्र मिला। हीरालालजी शास्त्री ने रिपोर्ट पढ़ी। भाषण दिया, थोड़े उत्तेजित। बाद में कई भाषण हुए। .....मैंने भी साफ शांति व विश्वास के साथ रचनात्मक कार्य, कांग्रेस आदि का खुलासा करते हुए कहा।"

जमनालालजी का राजस्थान के प्रायः सभी कार्यकर्ताओं पर अच्छा खासा प्रभाव था ही, प्रजामण्डल का अध्यक्षपद संभालकर तो वे अधिकांश कार्यकर्ताओं के और भी अधिक निकट आये। उन्हीं दिनों जयपुर के शेखावटी इलाके में किसानों का एक अलग संगठन 'किसान जाट पंचायत' के नाम से स्वतन्त्र रूप से काम कर रहा था। श्री जमनालालजी के प्रभाव और प्रेरणा से सरदार हरलालसिंहजी ने अपने सारे संगठन को प्रजामंडल के अन्तर्गत दे दिया और स्वयं प्रजामंडल के कार्यकर्ता के रूप में

सारा समय कार्य करने में लगे रहे। समय पाकर श्री हीरालालजी शास्त्री भी प्रजामंडल में प्रधान रूप से सम्मिलित हो गये। श्री चिरंजीलालजी अग्रवाल, चिरंजीलालजी मिश्र, बाबा हरिश्चन्द्रजी जैसे प्रभावशाली व्यक्ति संगठन में शरीक हुए। इस संगठन के द्वारा आगे चलकर प्रजामंडल के जयपुर-सत्याग्रह को बड़ा बल मिला।

१९३८ के ३० दिसंबर की बात है। जमनालालजी प्रजामंडल की वर्किंग कमेटी में सम्मिलित होने के लिए जयपुर जा रहे थे जिसमें प्रजामंडल की उस समय की स्थिति और दुर्भिक्ष निवारणार्थ सेवा का कार्यक्रम मुख्य रूप से रखा गया था। सवाई माधोपुर स्टेशन होते हुए ज्यों ही वे फ्रांटियर मेल से उतरकर जयपुर आनेवाली ट्रेन की ओर जाने लगे, जयपुर स्टेट के पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल यंग साहब ने उनको जयपुर-राज्य की सीमा में प्रवेश करने से रोकने वाला सरकार का आर्डर दिखाया। जमनालालजी चकित से रह गये। रियासत के इस अदूरदर्शी निर्णय पर वे किंचित मुस्कुराये, फिर गंभीर होकर यंग साहब से कहने लगे:—"क्या बीचम साहब (रियासत के दीवान) के लिए मैं इतना खतरनाक हो गया हूँ? मैं जयपुर राज्य का रहनेवाला हूँ, मेरा जन्मस्थान यहाँ है। ये बीचम साहब एक विदेशी हैं, मुझे रोकने का उन्हें क्या हक है? यह सब क्या खेल है?" उपरोक्त शब्द कहते कहते जमनालालजी के नेत्रों में कुछ सुर्खी-सी आ गई। "मैं इस आर्डर को नहीं मान सकता। मुझे तोड़ना होगा।"

जमनालालजी के इन शब्दों को सुनकर यंग साहब कुछ सिटपिटाये। और कहने लगे—"इस समय मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि इस संबंध में आप मुझे कुछ समय दें जिससे उच्च अधिकारियों को कहकर मैं प्रवेश-निषेध का यह आर्डर वापस करा दूं। मैं स्वयं इसे अच्छा नहीं समझता।" जमनालालजी ने तुरन्त कहा, "आप वापस कराने का आश्वासन किस आधार

पर देते हैं ? यह जानबूझकर छेड़खानी की गई है, एक संघर्ष को निमन्त्रित करने के लिए। यह प्रतिबन्ध मुझपर व्यक्तिगत ही नहीं है मैं प्रजामंडल की कार्यसमिति में सम्मिलित होने के लिए जा रहा हूँ। अतः यह चुनौती प्रजा मंडल को है। तब यंग साहब ने आजिजी के साथ कहा;—"आप ऐसा खयाल न करें, यह आर्डर एकाएक उच्चाधिकारियों के द्वारा मेरे पास पहुँचा था। मुझे लागू करना पड़ा। आप मेरी बिनती पर फिलहाल लौट जायँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह आर्डर जल्दी ही वापस ले लिया जायगा। मैं स्वयं इसे पसन्द नहीं करता।"

इस पर जमनालालजी ने अपने प्रजामंडल के एक साथी से जो उस वक्त वहीं उपस्थित थे, कहा—"यह तो निश्चित है कि हम लोगों को इन संकुचित मनोवृत्ति के अधिकारियों से लड़ाई लड़नी ही होगी, चाहे आज चाहे कल। किन्तु, यह सब करने से पहले इस संबंध में बापू की सलाह ले लेना जरूरी है। बापू की सलाह के बिना मेरे लिए संघर्ष में पड़ना ठीक नहीं है। अच्छा यही रहेगा कि तुम इसी ट्रेन से जयपुर जाकर शास्त्रीजी तथा अन्य मित्रों को इस घटना का सारा ब्यौरा बतला दो। इस संबंध में विचार-विनिमय के लिए हम लोग कल ही दिल्ली में मिलें।

इधर ४-१-३९ को इन्हीं यंग साहब ने चरखा-संघ से राज नैतिक आन्दोलन में न पड़ने का इकरार मांगा और ११-१-३९ को प्रजामंडल सरकार द्वारा अमान्य कर दिया गया। ऐसे वातावरण में देश-निकाले के हुक्म से जमनालालजी घायल शेर की तरह व्याकुल हो गये, उस आज्ञा को एक क्षण के लिए भी मानना उनकी आत्मा पर मानों पत्थर रखने जैसा था फिर भी उन्होंने उसकी अवज्ञा करने का निश्चय करने के पहले सोच-विचार के लिए काफी समय लिया। एक तो इसलिए कि आज्ञा वापस कराने का कोई सम्मानप्रद मध्यम मार्ग निकल सके, तो ऐसा करना व जल्दबाजी से काम न लेना सत्याग्रही का पहला कर्तव्य है।

दूसरे लड़ाई का सामान भी तो उसके लायक तैयार होना चाहिए। वे उस हुक्म की अवहेलना करके अकेले जेल में बैठ सकते थे, और गांधीजी के मत के अनुसार तो उनके अकेले के बलिदान को भी हजम करना जयपुर के अंग्रेज अधिकारी के लिए ही नहीं बल्कि भारत की ब्रिटिश सरकार के लिए भी कठिन था। परन्तु, जमनालालजी देशी-रियासतों को संगठित सत्याग्रह का पदार्थपाठ पढ़ाना चाहते थे। केवल उत्साह से यह लड़ाई लड़ी नहीं जा सकती थी। उसके लिए अच्छे तालीमयाफ्ता (ट्रेण्ड) और अनुशासनबद्ध सिपाही और उपनेता चाहिए। बहुत सोच विचारने के बाद उन्होंने जयपुर प्रजामंडल के नेताओं—कार्यसमिति के सदस्यों—के सामने यह शर्त रखी कि यदि कार्य-समिति के कम से कम छः सदस्य भी मेरे पश्चात् जेल जाने को तैयार हों तो मुझे सत्याग्रह की जिम्मेदारी लेने में दिक्कत नहीं है। दिल्ली में सलाह-मशविरा करके उन्होंने उस समय की परिस्थिति और "पब्लिक सोसायटीज ऐक्ट" सरीखे घृणित कानून के विरोध स्वरूप प्रजामण्डल के विधान को स्थगित कर दिया और सबको उसकी सदस्यता से बरी करके केवल स्वयं तक ही प्रजामण्डल को सीमित रखा। इसका यह मतलब था कि सरकार उनके सिवा किसी अन्य व्यक्ति पर कानून का वार न कर सके।

उन्हें लड़ाई तो रियासती सरकार से लड़नी ही थी, परन्तु, वे धैर्य से काम ले रहे थे। गांधीजी की आज्ञा और आशीर्वाद के बिना तो उन दिनों सत्याग्रह हो भी नहीं सकता था। जमनालालजी गांधीजी के सामने जयपुर सत्याग्रह की जिम्मेवारी तब तक लेने को तैयार नहीं थे जब तक कि पूर्वोक्त शर्त पूरी होने का आश्वासन न मिले। अंत को ५ जनवरी, १९३९ को बारडोली में सर्व-श्री हीरालालजी शास्त्री, कपूरचन्दजी पाटणी, पं० हरिश्चन्द्रजी शर्मा, चिरंजीलाल मिश्र, हरलालसिंहजी, के जो उस दिन बारडोली में थे, उसी प्रसिद्ध बरगद के पेड़ के नीचे, जिसके कि नीचे बार-

डोली का सत्याग्रह घोषित करनेवाली सभा गांधीजी के नेतृत्व में हुई थी, 'हां' भरने पर जमनालालजी के चेहरे पर आत्म-विश्वास का तेज चमक उठा और उन्हें लगा-मानों उनके दिल पर का सारा बोझ हट गया। उसी दिन की अपनी डायरी में वे लिखते हैं! —"बापू ने जयपुर के बारे में मेरी स्थिति उत्साह व विचार समझे। जयपुर के मित्रों का आग्रह था कि सब प्रकार की जोखिम उठाकर लड़ाई लड़नी चाहिए, हम सब पूरी तरह से तैयार हैं। आपकी आज्ञा का पूरी तरह पालन करेंगे। आप हमारे सत्याग्रह के नेता रहेंगे आदि।" वहीं से सब लोग सीधे बापू की कुटिया पर पहुँचे, जो कि उस वक्त वहीं थे। बापू ने भी जमनालालजी की शर्त को उचित और बहुत ठीक बताकर सत्याग्रह के लिए आशीर्वाद दे दिया।

जयपुर प्रजामंडल के नेता लोग सत्याग्रह संग्राम के अनुभवी नहीं थे, इसलिए जमनालालजी को इस बार—सारी व्यूह-रचना, सारा संगठन, स्वयं अपनी देखरेख में करना था। बापू ने शिष्ट-मंडल को सुझाया कि सरदार से भी सलाह ले लो। उन्होंने कई सत्याग्रहों का संगठन किया है। हम लोग सरदारश्री के कमरे में पहुँचे तो वे एक चटाई पर बैठे हुए थे। हमने जिक्र शुरू किया कि जयपुर में सत्याग्रह करना है तो बापू से सलाह लेने गये थे—इतने ही में सरदार ने अपने अनोखे तीखे ताने के स्वर में कहा—सत्याग्रह करना है या नहीं करना है? करना है तो बापू से पूछना क्या? न करना हो तो उनके पास जाकर उनका नाम लेकर कह दो—हम तो सत्याग्रह करना चाहते थे किंतु बापू ने मना कर दिया तो रुक गये। क्या करें? मुझे तो जब कोई काम करना होता है तो बापू से पूछने नहीं जाता।' जब हम लोगों ने बताया कि हमारा निश्चय है और बापू के आशीर्वाद मिल चुके हैं, व्यूह-रचना के बारे में आपसे सलाह लेना है, तो वे बहुत संतुष्ट हुए। और जैसे एक सेनापति अपने सैनिकों को लड़ाई के सब ढंग बताता है वैसे हमें बताने लगे।

सबसे बड़ी चिंता यह थी कि प्रजामण्डल के नेताओं के जेल चले जाने के बाद सत्याग्रह कैसे चालू रखा जाय, इसके लिए उन्होंने श्री राधाकृष्ण बजाज, श्री ब० सा० देशपांडे और श्री ॐदत्तजी शास्त्री को जब प्राप्त कर लिया तो कुछ निश्चितता हुई। श्री दामोदरजी मूंदड़ा तो जोकि जमनालालजी के सेक्रेटरी थे सब काम में पूरी तरह सहयोग दे ही रहे थे। जमनालालजी की गिरफ्तारी के बाद श्री राधाकृष्णजी सत्याग्रह के संचालक रहें—ऐसा उन्होंने निश्चय किया। राधाकृष्णजी को एक पत्र लिखा, जिससे सत्याग्रह की रचना पर कुछ प्रकाश पड़ता है। वह इस प्रकार है—

आगरा,
४-२-३९

"प्रिय राधाकृष्ण,

आज मैं यहां से सीकर इस तैयारी से जा रहा हूँ कि जयपुर के अधिकारी मुझे जेल भेजने पर मजबूर हों। उस दशा में मेरे बाद मेरे शास्त्रीजी के नाम लिखे पत्र तारीख २९-१-३९ के मुताबिक आप लोगों की कौन्सिल जो मेरी मौजूदगी में एक सलाहकार के रूप में बदल गई थी फिर से सत्याग्रह कौंसिल बन जावेगी और उसको मेरे सब अख्तियार रहेंगे। अभी की तजवीज के मुताबिक श्री शास्त्रीजी और श्री हरिश्चन्द्रजी जयपुर रियासत के अन्दर रहेंगे और वहां अन्दर सत्याग्रह-संचालन शास्त्रीजी की राय के अनुसार होगा। श्री शास्त्रीजी के जेल चले जाने पर सत्याग्रह कौन्सिल के द्वारा होगा जिसके कन्वीनर (संयोजक) शास्त्रीजी की अनुपस्थिति में तुम रहोगे। जबतक शास्त्रीजी बाहर हैं और अन्दर से सत्याग्रह का संचालन करते रहेंगे, तबतक जयपुर सत्याग्रह-कार्यालय ,आगरा, का मुख्य काम प्रचार, प्रकाशन व सत्याग्रह-छावनी का प्रबन्ध रहेगा।

श्री सीतारामजी सेक्सीरिया कलकत्ते की ओर काम करेंगे व श्री मदनलालजी जालान बंबई की तरफ व तुम आगरा-कार्यालय के इनचार्ज रहोगे।

श्री शास्त्रीजी या श्री हरिश्चन्द्रजी की गिरफ्तारी के बाद सत्याग्रह-कौन्सिल में श्री भागीरथजी (कानोडिया) को लिया जावे। उसके बाद कौन्सिल में जो जगह रिक्त हो, उस पर श्री जानकीदेवी बजाज को लिया जावे। उनके जेल चले जाने के बाद में चाहता हूँ कि श्री पार्वती देवी डिडवानिया ली जावे। उसके बाद कपूरचन्दजी व बाद में जैसे ठीक समझे वैसे रिक्त स्थान की पूर्ति कौन्सिल कर लिया करें।

तुम्हें सलाह व सहायता श्री हरिभाऊजी उपाध्याय की रहेगी ही।"

जमनालाल बजाज

१ फरवरी, १९३९ के दिन जमनालालजी ने सरकारी हुक्म की अवज्ञा कर जयपुर-राज्य की सीमा में प्रवेश किया। यह सत्याग्रह आरंभ तो तभी हो गया था जब कि जमनालालजी ने प्रतिबन्ध तोड़कर जयपुर में प्रवेश किया। परन्तु पुलिस ने दो-तीन बार उन्हें मोटर में ले जाकर जयपुर-राज्य के बाहर छोड़ दिया। उस समय जमनालालजी ने केवल गाजर खाने का ही निर्णय किया था कि जबतक सरकार नहीं पकड़ेगी तबतक अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। एक बार तो जब उनको पुलिस ने जबर्दस्ती मोटर में बिठाया तो इस झमेले में उनका कुर्ता फट गया और उन्हें चोट भी आ गई। आखिरी याने तीसरी मर्तबा जब प्रतिबन्ध तोड़कर अलवर होते हुए बैराठ नामक कस्बे में पहुँचे तो सुपरिन्टेंडेंट पुलिस ठा० फूलसिंह ने उन्हें गिरफ्तार किया। यंग साहब ने सेठजी से कहा—इस बार आप स्टेट में ही रखे जाएंगे। फूलसिंहजी ने यह भी कहा था कि यदि इस बार आपको बाहर भेजा गया तो मैं नौकरी छोड़ दूंगा। आखिर अब की बार जमनालालजी रियासत में ही नजरबन्द रखे गये। जयपुर-राज्य के एक पहाड़ी किले पर जयपुर से करीब ४० मील दूर (मोरा गांव) एकान्त में उन्हें रखा गया। वहां भी जमनालालजी सबेरे घूमने गावों तक जाते और ग्रामवासियों की यथा-संभव सेवा कर अपनेको कृतार्थ मानते। उन दिनों जयपुर में शेरों

का बड़ा ऊधम मचा हुआ था। राज्य के कानून के कारण कोई जंगल में शेर को नहीं मार सकता था। क्योंकि शेर शिकार की वस्तु समझी जाकर केवल महाराजा अथवा उनकी पार्टी के लिए ही सुरक्षित रखी जाती थी। शेर गावों में पहुँचते और बहुधा मवेशियों को और कभी कभी तो इन्सानों को भी उठा ले जाते थे। बाद में जमनालालजी जहां कैद रखे गये थे वहां भी आसपास के गावों में शेरो का ऐसा ही उत्पात चल रहा था, इस बात की सूचना जमनालालजी ने सरकार के पास भिजवाई। उन्होंने अपने एकान्तवास का उपयोग आत्म-निरीक्षण और आत्मसाधना में किया, जो कि उनके जीवन का प्रारंभ से ही लक्ष्य रहा है।

जयपुर-जेल में आपने काफी यातना उठाई। दस बारह मील घूमने जाते थे। मूंग की दाल से उन्हें सर्वथा अरुचि थी। परन्तु, जेल में मूंग की दाल प्रति दिन बनती थी, जो कि उन्हें खानी पड़ती थी। घी नहीं लेने के कारण कमजोर काफी हो गये थे। कमजोरी में घुटने का दर्द हुआ। मूंग की दाल की बात उन्होंने घर आकर जब बताई तो बड़ी चिन्ता हुई; क्योंकि घरवाले सब जानते थे कि मूंग की दाल उन्हें कितनी बेस्वाद लगती है। सबको साश्चर्य चिंता हुई कि मामूली बात के लिए क्यों नहीं उन्होंने जेल अधिकारियों का ध्यान आकर्षित किया। जेल में आपका घुटनों का जो दर्द शुरू हुआ उसका जिक्र १६ मार्च की डायरी में उन्होंने इस तरह किया:—"दाहिने पांव में जहां पहले कलकत्ता, बंबई, वर्धा में दर्द हुआ था, दर्द होना शुरू हुआ। गुप्ता, लालसोटवाले आये, तपास की" बिजली लगाते समय डाक्टरों की थोड़ी असावधानी से उनकी एक टांग दो इंच के करीब जल गई। बाद में वहीं गहरा जख्म हो गया। परन्तु जमनालालजी में सहन करने की अदभुत शक्ति थी। उन्होंने अपनी सरल उदारता के अनुसार पांव की खराबी जिस डाक्टर की भूल से हुई उसे अभयदान दिया। इस इलाज के लिए आपको मोरांसागर से जयपुर शहर के

नजदीक करणावतों के बाग में ले आया गया था। इन्हीं दिनों सरकारी अफसरों ने आपको सलाह दी कि योरप जाकर अपना इलाज करावें। इसपर जमनालालजी ने जो शब्द कहे, वे इस प्रकार हैं:—

"मैं तो यहीं पर जनमा हूँ और यहीं पर मरना चाहता हूँ। योरोप की चिकित्सा गरीबों के लिए सुसाध्य नहीं है। तो मैं उसका लाभ कैसे ले सकता हूँ? चिकित्सा के लिए विदेश जाने की अपेक्षा तो मुझे यहीं मरना पसन्द है।" उनकी इस भावना और दृढ़ता का जयपुर के सरकारी अधिकारियों पर अच्छा असर पड़ा। इस प्रकार के कष्टों के अतिरिक्त, सरकार ने प्रजामंडल के साथ अत्यधिक ज्यादतियां भी कीं। बिला वजह कई स्थानों तथा व्यक्तियों की और जेल में भी व्यक्तियों की तलाशियां लेना मानों उसका एक मामूली काम हो गया था। श्री जमनालालजी की भी ली और उनकी डायरियां भी सरकार ने जब्त कर लीं जो कई दिनों बाद फिर लौटाई गईं।

इधर सत्याग्रह जोरों से शुरू हुआ। प्रजामण्डल के करीब सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये गये। सत्याग्रह की टुकड़ियां विभिन्न स्थानों से आकर जेलें भरने लगीं। करीब ५०० व्यक्तियों ने सत्याग्रह में भाग लिया जिनमें कई स्त्रियां भी थीं। किन्तु, महात्माजी के विचार से सत्याग्रह के लिए यह लाजिमी नहीं था कि काफी तादाद में लोग जेल चले जायें, प्रत्युत् यह था कि जेल चाहे कम से कम जायें परन्तु वे सच्चे,सत्याग्रही-धर्म का पालन करने वाले हों। बहुत अधिक मात्रा में जब लोग जेल जाने लगते हैं तो इस मर्यादा का पालन होना असंभव हो जाता है और यह बात इस सत्याग्रह में भी होना स्वाभाविक था। इधर महात्माजी ने वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से इस विषय में बातचीत कर ली थी, उन्होंने उन्हें खानगी में इस मामले को सुविधानुसार ठीक करने का आश्वासनभी दे दिया था।फलतः महात्माजी के आदेशानुसार यह सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया।

कुछ दिनों बाद जमनालालजी छूट गये, उनके साथी तो पहले ही छोड़े जा चुके थे, । उस समय की स्थिति के अनुसार एक सम्मानपूर्ण समझौता प्रजामण्डल और जयपुर राज्य के बीच हुआ जो जमनालालजी की ही दूरदर्शिता का परिणाम था । समझौते में प्रजामण्डल की ये शर्तें मान ली गई थीं:—

१. प्रजा-मण्डल का नाम वही रहेगा ।

२. प्रजामंडल का मेंबर बाहरी राजनैतिक संस्था का मेंबर या पदाधिकारी बन सकता है ।

३. हमारी प्रवृत्तियों या हलचलों के बारे में हमें लोगों के पास जाने का—भाषण देने का व लोगों को समझाने का हक है । हमारा उद्देश्य उत्तरदायी शासन है । परन्तु, इसके आगे अंतिम (अल्टिमेट) और लगा देना होगा ।

जयपुर-सत्याग्रह के स्थगित करने के साथ ही, जमनालालजी ने रचनात्मक कार्य को बल देने की प्रेरणा की क्योंकि इस सत्याग्रह ने यह अनुभव उनको कराया कि अभी भीतर बहुत कमजोरियाँ हैं और उन्हें दूर किये बिना प्रजामण्डल की शक्ति नहीं बढ़ सकती। इसलिए रचनात्मक योग्यता बढ़ानी चाहिए। अतः जयपुर में एक खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी का आयोजन किया गया । यह प्रदर्शनी राजस्थान की अच्छी प्रदर्शनियों में मानी गई। इसके ३-४ माह बाद ही अजमेर में भी इसी प्रकार की दूसरी प्रदर्शनी की गई, जिसमें राष्ट्रीय झण्डा न उतारने के अपराध में उसके दोनों मन्त्रियों श्री कृष्णगोपाल गर्ग तथा श्री बालकृष्ण गर्ग को ४-४ महीने की सजा हुई थी । इसे जमनालालजी ने ही खोला था ।

जमनालालजी ने जयपुर-राज्य का दौरा किया और परिस्थिति का निकट से अध्ययन किया । उनकी प्रेरणा से शेखावटी में खादी के कई नये केन्द्र उस समय खोले गये । राजस्थान के कार्यकर्ताओं को जब निकट से

प्रेरणा मिलने लगी तो वे सन्तुष्ट हुए। अपने ऊपर एक छत्र समझकर निश्चितता-सी अनुभव करने लगे थे। परन्तु, बाद को दुर्भाग्य से कमजोरियों ने अपना जोर जमाया और परिस्थिति ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि जमनालालजी को बड़े कष्ट के साथ जयपुर की जिम्मेदारी छोड़कर मध्यप्रांत-कांग्रेस की जिम्मेदारी संभालने में प्रवृत्त होना पड़ा।

मरने से कुछ दिनों पूर्व जमनालालजी को जयपुर के साथियों ने फिर जयपुर आने के लिए लिखा भी था—परन्तु ,काल की गति विचित्र है, वे इस भौतिक शरीर को छोड़कर प्रत्येक राजस्थानी के हृदय में समा गये।

: २२

माता मिली

"माँ पर ठीक श्रद्धा बढ़ती जा रही है, परमात्मा की बडी दया है। बापू सरीखे बाप व आनदमयी माता के मातृप्रेम का सौभाग्य मुझे इसी जन्म में प्राप्त हो रहा है, अब भी मे नालायक रहा तो मेरा ही दोष समझना चाहिए, अब सभव है कि जीवन ठीक शुद्ध हो जायगा।"

जमनालालजीकी डायरी से

"मुझे बाप तो बापू मिल ही गए थे। माँ आनन्दमयीजी मिल गई। अब भी मुझे शान्ति नहीं मिली तो मेरा ही कोई भारी पाप आडे आना सम्भव होगा। मुझे आशा है, जरूर शान्ति मिल जावेगी।"

पुत्री मदालसा को लिखे एक पत्र से

जयपुर सत्याग्रह म वे कतव्य के साथ प्रायश्चित्त की भी भावना से शरीक हुए थ। दिल्ली से जयपुर रवाना होते समय उन्होन कहा था— राजस्थान के प्रति हमन आजतक जो उपेक्षा दिखाइ है उसका प्रयश्चित्त करन मै जा रहा हूँ। और इसी लिए समझौता होन के बाद जमनालालजी न चाहा था कि वहाँ रचनात्मक काय जोर-शोर से साथ शुरू किया जाय और उसके द्वारा फिर स्वराज्य की लडाई के लिए अच्छी जमीन और सग ठन तैयार किया जाय। किन्तु जब उनका मन वहाँसे हट गया और उनके लिए काम करना कठिन हो गया तब उन्होन प्रजामडल के अध्यक्षपद पर बन रहना मुनासिब न समझकर अपनको उस जिम्मे दारी से मुक्त कर लिया और मध्य प्रात ही म काग्रस-सगठन को

मजबूत बनाने की सोची। मध्यप्रान्त भी जमनालालजी का खुद अपना प्रान्त है और वे अपनेको महाराष्ट्रीय भी समझते थे; महाराष्ट्र की सेवा करने की उत्कट इच्छा रखते थे। राजनैतिक तथा रचनात्मक दोनों क्षेत्रों में उन्होंने महाराष्ट्र की काफी सेवा की । १९२० से ही जब से वे नागपुर-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष हुए, उन्होंने मध्यप्रांत में राजनैतिक आंदोलन और संगठन में अपनी शक्ति लगाना शुरू कर दिया था। गाँधी-युग के पहले डा० मुंजे, खापर्डे, अणे–तिलक-दल के नेताओं का दौर दौरा वहाँ था। नरम-दल के अगुआ श्री मुधोलकर, चिटनवीस, बोस ढीले पड़ गये थे। असहयोग-आन्दोलन के श्रीगणेश ने, जमनालालजी को मध्यप्रान्त का नेता बना दिया था। वे नागपुर-प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बनाये गये और उनकी सहायता से महात्मा भगवानदीनजी के संचालकत्व में असहयोग-आश्रम का जन्म हुआ। साथ ही तिलक राष्ट्रीय विद्यालय भी खुला। असहयोग-आश्रम अनुशासनबद्ध, राजनैतिक कार्यकर्ताओं के शिक्षण तथा कार्य की छावनी थी, जब कि तिलक विद्यालय असहयोगी विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना भरने का काम कर रहा था। उस समय वहाँ ४ लाल की खूब धाक थी—सर्वश्री सुन्दरलाल, माखनलाल, जमनालाल और अर्जुनलाल (सेठी) जमनालाल जी के कारण न केवल व्यापारीवर्ग ही कांग्रेस में शरीक हुआ, बल्कि प्रान्त के तमाम रचनात्मक कार्यों को बड़ी गति मिली। नागपुर का खादी-भण्डार खुद जमनालालजी के ही प्रयत्न से खुला था और खुद गाँधीजी ने उसका उद्घाटन किया था। सर्वश्री पूनमचंदजी रांका, जनरल अवारी, घटवाई, अम्बुलकर उसी समय के तैयार हुए कार्यकर्ता हैं। किसी भी होनहार कार्यकर्ता को जमनालालजी यहाँ भी सहायता व प्रोत्साहन देने से न चूके। बड़े बड़े व्यक्तियों में, दलों में, संस्थाओं में जब कहीं झगड़े पड़ते तो जमनालालजी निष्पक्ष व न्यायप्रिय व्यक्ति की तरह उनमें एकता लाने का सदैव प्रयत्न करते। प्रसिद्ध खरे-प्रकरण में उन्होंने परस्पर शान्ति स्थापित

करने में कोई बात उठा न रक्खी। दोनों पक्ष के गुणों को झट् पकड़ लेने की तथा उनके बल पर सद्भावना पैदा करने की अद्भुत कला जमनालालजी में थी।

बीच में सारे भारत में बहुत काम करने के बाद, खासकर जयपुर-सत्याग्रह के बाद, उन्हें लगा कि अपने ही प्रान्त को फिर सँभालना चाहिए और व्यापक क्षेत्रों से हटा कर शक्ति को एक ही क्षेत्र में केन्द्रित करना चाहिए, जिससे ठोस शक्ति निर्माण हो सके। इस दिशा में उन्होंने कुछ काम आरंभ किया ही था कि व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हो गया। इसमें विनोबा प्रथम सत्याग्रही के रूप में गांधीजी के द्वारा चुने गए थे। और २१ दिसम्बर १९४० को व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में वे जेल चले गए। युद्ध में सहायता देने के विरुद्ध यह सत्याग्रह शुरू किया गया था, इसका नारा यह था:—

"इस अंग्रेजी लड़ाई में आदमी या पैसे से मदद देना हराम है। लड़ाइयों का सही विरोध अहिंसा से ही हो सकता है।"

इसका पद्यबद्ध अनुवाद जमनालालजी की डायरी में यों मिलता है:—
"ब्रिटिश युद्ध में जन धन देना भूल है। सकल युद्ध-अवरोध अहिंसा-मूल है।"

जमनालालजी भी इस व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल गये। उनके मन में मंथन तो एक अरसे चल ही रहा था। चित्त-शुद्धि का जो आदर्श उन्होंने अपने सामने रखा था उस तक नहीं पहुँच पाने से उनका जी व्याकुल रहने लगा था, जयपुर-जेल की उनकी डायरियां इस मंथन से भरी पडी हैं। वहाँ वे अकेले थे। नागपुर-जेल में अब उन्हें अपने गुरु विनोबा का साथ मिल गया। यहां की डायरी क्या है, एक जीवित संत-समागम ही है। विनोबा के प्रवचनों और उपदेशों के सारांश—एकनाथ आदि के वचनों का संग्रह प्रायः नित्य की डायरी में मिलता है। डायरी में प्रायः हृदय खोलकर रख देते थे। अपने मन में आने वाले अच्छे-बुरे सभी विचार लिखते और बुरे विचारों को दूर करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते।

उन्हें जीवन में साधना की बड़ी भारी प्यास सताने लगी। अपनी इस प्यास को बुझाने के लिए बेचैन थे।

जमनालालजी की मुख्य भूमिका एक साधक की थी। राजनैतिक तथा अन्य जन-सेवा के कार्य में भी उनकी यही वृत्ति रहती थी। जब जब अवसर मिलते वे साधु-संतों के दर्शन करते और उनके सत्संग का लाभ उठाने से नहीं चूकते थे। वे अरविंद आश्रम पांडीचेरी गये थे और रमण महर्षि के दर्शन के लिए उनके आश्रम में भी गये थे। उन्होंने वहाँ रमण महर्षि से जो प्रश्न किये वे यह बताते हैं कि उनकी वृत्ति कितनी अन्तर्मुखी थी और वे किस कोटि के साधक थे। उनमें से कुछ प्रश्न-उत्तर यहां दिये जा रहे हैं।

प्रश्न—सद्बुद्धि स्थिर कैसे रहे ?

उत्तर—सब प्राणी अपने वातावरण से परिचित रहते हैं। इसलिए उन सब में बुद्धि के रहने की कल्पना की जानी चाहिए। साथ ही मनुष्य और दूसरे प्राणियों की बुद्धि में भेद होता है; क्योंकि मनुष्य संसार को जैसा है उसी रूप में नही देखता और उसके अनुसार आचरण नहीं करता, बल्कि अपनी कामना की पूर्ति भी चाहता है और अपनी वर्तमान अवस्था में संतुष्ट नही रहता। अपनी दृष्टि को व्यापक बनाता है, लेकिन फिर भी असंतुष्ट रहता है। तब वह सोच विचार और तर्क-वितर्क करता है। शाश्वत सुख और शांति पाने के लिए पहले प्रकृति को स्थिर बनाना चाहिए, अतः वह अपनी प्रकृति को यानी "अपने को" पाने और स्थिर बनाने का प्रयत्न करता है। आत्म-प्राप्ति हो गई तो फिर सब कुछ मिल गया।

यह आत्मशोधन का मार्ग मनुष्य को बुद्धि के द्वारा प्राप्त होता है। निरन्तर अभ्यास से बुद्धि को अनुभव हो जाता है कि कोई महत्तर या दिव्य शक्ति उसे कार्य करने का बल दे रही है। वह स्वयं उस शक्ति को पहुँच नहीं सकती। इसलिए वह एक सीमा के बाद असमर्थ हो जाती है। उस

अवस्था में भी परमात्म-शक्ति अकेली शेष रहती है। यही आत्म-साक्षात्कार है। यही पूर्ण अवस्था है, यही अंतिम लक्ष्य है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुद्धि का उद्देश्य यह जान लेना है कि वह परमात्म-शक्ति के वशीभूत है और उसे पाने में असमर्थ है। अतः परमात्म सिद्धि से पहिले ही उसका लय हो जाता है।

प्रश्न—नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःख-तप्तानां प्राणिनामार्ति-नाशनम्। क्या यह ठीक है ?

उत्तर—हां, जब तक इन्द्रियां विषयों से जुदा हैं (यानी दुई है) तबतक ही "काम" (वासना) है। यदि विषय नही है तो कामना भी नहीं है। निष्काम अवस्था ही मोक्ष है। निद्रावस्था में दुई नही है। अतः निष्कामता है। इसके विपरीत जाग्रत अवस्था में दुई है और इसलिए वहाँ काम भी है। दुई के कारण विषय की प्राप्ति की कामना उत्पन्न होती है। यही बहिर्मुख वृत्ति दुई और कामना के मूल में है। अगर कोई जान ले कि आनन्द आत्मा से भिन्न नहीं है तो वृत्ति अन्तर्मुख हो जाती है, आत्म-प्राप्ति की सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। बृहदारण्यक उपनिषद में इसे 'अवाप्त काम होना' कहा है। यही मोक्ष है।

इसी प्रकार के अन्य भी कई प्रश्न उन्होंने किये थे।

यह वह काल है, जिसमें जमनालालजी अपनी सिद्धि की ओर आगे बढ़ते जा रहे थे। फिर भी उन्हें अपनी प्रगति से संतोष नहीं हो रहा था। उन्हें ऐसा लगता था कि कोई ऐसी देवी मिले जो उनके मातृपद को सुशोभित कर ले। बापू में वे अपने पितृस्थान की पूर्ति देखते थे। विनोबा में उनको अपने जीवन-गुरु मिल गये थे। परन्तु, माता का स्थान खाली था। वैसे उनकी सगी माँ आज भी मौजूद हैं। जमनालालजी ने उनसे बहुत प्यार पाया था। अब भी सबेरे उनकी मां ४ बजे उठकर उनके

पास आ जाती। जमनालालजी उठकर कहते कि मां, तुम भजन गाओ--माताजो उनकी भजन गाती, वे डायरी लिखने बैठ जाते। किन्तु वे चाहते थे कि किसी ऐसी बहन का साथ उन्हें मिले कि जिसमें भर-पूर वात्सल्य हो। उनकी डायरी में एक जगह ऐसी कुछ बहनों के नाम भी लिखे मिलते हैं जिनसे उन्होंने अपने लिए इस मातृत्व के मिलने की संभावना मानी दीखती है। उसमें आनन्दमयी मां का नाम सर्व-प्रथम लिखा है।

वे प्रायः कहा करते थे, मुझे मेरी माँ बहुत प्यारी लगती है। पर, एक माँ मुझे ऐसी भी चाहिए कि जिसकी गोद में मैं शांति से लेट सकूँ और ज्ञान की भूख तृप्त कर सकूँ। बापू को जब उन्होंने शिमला से अपनी मातृ-वात्सल्य की जिज्ञासा प्रकट करते हुए लिखा तो उन्होंने विनोद में यह उत्तर दिया था कि तुम्हारे जैसे इतने भारी शरीर को गोद में कौन सुला सकेगा ? ऐसा असंभव है। फिर भी उन्होंने लिखा कि कमलादेवी नेहरू की एक गुरु-माँ आनन्दमयी देहरादून में हैं, शिमला से लौटते हुए वहाँ होते आना। पूज्य बापू के ऐसा लिखने से वे केवल दर्शनों के लिए देहरादून गये। उन दिनों पं० जवाहरलालजी देहरा-जेल में थे। उनसे मिलने गये तो माता आनन्दमयी से भी मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ पहुँचकर उन्हें माता आनन्दमयी के दर्शन कर बड़ा संतोष और आनन्द प्राप्त हुआ। उनकी सबसे बड़ी खूबी है सदा-प्रसन्नता और वत्सलता।

जमनालालजी अपनी पुत्री मदालसा को एक पत्र में वहाँ के प्रभाव का इस प्रकार वर्णन करते हैं --

"माँ आनन्दमयी की पुस्तिका देख ली होगी। मेरा मन यहाँ खूब लग रहा है। शान्ति भी इन वर्षों में नहीं मिली, इतनी मिल रही है।

मेरी दिनचर्या ठीक चल रही है। सुबह चार बजे अन्दाज उठता हूँ। माँ के पास बैठता हूँ। नामस्मरण की कोशिश के साथ माँ के पग करता हूँ। बाद में साढ़े पांच के करीब एक मील अन्दाज घूमते हुए

जंगल में निपटता हूँ.....फिर अढ़ाई घंटे माँ के पास चर्चा विचार करता हूँ।"

मदालसा को फिर एक पत्र में उन्होंने लिखा था—

"भोजन के बाद थोड़ा आराम, एकाध पत्र कभी कभी लिखता हूँ, फिर दो बजे करीब झरने पर जाकर निपटना, निवृत्त होना, वापस आकर माँ के पास एक या आध घंटा एकान्त में विचार-विनिमय, शंका-सामाधान होता है। बाद में चर्खा यहाँ रोज कातता हूँ (ठीक प्रचार होने की संभावना है) हरिकीर्तन में बैठता हूँ। यहाँ मौन भी रखा जाता है। ठीक चल रहा है। स्थान रमणीय, सुन्दर है। थोड़ी जगह मिल गई तो लेने का विचार कर रहा हूँ। तपोभूमि मालूम देती है।"

बस उन्होंने वहीं डेरा डाल दिया और माता के सान्निध्य का अच्छा लाभ प्राप्त किया। अपने जीवन और साधना के बारे में माताजी के सत्संग में उन्होंने जिज्ञासु भाव से कई बातों की पूछताछ की। आखिर पन्द्रह दिन रहकर जब लौटने लगे तो सामान्य तौर पर यह पूछा कि माँ, मेरी मृत्यु-समय का भी कुछ अन्दाज बता सकेंगी? यह पन्द्रहवाँ दिन वही दिन था जिस दिन कि उन्हें जेल से छूटना था और वे बापू के पास काम के लिए जाने को थे। लेकिन माताजी ने कुछ स्पष्ट नहीं बताया। फिर बहुत आग्रह करने पर उन्होंने इतना कहा कि मान लो कि तुम्हें छः महीने में जाना है और इस तरह सोचकर काम कर सकते हो। प्रत्येक क्षण जाने की तैयारी रहनी चाहिए।

इसपर जमनालालजी ने व्यापारिक दृष्टि से सोचा कि यदि छः मास में गये तो ठीक, नहीं तो जीवन में अच्छी आदतें ही शुरू होंगी। अतः उन्होंने व्रत लिया—छः मास तक वर्धा से बाहर नहीं जाना, रेल का सफर नहीं करना, मोटर में नहीं बैठना। यहाँ तक कि सेवाग्राम भी कभी कभी साइकिल से और प्रायः बैलगाड़ी में जाने लगे।

फिर तो माता की इस शोध ने आखिर उन्हें गो-माता के पास पहुँचा दिया। उनकी मातृत्व की भावना मनुष्य-समाज तक सीमित न रहकर आगे चली और पशु-जगत में फैली। जब वे गो-सेवा-संघ के सभापति हुए और गो-सेवा में जीवन लगाने का संकल्प कर लिया, तब कौशल्या नामक एक गाय उन्होंने अपने लिए खास तौर पर रखी थी और उसकी सेवा खुद अपने हाथों और शरीर से सचमुच उसी प्रकार और उसी भावना से करते थे जिस प्रकार एक बच्चा अपनी माँ की करता है। उन्होंने कभी ऐसा काम नहीं किया था, इससे एक दिन उनकी प्यारी गाय का खुर उनके पांव में लग गया तो उनको अफसोस रहा कि मेरी असावधानी से गोमाता का पांव लग गया और मैं सेवा से कुछ दिन के लिए वंचित हो गया। वे गाय में प्रत्यक्ष माता के दर्शन करने लगे थे। स्वयं अपने शब्दों में अपनी भावना को उन्होंने यों व्यक्त किया है:—

"ईश्वर की कृपा से मुझे बल मिला, सामाजिक व राजनैतिक जीवन में बड़े से बड़े सम्मान को मैं पा चुका हूँ, परन्तु उधर मेरी रुचि अब नहीं है। मैं तो सत्ता और चुनाव की राजनीति से दूर रहना चाहता हूँ। सारी सृष्टि को माता के रूप में देखकर, अपनी पुत्र-भावना का विकास करना चाहता हूँ। यह मार्ग मुझे मेरी गो-माता ने दिखा दिया है......"

माता आनन्दमयी के आश्रम में उन्होंने कुछ जमीन भी ली थी और वहाँ वे कुटिया बनाना चाहते थे। उनकी मृत्यु के बाद वह जमीन आश्रम को दे दी गई।

यों तो बचपन में सदीबाई के पास साधुसंतों का आवागमन अधिक रहने के कारण उनमें ज्ञानचर्चा और सत्संग के संस्कार जम ही गये थे। साधु-संतों और ज्ञानी लोगों से उस समय भी पूछा करते थे, सत्कर्म क्या है? मानव-जीवन की सफलता किस चीज में है, आदि आदि। बचपन में साधु हो जाने के भाव भी मन में आते थे। परन्तु शादी होने के बाद तो पत्नी

से पूछकर ही साधु हुआ जाता है। अत बात वही दब जाती थी। बापू से सपर्क होन तक यह भाव उनके मन मे उठते रहते थे। इस तरह जिज्ञासु वृत्ति और धर्मभीरु स्वभाव तो बचपन से था ही। जब से आनन्दमयी माता के दर्शन हुए और उनसे उनको सतोष समाधान मिला तब से तो जीवन एक बैरागी का-सा बन गया था। किन्तु जमनालालजी योजक आदमी थे, साथ ही कुशल व्यापारी। इन दोनो गुणो के मेल से उन्होने अपने जीवन के लिए एक अच्छा योग्य कार्यक्रम बना लिया था। आनन्दमयी माता से बिदा होने के ठीक छ माह बाद ही अपना नियत कार्यक्रम करते हुए ससार से बिदा हो गए।

: २३ :

कामधेनु मिल गई

"त्याग की दृष्टि से उनका अन्तिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। देश के पशुधन की रक्षा का काम उन्होंने अपने लिए चुना था, और गाय को उसका प्रतीक माना था। इस काम में वे इतनी एकाग्रता और लगन के साथ जुट गए थे कि जिसकी कोई मिसाल नहीं।"

—महात्मा गाँधी

"उनका सब से बडा काम 'गो-सेवा' का था। वैसे तो यह काम पहले भी चलता था, लेकिन धीमी चाल से। इससे उन्हें संतोष न था। उन्होंने इसे तीव्र गति से चलाना चाहा, और इतनी तीव्रता से चलाया कि खुद ही चल बसे। अगर हमें गाय को जिन्दा रखना है, तो हमें भी उसकी सेवा में अपने प्राण खोने होंगे। इसी तीव्रता से काम करना होगा जिससे कि जमनालालजी ने किया। अगर हम गाय को बचा पाये तो हम भी बच जायेंगे।"

—महात्मा गाँधी

"गैया चाहे कितनी ही छोटी क्यो न हो, चाहे एक वर्ष की ही क्यों न हो, उसे देखकर हमारे दिल में मातृभाव ही जाग्रत होता है। इसीलिए गोमाता की सेवा का यह व्रत मैंने लिया है।"

—जमनालालजी

जमनालालजी कहा करते थे कि—यदि यह गोसेवा का कार्य मैं इसी प्रकार लगातार पाच वर्ष करता रहा तो देश मे यह कार्य—स्वावलबन की भित्ति पर स्थिर हो सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। नागपुर

से एकाएक तबियत खराब हो जाने की वजह से वे अपनी नियत समाप्ति के ५,६ सप्ताह पूर्व रिहा कर दिए गए थे और तबियत ठीक होते ही उनका विचार फिर जेल जाने का था। क्योंकि बापू की योजना और आदेशानुसार इस "व्यक्तिगत सत्याग्रह" में सत्याग्रही को बारबार जेल जाना था। जमनालालजी पीछे हटनेवालों में नहीं थे। उनका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया था, फिर भी, वे जेल जाने का आग्रह कर रहे थे। जबतक पिछली सजा की अवधि समाप्त न हो, तबतक उन्हें स्वास्थ्य सुधारने की सलाह बापू ने दी थी और वे इसी काम के लिए एक महीना शिमला रहे। ज्यों ही उनकी ९ माह की सजा की मियाद पूरी हुई, उसी दिन बापू के सामने हाजिर हुए। बहुत सोच-विचार के बाद बापू ने उन्हें उनके स्वास्थ्य को देखते हुए जेल जाने की इजाजत नहीं दी। और उनकी चित्त-वृत्ति तथा कार्य-शक्ति को देखते हुए गो-सेवा में अपना समय लगाने की सलाह दी। उन्हें बचपन से ही गोसेवा का चाव भी था।

गांधीजी के दिमाग में गो-सेवा का कार्य प्रारंभ करने की बात कई वर्षों से थी लेकिन उसके लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति उन्हें नहीं मिल रहे थे। उस समय एक गोरक्षा समिति थी। उसके सिलसिले में श्री महादेव भाई अपने २८।१।२४ के पत्र में जमनालालजी को लिखते हैं—"गो-रक्षा समिति का काम ठीक हो गया। बापू ने अपने गो-रक्षा के भाषणानुसार एक योजना बना ली है। वह सब को पसंद आ गई है। अतः अब इस काम को स्थायी रूप मिल जायगा। परन्तु बापू को इस काम के लिए एक अच्छा मन्त्री चाहिए। युवक, उत्साही, हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषा का जानकार और सबसे बढ़कर चरित्रवान—हो सके तो ब्रह्मचारी—गो-सेवक चाहिए। आपकी निगाह में कोई है?" उस समय तो कोई मिला नहीं, लेकिन अन्त को जमनालालजी की ही लगन और क्रियाशीलता ने आगे

जाकर बापू की उस इच्छा को मूर्त-रूप दिया ।

कोई भी नया काम वे उठाते तब वे अपने निकट के छोटे-बड़े सबसे पूछा करते थे । मुझसे भी पूछा कि यह काम तुमको कैसा लग रहा है ? मैंने उत्तर दिया था कि अबतक जितने काम आपने किये हैं उन सबसे अधिक पुण्य का है । जिन संस्थाओं का बोझ आपने अबतक उठाया, इसमें उनसे अधिक व्यापक और सच्चा जनहित आपके हाथ से होगा । चरखा-संघ द्वारा जितनी जनता तक आप पहुँचते थे, उससे कहीं व्यापक जनता को आप इस काम के जरिये स्पर्श कर सकेंगे । बल्कि इसके द्वारा आप जनता के सभी भागो की अच्छी और अधिक सेवा कर सकेंगे । उनको यह राय ठीक लगी थी । जीवन के अपने इस महान् अंतिम और पवित्र कार्य की दृष्टि और उत्साह से उन्होंने इसे आरंभ किया था । माता आनन्दमयी से मिलने के बाद और खासकर गो-सेवा शुरू करने के बाद उनसे परिचित सब लोग यह अनुभव करने लगे कि जमनालालजी का कायापलट हुआ है । उनका अन्तर्द्वन्द अब समाप्त हुआ है । वे उस शांति को पा गये हैं, जिसके लिए पिछले वर्षों से बहुत लालायित थे । शारीरिक क्षेत्र से उठकर वे अब आत्मिक क्षेत्र में विहार करने लगे थे । उनके गोलोकवास के पश्चात् विनोबाजी ने उनके लिए जो उद्गार प्रकट किये थे वे इस संबंध में बहुत महत्व रखते हैं:—

"देह आत्मा के विकास के लिए है, परन्तु, जिनका आत्मा विशेष उन्नत हो जाता है, उनके विकास के लिए देह में पर्याप्त गुंजाइश नहीं होती उनका वह विशाल आत्मा देह के भाव में समाता ही नहीं, तब देह को फेंक कर देहरहित अवस्था में ऐसा आत्मा अधिक सेवा करता है । और ऐसी स्थिति जमनालालजी की हुई है । कम से कम मैं तो देख रहा हूँ कि उन्होंने आपकी और मेरी देह में प्रवेश किया है । ऐसी मृत्यु जीवित मृत्यु है । मृत्यु भी जीवित हो सकती है और जीवन भी मृत हो सकता है । जीवित

मृत्यु बहुत थोड़ों की होती है। वैसी यह जमानालालजी की मृत्यु है।"

जब से जमनालालजी ने गो-सेवा के काम को अपने हाथ में लिया तब से मृत्यु होने तक वे गो-सेवा के बारे में ही सोचते रहे और वही कार्य करते रहे। गो-सेवा के प्रति लोगों की उदासीनता तथा उसके परिणामस्वरूप गो-धन का ह्रास और उसकी दयनीय स्थिति जमनालालजी की चिन्ता का विषय था। गो-सेवा के काम में लग जाने पर उनकी यह निश्चित राय बन गई थी कि जबतक गाय को उपयोगी नहीं बनाया जायगा तबतक उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकेगा। उस समय धार्मिक श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति पींजरापोल तथा गोरक्षिणी संस्थाएं आदि खोलकर इस प्रकार का कार्य कर रहे थे। लेकिन उस काम में जनता के पैसे का अपव्यय ही होता था। उससे गोरक्षा का वास्तविक काम नहीं हो रहा था। जमनालालजी ने जब यह कार्य शुरू किया तो उन्होंने लंबे-चौड़े भाषण देने में या कुछ पैसा दान देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं मानी। वे तो मनसा वाचा कर्मणा उसीमें जुट गये। वे खुद गाय की नियमित रूप से मालिश करने लगे, और गौशाला की सफाई के काम में स्वयं दिलचस्पी लेने लगे। वे गायों को स्वयं नहलाते थे और उनके चारे दाने का बराबर ख्याल रखते थे। गायों की बीमारी, घी, दूध तथा उनकी खुराक के बारे में उन्होंने अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी। जो कोई भी इस कार्य में रुचि दिखाता उसे वे कहते थे कि पहले गोपालन के शास्त्र का अध्ययन करो। प्रत्यक्ष कार्य-द्वारा उसकी जानकारी प्राप्त करो और फिर अनुभव के आधार पर उसे करना प्रारंभ करो, तो और तभी, उसका लाभ मिल सकेगा। इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अच्छे कार्यकर्ता और गो-सेवक तैयार करने के काम में भी बड़ी दिलचस्पी ली। गोरक्षणी सभा तथा पीजरापोलों की कार्यप्रणाली में सुधार करने की दृष्टि से वे वर्धा की गोरक्षिणी सभा के अध्यक्ष बने। उन्होंने सभा को नया और विशाल दृष्टिकोण दिया। गायों की खुराक निश्चित

करने, दूध का हिसाब रखने, दूध निकालने तथा उसे रखने में सफाई का खयाल करने और बचे हुए दूध का घी बनवाने में सही रास्ता दिखाकर उन्होंने गोरक्षिणी सभा के काम में बड़ी प्रगति करके दिखा दी। इससे गायों के स्वास्थ्य में सुधार हुआ, अच्छा दूध उपलब्ध होने लगा और आमदनी में भी वृद्धि हुई। उन्होंने आगे बढ़कर इस काम को अखिल भारतीय रूप देने के काम में भी बड़ी दिलचस्पी ली। गो-सेवा-संघ के संबंध में उन्होंने ऐसे प्रस्ताव पास करवाए जिससे पींजरापोल के संचालकों तथा अन्य गो-भक्तों को नई दिशा मिली। उन्होंने इस काम में स्वयं जुटकर एक जान-सी डाल दी और गो-सेवा और गो-भक्ति की दुहाई देने वालों के सामने एक आह्वान प्रस्तुत कर दिया।

इस तरह जमनालालजी की साधना गो-सेवा के रूप में उच्चकोटि तक पहुँच गई थी। स्व० महादेव भाई ने उनकी गो-सेवा की लगन के बारे में यों वर्णन किया है:—

"जमनालालजी ने गो-सेवा की साधना के लिए असाधारण त्याग दिया। उनके जिस बंगले में दुनिया के बड़े से बड़े अतिथि आकर रहते थे, कांग्रेस के अनेक सभापति, लार्ड लोथियन, माननीय ताई ची ताओ, मिश्र के शिष्ट मंडल के सदस्य आदि आदि, अपने उस बंगले को छोड़कर गांव से दूर थोड़ी जमीन लेकर वहां अपने लिए कुटिया बनाकर रहने लगे। और शेष जीवन गो-सेवा में बिताने का संकल्प किया। कोई भी काम हो अधूरा तो करना ही नहीं, करना तो पूरा ही करना। यही उनका मन्त्र था।

"दिलीप राजा ने तो नन्दिनी की सेवा करके उसे अपनी कामधेनु बनाया। क्या जमनालालजी को कामधेनु मिली? मैं सोचता हूँ जिसकी सेवा करते करते उन्हें ऐसी धन्य मृत्यु प्राप्त हुई, उसे कामधेनु ही कहा जा सकता है।"

जमनालालजी ने जब से यह अंतिम काम—गो-सेवा का हाथ में

लिया था, तब से वे इसके सिवा और तरफ ध्यान नहीं देते थे। उनका सोचना, बोलना और प्रत्यक्ष काम करना सब कुछ गो-माता के ही लिए होता था। देश में गोधन की रक्षा होकर वह किस तरह फल-फूल कर देश के लिए अधिकाधिक उपयोगी हो इसी बात का उन्हें दिनरात ध्यान रहता था। उन्होंने गो-सेवा-संघ के नियमों के पालने के लिए अपने कई मित्रों से आग्रह किया और उसमें वे सफल हुए। गो-सेवा के प्रश्न का उन्होंने बारीकी से अध्ययन किया, तीव्र लगन से उसमें जुट पड़े तथा संघ के काम को सफल बनाने के लिए वे अपनी व्यवहार-बुद्धि का पूरा पूरा उपयोग करते थे। उनके एक पत्र के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं जिससे उनके इन गुणों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है:--

"नियम लेने से गो-रक्षा होने में आपको सन्देह है सो यह तो पुरानी-सी बात है। खादी तथा हरिजन-कार्य में भी ऐसी ही मुश्किल तथा सन्देह प्रकट किया जाता था। लेकिन बिना ऐसा नियम लिए काम चलनेवाला नहीं है। गो-सेवक भी यदि गाय का घी-दूध आग्रहपूर्वक न इस्तेमाल करता हो तो फिर दूसरे पर उसका क्या प्रभाव पड़ सकता है?

यद्यपि बापूजी की इसमें सैद्धांतिक दृष्टि है, और वे तो इस बात पर बहुत जोर देते हैं। लेकिन मैं तो व्यवहारू दृष्टि से भी इस बात को आवश्यक मानता हूँ। गायों के घी-दूध का इस्तेमाल पर्याप्त मात्रा में नहीं होता--दूध-घी को योग्य भाव में मार्केट नही मिलता, इसी कारण से गाय पालना आज लाभ की चीज न रह कर बोझ रूप हो गया है। आपको आश्चर्य मालूम होगा कि जो लोग पिंजरापोल या गोशाला चलाने में मदद देते हैं, दान देते हैं वे भी पिंजरापोल का दूध सस्ते में ही लेने का प्रयत्न करते हैं। यह कभी भी खयाल नहीं करते कि इस दूध की लागत से तो कम भाव में हम नहीं खरीद रहे हैं।

हम लोगों ने सस्ताई के फेर में पड़कर कई उद्योगों का और पर्याय से

अपना नाश कर लिया है। गाय पालने का उद्योग भी ठीक इसी कारण से शिथिल हुआ है और हो रहा है। हम दूध-घी खरीदते समय लागत के हिसाब से दाम देकर नहीं खरीदते हैं। केवल कुछ शहरों का यह प्रश्न नहीं हैं। सारे भारतवर्ष का है। और खासकर गाँवों में ही गायों का पालन शहरों से आसान है। किसान को पशु-पालन सहायक उद्योग है। उसे खेती के लिए बैल खाद आदि मिल जाता है। और चारे की सहूलियत रहती है। उसे यदि हम दूध घी के लिए बाजार दे दें तो लाखों मन घी-दूध पैदा हो सकता है। आप तो कुछ डेरियां, गो-सेवा-संघ से शुरू करने की बात कहते हैं, लेकिन हजारों डेरियाँ जो देहात में चल रही हैं उन्हें व्यवस्थित करने का काम ही बड़ा है।

जो लोग पशु पालते हैं उन्हें हम अच्छी तरह से गायें रखने, नस्ल सुधारने तथा उनकी चीजों को योग्य भाव से—लागत के हिसाब से बाजार मिलवा दें तो ज्यादा आसानी से बहुत बड़ा काम हो सकता है। फिर भी जरूरत के अनुसार शहरों में डेरियाँ चलानी हीं पड़ेंगी। चाहे वह संघ-नियंत्रण में हों, या स्वतंत्र निकाली जायं, यह काम तो करना ही पड़ेगा। लेकिन, इस काम को तुरंत हाथ में लेने में खतरा है। आज इस काम के लिए शास्त्रीय दृष्टि रखनेवाले व्यवहारी आदमी नहीं हैं। बिना कार्यकर्त्ता तैयार किए उत्साह में आकर जगह जगह डेरियाँ खोल देने में जोखिम है। काम अव्यवस्थित होकर नुकसान गया तो लोगों का विश्वास उड़ जायगा और उत्साह मंद पड़ जायगा। इसलिए मैंने अपने सामने सब से पहले कार्यक्रम रखा है, अच्छे अच्छे आदमियों का संग्रह करना, और कार्यकर्त्ता तैयार करना। यहाँ सब से पहले प्रयोगशाला व गोसेवक-विद्यालय खोलने का मेरा खयाल रहेगा। नियम लेने वाले महंगी भी चीज खरीदेंगे तो आप ही आप उत्पत्ति बढ़ेगी। जब पहले-पहल महंगी खादी भी लोगों ने खरीदी तभी आज खादी की प्रगति हो सकी है। इसी तरह नियम लेने

वाले गो-सेवक गाय का दूध-घी महंगा भी खरीदेंगे तो आप-ही-आप उत्पत्ति बढ़ेगी। आवश्यकता के बढ़ने पर चीजों की पैदाइश बढ़ती ही है, यह व्यापारी नियम है।"

जब से उन्होंने इस काम को संभाला तब से वे इसके पीछे पागल से हो गए थे। सुबह जब गोपुरी की झोंपड़ी पर उनकी गाय जिसका कि नाम उन्होंने कौशल्या रखा था, आती तो वे स्वयं उसकी सेवा करते। उसको पोंछते, पपोलते और खिलाते। जो भी मिलने-जुलने वाले आते उनसे वे गो-रक्षा, गो-सुधार तथा गो-वंश की वृद्धि की ही चर्चा किया करते। उनकी प्रबल इच्छा थी कि उस एक वर्ष में गो-सेवा-संघ के कम से कम एक हजार सदस्य बना लें। और सब से गाय का घी-दूध और अहिंसक चमड़े के व्यवहार की प्रतिज्ञा करा लें। उन्हें उन दिनों गो-सेवा और उससे कभी फुरसत मिले तो अन्य सार्वजनिक सेवा-संबंधी बातचीत के अलावा कोई खयाल ही नहीं आता था। अपितु, फिजूल की बातें यहाँ तक कि घरेलू और व्यावसायिक बातें भी अच्छी नहीं लगती थीं। इन्हीं दिनों में उनके दामाद श्री रामेश्वरजी नेवटिया वर्धा आए हुए थे, उन्होंने जब कोई व्यापार-सम्बन्धी प्रसंग शुरू किया तो जमनालालजी ने तुरन्त टोकते हुए कहा 'ये सब बातें अब मुझे अच्छी नहीं लगतीं, कोई गो-सेवा-सम्बन्धी या अन्य सार्वजनिक चर्चा हो तो मेरा समय लो, नहीं तो जाओ।' वास्तव में उन्हें और बातों में कोई दिलचस्पी रह ही नहीं गई थी। उन्होंने अपनी सारी शक्ति एक गो-सेवा के काम में ही केन्द्रित कर ली थी। और मानों इसीमें उन्होंने अपना कल्याण समझकर अपने आपको भुला दिया था। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने उनकी गो-सेवा की लगन के बारे में इन शब्दों में प्रशंसा की है:—"यह गो-सेवा का काम उनके लिए शौकिया न था, जिस काम में जमनालालजी पड़ते, उसमें वे अपना सारा समय एक जबरदस्त लगन के साथ लगा देते थे। न देखते दिन, न देखते रात। स्वास्थ्य

को भी भूल जाते थे। यद्यपि उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ चुकी थी, और गांधीजी ने उनसे विश्राम करने का काफी आग्रह कर रखा था, पर जमनालालजी तो गो-सेवा कार्य में ऐसा लगे कि खाते-पीते, सोते-बैठते, उन्हें एक ही चीज में रस था। वह चीज थी गो-सेवा-संघ का कार्य। मृत्यु के कुछ ही दिन पहले उन्होंने गो-सेवा और गौ-शाला के परिचित विज्ञों की तथा दिलचस्पी लेने वाले गो-सेवकों की एक परिषद् बुलाई। काफी अच्छे-अच्छे जानकार लोग आए थे। परिषद् का उद्घाटन गाँधीजी ने किया और प्रमुख का आसन श्री विनोबा ने सुशोभित किया। दोनों ने अपने व्याख्यानों में जमनालालजी की अस्वस्थता का जिक्र किया। (इसी मीटिंग में उनका पाँव जकड़ गया था और बड़ी मुश्किल से उन्होंने खींचातान कर ठीक किया था।) पर जमनालालजी तो गो-सेवा में ऐसे लीन थे कि उन्हें शरीर का कोई खयाल ही न था। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब गो-सेवा करते हुए ही जीवन बिताना है। गोपुरी—जहाँ गो-सेवा-संघ की गो-शाला है—में ही उन्होंने अपने लिए फूस की झोंपड़ी बना ली और संन्यासी की तरह वहाँ रहने लगे।"

इस प्रसंग पर १ फरवरी १९४२ की उनकी डायरी में यह उल्लेख मिलता है—"गौसेवा संघ परिषद्—बापू का भाषण था, वह पूर्ण दुःख से भरा हुआ, विस्तार के साथ हुआ। विनोबा का भाषण विद्वत्ता-पूर्वक, संघ के नामकरण का खुलासा, सदस्यों की शंकाओं का समाधान। कान्फरेन्स का कार्य सन्तोषजनक हुआ।"

महात्माजी के सेक्रटरी श्री प्यारेलालजी ने उनकी इस गो-सेवा-साधना के बारे में दिलीप की उपमा देते हुए लिखा है—"जमनालालजी किसी काम को आधे दिल से तो कभी करते ही न थे, जिस चीज को हाथ में लेते थे, उसके पीछे अपना सर्वस्व लगा देते थे। वे तुरन्त ही गो-सेवा के भेखधारी बन गये। वर्धा और नालवाड़ी के दरम्यान उन्होंने अपने रुपयों से बहुत-सी

खुली जमीन खरीद दी और उसपर अपने लिए घास-फूस की एक कुटिया बना कर उसीमें रहने लगे। फिर क्या था? जमनालालजी थे और उनकी गो-सेवा थी। रात दिन उसीकी लगन, उसीकी धुन। सचमुच गो-सेवा को उन्होंने अपने लिए मोक्ष का साधन ही मान लिया था। ऐसा मालूम होता था, मानों वसिष्ठ की नंदिनी के इस वरदान को उन्होंने अपने जीवन का सूत्र बना लिया हो।"

न केवलानां पयसः प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्"

अर्थात् "यह न सोचो कि मैं केवल दूध ही दे सकती हूँ। मैं कामधेनु हूँ। प्रसन्न हो जाऊँ तो जो चाहे दे सकती हूँ।" इसलिए उनके अग्निदाह का प्रश्न उठने पर गाँधीजी ने उसके लिए गोपुरी की भूमि ही पसन्द की। गोलोकवासी जमनालालजी सदा के लिए गोपुरी में समा गए। उन्हें सच्ची कामधेनु मिल गई।

: २४ .

गोलोकवास

"इतना लाभ तो जरूर दिखलाई देता है कि मौत का डर प्राय. विशेष नहीं मालूम देता। कभी कभी तो उसके स्वागत करने का उत्साह मालूम होने लगता है। वह ठीक भी है। अगर वर्तमान जीवन से उच्च जीवन बनना संभव न हो तो स्वार्थ की दृष्टि से भी मृत्यु का स्वागत श्रेयकारक ही है।"

—जमनालालजी के एक पत्र से

"मेरी यह इच्छा अवश्य है कि इस प्रकार धर्म-युद्ध में हम लोगो में से सबो की या जो सब से ज्यादा प्रिय हो उसकी आहुति-बलिदान—लग जावे तो परम संतोष व सुख की बात हो। एक दिन मरना तो अवश्य है, फिर जिससे देश, जाति व कुल की प्रतिष्ठा बढ़े, इस प्रकार की पवित्र मृत्यु मिले तो फिर क्या देखना। अब तो जेल की मन में नहीं रही। अगर इच्छा है तो ऐसी मृत्यु की है।"

—जमनालालजी के पत्र से

"यह मैं कैसे कहूँ कि मुझे उनके जाने से दुःख नहीं हुआ? दुःख होना तो स्वाभाविक था, क्योंकि मेरे लिए तो वही मेरी कामधेनु थे। लेकिन अब उनके कामो को याद करता हूँ और हमारे लिए जो संदेश छोड गए हैं उसका विचार करता हूँ तो अपना दुःख भूल जाता हूँ।"

—महात्मा गांधी

"वह तो गये। मृत्यु तो इससे अच्छी किसकी होगी? पर कहावत है कि सौ मरे पर सौ का पालनेवाला न मरे। यह तो अनेक का पालनेवाला

चला गया। आज देश के अनेक स्थलों में, अनेक क्षेत्रों में काम करनेवाले कितने ही मूक सेवक छुपे-छुपे आँसू बहाते होंगे। बापू का सच्चा पुत्र चला गया, जानकीदेवी का छत्र गया, कुटुम्ब का ढाकनेवाला गया, देश का वफादार सेवक गया, काँग्रेस का एक स्तम्भ टूट गया। अनेकों का मित्र और अनेक संस्थाओं का पोषक चला गया। और हम लोगों का तो सगा भाई गया। मुझे तो सूना-सूना लगता है।"

—सरदार वल्लभभाई

गो-सेवा की लगन, तन्मयता और अटूट साधना ने उनकी आत्मोन्नति को बड़ी गति दी थी, और वे लगातार वीतराग अवस्था को प्राप्त होते जा रहे थे। परन्तु, परिश्रम-शीलता ने उनके शरीर को अत्यन्त क्षीण बना डाला था। ५२ वर्ष की अवस्था में ही इस भारी परिश्रम के कारण वे काफी अस्वस्थ हो चले थे। यो तो १९३३ से ही स्वास्थ्य में घुन लग गया था और ५–७ साल पहले से महिलाश्रम की बहनों तथा दूसरों से निराशा की बाते करने लग गये थे। किन्तु अब उनकी साधना ऊँचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी उनके पार्थिव शरीर द्वारा विधाता को जो काम लेने थे, वे सब प्रायः हो चुके थे। और उनकी आत्मा के इस सीमित शरीर को छोड़कर विश्व-प्रकृति के विराट् रूप मे लीन होने का समय निकट आ चुका था। इसलिए तो उन दिनो उनके साथी, सहयोगी और परिचित व्यक्ति उन्हें देखकर हैरान होते थे कि कितना विकास इनका इन दिनों हो चुका है। देखनेवाले यहाँ तक भूल जाते थे कि ये जीवन में कभी सफल व्यापारी, वीर सेनानी और कुशल संगठनकारी नेता भी रहे हैं। उनका तो रूप ही बदला हुआ लगता था। बापू को स्वयं उनके स्वास्थ्य की फिकर हो चली थी और इसीलिए तो उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह में दुबारा जेल जाने की उन्हें इजाजत नही दी थी। परंतु, उन्हें तो जो अंतिम सेवा-कार्य प्रारंभ किया था, उसीमें अपने-आपको लीन कर के इहलोक से प्रस्थान कर जाना था।

उन्होंने इन दिनों विचारों पर इतना काबू पा लिया था कि अनावश्यक विचारों को भी मन में रोक लेते थे। गोपुरी में कुटी पर रहते, वहीं नौकर भोजन बना देता था, कभी कभी तो बाजरे की रोटी तथा राबड़ी जो भी प्रेम से कोई लाता उसे खा लेते थे। इन दिनों उनका सारा जीवन अत्यधिक वैराग्यशील हो गया था। एक एक क्षण का सदुपयोग करते हुए प्रतीत होते थे। उन्होंने उन्हीं दिनों अपने जन्मदिवस के अवसर पर ५ दिन के मौन की साधना की थी और उन दिनों में उनको काफी मानसिक खुराक और चिन्तन-मन्थन का अवसर मिला था।

सन् १९४२ की फरवरी का महीना। ११ वीं तारीख के दिन अचानक सेवाग्राम में टेलिफोन की घंटी बजी—और बापू को सूचना दी गई कि जमनालालजी को एक कै हुई और उसके बाद बेहोश हो गए—१५ मिनिट से बेहोश हैं। बापू सुनते ही वर्धा जाने को उठ खड़े हुए। बिड़लाजी भी जो उन दिनों सेवाग्राम थे, उनके साथ रवाना हो गए। बापूजी के मुंह से निकला "गजब होगा यदि उनसे हमारी मुलाकात न हो पाई" और आखिर पहुँच कर देखा तो गजब हो चुका था। बापू के पहुँचने से पूर्व ही उनका वह सपूत संसार को छोड़कर जा चुका था। सारे घर में विषाद का वातावरण छा गया, क्षण भर में यह खबर वर्धा के घर-घर में और देश-भर में फैल गई। सारे देश में शोक छा गया। जगह जगह शोक सभाएँ हुई। बाजार बन्द रहे। जमनालालजी की मृत्यु के समाचार जिस किसी भी कार्यकर्ता ने सुने एकदम सन्न हो गया। सहसा विश्वास नहीं हुआ। मानों अपने ही परिवार का कोई निकट आत्मीय सदा के लिए बिछुड़ गया हो। देश के सभी नेता, राष्ट्रीय कार्यकर्ता शोक-निमान हो गए। यह अचानक क्या हो गया? अभी एक सप्ताह ही तो हुआ था कि अखबारों में सब ने गो-सम्मेलन की खबर पढ़ी थी। और जमनालालजी के उठाये हुए इस महा-पुण्य कार्य की चारों ओर से सराहना हुई थी। जमनालालजी अपने शहर वाले मकान पर इधर साल

भर से नही आये थे, उस दिन उनकी छोटी लडकी उमा देवी और उनके पति आनेवाले थे, इसलिए तथा अपनी पतोहू सावित्री देवी से मिलने के लिए ही वे घर आए थे। मानो मौत भी इसी इन्तजार मे थी कि कुटिया से जमनालालजी को क्या लिया जाय, उसे तो महलो से ही उडाया जाना चाहिए जहाँ पर कि वह बच्छराजजी के वश की रक्षा करने के लिए लाया गया था। और काल ने आखिर अपनी मनोभिलाषा पूरी की। १५-१६ साल की उम्र में जहाँ सोया करते थे छपर पलग पर, उसी जगह नीचे तख्त पर गद्दा बिछा था,—वही गद्दा जिस पर जवानी मे सोया-लेटा करते थे, उसी पर अन्तिम निद्रा के लिए सो गये। वे कोई रोग-शय्या पर भी नही रहे। एकादशी का उपवास भी उन्होने उसी दिन किया था फलाहार किया ही था। श्री राममनोहर लोहिया के साथ बडी दर तक गप-शप करते रहे, बडे प्रसन्न नजर आ रहे थे। वह तीसरे पहर का समय था। उत्तरायण सूर्य, फाल्गुन एकादशी, बुधवार का दिन। भीष्म पितामह ने इसी दिन के लिए अपने प्राण रख छोडे थे। इस समय बुधवार अधिक था। पौराणिक दृष्टि से कितना पवित्र दिन समझा जाता है यह। ऐसी एकादशी के दिन तो मौत बड-भागी पुण्यात्मा को ही मिला करती है। इस तरह देखे तो जमनालालजी भीष्म पितामह से भी अधिक बड-भागी और पुण्यात्मा थे। शौच जाते हुए कताई के लिए चर्खा लगाने को कहते गए। शौच होकर आते ही 'सर मे जोर का दर्द है' कह कर लेट गए। उन्हे उल्टी होने को थी, परन्तु सावधान इतने कि जब तक बर्तन नही आ गया तब तक उल्टी नही होने दी, याने कपडे नही बिगाडे। मेन्थाल मँगाया गया, डाक्टर भी आए, दौड-धूप भी काफी हुई। आनन-फानन म सब डाक्टर, हकीम आ पहुँचे, परतु, काल का कौन इलाज कर सकता है ? पन्द्रह मिनिट मे ही यह सब-कुछ हो गया। जमनालालजी प्राय कहा करते थे कि बहुत कम तकलीफ जिस मौत से हो, वही मौत उन्हे मिले। आखिर उन्हे मुहमाँगी मौत मिली। वे प्राय

अपने निकट के मित्रों को कहा और कभी कभी तो लिख भी दिया करते थे कि "ईश्वर से मेरे लिए सुख की मौत माँगो।" ईश्वर ने उन्हें सुख की ही मौत दी। और इसीलिए तो विनोबा सरीखे तत्वदर्शी पुरुष ने इस मृत्यु को जीवित मृत्यु बताया है। उन्होंने उसी समय कहा था कि जीवित मृत्यु बहुत कम लोगों की ही होती है जैसेकि यह जमनालाल की मृत्यु है। उनके मृत्यु-काल के समय का हृदय-विदारक वर्णन बिड़लाजी ने इस प्रकार किया है—"गांधीजी ने आते ही जमनालालजी के सर पर हाथ रखा। जमनालालजी की धर्मपत्नी जानकी देवी तो कुछ हक्की-बक्की-सी रह गई थीं। गाँधीजी को देखते ही वह आशा की तरंगों में उछलने लगीं—"बापूजी, ओ बापूजी, आप पास में होते तो ये नहीं मरते। मैंने आपको इनकी तबियत बिगड़ते ही जल्दी खबर क्यों न भेज दी? इन्हें आप अब जिन्दा कर दीजिए। क्या आप इन्हें जिला नहीं सकते?"

गाँधीजी ने कहा—"जानकी, तुम्हें अब रोना नहीं है। तुम्हें तो हँसना है और बच्चों को हँसाना है। जमनालालजी तो जिन्दा ही हैं। जिसका यश अमर है, उसकी मृत्यु कैसी? उसकी मृत्यु तो तभी हो सकती है जब तुम उसका मार्ग अनुसरण करने से मुंह मोड़ो। जमनालाल ने परमार्थ की जिन्दगी बिताई। तुम्हारी ऐसी साध्वी स्त्री उसे मिली तो फिर रोना कैसा? जो काम उसने अपने कंधों पर लिया था, उसे अब तुम्हीं संभालो। मैं तुम्हें झूठा धीरज देने नहीं आया हूँ। जमनालाल तो जिन्दा ही है, और उसे जिन्दा रखना हमारा काम है।" जानकी देवी के यह कहने पर कि इन्हें भगवान के दर्शन कराइए, गीता सुनवाइए, बापू बोले—"जानकी, जमनालाल को तो भगवान के दर्शन हो चुके, अब तो तुम्हें करने हैं, उसकी तैयारी करो। जो काम उन्होंने आधा किया है, उसे पूरा करो। उस काम के लिए तुम अपना तन, मन, धन सब होम दो।" जानकी देवी ने जब सती होने का इरादा जाहिर किया तो बापू ने कहा—"स्त्री शरीर को क्या जलाए?

वह तो तुच्छ है, मिट्टी है। तमाम दुर्गुणों को जला देना ही सच्चा सतीत्व है।

"जड़-चेतन गुण-दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि-विकार।"

सो तुम हंस का अनुसरण करो। अपने सब दुर्गुणों का चिता में होम करो। बाकी जो बचे वह शुद्ध कांचन है। उसे कैसे जलाया जा सकता है? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है। मेरा मानना है कि स्त्री ही त्यागमूर्ति हो सकती है। क्योंकि हिन्दू-स्त्री विधवा होने पर सारे भोगों को तिलांजलि दे देती है। और विकारों का शमन कर लेती है। इस तप के कारण उसमें एक नया बल आ जाता है। तुम अब त्यागमूर्ति बन गई। अपने अवगुणों को जमनालाल के हवन-कुण्ड में उसके शरीर के साथ भस्म कर दो। यही सती होना है। उठो, तुम सती हो जाओ।" जानकी देवी ने बापू की आज्ञा शिरोधार्य की और कहा—मेरी संपत्ति और मैं सब कृष्णार्पण। इतना कहकर वह शान्त स्वस्थ बन गई।

अब ध्यान गया कि होना था सो तो हुआ, पर अब इस मृत शरीर के लिए कहाँ तक बैठे रहना है? लोगों ने ज्योंही सुना-झुंड के झुंड गांधी-चौक के बंगले पर जमा हो गए। महिलाश्रम की बहनें, सेवाग्राम के सब साथी, मगनवाड़ी के ग्रामसेवक, नालवाड़ी के कार्यकर्ता, वर्धा के सब मित्र, इनका एक विशाल जनसमूह गमगीन—चेहरे उतरे हुए, एक विशाल जुलूस के रूप में निराशा में डूबे चल रहे हैं—सभी निस्तेज, किसी की आँखों में आँसू हैं, तो कोई जोर से चिल्लाता है। पारिवारिक जनों की ही क्या कहें—नौकर, चाकर सभी रुदन कर रहे थे। जमनालालजी की वृद्धा माता, उनको देख कर तो सब का दिल दहलता था। वह दृश्य क्या था, एक बड़ी अनहोनी घटना थी। बापू ने तभी तो कहा था कि कहाँ तो जमनालाल को पुत्र के नाते मेरा क्रियाकर्म करना था, कहाँ मैं उसका पिता यह उसकी क्रिया

करने जा रहा हूँ। एक बहन ने जमनालालजी की अर्थीगमन का उदाहरण भगवान रामचन्द्र के वनगमन से देते हुए लिखा था—"११ फरवरी, १९४२ को संध्या के ५ बजे जो दृश्य वर्धा में दिखलाई दिया था उसे देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम का वनगमन पुनः सजीव हो उठा। श्री जमनालालजी के अकस्मात् स्वर्गवास का समाचार सुन वर्धा-निवासी जड़वत् रह गए। कानों पर विश्वास न कर आबालवृद्ध नरनारी जिस दशा में थे उसी दशा में उनके निवास-स्थान की ओर दौड़ पड़े। कुछ लोगों को तो उनकी मृत्यु का विश्वास भी नहीं हुआ। यहाँ तक कि किसीने यह समाचार लोगों को सुनाया तो लोग नाराज होकर कहने लगे—क्या बकते हो? परंतु, कितनी ही भीषण अथवा वज्र-प्रहारक बात क्यों न रही हो आखिर वह सत्य ही थी और वर्धावासियों के लाड़ले जमनालालजी आखिर चल ही बसे।"

शव के जुलूस का दृश्य करुण भव्य था। चारों ओर मनुष्यों का समुद्र-सा उमड़ा हुआ था, जनता शव के पीछे पीछे दौड़ी जा रही थी। लोग अंतिम दर्शनों के लिए व्याकुल हो रहे थे। प्रत्येक के मुख से ये शब्द निकल रहे थे—हा, आज वर्धा के राजा, वर्धा की शोभा, संस्थाओं के प्राण, गरीबों के दाता, निराशहृदय के आशा-स्तम्भ और गांधी के अशोक चले। सदा के लिए वर्धा सूनी कर चले। शव चला, कगारों, छतों, रास्तों पर नर-नारियों की भीड़ थी। चारों ओर नरमुण्ड ही नरमुण्ड नजर आ रहे थे। अर्थी पर पुष्प वर्षा हो रही थी। सेठ जमनालाल की जय—वंदेमातरम्—महात्मा गाँधी की जय—के नारों से आकाश गूंज उठा।

जानकी देवीजी साथ थीं। उन्होंने कहा कि कोई भी व्यक्ति उन्हें कन्धा देना चाहे तो उसे रोकना नहीं है, चाहे कोई भी हो, हरिजन, मुसलमान, किसी भी जाति या वर्ग का हो। स्वयं जानकी देवी तथा घर की बहू-बेटियाँ सब शव-यात्रा में शामिल थीं। जानकी देवी तथा सब बहुओं-लड़कियों ने

कन्धा दिया था। अम्तुस्सलाम ने भी। सरकारी अधिकारी और कर्मचारी भी बड़ी तादाद में थे। उन्हें भी बड़ा रंज था। पुलिस अधिकारियों ने उस दिन कहा भी कि हमने इन्हें परेशान किया, तंग किया, परन्तु, उन्होंने हम लोगों के प्रति कभी बुरे भाव नहीं रखे। क्रान्तिकारी जमनालालजी मर कर भी कितनी क्रान्ति कर गए!

प्रत्यक्षदर्शी बिड़लाजी ने उस दृश्य का यों वर्णन किया है—"जुलूस के बीच बीसियों आदमियों के कन्धों पर जमनालालजी सो रहे हैं। उनका शरीर निस्तब्ध है और महात्मा गांधी के ओढ़ने की चादर से ढका हुआ है। पर चेहरा चादर से बाहर है। आँखें बंद हैं। जुलूस आगे बढ़ा। काँग्रेसी स्वयंसेवकों ने तिरंगा झंडा लिए हुए कदम मिलाके, छाती निकाले फुर्ती के साथ चलते हुए फिर वन्देमातरम् की आवाज लगाई। जवाब में स्त्रियों की टोली ने "रामधुन लागी, गोपाल धुन लागी" की ध्वनि से आकाश को गुंजा दिया। जुलूस आगे बढ़ा। इसके पाँव तो उड़े जा रहे थे गोपुरी की दिशा में और सब ध्यानमग्न थे जमनालालजी की याद में। इस जुलूस में जमनालालजी समाधिस्थ हैं ईश्वर में। लोग ध्यानावस्थित हैं, जमनालालजी में। पुलिस भी है पर व्यस्त नहीं, संतप्त है। न कोई नमस्कार करता है, न कोई प्रत्युत्तर देता है। पर 'जमनालालजी की जय' 'वन्देमातरम्' जारी है। जुलूस में गाँधीजी साथ थे। आखिर जुलूस गोपुरी के टीले पर जमनालालजी की कुटिया के सामने पहुँचा। जमनालालजी लोगों के कंधों पर से उतरे। अपार जनता ने नश्वर देह के अंतिम दर्शन किये।"

जमनालालजी ने घरवालों को पहले एकाध बार कहा था कि मैं मर जाऊँ तो मुझे सेवाग्राम की टेकरी पर जलाना ताकि बापू आते जाते देख लें। परंतु, बाद में एक दिन अपने बड़े लड़के कमलनयन से उन्होंने कहा कि मुझे इसी गोपुरी वाली टेकरी पर ही जलाना ताकि सेवाग्राम पौनार सब जगह की दृष्टि इसपर पड़ सके। संयोग की बात थी कि जिस

दिन जमनालालजी का अवसान हुआ उस दिन कमलनयन वहाँ मौजूद नहीं थे, और भी किसीको उनकी बात का पता नहीं था, परंतु, उनकी मँझली लड़की मदालसा ने यह सुझाया कि काकाजी का गोपुरी टेकरी पर ही दाह किया जाय, और जमनालालजी की मनोभावनानुसार वहीं उनका यह अंतिम संस्कार हो गया, मानों अपनी बेटी के मुंह से उन्होंने ही प्रेरणा दी हो। इस सिलसिले में ८-७-४१ की डायरी में उनके लिखे ये वाक्य ध्यान देने योग्य हैं:—"शाम को विनोबा आये। विनोद के तौर से कह दिया:—स्वाभाविक तौर से तो जहाँ मृत्यु हो वहीं जला देना अच्छा है। परन्तु मेरे मन में नागपुर के बदले पौनार या सेवाग्राम टेकरी पर जलाने की आई।"

चिता तैयार की गई। प्रज्वलित कपूर ला चिता को लगाया। पहला कण्डा जानकी देवी ने चिता पर रखने के लिए गाँधीजी को दिया। चिता भड़क उठी। सूर्य भगवान् को भी मानों असह्य वेदना हो रही थी और उन्होंने अपना मुंह अंतर में छिपा लिया। विनोबा और परचुरे शास्त्री मंत्रों द्वारा यह अन्त्येष्टि संस्कार कर रहे थे, अम्तुसलाम ने कुरान की आयतें पढ़ीं। उपस्थित नरनारी-समाज खिन्न मन से सब कुछ देख रहा था। परिवारी और निकटवर्तीजन दुखी होकर सोच रहे थे। जिस शरीर से इतना प्यार था, उसे ही हमने आज अपनी आँखों के सामने जला डाला। ये अंगारें जल्दी ही राख की ढेरी के रूप में परिणत हो जाएंगें। परन्तु, उपस्थित जनसमुदाय की आँखों के सामने जो चिता जल रही थी, उसके अलावा प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में भी अपनी मनःस्थिति और प्रेम के वश अलग अलग चिताएं जल रहीं थीं।

श्री जानकी देवीजी ने अपने एक पत्र में मृत्यु के बारे में जमनालालजी के विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं—मृत्यु के प्रति सेठजी की भावना निर्भयता की थी। वैसे ही हंसते खेलते चले गए। पहले हैजे का मरना पसंद

करते थे। फिर हार्ट फेल्यूर का मालूम पड़ने से उसे ज्यादा पसन्द करते थे। २५ वर्ष की उमर से ही अपना मृत्युपत्र लिखना शुरू कर दिया था और मित्रों को भी अपने हाथ से मृत्यु-पत्र लिख कर दिया करते थे। इसमें उनका अभिप्राय यही था कि मरते समय किसी प्रकार का मोह न रहे और घरवालों को भी कोई अभिलाषा शेष न रह जाय। कहा करते थे कि अगर मुझे मालूम पड़ जाय कि मेरी मृत्यु होनेवाली है तो हंसते-खेलते, मृत्यु के स्थान पर चला जाऊँ जिससे लोगों को उठाकर ले जाना भी न पड़े। उनके शरीर पर चर्बी ज्यादा थी। वे बोझा उठवाकर सेवा लेना पसन्द नहीं करते थे। इस वास्ते जब यह खयाल आया कि शरीर को रात भर रख कर सबेरे ले जाया जाय, बम्बई के लोग आ जायँगे तब यही भावना हुई कि जब वह जीते-जी सेवा नहीं लेना चाहते थे तो बाद में भी वह कैसे पसंद करेंगे? कहते—टेनिस खेलने जावें और वहीं पर खेलते हुए मृत्यु हो जाय, तो घर वापिस नहीं आवें, ऐसी मृत्यु होनी चाहिए। यहाँ एक डाक्टर थे, उनकी मृत्यु ऐसी हुई थी। तब से उनका विचार वैसा ही हो गया। शव ले जाने वालों को दुःख न सहना पड़े, भूखा न रहना पड़े, रात को न जगना पड़े, बारिश में भीगना न पड़े।"

जमनालालजी मृत्यु के भय से ऊपर उठ गये थे। कोई भी मर जाता तो उन्हें डर नहीं था; परंतु, बापू की मृत्यु के बारे में कहते थे कि वह मुझसे सहन नहीं होगा। स्व० महादेव भाई भी ऐसा ही कहा करते थे। भगवान् ने इन दोनों बापू-भक्तों की सुन लीं। दोनों बापू के पहले ही चल बसे।

"मरनो भलो विदेस को जहाँ न अपनो कोय।
माटी खाय जनावराँ महामहोच्छव होय।"

ऐसी ही एकान्त भावना उनकी मृत्यु के विषय में थी। रात-दिन घर में मृत्यु की बातें किया करते, मृत्यु मानों कोई खिलौना हो, ऐसा घर का वातावरण बना दिया था। इसीका यह परिणाम था कि

उनकी मृत्यु के बाद घर के सब लोगों ने गजब की शांति व धैर्य रखा। जानकी देवी अर्थी पकड़कर ठेठ गोपुरी तक गईं। आम तौर पर वे शीघ्र निर्णय करने में बहुत कमजोर हैं, परन्तु उस दिन झट झट निर्णय करती गईं। उन्होंने ऐसा अनुभव किया मानों जमनालालजी का तेज मुझमें समा गया है। जमनालालजी कहा करते —मृत्यु ऐसी हो जो न जाने वाले को कष्ट हो, न पीछेवालों को दुख रहे, न सेवा लेने की ही जरूरत रहे। रात को न मरना चाहिए, क्योंकि घरवालों को जगना पड़ता है। खाने के पहले भी न मरना चाहिए, लोग भूखे रहते हैं। दोपहर को न मरे, लोगों को मुझ जैसे शरीर को उठाकर चलने में पसीना आ जाता है।

ईश्वर-कृपा से जमनालालजी को ऐसी ही मनचाही सुखद मृत्यु मिली, जिसके लिए लोग लालायित रहा करते हैं। अपने स्वधर्म में लीन रहने-वाले महापुरुषों को ऐसा ही 'अनायास मरण' मिला करता है। पूज्य बापू जब प्रार्थना स्थल पर चढ़ने लगे ही थे कि गोली लगी और "हे राम" कहकर सदा के लिए राम में लीन हो गये। उसी तरह जमनालालजी भी अपने जिस अंतिम कार्य में लगे थे उसी—गो-सेवा में इतने लीन हुए कि गो-सेवा करते हुए एकाएक गोलोक को प्रयाण कर गये।

जमनालालजी के मृत्युपत्रों से ऐसा भास होता है, मानों उनके सुप्त मन में गांधीजी के पहले मर जाने की कल्पना रम रही थी। क्योंकि उसमें उन्होंने साफ लिखा है कि मेरी मृत्यु के बाद जानकीदेवी अपने बच्चों के बारे में बापूजी तथा विनोबाजी की सलाह से अपना जीवनकार्य चलावेंगे। वही हुआ।

जमनालालजी के जीवन में महात्माजी के प्रति समर्पणता या तादात्म्य बहुत अंशों में मालूम होता है—जिन गांधीजी ने १९१८ में जमनालालजी को "भाई" संबोधन करके लिखा था—"आपके प्रेमभाव से मैं लज्जित हूँ। मैं इतने प्रेम के लिए लायक बनूं, ऐसा चाहता हूँ। प्रभु से मांगता हूँ।

आपकी भक्ति आपको हमेशा नीति-मार्ग में आगे ले जायगी, ऐसी मैं आशा करता हूँ।" वही आगे चलकर उनके लिए 'बापू' हो गये और उनकी मृत्यु के बाद कहने लगे—"ईश्वर ने जो पुत्र मुझे दिये थे वह मुझे बापू कहें तो इसमें क्या नवाई पर वे (जमनालालजी) तो चाहकर मेरे पुत्र बने। पुत्र-विहीन पिता पुत्र को गोद लेता है, पर उन्होंने तो पिता को दत्तक लिया।" यह समर्पण-भाव यहीं समाप्त नहीं हो जाता। कुछ ऐसे विचित्र संयोग मिलते हैं जिनसे यह समर्पण और भी अधिक सिद्ध होता है। १९४३ में बापू ने आगाखां महल में जो उपवास किया था वह ११ फरवरी से २ मार्च तक हुआ। जमनालालजी की मृत्यु की तारीख से तिथि तक का भी समय यही था। वर्धा में श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर में जमनालालजी की श्राद्ध-स्मृति में अखण्ड सामुदायिक चरखा-कताई शुरू की। उसकी योजना तथा प्रारंभ के बाद बापू के उपवासों की खबर मिली। उस समय भी बापू के उपवासों की सफलता के लिए मंगलकामना का रूप उसे प्रमुखतया मिल गया। जब उपवास छूटने के कुछ पहले बापू को यह दैवयोग बताया गया तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—यह तो भारी बात समझना चाहिए। वे कुछ गद्गद् भी हुए थे। एक और बात। जमनालालजी अपने जन्म पर तथा ऐसे ही अन्य अवसरों पर इष्ट-मित्रों से और ईश्वर से "सद्बुद्धि' देने की प्रार्थना किया करते थे। बापू आखिर में "सब को सन्मति दे भगवान" यही अंतिम प्रार्थना करने लगे थे। ११ फरवरी को ३॥ बजे बापू उनके शव के पास बैठे थे। बापूजी की अस्थि का कलश भी ११ फरवरी को ४ बजे गोपुरी पहुँचा था। घटनाओं में कितना साम्य! दो आत्माओं का कितना तादात्म्य! बाप-बेटे का कितना साथ!

उत्तरार्ध

[गुण-गौरव]

"गुणों की पूजा है न कि जनम, धन की, जाति, वय की।"

: १ :

जानकीमैया

"अपनी धर्म-पत्नी श्री जानकी देवी के लिए मेरे मन में बहुत आदर व प्रेम है, तथा कई अंशो में मैं उन्हें अपने से अधिक पवित्र व निर्मल मानता हूँ। उनके सहवास में अपने जीवन के ध्येय में मुझे स्वतन्त्रता-पूर्वक आगे बढ़ने का मौका मिला। उनके कारण ही मेरे शरीर को सच्चे मार्ग पर चलते हुए यदि कष्ट सहन करना पड़े अथवा मेरे इस देह की मृत्यु किसी देश में और वैसी ही स्थिति में हो तो मुझे पूर्ण आशा है कि ऐसे समय अवश्य शान्ति रहेगी। उन्होने मेरे विचारो को भले प्रकार समझ लिया है। तथा कई बातें कार्य रूप में लानी होगी तो वे मेरे बाद आवश्यकतानुसार ले आयेंगी।"

"मैं इस लेख द्वारा यह भी स्पष्ट कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मेरे शरीर से जान-बूझकर अथवा अनजान में कई बार इस देवी का हृदय दुखाया है। मेरी आत्मा इस देवी की आत्मा से मन में कई बार क्षमा याचना कर लिया करती है। मैं इस धीर देवी को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि उनके हाथ से भी कोई आज्ञा-भग या त्रुटि हुई होगी तो उसको मेरी आत्मा क्षमा करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करेगी कि उन्हें अवश्य मोक्ष की शीघ्र अधिकारी बनावे, और उन जैसी देवियाँ इस भारत में पैदा करें।"

जमनालालजी (मेरे 'विचार व संदेश से)

"प्रिय जानकी,

तुम्हे दुखी देखकर दुख होना स्वाभाविक है। मैंने तुमसे कई बार

कहा है कि तुम हंसते खेलते आनन्द से रहो, तो मुझे भी बहुत मदद होगी। कम-से-कम मेरे पीछे से तो भी तुम आनन्द में रहो, इतनी खातिरी ही मुझे रहे तो फिर मेरे प्रवास आदि यात्रा में मुझे चिंता रखने का कारण न रहे। तुम्हें मैंने जान या अनजान में दुख पहुँचाया है, परन्तु उसका क्या उपाय ? तुम्हारा अगर विश्वास हो तो मैं लिखता हूँ कि मेरा तुम पर प्रेम-श्रद्धा-भक्ति तीनों का मिश्रण है। मैं अपने जीवन में ठीक-ठीक फेरफार करने का विचार कर रहा हूँ। ईश्वर की मदद व तुम्हारा पूरा सहयोग रहा तो भावी जीवन सुख से बीत सकेगा, अन्यथा जैसा भी समय आवे उसीमें सुख-समाधान मानकर ही चलना होगा। मैं यह पत्र तो इसलिए लिख रहा हूँ कि तुम्हें थोड़ी शांति मिले।"

चालू रेल्वे, २५-४-३७ जमनालाल

"प्रिय जानकी,

ईश्वर सब ठीक करेगा। तुम्हारे लिए मन में स्थान तो पहले ही ठीक था। अब की बार की तुम्हारी हिम्मत, सेवा, योग्यता का विचार कर जो सुख व शांति मिलती है वह कैसे लिखूं ? हम लोग बहुत ही पुण्य-शाली हैं। ईश्वर की व पूज्य बापूजी की दया व आशीर्वाद से मेरी समझ से अपने इतना (अपने घर माफक) सच्चे सुखी संसार में प्रायः बहुत कम लोग होंगे। आशा है, जेल से हम लोग अधिक लायक, योग्य बनकर निकलेंगे।"

नासिकरोड जेल जमनालाल

का० शु० २, १९८७

प्रिय जानकी,

तुम्हारी व इतर बहनों की दो बार थोड़े समय की गिरफ्तारी की बात जानकर विनोद मालूम हुआ। अगर स्त्रियों को गिरफ्तार करना

शुरू हो जावेगा तो तुम्हारा नंबर जल्दी आ जावेगा। तुम तो सब तरह से तैयार हो ही। तुम्हें कुछ समय के लिए जेल-दुनिया का अनुभव मिल सकेगा व शान्ति भी मिलेगी; साथ में प्रजा में विशेष जीवन व जागृति आवेगी। ईश्वर की अपने ऊपर पूर्ण दया व पूज्य बापूजी का आशीर्वाद है, जिस कारण ही अपने को इस प्रकार की बुद्धि होकर सेवा करने का याने अपनी कमजोरी कम करने का मौका मिला। तुम्हारी बहादुरी व हिम्मत देखकर मन में सुख होता है। मेरे स्वभाव की अनुदारता के कारण तुम जब-जब मिलती हो तब तुम्हारे मुँह पर प्रशंसा की बात न कहकर, तुम्हें हमेशा ही टोकने या विशेष जागृति करने के लिए, कमजोरियों के बारे में ही कहा करता हूँ। बाकी इसका यह मतलब न समझना कि मैं तुम्हें अपने से ज्यादा कमजोर समझता हूँ। मुझे तो तुम्हारे बारे में व सब कुटुम्ब के बारे में पूरा संतोष व अभिमान है। मेरी यह इच्छा अवश्य है कि इस प्रकार धर्म-युद्ध में हम लोगों में से सबों की या सबसे ज्यादा प्रिय हो उसकी आहुति, बलिदान हो जावे तो परम संतोष व सुख की बात हो। एक दिन मरना तो अवश्य है, फिर जिससे देश, जाति व कुल की प्रतिष्ठा बढ़े इस प्रकार की पवित्र मृत्यु मिले तो फिर क्या पूछना। अब तो जेल की मन में नहीं रही। अगर इच्छा है तो ऐसी मृत्यु की है। खैर, जो भावी होना होगी वह होगी। चिंता करने का समय नहीं है। अभी तो बहुत खेल खेलने व देखने होंगे, ऐसा दिखाई देता है। भविष्य बहुत ही उज्वल साफ दिखाई देता है।

नासिकरोड, सेन्ट्रल जेल — जमनालाल
ता० २१-६-३०

"मैं तो आपको योग-भ्रष्ट योगी ही मानती आ रही हूँ। आपके ही पीछे दुनिया का वैभव देखा, और स्वर्ग की इच्छा ही नहीं है। मोक्ष के योग्य तो 'करनी' नहीं, यह बड़ा दुख है।

और मैं आपको नर मानूं या नारायण, यही मेरी समझ में नहीं आ रहा हूँ। मेरी कमजोरियाँ आपके तेज में बाधक हो रही हैं, प्रत्यक्ष देख रही हूँ, पर समझकर भी कोई पाप आड़ा आ रहा है क्या ?

'हिम्मते मरदा तो मददे खुदा' की तरह जो एकदम हिम्मत कर लूँ तो सारा वातावरण तेजमय बना हुआ ही है। सोने में सुगन्ध हो जावे।

आत्मा एक है, मिट्टी से क्या मोह है ?

२९-११-३२ जानकी

पति-पत्नी में हार्दिकता रहना दापत्य जीवन का प्राण है। जमनालाल जी व जानकीमैयाजी एक दूसरे को कितने स्नेह, आदर व पूज्यता से देखते थे—यह पूर्वोक्त उद्धरणो से मालूम हो जाता है। जमनालालजी के जीवन की पार्श्वभूमि में से यदि इनकी धर्म-पत्नी—जानकीमैयाजी—को हटा दें तो उसका महत्व व लुत्फ बहुत कुछ जाता रहेगा। पूर्वोक्त हार्दिक उद्गारों मे इसका रहस्य छिपा हुआ है। यद्यपि दोनों के मानसिक विकास में काफी अन्तर था, फिर भी सत्य व आदर्श की पकड़ दोनो मे गहरी थी। यही दोनों को अन्ततक दृढ़ प्रेम व भक्ति के सूत्र में बाध सका था। त्याग मे मैयाजी और उदारता में जमनालालजी का नंबर चढ गया था। यों दाम्पत्य-जीवन की सफलता, सरसता या मधुरता के लिए जो बाह्य साधन-सामग्री चाहिए, उसका अभाव तो इनके जीवन मे नही था, परन्तु प्रभाव क्षीण हो गया था। जमनालालजी का मन उनमें नही रमता था और जानकी देवी का पति-प्राण मन उनमे लगने से इनकार करता रहता था। इस कारण साधारण अवस्था मे जानकी देवी का मन जमनालालजी की तरफ से उप-राम हो सकता था, परन्तु देह-भोग की अपेक्षा सत्य, धर्म, स्वराज्य, बापू इतनी चीजें दोनों के जीवन मे सामान्य आकर्षण रहे है और उन्हींका मधुर फल उनका एक तरह से यह आदर्श गृहस्थ-जीवन हुआ है। पुस्तकी पढ़ाई

तो दोनों की कम ही हुई थी। बल्कि बाद में मैयाजी जमनालालजी से ज्यादा पढ़-लिख गई थीं। सम्मेलन की परीक्षा में भी बैठ ली थीं। व्याख्यान भी उनसे अच्छा दे लेती थीं — फिर भी मैयाजी के बौद्धिक विकास की कमी का अनुभव दोनों करते थे। जमनालालजी इसके लिए बहुत बार अधीर हो जाया करते थे और उनकी जल्दबाजी दोनों के बीच कुछ संघर्ष का कारण भी बन जाया करती थी। जमनालालजी नौकरों में दरिद्र-नारायण के व अतिथियों में भगवान के दर्शन करना चाहते थे—अतः उनकी वृत्ति इनके प्रति लीनता की रहती थी जब कि जानकी देवी साधारण गृहव्यवस्था की दृष्टि से इन चीजों को देखती थीं। अतः दोनों के व्यवहार में अन्तर रहना स्वाभाविक था। इस विषय में जमनालालजी का २७–१०–४१ पत्र देखिए—

"नौकरों के सामने फटकारने की खास इच्छा तो रहती नहीं। खान-पान के मामले में तथा नौकरों के मामले में हम लोगों का बहुत ज्यादा मत-भेद बहुत वर्षों से चल रहा है। मेरी इच्छा रहती है कि तुम्हारी वृत्ति में फरक पड़ जावे तो सुख से गंगा बहने लगे। देह में मेरा मोह होने के कारण ज्यादा कोशिश रहती है। यह मैं जानता भी हूँ कि उसका परिणाम ठीक न आकर विपरीत ही आता है। परन्तु मैं भी मेरी आदत से लाचार हो गया हूँ। संभाल रखते हुए भी तुम्हें कहने की भूल होती जाती है।"

ये ही छोटी-मोटी बातें दोनों के प्रेम-कलह का कारण हो जाया करती थीं। जमनालालजी थे अति बुद्धिशाली। जब वे बुद्धिबल से काम लेते थे तो कई बार साधारण बुद्धि के लोग निरुत्तर तो हो जाते थे, पर संतोष-समाधान नहीं पाते थे। वही हाल जानकीमैयाजी का हो जाया करता था। तब हमें ऐसा लगता था कि जमनालालजी मैयाजी के साथ ज्यादती कर रहे हैं। मैयाजी सीधी-साफ बात को हृदय से बड़ी जल्दी पकड़ लेती थीं, परन्तु बुद्धि से निर्णय करने में झंझट या उलझन में पड़ जाती थीं। जमना-

लालजी की बात जंचती नहीं थी—परन्तु इच्छा उनके पथानुकरण की रहती थी। अतः स्वतः निर्णय करने में बड़ी परेशानी होती थी। बुद्धि व हृदय की यह खींचातानी जानकीमैयाजी व जमनालालजी दोनों की परेशानी का एक विषय ही बन गया था। ऐसी एक-दो बातों के अलावा, यह एक आदर्श जोड़ी थी। दोनों एक दूसरे का सुधार चाहते थे। पति होते हुए भी जमनालालजी मन में जानकीदेवी के प्रति काफी नम्रता रखते थे। उनकी कमियों के प्रति बहुत दयार्द्र भाव था। जैसा कि उनके नीचे लिखे २७-१०-४१ के पत्र से प्रकट है—

"जैसा कि बालक व मित्र लोग करते हैं, मैं भी मानता हूँ कि हम लोग मोह को तो कम करें व प्रेम को बढ़ाते रहें। यह काम तो रात-दिन नजदीक रहकर संभव नहीं है। इसलिए दूर रहकर प्रसन्नतापूर्वक समझकर व्यवहार रखें तो आशा है दोनों सुखी रह सकते हैं। बालकों पर भी और नौकरों पर भी अच्छा असर हो सकता है।

"मुझे तो अब तुम्हें सुधारने का प्रयत्न करने का मोह छोड़कर खुद अपने को सुधारना चाहिए। मेरी कमजोरियां निकालते रहना चाहिए। वह तो दूर रहकर ही शांत व शुद्ध प्रेममय वातावरण में निकलना संभव है। मैं तो समझता हूँ तुम्हें भी अपने खुद के लिए प्रयत्न करते रहने में जो सुख व समाधान मिल सकेगा वह दूसरी तरह से नहीं। तुम्हें जिस प्रकार शान्ति व समाधान मिल सके उसका मार्ग पूज्य बापू की सलाह से निश्चित कर लेना चाहिए।"

इस तरह वे जहाँ तक हो जानकी देवी को संतोष देने का प्रयत्न करते थे। लेकिन वह नहीं कर पाते थे। और उसका उन्हें काफी दुःख होता था। इस संबंध में उनकी डायरी में एक जगह उल्लेख किया हुआ है—

(३० जनवरी १९४२) "जानकीजी के स्वास्थ्य व मानसिक स्थिति पर महावीरजी का पत्र पढ़ा। पूरी हमदर्दी होते हुए भी मार्ग संतोषकारक

नहीं निकल पाया—इसका विचार, दुःख तो है ही, जानकीजी दुखी होकर ऊपर सोई हुई थीं। उसके पास बैठना, समझाना, शान्ति रखना, पूछना कि क्या चाहती हो ?"

बापूजी के प्रभाव में आने के बाद जमनालालजी ने ब्रह्मचर्य पालन का नियम लिया था। जानकी मैयाजी का कहना था कि नियम न लेकर भी नियम से अधिक निबाह होना चाहिए। इस कारण उन दोनों में काफी संघर्ष होता था; और काफी कठिनाइयाँ, मानसिक संघर्ष का सामना करते हुए भी रामकृष्ण के जन्म के बाद से दोनों ने इसका पालन किया। परन्तु मोह अपना काम करता ही रहता है। २३-१-४२ की डायरी में जमनालालजी लिखते हैं—"जानकी देवी का आग्रह तो मेरे साथ ही रहने का है। उसे समझाने का प्रयत्न तो बहुत किया; परन्तु अभी तक तो वह मुझको अलग, कम-से-कम वर्धा में तो नहीं करना चाहती। शरीर का मोह अभी काफी है. . . ." । इसमें जमनालालजी को पूर्ण मानसिक सफलता तो उनके जीवन के अंतिम महीनों में ही मिली—संभवतः माता आनन्दमयी के संसर्ग, सान्निध्य व आशीर्वाद से—कामविकार को जीतने के लिए उन्होंने स्त्री-जाति की माता के रूप में उपासना करने का निश्चय किया था।

दोनों की निर्भीकता, वीरता, मृत्यु के संबंध में एक खिलाड़ी की वृत्ति का नमूना देखिए:—

"प्रिय जानकी,

तुम्हारी एक फोटो उतराकर उसकी एक नकल मेरे वास्ते लेते आना; यदि देर से तैयार हो तो पीछे से भिजवा देना। एक छावनी में व एक वर्धा भिजवा देना। तुम्हें जेल जाना पड़े या बाहर ही चोट खाकर मरने का सौभाग्य प्राप्त हो तो फोटो हमलोगों के काम आवेगा। क्यों अब तो मरने से डर नहीं लगता है न ? हम लोगों का बीमा (जोखम) तो

सरकार ने ले रखा है। इससे अगर अच्छा भी हो तो मामूली तरह से मरने का कोई मौका नहीं दिखाई देता। हां, तुम लोगों को मौका मिलना सभव है। इतना तो तुम्हारे फोटो के लिए लिखना पड़ा।"

नासिकरोड, सेन्ट्रल जेल, जमनालाल
२२-९-३०

"प्राणेश,

थे लोग अच्छा होशियार हो बिचारोगा। थाने संगत इच्छानुसार ही मिलती जावे है। यह भी प्रभु की कृपा है। अपने कुटुम्ब के लिए सचमुच मन में तो अभिमान आता है, व्यवहार में संभाल नहीं सकती हूँ। और मैं तो अपनेको धन्य मानती हूँ कि इस युग में विशेष ही अवतार मिला कि निर्बुद्धी, अबला व निर्बलों से सरकार धूजनेवाली है। और स्वराज्य स्त्रियों के हाथ से आने वाला है। इसको वानर-सेना ही जीतेगी, न कि विद्वान् व बलवान्। इसलिए आप सुख से बैठे रहें।

"मरने के बारे में समय आवेगा तब देखें कि हंसना आता है या रोना। भावी अच्छा होगा तो अच्छी मृत्यु होगी। एक दूसरे की चिंता करने का समय नहीं है, यह बिल्कुल ठीक है।

"कमलनयन को खास लड़ाई का सामना हो वहाँ भेजें तो कर्तव्य किये का संतोष हो।"

विले पारले छावनी कमला की मां का प्रणाम
२७-६-३०

"प्रिय जानकी,

तुम्हारे बारे में मैंने जितना विचार कर देखा, बाद में भी (तुम्हारे गये बाद) मुझे तो यही लगता है कि अन्दर (जेल) जाने से तो तुम्हें लाभ है ही; सारे देश को भी अधिक लाभ पहुँचेगा। लोगों में ठंडाई व कायरता

आती होगी तो वह नहीं आवेगी। और इसका परिणाम राजपूताना, मध्यप्रांत तथा अन्य प्रांतों में भी ठीक होना संभव है। मैं समझता हूँ कि तुम बहन गोमतीदेवी को व रिषभदास को समझा सकोगी। इस समय दृष्टि बहुत दूर तक व बहुत आगे का विचार करने की ओर लगाना जरूरी है। सफलता आदि ईश्वर के हाथ है। हम लोगों का तो यही धर्म है कि सच्चाई के साथ थोड़ी कुर्बानी, आहुति दे सकें। व अवश्य ईश्वर का उपकार मान लें। इस समय ऐसे बहिन-भाई की देश को जरूरत ज्यादा है, नेताओं की नहीं। "बोले तैसा चाले त्याची वंदावी पाउलें"—इतने पर भी तुम बाहर की हालत देख विचार कर निर्णय कर सकती हो।"

नासिकरोड, सेन्ट्रल जेल, जमनालाल
२३-७-३०

जानकी मैयाजी का विनोद मार्मिक हुआ करता है। क्या जमनालालजी, क्या बापू जी, क्या विनोबाजी, इनके साथ उनकी बातचीत व्यंग्य व विनोद से ही प्रायः शुरू होती थी। उसके कुछ नमूने यहाँ दिये जाते हैं:—

"अगर तुम उनके (बापू) के कहने से वहाँ बनी रही और खुदान-स्वास्ता प्लेग की शिकार हो गई तो मुझे तो इतना संतोष रहेगा कि ऐसी हालत में पूज्य बापूजी का आशीर्वाद मिल जाय और उसके साथ स्वर्ग भी मिल जाय। वहाँ प्लेग से मरोगी तो बहुत करके पूज्य बापू का तो आशीर्वाद मिल ही जायगा। इससे अब तुम्हारी तरफ की चिन्ता कम है।

"जो डरता है उसे ही प्लेग सताता है। डरनेवाले के शरीर-तन्तु कमजोर हो जाते हैं व कमजोरी में ही बाहरी बीमारियों का अधिक असर पड़ता है। इससे न मरना हो तो डरना नहीं।"

वर्धा, ३०-८-३३ जमनालाल

प्रिय जानकी,

"तुम घर की थोड़ी चिन्ता रखती हो, ऐसा राधाकिशन ने लिखा था। सो जैल जाने के बाद में चिन्ता करोगी तो फिर जेल का क्या फायदा मिल सकता है ? बाहर की सब चिंता मेरी माफक छोड़ देना चाहिए। और खूब आनन्द में हंसते, खेलते, विनोद करते, दूसरी बहनों को हिम्मत देते हुए जेल में आनन्द से रहने का ही मरते समय तक ख्याल रखना चाहिए।"

रामनवमी, १५-४-४१ जमनालाल

पूज्य बापू के साथ भी मैयाजी कितना विनोद करती थीं और बापूजी की दृष्टि में उनका क्या स्थान था--यह नीचे के पत्र-व्यवहार से मालूम हो जाता है ।

चि० जानकी बहेन,

"तुम्हारा पत्र मिला। अब उत्साह क्यों न होगा ? अब तो भाषण करती हो, अखबारों में नाम आता है। समय समय पर जब जानकीबाई बजाज का नाम देखता हूँ तो उससे ऐसा ही लगना चाहिए न कि जमनालाल और हम सब भले ही जेल गये और रहे। मुझे तो विश्वास था ही कि तुम्हारे ऊपरी अविश्वास के मूल में पूरा आत्म-विश्वास था। ईश्वर उसमें वृद्धि करे।"

"चि० जानकी बहेन,

२१-९-३०

तुम बहुत चण्ट मालूम होती हो। ज्यों-त्यों करके पत्र लिखने से बच जाना चाहती हो ?और यदि भाषण करते-करते हाकिम-'डिक्टेटर' बन जाओगी तो फिर मुझ जैसे के तो बारह ही बज जायंगे न ? जमनालाल ने नासिक में अपना धन्धा ठीक जमाया लगता है। मैं मानता ही था कि उसके पंजे से कोई छूट नहीं सकता।"

चि० जानकीमैया, २०-८-३२

"खूब ! आखिर पेन्सिल से दो सतरें लिखने की तकलीफ की तो । जेल जाकर भी आखिर आलस्य नहीं गया न ? 'अ' वर्ग देने में ही भूल हुई है। 'क' वर्ग देकर खूब काम कराना चाहिए था। आलस्य का तो ठीक, परन्तु अब शरीर की हालत ठीक कर लेना ।"

चि० जानकीमैया, १९-९-३२

"'क' वर्ग का खाना खाकर मरने का भय तुम जैसों को होता है, इसीसे बिना खाये जीने का रास्ता ग्रहण किया है। कल से यह देख लेना । खा-खाके तो सारा संसार मरता है । 'अ' वर्ग का खाकर कितना जी लोगी यह देख लूँगा । परन्तु अनशन करते-करते जी जाने की कला कैसी है ? एक शर्त है जरूर । तमाम मैयाओं को जोगिन बनकर बाहर निकल पड़ना पड़ेगा और अस्पृश्यों को स्पृश्य बनाकर खुद भी ईश्वरी शक्ति होने का दावा साबित करना पड़ेगा । इतना करना और फिर 'अ' वर्ग का ही खाना खाती रहना । परन्तु यदि कोई 'अ' वर्ग का न दे तो 'क' वर्ग के खाने से ही संतोष मानना ।

"परन्तु मान लो कि जोगिनों का भी कुछ बस न चला तो ? तो भले ही यह मिट्टी का पुतला अभी टूटकर गिर जाय । मैं तो जीने ही वाला हूँ। जबतक एक भी मैया मेरा काम करती है (रहेगी) तबतक कौन कहेगा कि मैं मर गया ? भले ही आत्मा की अमरता संबंधी गीता का तत्वज्ञान हम क्यों छोड़ दें । जो अमरता मैंने बताई है वह तो हम चर्म-चक्षुओं से भी देख सकते हैं। इसलिए, होशियार जरा भी घबराहट न होने देना । सुशोभित होना, सुशोभित करना । तन, मन, धन ईश्वर को सौंपकर सुखी होना व रहना । नखरेबाज ओम् को और ज्ञानी मदालसा को आज नहीं लिख सकूंगा ।"

"पूज्य बापूजी,

आपका कार्ड ता० १५–७ का मिला था। उसमें आपने शिवाजी वगैरा की खबर मंगाई थी, उसका उत्तर पहुँच गयाहोगा।

आपका पत्र ता० २०–८–३२ का मिला। ओम कहती है कि बापूजी को विशेष काम न होगा जिससे बड़े-बड़े विशेषण लगाते हैं। मेरा 'अ' आपको खटकेगा यह मैं जानती ही थी। आप 'क' वर्ग के लिए इच्छा रखें या उससे भी नीचे के वर्ग के लिए ?

आप रसोई सीखना चाहते होंगे तो यह तो हो सकता नहीं, और वर्धा तहसील की १०० बहनें होने के कारण दूसरी मेहनत भी आलस्य में समा जाती। लेकिन मुझे तो एक ही भय था कि कहीं 'क' की खुराक से मर जाती तो ?

आप आलस्य कहते हैं तो २० पुस्तकें सारी जिन्दगी में न पढ़ी थीं सो ५ मास में पूरी कीं। यहां आते ही दूसरी जेल में फंस गई। ता० ४–८ को छूटी और ता० ७–८ को हिन्दी-साहित्य की प्रथमा परीक्षा का फारम भर दिया। ओम, प्रहलाद उसका छोटा भाई (श्रीराम) परीक्षा में थे और कमल को भी फंसा दिया। ता० २५–९ को परीक्षा है। देखें अब क्या होता है ? कमल की तो पूरी फजीती है। मुझे तो आप वहींसे आशीर्वाद दें जिससे मैं तो पास हो जाऊं।

आप दूसरों को कहते हैं कि दया करो और अपने बीमार हाथ से कितना काम लेते हो ?

आपने विनोबा के सांडसे में आने का लिखा सो तो य आप ही के कांटे बोये हुए हैं। लेकिन नई खबर सुनाती हूं। विनोबाजी मेरे सांडसे में आने लगे हैं। वे भी आज आपको पत्र देने वाले हैं।

आपने जीर्ण कमली की याद कराई। सो आपने दूसरी तैयार करके

रखी मालूम होती है। सो ऐसे काम बिना आलस्य के हो सकते हैं। आप मरने के सिवाय चाहे जो सजा करें।"

चि० जानकीमैया, २६–३–३३

वाह, मेरे पत्र का जवाब तक न देना? मेरा इतना ज्यादा डर है? हरिजन को देते हुए जी दुख पाता हो तो ऐसा लिखो। मुझे सन्तरे भेजते हुए थैली खुल जाती है, किन्तु हरिजन के लिए बन्द रहती है, क्यों न?

"चि० जानकी बहेन, ३०–१–३४

यदि दिमाग की कमजोरी के कारण जमनालाल को गुस्सा आता हो तो उसमें शिकायत की क्या बात? बीमार के गुस्से पर भला कोई ध्यान देता है? बीमार की चिढ़ तो हमेशा पी ही ली जाती है। या केवल विनोद के लिए मुझे पत्र लिखा है?"

मैयाजी की शादी बचपन में हुई थी। लक्ष्मणगढ़-निवासी श्री सेठ गिरधारीलालजी जाजोदिया की वे पुत्री हैं। संवत् १९५८ में उनका विवाह हुआ था। जमनालालजी के जीवन की सफलता और यशकीर्ति-वृद्धि में उनका बहुत योग है। किन्तु बचपन में उनके मन में एक विचित्र भावना आया करती थी। वह उन्हीं के शब्दों में सुनिए:—

"—वर्ष की उमर में मेरी शादी हुई थी, उनकी उमर १३ की होगी। बच्छराजजी के घर में कोई बच्चे न होने के कारण वह चाहते थे कि मैं हमेशा घर में रहूं। इस वास्ते मुझे अपने घर (पीहर) नहीं रहने देते थे, और विवाह भी जल्दी ही किया था। इस वास्ते मेरी हमेशा यही इच्छा रहती थी कि अगर विवाह किसी तरह टूट जाय तो मैं अपने घर जाकर खेलूं-कूदूं। और मैं चाहती थी कि इससे तो अच्छा हो कि, मैं विधवा हो जाऊं और मां के घर जाना, खेलना मिले तो अच्छा। अब तो यह विधवा नाम भी मुझे

सहन नहीं होता है, और बहुत दुखदायी भी मालूम पड़ता है। उनकी अजब कार्यशक्ति और प्रेम, उदारता का सिनेमा भूलने में नहीं आता है।"

यद्यपि मैयाजी पढ़ी-लिखी विशेष न थी, तो भी उन्हें बहुत-से अच्छे संस्कार छुटपन से ही मिले थे। बहुत-से अच्छे-अच्छे श्लोक तथा धार्मिक कथाएं (श्लोकबद्ध) उनको छोटी उम्र में ही याद करा दिये गए थे जोकि उनको अभी तक याद हैं। अपने बच्चों को वे बराबर भक्तिभाव से सुनाया करती थी। "धरती माता तू बड़ी, तुझसे बड़ो न कोय" यह सुबह खुद भी भक्ति-भाव से कहती और बच्चों से भी कहलवाती। इस अभ्यास के ही कारण जमनालालजी की अन्त्येष्टि क्रिया के समय वे विनोबाजी के साथ कई श्लोक स्पष्टता के साथ बोल रही थीं।

मैयाजी को शुरू से ही श्रद्धा का अच्छा संस्कार मिला था। जब कई तरह की दिक्कतें व परीक्षाएं आती तब बड़ी हिम्मतवाला मनुष्य भी डिग सकता था, पर मैयाजी की श्रद्धा ने हमेशा उन्हें अपने रास्ते पर कायम रखा। पतिसेवा—पति का अनुगमन करना—यह श्रद्धा बड़े जोरों से उनके हृदय में समाई हुई थी। उसीसे उन्होंने जमनालालजी के पीछे-पीछे चलने में कोई कठिनाई महसूस नहीं की। नहीं तो एक जबर्दस्त समाज-सुधारक, देश-सेवक और सो भी जमनालालजी जैसे अग्रगामी पुरुष की पत्नी बनना आसान बात नहीं थी। जमनालालजी का तो आग्रह रहता था कि जो वह बोलते वह पहले खुद के व घरवालों के आचरण में आना चाहिए। पहले उन्होंने परदा छोड़ने की बात कही—मैयाजी ने मान ली। और जेवरों को भी तिलांजलि देकर मारवाड़ी महिलाओं के समक्ष आदर्श उपस्थित किया।

उस समय यह बड़ी मुश्किल बात थी। खासकर एक मारवाड़ी स्त्री के लिए जो कि खुद अपढ़ हो और उन्हीं जैसी कट्टर स्त्रियों से घिरी रहती हो। जब उन्होंने घूंघट हटा लिया तो दूकान के लोग जो सामने से निकलते तो खुद ही मुंह फेर लेते थे बेचारे। पर मैयाजी ने किसी भी चीज को जो

एक बार पकड़ा फिर उसे आखिर तक निभाया। पीछे फिरकर देखा ही नहीं। न अफसोस किया, न कभी पश्चात्ताप।

फिर आई खादी की बारी। तो घर में सब कहीं बिस्तर में, गहनों के डब्बों में, घाव व पट्टी बांधने में खादी के अलावा कुछ भी नहीं होता था। विलायती कपड़ों की तो होली हो ही गई। वर्धा में उस समय जितनी बड़ी होली विदेशी कपड़ों की हुई उतनी शायद ही दूसरी जगह हुई हो। खादी के अलावा एक चिंदी भी घर में न हो ऐसा आग्रह रखती थीं। जमनालालजी तो निश्चय कर लेते थे पर चीजें जुटाना और निभाने का भार पड़ता था मैयाजी पर। किन्तु इसमें कभी ढ़िलाई नहीं की। यहां तक कि एक समय जब जमनालालजी मिल खरीदने का सोचने लगे थे, तब मैयाजी बापूजी के पास पहुँचीं और उन्हें ऐसा करने से रुकवाया।

फिर साबरमती में उन्होंने बापूजी के सामने गाय के घी का नियम लिया। नियम कई लोगों ने लिया, पर करीब करीब सभी का छूट गया। किन्तु, आज २०, २५ वर्ष से ज्यादा हो जाने पर भी मैयाजी का व्रत अखण्ड चल रहा है। कभी-कभी कई दिनों तक बिना घी के रहना पड़ा, फिर भी व्रत नहीं छूटा। और इस बारे में उन्हें कभी दुख भी नहीं होता, न ऐसा ही लगता है कि कोई बड़ा त्याग किया है। जमनालालजी ने तो जब १९४२ में गो-सेवा संघ खोला तब नियम लिया, पर मैयाजी का तो पहले से चालू ही था।

फिर आया हरिजन-गृह-प्रवेश का कार्यक्रम। वैष्णवों के परिवार में पैदा हुई मैयाजी को यह बात बड़ी कठिन मालूम हुई। और आज तक इस बात को वह अपना नहीं सकी हैं। वैसे सिद्धांत तो उनको मान्य हो गया है, पर अरुचि अब भी कायम है। जो एकदम सफाई से रहता है उससे उन्हें जरा भी घृणा नहीं आती। प्रभाकरजी (सेवाग्राम आश्रम) के हाथ का खाने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता। पर एकदम सफाई नहीं हो

तो सहन नहीं होता। अमतुस्सलाम व सोफिया सोमजी तो उनकी भाव-लियों में से है। पर दूसरी मांस-मच्छी खानेवालों से दूर रहना ही उन्हें पसन्द पड़ता है। किन्तु, जमनालालजी के आग्रह के सामने उन्होंने कभी ना नहीं कहा। जमनालालजी ने तो हरिजनों का गृह-प्रवेश ही नहीं, रसोई-प्रवेश भी कराया और मैयाजी ने उसे धीरज के साथ सहा।

जमनालालजी ने अग्रवाल-महासभा का काम शुरू किया तो मार-वाड़ी महिलाओं में काम करने का जिम्मा मैयाजी के सिर आ गया। १९३३ में कलकत्ते में अखिल-भारतीय अग्रवाल-महिला-परिषद की सभानेत्री बन-कर गईं और पर्दा आदि हटवाने का खूब आन्दोलन किया। बंगाल-बिहार में खूब दौरा किया। एक-एक दिन में दो-दो और तीन-तीन गांव का दौरा होता था।

नागपुर-जेल में बड़े संकट से रहीं। 'अ' वर्ग मिला था पर सब के साथ में 'बी' में रहीं। किसीके हाथ का खाती नही थी इस कारण कच्चे दूध का ही दही खाती थीं दवा नहीं लेतीं थी। बच्चों को प्रथमा की परीक्षा में बैठाना था। वे मानते नहीं थे तो खुद परीक्षा में बैठना तय किया और बच्चों को बैठाया। रात-दिन पढ़तीं, पर पास तो कहां से हो सकती थीं? फिर मध्यमा की इजाजत मिलने पर उसमें भी बैठीं।

गुस्सा था अधिक ही। जमनालालजी पर आता था और वह निकलता था बच्चों पर। नहाते समय या और समय वे रोते तो मार खाते। फिर हाथ में चाकू है या गिलास, उसका खयाल नहीं रहता था। लेकिन खून निकलते ही मरहम-पट्टी भी खुद ही करतीं।

उनकी कर्तव्य-निष्ठा का एक नमूना लीजिए। रामकृष्ण दिसंबर १९४१ में जेल से छूटा था। वाइस चांसलर की खास इजाजत से जनवरी ४२ में कालेज में भर्ती किया गया था। बाद में पूरी हाजिरी देना जरूरी था, यह मैयाजी को मालूम था। उसी बीच ११ फरवरी को जमनालालजी

का देहान्त हुआ था। १२ फरवरी को, याने दूसरे ही दिन, मैयाजी अपने आप रामकृष्ण से कहती हैं—"राम, तू कालेज चले जाना। एक दिन भी क्यों खोता है ?" सभी को बड़ा अजीब-सा लगा।

वैश्य कुल—फिर धनी कुटुम्ब में दान तो बहुत दिया जाता है, परन्तु त्याग कठिनाई से होता है। त्याग में भी जानकी देवी जमनालालजी से कम नहीं साबित हुईं। पुराने रूढ़ी-मार्गी कुटुम्ब में जन्म लेकर उन्होंने जमनालालजी जैसे महान सुधारक के चरण-चिह्नों पर चलकर एक नहीं अनेक बार अद्‌भुत साहसिक त्यागशीलता का परिचय दिया है। विदेशी वस्त्रों व गहनों का त्याग उनके मुकाबले में मामूली ठहरता है। फिर वे त्याग का ढिंढोरा नहीं पीटतीं। जमनालालजी तो फिर भी देश-सेवा के ही खातिर सही, उसका थोड़ा-बहुत व्यापार कर लेते थे। जमनालालजी की मृत्यु के बाद का उनका सर्वस्व-त्याग तो ऐतिहासिक गिना जायगा। बापू के संकेत-मात्र से अपने पास की सारी धन-दौलत उसी क्षण गो-सेवा-संघ को दे दी। अपना जीवन भी होमने—सती होने—की तैयारी थी। बापू ने शरीर को रखकर जीवन होमने का मार्ग सुझाया। वे उसपर उसी क्षण से चल पड़ीं। बापू ने कहा—"अब संन्यासिनी-भिखारी बन कर रहना है।" उन्होंने फौरन कहा—

"बापूजी, जैसी आपकी आज्ञा। धन को तो मैंने मिट्टी माना है। मुझे चाहिए भी क्या ? खाने भर को तो मेरे बच्चे भी मुझे देंगे। आप हैं, भगवान हैं, यह संसार है। मुझे कौन भूखों मरने देगा ? इसलिए मेरी संपत्ति और मैं सब कृष्णार्पण।" मेरे लिए वे जो-कुछ छोड़ गये हैं, सो सब मैं उनके काम के लिए अर्पण करती हूँ।" इस प्रकार दो-ढाई लाख की रकम गो-सेवा के लिए अर्पण कर दी।

बापू ने कहा—"अब सब धन कृष्णार्पण करके तुम भिखारिन बन गई हो। अब लड़के तुम्हें खिलायंगे तो तुम खाओगी, नहीं तो तुम्हें मेरे पास आना

हैं। अब तुम्हें अपने लिए नहीं, बल्कि जमनालाल के इस गो-सेवा-कार्य के लिए ही जीना है, तुम्हें अब जमनालाल की गोपुरी में रहना है।"

तबसे कमल के घर रहना भी उन्हें पसन्द नहीं। बेटों पर अब मेरा क्या अधिकार है? बेटे सब तरह उनका प्रबन्ध करने के लिए तैयार रहते हैं, परन्तु, उसे स्वीकार करना उन्हें अपना व्रत-भंग मालूम होता है। एक धनी कुटुम्ब की स्वामिनी के मन की इतनी उच्च अवस्था! जमनालालजी को धन के प्रति जो निर्मोह जन्मजात था वह जानकीमैया के लिए अपनी तपश्चर्या से, जमनालालजी के उदाहरण तथा बापू व विनोबा के आशीर्वाद से, सहज हो गया। वैश्य व धनी परिवार में पति व पत्नी दोनों के त्याग का—हार्दिक त्याग का—ऐसा उदाहरण शायद ही कहीं मिले। अब भी शरीर वृद्ध, अस्वस्थ रहते हुए भी मैयाजी कम-से-कम खर्च में अपना काम चलाती हैं। इसके लिए वे बंगले की जमीन से अन्नादि उपजाने की कोशिश करती हैं। दामोदरभाई से नित सलाह-मशविरा करती रहती हैं कि कैसे मैं भी शरीर-श्रम से जीवन-निर्वाह चलाऊँ। लड़के लोग सब प्रकार व्यवस्था करते हैं, पर मुझे रुचता नहीं। मुझे तो मजदूरी करके ही पेट भरना चाहिए। क्या करूँ? क्या यही आकर रह जाऊँ? किन्तु यह पूरी तरह सध नहीं पाता है—इसी उधेड़-बुन में वे परेशान रहती हैं।

नौ साल की अवस्था में ही ब्याह हो गया था। बच्छराजजी की पिछली कई पीढ़ियों में जानकीदेवी ही ऐसी बहू आई जिसनें बजाज परिवार को सन्तान-रत्न प्रदान किये। वे बहुत रूपवती नहीं थी, अतः सगाई के समय उनके रूप-रंग की चर्चा भी चली। तो सदीबाई ने कहा कि इतनी रूपवती बहुएं आईं—वंश किसीसे नहीं चला। मुझे तो अब कुरूप ही बहू चाहिए। जानकीदेवी न केवल घर की लक्ष्मी, बल्कि देवी, साबित हुई। उनके पदार्पण के बाद बच्छराजजी के घर में केवल धन-धान्य, पुत्र-लक्ष्मी आदि ही नही, सेवा व त्याग का जीवित आदर्श भी झूमता हुआ आया। आज जमनालालजी

नही है, परन्तु उनके दिव्य आदर्श व उच्च चरित्र की जीवित ज्योति हम जानकीमैया मे देख रहे है—हालाकि कुटुम्ब तथा बालबच्चो के मोह से वे पूर्ण मुक्त नही हो पाई है, प्रयत्न चलता रहता है, पर सफलता नही मिलती है। इस कारण जमनालालजी की शक्ति व प्रभाव का व्यापक रूप चाहे हमे उनमे न दिखाई दे—परन्तु, उसकी पवित्रता का केन्द्र जानकी-मैयाजी मे सुरक्षित है, इसमे कोई सदेह नही है।

: २ :

सच्चा श्राद्ध

जमनालालजी तो अपनी जीवनलीला और जीवनकार्य समाप्त कर गये—कृतकृत्य हो गये। अब पीछे क्या हो, उनका स्मारक कैसा हो, उनका श्राद्ध किस तरह किया जाय, उनकी परपरा, उनका कार्य कैसे जारी रखा जाय? कौन व्यक्ति, कौन सस्थाएँ, कौन से कार्य इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है, या किन पर पहले से लोगो का ध्यान है, या हो सकता है? इन प्रश्नो पर दो तरह से सोचा जा सकता है—एक तो जानेवाले की दृष्टि से, और दूसरे पीछे रह जाने वाले की दृष्टि से। इनमे दो तरह के लोग होते है—एक तो वे जो अपने जीवन-काल तक का ही विचार करते है और मृत्यु के बाद के विषय मे निश्चिन्त रहते है। दूसरे वे जो मरने के बाद की भी व्यवस्था पहले से करते रहते है और करके जाते है। इनमे पहला श्रद्धानिष्ठ और दूसरा व्यवहारनिष्ठ होता है। जमनालालजी अपने मृत्युपत्रो और डायरियो आदि मे यह तो सूचित कर गये है कि उनके पीछे उनकी सपत्ति की और उनके बाल-बच्चो की शिक्षा-दीक्षा आदि की व्यवस्था किस दिशा मे हो, परन्तु अपने अगीकृत अधूरे कार्यो और अपने से सबधित सस्थाओ तथा व्यक्तियो का आगे क्या हो,इस बारे मे न तो ज्यादा सोचते हुए नजर आते है,न कोई व्यवस्था कर गये मालूम होते है। फिर भी उनकी मृत्यु के बाद तुरन्त ही उनके स्मारक का प्रश्न उठा और कई मित्रो ने, जो वर्धा मे एकत्र हुए थे, चाहा था कि उनका स्मारक बनाया जाय, परन्तु अन्त मे बापू ने यही सलाह दी कि जमनालालजी का कोई भौतिक स्मारक बनाना मुश्किल है। जबतक बापू थे तबतक

जमनालालजी

बापू की छाया में

दादा
बच्छराजजी

पोता
जमनालाल

जनक के साथ

पुत्र कलत्र सहित

जननी

सहधर्मिणी के साथ

झंडा-सत्याग्रह के नेता

प्रजामंडल के अध्यक्ष

रेगिस्तानी जहाज़ पर लेखक और चरित-नायक

नेताओं
और
मित्रों के बीच

नेताओं
और
मित्रों के बीच

नेताओं
और
मित्रों के बीच

मालवीयजी और गांधीजी के बीच

महर्षि रमण के साथ

जयपुर
की
नजरबंदी में

स्वास्थ्य-साधना--पूना में

गो-सेवक

अतिथिशाला

गांधी
का
अनुयायी
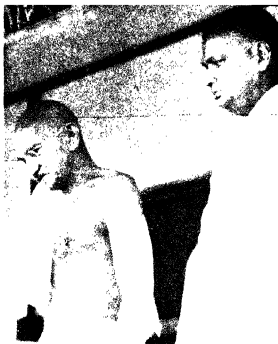
गांधी का द्वारपाल

अंतिमदर्शन

गुरु विनोबा
और
माता आनंदमयी

સેવાગ્રામ SEVAGRAM, سیواگرام
વર્ધા સી.પી. WARDHA, C.P. وردھا-سی-پی

१-२-४६

ज्योंर मैं विचार करता हूं
तो मैं देखता हूं कि देशी
हिन्दी की कोई प्रगति नहीं
थी सिवाय गणनाबाजी
का हाथ नहीं था. जो सच्चा
साहित्य मध्यकाल में तो हुआ
ही था. वैसे हिंदी साहित्य
को

मो. क. गांधी

इस तरह की कोई चीज नहीं बन पाई। बापू के जाने के बाद इसका रहस्य ध्यान में आया। जमनालालजी ने अपने जीवन को बापू में समाने की अजहद और अविरत कोशिश की थी और वह प्रकृति-माता के दरबार में मंजूर भी हुई। ११ फरवरी जमनालालजी का स्मृति-दिन और बापू का श्राद्ध-दिन एक एक ही तिथि पर आ पड़ा। अतः उनका अलग स्मारक बनता कैसे ? फिर भी उनके श्राद्ध की जिम्मेवारी हम पर अवश्य है। तो वह किन पर है ? कौन उसके अधिकारी हैं ? ऐसे व्यक्ति तीन श्रेणियों में बंट जाते हैं—(१) वे जिन्होंने उनके जीवन के विकास में अपने जीवन को खपा दिया (२) वे जो उनके वारिस हैं और जिन पर उनकी परंपरा चालू रखने की सीधी जिम्मेदारी है और जिनकी तरफ लोगों की भी आँखें लगी हुई है (३) वे जो उनके सहारे जीवन में आगे बढ़े हैं, जीवन-निर्माण या जीवन-सिद्धि में जिन्हे उनसे सहायता मिली है। इन सब को मिलाकर उनका विशाल परिवार ही कहना ठीक होगा। इस परिवार के खास-खास व्यक्तियों का भी यदि आज स्मरण करें तो उसकी एक बड़ी सूची बन जायगी। छोटे-बड़े सब लोगों की तो सूची बना लेना भी कठिन है। घर के साधारण छोटे नौकरों से लेकर तो बड़े-से-बड़े देश-नेता और महान् व्यक्ति इस परिवार में आ जाते हैं। सारे भारतवर्ष में वे छाये हुए हैं; कोई प्रान्त, कोई कोना, कोई भाषा, कोई जाति उससे मुक्त नहीं है। सिर्फ गांधीजी का ही परिवार शायद इससे बड़ा हो सकता है। गांधीजी का, जहांतक सार्वजनिक सेवकों से संबंध है, बहुत भार जमनालालजी उठा लिया करते थे। इससे कार्यकर्ताओं और उनके परिवारवालों का जमनालालजी से जितना सीधा और निकट का संबंध आता था उतना खुद बापू का भी नहीं आने पाता था। इनमें उनके श्राद्ध की जिम्मेदारी उन लोगों पर अधिक है जो अपना जीवन उनको समर्पित मानते हैं। जमनालालजी उनसे क्या चाह सकते थे, उनकी कड़ी कसौटी में आज वे कितना पास होंगे,

इसे छोड़ दें तो उनके निजी कुटुम्बियों में, जानकीमैयाजी को छोड़कर, राधाकृष्णजी तथा श्रीमन्नारायणजी ही ऐसे हैं जो वर्धा में रहते हुए भिन्न-भिन्न रचनात्मक कामों को संभाले हुए हैं ।

राधाकृष्णजी जमनालालजी के भतीजे हैं । उन्हें जमनालालजी के रचनात्मक, खासकर गो-सेवा-कार्य के प्रतिनिधि या वारिस कह सकते हैं । विनोबा की शिक्षा व कार्यप्रणाली को अपने जीवन मे व्याप्त करने का प्रयत्न करते हैं । जमनालालजी उन्हें अपने पुत्रों से ज्यादा मानते थे । राधाकृष्ण-जी के लिए तो "काकाजी" ही सब कुछ थे ।

कमलनयनजी जमनालालजी के सबसे बड़े लड़के हैं । ये अपना जीवन जमनालालजी को समर्पित मानते हैं, यद्यपि वे अभी उसमें डूब नही पाये हैं । जमनालालजी की अचानक मृत्यु को जिस धीर-वीरता और गभीरता से उन्होंने अविचल रहकर सहन किया है, उसकी छाप सभी निकटवर्ती लोगों पर अच्छी पड़ी है । जमनालालजी की कुशाग्रबुद्धि, निर्भीकता, स्पष्टवादिता, अक्खड़पन उन्हें विरासत में मिले हैं । इन्होंने भी बचपन में विनोबाजी से शिक्षा पाई है । उसके संस्कार और जमनालालजी की गुण-संपत्ति उनकी खास पूंजी है । शारीरिक स्थूलता उनके शरीर को द्रुतगति देने में बाधा डालती रहती है । उनकी बौद्धिक सूझ-बूझ की गति से शारीरिक आलस्य और कुछ मस्तमौला तबियत मेल नही बैठने देती । फिर भी जमनालालजी के प्रति अपने उत्तरदायित्व का उन्हें भान है ।

श्री दामोदरजी को जानकीमैयाजी प्रेम से विनोद में 'सौत' कहा करती हैं । यह एक ही शब्द जमनालालजी के प्रति दामोदरजी की भक्ति बताने के लिए काफी है । जमनालालजी ने कितने ही नवयुवको और नौसिखियों को अपना मन्त्री बनाया, उन्हें मन्त्रित्व की शिक्षा दी, किन्तु उनके प्रति समर्पित होकर दामोदरजी ही अन्त तक रहे हैं ।

उनके बड़े दामाद, कमलाबाई के पति, श्री रामेश्वरप्रसाद नेवटिया ने, बजाज-परिवार के सबसे पहले सुधारक विवाह में कदम बढ़ाकर तथा बाद में व्यावसायिक क्षेत्र में अपने परिश्रम से जमनालालजी को संतुष्ट किया था। परन्तु (मझले दामाद) श्रीमन्नारायणजी शिक्षा-प्रचार तथा सर्वोदय-योजना को सफल बनाने में जुटे रहते हैं। हिन्दी व अंग्रेजी के ग्रन्थ-लेखक व कवि होने के साथ ही वे कामर्स कालेज के आचार्य तथा राष्ट्र-भाषा प्रचार-समिति के भूतपूर्व मन्त्री के नाते अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।हाल ही बहन मदालसा को साथ लेकर सर्वोदय समाज के सिद्धांतों का विदेशों में जगह-जगह अच्छा प्रचार तथा वहांका अध्ययन कर आये हैं।

मदालसा व राधाकृष्णजी पर विनोबाजी का रंग शुरू में इतना चढ़ा था कि किसीको खयाल ही नहीं होता था कि ये शादी करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करेंगे। राधाकृष्णजी की जब सगाई हुई तब उन्होंने निमन्त्रण पत्रिका के साथ मुझे लिखा था:—

"तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पांव"

मदालसा की शादी पर उसे खुद ही अबतक आश्चर्य हो रहा है।

राधाकृष्णजी की तरह यदि कमलनयन भी जुट पड़ें तो जमनालालजी की आत्मा को अवश्य संतोष हो। जैसा एक ने रचनात्मक क्षेत्र को संभाला है वैसा दूसरा राजनैतिक को संभाल ले तो लोगों की अपेक्षायें कुछ अंश तक पूरी हो सकती हैं।

राधाकृष्णजी का विवाह श्री जाजूजी की कन्या श्री गोदावरी से हुआ। इन्हें अब सौ० अनसूया कहते हैं। उन्होंने अपने को राधाकृष्णजी के विकास में छिपा दिया है। यह आदर्शवादिनी और अपनी समझ के अनुसार दृढ़ ऐसी है कि शादी हो जाने पर भी बिन्दी नहीं लगाती हैं और चूड़ी भी नहीं पहनती हैं। अब तो यह ग्राम-सेवामंडल नालवाड़ी की मन्त्री होकर राधाकृष्णजी की वास्तविक सहयोगिनी हो रही हैं।

बजाज-परिवार में श्रीमन्‌जी को छोड़कर किसीको आजकल की कालेजी शिक्षा नहीं मिली। गांधीजी के प्रभाव में सबको राष्ट्रीय, नैतिक आध्यात्मिक व कार्यकारी शिक्षा मिली। वैसे कमलनयन इंगलैण्ड में सीनियर कैंब्रिज पास हो आये हैं; रामकृष्ण भी विद्यार्थियों के प्रतिनिधि के रूप में विदेश-यात्रा कर चुके हैं—श्रीमन्‌जी और मदालसा भी हाल ही विदेशों में गांधी-मत का प्रचार करके लौटे हैं। फिर भी इनकी खूबी इस शिक्षा या विदेश-यात्राओं में नहीं। शिक्षण की दृष्टि से खासकर विनोबा व उनके आसपास से जो इनके मन, बुद्धि व आत्मा पर उच्च संस्कार पड़े हैं वे ही इनके जीवन को मुख्यतः संचालित कर रहे हैं। बापू की प्रबल प्रेरणाएं और विनोबा के मूकमन्त्र यही बजाज-परिवार के जीवन, पोषण व विकास का मुख्य आधार है। भिन्न-भिन्न सत्याग्रह-आन्दोलनों में प्रायः सभी जेल-यत्रा कर'आये है। अपना-अपना काम उन-उन आन्दोलनों में प्रायः सबने तत्परता व दक्षता के साथ किया है। 'भारत-छोड़ो' आन्दोलन में, खासकर राधाकृष्णजी और सावित्री बहन की जान की तो बाजी ही लग गई थी। रामकृष्ण को पुलिस ने काफी मारा-पीटा। राधाकृष्णजी पर बड़े भारी षड़यन्त्र का झूठा केस बनाया गया था जिसमें उनको फांसी तक की सजा हो जाने की सभावना थी। और सावित्री जैसी नाजुक मिजाज को जेल में टी०बी० हो गया था। परमेश्वर ने दोनों को इन संकटों से बचा लिया। इसमें इन दोनों के साहस के साथ-साथ कमलनयन की हिम्मत, सूझ-बूझ व लगन की काफी परीक्षा हुई।

सावित्री देवी कलकत्ते के प्रसिद्ध पोद्दार घराने की सुपुत्री और कमलनयन की सुस्वभाव एवं सुसंस्कृत पत्नी हैं। बजाज-परिवार के मुकाबले में बहुत धनी तथा पश्चिमी सभ्यता में पले परिवार की होने पर भी उन्होंने अपनेको इस परिवार के गांधी-सांचे में ढ़ालने का काफी यत्न किया। यद्यपि खादी-सिद्धांत को उन्होंने पूरे तौर से स्वीकार नहीं किया है बल्कि

अपनी कला-प्रियता और टीम-टाम का कुछ रंग ही इस परिवार पर चढ़ा दिया है। पर शादी होने के और माता होने के बाद उन्होंने बाल-बच्चों व गृह-प्रबन्ध की ओर पूरा ध्यान देते हुए भी एफ० ए० व बी० ए० की परीक्षाएं ऊँची श्रेणियों में पास कीं। स्वास्थ्य खराब रहते हुए भी सन् १९४२ में जेल-यात्रा की और जेल-जीवन को सुशोभित किया है। आज जमनालालजी के परिवार में—नौकरों-चाकरों तक में —अपने गुणों के कारण इनसे अधिक सर्वप्रिय कोई नही है, ऐसा कहें तो अत्युक्ति नही होगी।

जब यह संबंध हुआ था तब ऊपर-ऊपर सोचने वालों ने इसके बारे में टीका-टिप्पणी भी की, परन्तु जमनालालजी ने बहुत दूरदृष्टि से ही यह संबंध किया था। यह केवल दो परिवारों का ही सबंध नहीं था,दो परस्पर विरोधी विचार-धाराओं का ऐक्य था,जिसमें से समन्वय सधने की पूरी आशा जमनालालजी ने कर रखी थी। जिन्होंने गांधी-सेवा-संघ के उत्सवों में श्री लक्ष्मण-प्रसादजी को मिट्टी की टोकरियाँ ढोते हुए और जमीन पर केवल चटाई बिछाकर सोते हुए देखा है वे इस तरह के संबंध से होने वाले सामाजिक परिवर्तन की बात के साक्षी हो सकते हैं। जमनालालजी का यह प्रयोग कभी-न-कभी उस परिवार के लिए और उनके अनेकानेक संबंधियों के लिए जीवन में उन्नति-प्रेरक सिद्ध हुए बिना नहीं रहेगा। वैचारिक क्रांति तो सावित्री बहन के पीहर में काफी हो ही गई है।

राजनैतिक या राष्ट्रीय क्षेत्र में तो उतना नही, परन्तु व्यापारिक और औद्योगिक क्षेत्र में जिन्होने जमनालालजी का हाथ बटाकर उन्हें देश-सेवा के लिए अधिक स्वतन्त्र और निश्चित किया उनमें श्री केशवदेवजी नेवटिया खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। इन्हें आमतौर पर निकट के लोग 'चाचाजी' कहा करते हैं। ये मूक कार्यकर्ता और सुधारक हैं। इनकी सज्जनता और मिलनसारी सबको मोह लेती है।

श्री गंगाबिशनजी जमनालालजी के रिश्ते में भाई होते हैं और आरंभ से ही उन्होंने वर्धा दुकान का काम संभाल रखा था। श्री लालजी मेहरोत्रा, एक उच्च शिक्षित व्यक्ति हैं, जिन्होंने असहयोग के प्रारंभकाल से लेकर आजतक तरह-तरह से जमनालालजी के कामों को खासकर करांची-शाखा को संभाला था और महज अपनी योग्यता के बल पर व्यापारी समाज में प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त कर सके। श्री आबिदअली जाफरभाई जमनालालजी के नजदीक अपने लड़कों के ही बराबर हैं—वे एक उत्साही लगन वाले व त्यागी देशभक्त के रूप में उनके पास आये,और उनके कुटुम्बी बन गये। आज वे उनके व्यवसायी कामों में भी सहयोग देते हैं और बंबई के मजदूर-संगठन में भी जिम्मेदारी के पद पर हैं। श्री चिरंजीलालजी बड़जाते तो मानो उनके दत्तक पुत्र ही हों। अपने बच्चों की तरह जमनालालजी ने उनको हर उतार-चढ़ाव में संभाला और जमनालालजी के बाद भी बजाज कुटुम्ब के साथ उनकी वफादारी ज्यों-की-त्यों बनी हुई है।

जमनालालजी में पारिवारिकता इतनी ओत-प्रोत रहती थी कि कोई बड़ा आदमी हो या छोटा, अमीर हो या गरीब, नेता हो या कार्यकर्ता, थोड़े ही संपर्क में उनका अपना हो जाता था। अतः उनके रिश्तेदार मित्रकोटि में व मित्र रिश्तेदार की कोटि में आ जाया करते थे। तथा ऐसे ही दूसरे अनेक मित्र, रिश्तेदार, जो प्रत्यक्ष मैदान में नहीं आये, परंतु, पीछे—परदे के पीछे रहकर जिन्होंने उनके व्यक्तित्व का पोषण किया व कार्य को आगे बढ़ाया है और अब भी बढ़ा रहे हैं, छोटे-बड़े अनेक हैं। इस तरह जमनालालजी का परिवार बजाजों तक ही सीमित नहीं था। जिनमें कुछ भी गुण, अच्छाई या सेवाभाव, सच्चाई, बापू के प्रति आकर्षण देखते उसे वे अपना कुटुंबी बनाने का हार्दिक प्रयत्न करते। छोटे-से-छोटे व बड़े-से-बड़े सैकड़ों व्यक्तियों को इस तरह उन्होंने अपना कुटुंबी,

स्वजन, आत्मीय बना लिया था। उनकी नामावलि कहाँ से शुरू करें व कहाँ समाप्त करें यह निर्णय करना बड़ा कठिन है। ठेठ गाँधीजी व जवाहरलालजी से लेकर काशी, नानू व विट्ठल तक यह तालिका पहुँचती है। कई मुसलमान परिवार उनके विशाल परिवार में समा गये थे। बादशाह खान, इमाम साहेब, सोफिया सोमजी, अम्तुस्सलाम, डा० रजब अली, डॉ० अन्सारी, आबिदअली जाफरभाई के परिवारों के नाम सामने आ रहे हैं। मतभेद रखते हुए भी समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण तथा उनकी धर्मपत्नी प्रभावती बहन की गिनती उनके परिवार में होती है। सागर जैसे विशाल इस परिवार का चित्र सामने आता है तो बजाज-परिवार तो दरिया में खस-खस सा मालूम होने लगता है। जमनालालजी के अभाव में बजाज-परिवार से कहीं अधिक यह परिवार अपनी क्षति अनुभव करता है; क्योंकि जमनालालजी जिसको अपना बना लेते थे, उसके सदैव काम आते थे। उनसे लेते तो देश व समाज की सेवा, या उनके गुण व सत्संग का लाभ; परन्तु उन्हें देते वे सब तरह से थे। क्या वर्तमान शासन में, क्या कांग्रेस-संगठन में, क्या रचनात्मक कार्यक्रम में, क्या संस्था-संचालन में, क्या उद्योग-व्यवसाय-संबंधी वर्तमान उलझनों में सब जगह उनकी कमी अखर रही है। सबके मुख से यही सुनाई देता है––अब ऐसा 'कल्पवृक्ष' नहीं रहा।

गाँधीजी के प्रति बजाज-परिवार का मन से समर्पण-भाव है। जब तक बापू जीवित रहे वे इस परिवार के पिता रहे––अब वे कुल-देवता हो गये हैं। विनोबा तो मानो शुरू से ही कुल-गुरु रहे। यद्यपि आज बापू का प्रत्यक्ष कार्य कुछ या तो राधाकृष्णजी के हाथों हो रहा है, या श्रीमन्‌जी के द्वारा, फिर भी मैयाजी, कमलनयन, रामकृष्ण, अनसूया, मदालसा कुछ-न-कुछ करने की चेष्टा करते ही रहते हैं। बापू के प्रति भक्ति सबमें अटूट है। गाँधीजी ने स्वयं इस परिवार के सारे लोगों का जीवन बनाने

में पिता बल्कि माता के वात्सल्य व ममता से काम लिया है। उन्होंने जो पत्र इस परिवार के लोगों को समय-समय पर लिखे हैं उसमें एक सच्चे पालक व अध्यापक की तत्परता के पग-पग पर दर्शन होते हैं। यह इस कुटुम्ब का जितना अहोभाग्य है उतनी ही उनकी जिम्मेदारी को भी बढ़ाता है।

जमनालालजी के कई गुण व संस्कार इस तरह उनके परिवार में बंट गये हैं। उनके वारिस उनका नाम व कीर्ति बढ़ाने की उमंग भी रखते हैं; उनके अधूरे कामों की उन्हें चिन्ता भी है। फिर भी वे कर नहीं पारहे हैं, इसका अफसोस उन्हें रहता है। जमनालालजी अपने कई गुण व शक्ति सब में बांट कर भी ऐसी कुछ चीज अपने साथ ले गये है, जिसकी पूर्ति ये सब मिलकर भी नही कर पाते हैं। यह कमी सब को अनुभव हो रही है। और इसीके कारण वे उन सब के हृदयों मे आज भी बसे हुए हैं। जिनको उन्होंने अपने जीते जी "अपना" कहा था, उन सब पर उनके सच्चे श्राद्ध की जिम्मेवारी है।

जमनालालजी के पुत्र-कलत्र से बापू उनका कैसा श्राद्ध चाहते थे—यह उनके उस उपदेश से प्रकट होता है, जो उन्होंने उनकी मृत्यु के दूसरे ही दिन सारे परिवार को इकट्ठा कर के दिया। इसमें उन्हें जिससे जो आशा थी सो उसे बता दी। जमनालालजी के सब से बड़े पुत्र कमलनयन से उन्होंने कहा—"हिन्दू-धर्म में सब से बड़ा पुत्र दूसरे पुत्रों की तरह अपने पिता की संपत्ति का वारिस तो होता ही है, मगर साथ ही वह कुल-धर्म का, और अपने पिता की नीति और सिद्धांतों का संरक्षक भी बनता है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम व्यापार में लगे हो तो लगे रहो, धन कमाना हो कमाओ; लेकिन जमनालालजी की तरह तुम्हें भी लोकहित के लिए अपनी संपत्ति का संरक्षक बन कर रहना है। तुम अपनी कमाई का रुपया अपने लिए नहीं, लोकसेवा के लिए खर्च करोगे, तभी तुम्हारा ट्रस्टीपन सार्थक हो सकेगा।"

इसके बाद छोटे भाई रामकृष्ण को समझाते हुए कहा—"तुमसे तो मैं यह आशा रखता हूँ कि तुम अपना सारा जीवन सेवा के लिए और जमनालालजी के छोड़े हुए अधूरे कामों को पूरा करने के लिए समर्पित कर दोगे, लेकिन मैं तुम्हें इसके लिए मजबूर नहीं करना चाहता। तुम्हारी हिम्मत हो तो संकल्प करो। यह याद रखो कि जो शुभ संकल्प हम करते हैं उन्हें निभाने की शक्ति भी ईश्वर हमें दे ही देता है और मान लो कि हम सफल नहीं हो पाये तो भी कोई नुकसान नहीं। गीता की भाषा में 'योग-भ्रष्ट' की गति भी शुभ ही होती है।"

फिर उन्होंने जमनालालजी के भतीजे श्री राधाकृष्णजी से कहा—"जानकी देवी के व्रत को तो तुम जानते ही हो। मैं मानता हूँ कि अगर उन्हें एक योग्य सचिव मिल जाय, जैसा महारानी विक्टोरिया को मेलबॉर्न मिल गया था, तो वह अवश्य ही गो-सेवा-संघ के अध्यक्षपद को सुशोभित कर सकेंगी। वह गो-माता की 'पुत्री' हैं अतएव वह अपनी माँ की अच्छी-से-अच्छी सेवा कर सकेंगी। तुम याद रखो कि और सब काम बँट जाने पर जो बाकी रह जायगा, उस सब की जिम्मेदारी तुम्हारे कन्धे पर रहेगी।"

अन्त में जमनालालजी की पुत्रियों से बात करते हुए उन्होंने कहा—"अभी जो बातें मैंने चि० कमलनयन और रामकृष्ण वगैरा से कही हैं वे सब तो तुमने सुनी ही हैं। याद रखो कि तुम्हें भी वही सब करना है। तुमसे भी मैं तुम्हारी शक्ति के अनुसार त्याग की आशा रखूंगा। यह कभी न भूलो कि जमनालालजी की जितनी कमाई थी, सो सभी असल में कृष्णार्पण थी। अगर उसका कुछ हिस्सा तुम्हें मिला है, तो वह भी ट्रस्टीशिप की शर्त के साथ ही मिला समझो। वह तुम्हारे भोग-विलास के लिए नहीं, बल्कि इसलिए है कि जमनालालजी की तरह तुम भी उसके ट्रस्टी बन कर रहो।"

जमनालालजी के चलाये नागपुर बैंक के टूटने की अफवाह सुनकर गांधीजी ने श्री कमलनयन को बड़ा मर्मस्पर्शी और उद्‌बोधक पत्र लिखा था—

"जमनालालजी ने परोपकार के लिए नागपुर बैंक खोला है। कल्पना यह थी कि गरीबों के लिए यह 'सेविंग बैंक' हो सके और वह वैसा ही होना भी चाहिए। तुम जमनालालजी के वारिस हो। इसका सच्चा अर्थ तो यह कि आज तुम इस शाखा के वारिस हो, यह समझ कर ही मैंने जलियाँवाला ट्रस्ट को सलाह दी है कि अपने रुपये वहाँ रक्खें।

"जमनालालजी का वारिस होना ऐसी-वैसी बात नहीं है। तुम उनके पुत्र के रूप में वारिस हो तो मैं उनके दत्तक बाप के रूप में हूँ। मेरा स्वार्थ केवल इतना ही नहीं कि उनका नाम अखण्डित रहे, उनके अंगीकृत कार्य चलते रहें, बल्कि यह कि अधिक सुशोभित हों; तभी तुम और मैं सच्चे वारिस समझे जायँगे। तुम बहुत धन कमा लोगे, बड़े सेठ कहलाओगे, यह तो हो सकता है; परन्तु उनके उत्तर जीवन के पारमार्थिक काम का क्या? उत्तर जीवन में खोले बैंक का क्या? गरीब गाय का क्या? खादी का क्या? ग्रामोद्योग का क्या? उनकी इच्छा से ही मैं वर्धा में बसा हूं? सरदार का मीठा क्रोध मोल लेकर। वे मुझे दस बगीचे बिना मिहनत के एक साथ दिला सकते थे—परन्तु जमनालालजी नहीं दिला सकते थे। इसलिए मैंने दस बगीचों को छोड़ा। परन्तु अब तो मैं जमनालालजी को खो बैठा हूँ—ऐसा आभास तक भी अपने मन में नहीं होने देना चाहता। इसकी कुंजी तुम्हारे हाथ में, राधाकृष्ण के हाथ में और जानकी देवी के हाथ में है। परन्तु वारिस के रूप में गद्दीनशीन के तौर पर तो मुझे तुम्हारे सामने ही देखना पड़ता है। तुम विलायत हो आये हो, व्यापारी के रूप में भी थोड़ा-बहुत नाम कमाया है। आत्म-विश्वास तो तुम्हें जरूरत से ज्यादा है। इसलिए कहता हूँ कि तुम बाप का नाम परोपकारी के रूप में उज्ज्वल करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना।" (२२-११-४५)

जो जो अपन को जमनालालजी क श्राद्ध क अधिकारी मानत है उनका स्मारक बनान के लिए उत्सुक थ व सब बापू के इन हार्दिक उद्गारो के प्रकाश म दख कि हम कहा ह ? इस सिलसिल म खुद कमलनयन क य उदगार कितन आश्वासनदायी ह—

मुझ तो पूरा विश्वास है कि उनक सार काम उसी तरह से चलत रहग जिस तरह कि व—जमनालालजी—करत आय। उनकी गैरहाजिरी से कई लोगो म जीवन आ गया है। एस कई लोग मर दखन म आय ह कि जिनस पहल आशा नही थी व कम प्रवण होत दिखाई दत ह। उन्होन जीत जी तो भरसक काम किय ही लकिन दह छोडन पर भी उन कामो को करत जा रह ह।

दो चार वष बाद जब छोटा भाई कारबार सँभाल लगा मै भी पिताजी क सवा माग का ही पथिक बनूगा।

: ३ :

सत्पिता

एक पिता के रूप में जमनालालजी को देखने का अवसर उन सभी लोगों को मिला है, जो उनके थोड़े-बहुत संपर्क में आये हैं और जिन्हें वर्धा आने का मौका मिलता था। जमनालालजी का घर और बंगला एक धर्मशाला थी। वे जहाँ कहीं भी रहते, इतनी कम जगह रहती थी और अतिथियों का ऐसा तांता लगा रहता था कि उनके घरवालों को भी बहुत कम जगह में काम चलाना पड़ता था और कई दफे उनको जगह मिलना भी मुश्किल हो जाता था। खुद जमनालालजी को भी अपना निजी कमरा कई बार अतिथियों को देकर खुद सार्वजनिक कमरे में रहना पड़ता था इसलिए हर एक को उनका जीवन बहुत खुले रूप में देखने का मौका मिलता था और वे सहज ही उनको पिता-रूप में दिखाई पड़ जाते थे।

जमनालालजी एक आदर्श-प्रिय पिता थे। वे जिस बात को अपने लिए सही और अच्छा समझते थे, वही अपने बच्चों, परिवारवालों और इष्ट-मित्रों को समझाने और सिखाने का प्रयत्न करते थे। अपने आपको तो उन्होंने गांधीजी के सुपुर्द कर दिया था। गांधीजी के सिद्धांत, आदर्श और कार्य-नीति उनको हृदय से भाती थी। इसलिए उन्होंने अपने और अपनी पालकता में रहनेवाले सब बच्चों को ऐसी शिक्षा देने का प्रयत्न किया। विनोबाजी-जैसे आदर्श शिक्षक मिल जाने से उन्होंने यह भी कोशिश की कि उनके पास रहकर उनके बच्चे अच्छी शिक्षा, अच्छे संस्कार और अच्छा जीवन प्राप्त करें। एक पिता की पहली जिम्मेदारी अपने बच्चों

के प्रति यही हो सकती है कि वे उनकी शिक्षा-दीक्षा और चरित्र-निर्माण का सच्चा प्रयत्न करें।

जमनालालजी स्वयं एक धनी-मानी व्यक्ति के पुत्र और वारिस हुए थे। लेकिन उन्होंने अपने को एक फकीर का पांचवा पुत्र मानने या बनने में गौरव अनुभव किया था। उनकी प्रवृत्ति जीवन में धन को महत्व देने की नहीं, बल्कि धन के सदुपयोग करने की थी। इसलिए उन्होंने यद्यपि अपना कारोबार थोड़ा-बहुत जारी रखा, वे यह भी जरूर सोचते थे कि कारोबार को चलाने की योग्यता किसी-न-किसी पुत्र में आ जाय, परन्तु, इसके लिए उन्होंने अपने पुत्रों को ऐसी शिक्षा-दीक्षा नहीं दी कि वे अनिवार्य-रूप से बहुत बड़े उद्योगपति या व्यवसायपति बनें। अपने मृत्यु-पत्रों में उन्होने इस बारे में स्पष्ट उल्लेख किया है।

पुराने संस्कारों के और पुराण-पंथी माता-पिता के यहाँ जन्म लेकर ओर ऐसे ही परिवार की गोद में आकर भी जमनालालजी बड़े आधुनिक विचारों के पुरुष थे। अपनी पत्नी के साथ ही नहीं, बल्कि बच्चों और परिवार वालों के साथ भी वे समान-व्यवहार करने का ध्यान रखते थे। अपने बच्चों को उन्होंने अपने आप ही इतनी स्वतन्त्रता दे रखी थी कि कभी कभी हम लोग इसके 'अति' की तरफ उनका ध्यान दिलाया करते थे। उत्तर-प्रत्युत्तर और हँसी-विनोद के समय कभी-कभी कमलनयन और उमा को लोक-व्यवहार की सीमा से परे जाते हुए देखा तो मैंने जमनालालजी को उलहना भी दिया। और वे समझ भी लेते थे। परन्तु वे इसको मानकर भी हँस देते थे और यह कहते थे कि समय आने पर अपने-आप ठीक हो जायंगे। यदि भाव में निर्दोषता है, सरलता है, तो व्यवहार अपने आप ठीक होकर रहेगा। ऐसे विनोदों में कमलनयन और उमा का नम्बर बढ़ा-चढ़ा रहता था।

एक बार जमनालालजी जल्दी में भूलकर कमल को पत्र के अन्त में

'जमनालाल का बन्देमातरम्' लिख गए। इस पर कमलनयन उनकी चुटकी लेते हैं—

वर्धा, ८-२-३७

पू० पिताजी,

प्रणाम।

आप शायद आदत से लाचार हैं। आप सभी चिट्ठियों पर जिस प्रकार सही कर दिया करते हैं उसी प्रकार मेरी चिट्ठी पर भी सही कर दी है। आपके 'बन्देमातरम्' स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नही हूँ। आपके प्रेम और आशीर्वाद के लिए जो मेरा हक है वह मैं कभी नहीं छोड़ने वाला। आप अपने लड़के को भूल सकते हैं और उसे बन्देमातरम् भी लिख सकते हैं लेकिन शायद वह मेरा दुर्भाग्य ही हो कि मैं अपने पिताजी को नहीं भूल सकता। Type से पत्र लिखाने पर ऐसी गलतियाँ हो तो कोई ताज्जुब नहीं। आपका पत्र वापिस लौटाने की धृष्टता के लिए क्षमा करें। अपने सेक्रेटरी साहब से कहें कि कुमारी और मिस साथ-साथ नहीं लिखा जाता। (इसी पत्र में 'कु० मिस हरिसन लिखा गया था।)

बच्चों के साथ वे कभी-कभी खेल भी लिया करते थे। ब्रिज और शतरंज उनके प्रिय खेल थे। यात्राओं में, समुद्र-स्नान में, रेती के मैदान में, पहाड़ों पर अक्सर खेलने का उन्हें शौक था। बुद्धि बढ़ानेवाले कुछ खेल भी बच्चों तथा परिवारवालों से खेला करते थे।

जमनालालजी देश के बड़े नेता थे। अनेक और विविध प्रकार की संस्थाओं के सभापति, संचालक आदि और अनेक प्रवृत्तियों के प्रेरक और कर्ता थे। इसलिए उनको वैसे अपने बाल-बच्चों से बातचीत करने को भी फुर्सत बहुत कम मिला करती थी। परन्तु फिर भी एक पिता के कर्तव्य को वे कभी नहीं भूलते थे। उनकी शिक्षा, उनकी योग्यता और उनके चरित्र-निर्माण की चिन्ता उन्हें सदैव रहती थी। वे हमेशा अपने बच्चों में से

किसी-न-किसी को यात्राओं में अपने साथ रखते थे और जहाँ कहीं भी जाते, जो भी कुछ देखते , जो भी किताब पढ़ते, जो भी अच्छे व्यक्ति मिल जाते, उनके बारे में सदैव मैयाजी, कमल, सावित्री, मदालसा, किसी-न-किसी को सुविधानुसार छोटा-या-बड़ा पत्र अवश्य लिखते और उनको उन्हें मिले अच्छे विचार और अच्छे जीवन की प्रेरणा देते। यह काम बहुत कम पिता करते हैं, यद्यपि उन्हें ऐसा करने के लिए समय और साधन जमनालालजी की अपेक्षा कई गुना अधिक है। यहां हम कुछ ऐसे पत्र देते हैं जिससे उनके पिता-कर्तव्य-पालन पर प्रकाश पड़ता है।

"चि० मदालसा,

बंगाल में कई आदर्श, व्यक्ति हो गये हैं और अब भी हैं। श्री कृष्णदासजी को समय मिलता हो तब उनसे नहीं तो औरों से उनका, जैसे श्री रामकृष्ण परमहंस, गौरांग महाप्रभु, स्वामी विवेकानन्द आदि के जीवन-चरित्र पढ़ना। समय मिले तो पूज्य आचार्य पी० सी० राय, सर बोस आदि के दर्शन कर लेना। यह भी एक बड़ी भारी पढ़ाई है। तुम पूज्य मोतीलालजी से मिल आई थी यह ठीक किया था। तुम लोगों के बारे में इस समय मेरी क्या इच्छा है यह तो तुम्हारे नाम पर से ही तुम्हें मालूम हो सकती है।"

"चि० मदु, १९–१–४१

मीरा बहन की तपश्चर्या, सेवा, त्याग की याद आया करती है।

यहां एक. . . .है इसका प्रेम व सेवा सब घरके इतनी ज्यादा करते हैं कि सचमुच आश्चर्य होता है। तुम्हारे माँ व बाप इतना प्रेम व सेवा पूज्य बापू या विनोबा या अन्य गुरुजनों की या बालकों की कर सकें तो कितना अच्छा हो।"

चि० कमला,

"तुम आश्रमवासी बनने से डरती हो तो कम-से-कम योग्य व उपयोगी जीवन बिताने लायक तो तुमको बनना ही होगा। श्री चन्द्रशेखर शास्त्री जी ने 'स्त्री के पत्र' नामकी पुस्तक मुझे बताई थी। वह मैंने रेल में पढ़ी। पुस्तक अच्छी है, तुमको भेज रहा हूँ। तुम इसे भली प्रकार पढ़ो व अपनी माता को भी पढ़ा दो। इस पुस्तक में जिस प्रकार शशिप्रभा व उसकी भाभी भुवन मोहिनी का चित्र खीचा है, वैसा तुम चाहो तो तुम व तुम्हारी माता दोनों बन सकती हो। अगर मन का निश्चय कर लो तो उससे ही तुम दोनों को खूब सुख मिलेगा व हम लोगों को भी पूरा सुख-समाधान व सतोष रहेगा। किताब पूरी तरह से पढ़कर तुम दोनों की राय लिखना।"

जमनालाल का आशीर्वाद

वर्धा २४-१-३८

चि० कमल,

".बापूजी का स्वास्थ्य पहले से ठीक है। लॉर्ड लोथियन यहा तीन रोज रह गये। सेगांव में अपनी झोपड़ी में रहे थे। अपने घर वर्धा में भोजन करने व बातचीत करने आये थे। वहा की सब संस्था भी देखी। आदमी सज्जन व ऊँचे हृदय के मालूम हुए। वे १२५ पौड यहां सहायता भी दे गये है। उन्होंने कहा कि वह आज तक दारू नहीं पीते, सिगरेट नहीं पीते। सेगांव में तो दूध ही पीते थे। याने चाय भी यहा नहीं पीते थे। तुम उनसे मौका लगे तो मिल लेना। मैंने तुम्हारे बारे में कह दिया है। उन्होंने कहा है कि में तुम्हें मिलने के लिए लिख दूं।

"मि० अेन्ड्रुज कहते थे कि तुम्हारे प्रिंसिपल ने उन्हें लिखा है कि तुम्हारी नियमित अभ्यास करने की आदत नहीं रही है। इससे अभ्यास बराबर नहीं होता है। अभ्यास के बारे में तो क्या लिखूं। तुम्हारे में जो

आलस्य भरा हुआ है वह किसी तरह से निकल जाय व जवाबदारी का भान हो जाय तो भावी जीवन उन्नत बन सकेगा; अन्यथा चाहे जितना खर्च पैसे का व समय का करो कोई खास परिणाम तो आनेवाला है नहीं। कम-से-कम तुम अच्छे स्पोर्टस्मेन (खेलनेवाले) भी हो जाओगे तो स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा। अगर तुम अपना हिसाब पाई-पाई का व नियमित डायरी रखने लग जाओगे तो मुझे थोड़ा संतोष जरूर होगा। तुम्हारी माँ का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है, साधारण रहता है।"

१८-६-३८

"चि० कमल,

"....व्यायाम व मन में दृढ़ संकल्प (लगन) व खान-पान में हलका भोजन व थोडा कम आहार रखने से शायद उत्साह और स्फूर्ति ज्यादा मालूम दे सकेगी। तुम खुद ही विचार करते हो तब मुझे चिन्ता करने का कारण नहीं रह जाता है। जब समय मिले तो तुम्हें बौद्ध-धर्म का ठीक परिचय कर लेना चाहिए। मुझे तो बुद्ध के जीवन से बहुत लाभ पहुँचा है। और भी पहुंचना सम्भव है। यहां ठीक आराम शांति मिल रही है।"

जमनालालजी बच्चों को विनोद में ही अहिंसक ढंग से किस प्रकार अच्छे और उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न करते थे यह उनके कमलनयन को लिखे इस पत्र से प्रकट होता है।

"चि० रामेश्वरप्रसाद का छोटा भाई जिसकी उमर करीब १०-११ की है, उससे आज विनोद में बातें हो रही थी। उससे पूछा तो उसका कहना पड़ा याने उसने इस प्रकार बुद्धिमत्ता में नंबर दिये हैं—

उसके घर के	हमारे घर के
१ श्रीकृष्ण	१ मदालसा
२ शंकरदेई	२ रामकृष्ण

३ बालकृष्ण ३ कमला
४ रामेश्वरप्रसाद ४ उमा
५ कमलनयन

"उसे पूछा गया कि कमलनयन का नंबर आखीरी क्यों तो उसने कहा—'उसमें सभ्यता बिलकुल नहीं और पढ़ाई भी बहुत कम है।' छोटे-छोटे बालक भी किस प्रकार राय बनाते हैं—यह जानने को तुम्हें लिखा है। तुम दोनो अपनी-अपनी राय कुटुम्ब के तीनों बालकों के बारे में नंबरवार लिख भेजना।"

जब कोई परिवार का, इष्ट-मित्रों का या निजी व्यक्ति दुःख या विपत्ति में आ गया हो, बीमार पड़ गया हो तो जमनालालजी सदैव बिना कहे, बिना बुलाये, बिना चाहे उसकी चिंता, उसकी बीमारी और दुख दूर करने की व्यवस्था उत्साह के साथ करते थे। बापूजी की यह वृत्ति और यह गुण उनमें ओत-प्रोत था। खुद अपने शरीर, अपने दुख अपनी विपत्ति और अपनी बीमारी की चिंता इतनी नहीं रखते थे जितनी अपने बच्चों की या वैसी ही दूसरों की। वे बीमारी, दुख और कष्टों से घबरानेवाले और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर बैठ जाने वाले पिता नहीं थे, बल्कि शांत और प्रसन्न रहकर दूसरों को प्रसन्न रखने, साहस दिलाने, उपाय करने और उपाय बताने वाले पिता थे।

उनके अपने बच्चे, उनकी पत्नी, बहनें यही उनका परिवार नहीं रहा। रिश्तेदार, कई इष्ट-मित्र, और सार्वजनिक कार्यकर्ता, घर के नौकर-चाकर और पालतू पशु तक को वे अपने परिवार में गिनते थे और उनके दुख-सुख की वैसी ही चिंता रखते थे जैसे अपने बच्चों की; बल्कि यों कहना चाहिए कि उनसे भी अधिक रखते थे। नौकर-चाकरों के लिए तो अक्सर जानकी मैयाजी से तथा बगले और दुकान के लोगों से झगड़ा तक हो जाया करता था और नौकरों के साथ दुर्व्यवहार करने पर उनको जमनालालजी की डांट-

फटकार सुननी पड़ती थी। इससे कई बार तो नौकर सिरजोर हो जाते थे। परन्तु इस भय और परिणाम से किसी प्रकार से जमनालालजी ने उनके प्रति अपने पिता-धर्म में कमी नही आने दी। अपने ही नहीं, अपने चचेरे भाइयों, बहनों आदि रिश्तेदारों की शिक्षा-दीक्षा का भी वे अपने बच्चों से ज्यादा खयाल रखते थे, जो कभी कभी गृह-कलह का कारण भी बन जाया करता था। जैसे वे बापू के प्रति अपने पुत्र-धर्म को पालते थे और बापू को अपने पिता-धर्म का पालन करते देखते थे, उसी तरह वे अपने पिता-धर्म को सच्चाई से पालने का पूरा प्रयत्न करते थे।

पिता या पालक के अपने धर्म या कर्त्तव्य के विषय में वे कितने जागरूक रहते थे और नीति-धर्म का कितना खयाल रखते थे, इसके उदाहरण में नीचे लिखा पत्र देखिए, जो उन्होंने वर्धा से २-५-३७ को एक निकटवर्ती सज्जन को लिखा था—

"चि०....... के पत्र व बातचीत से मालूम होता है कि इसकी सगाई जहाँ आपने की है वह इसे पसन्द नहीं है। यह कहता है कि इसने लड़की को हाल ही में देखा है। लड़की इसे पसन्द नहीं है। यह दूसरा संबंध करना चाहता है। मैंने इसे कहा है कि तुम्हारा धर्म है कि तुम अपने माता-पिता को तुम्हार मन का हाल सच्चाई व साफतौर से कह दो। व लड़की के घरवालों को भी झूठी शर्म से न कह कर विवाह करने के बाद लड़की से प्रेमपूर्वक व्यवहार न रखोगे तो बड़ा अधर्म करोगे। उससे तो तुम्हे फिर जीवन भर ईमानदारी के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार रखना ही होगा। जहाँ तक मैं इसका हृदयसमझ पाया हूँ, इसकी यह तैयारी नहीं है। मेरा आपका बहुत पुराना प्रेम का सम्बन्ध है। मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहना चाहता हूँ कि वर्तमान दशा में संकोच व शर्म में डाल कर आप यह विवाह करा देंगे तो बाद में ये लोग भी सुखी नहीं होंगे और आप को भी दुःख उठाना पड़ेगा। आज अपने समाज के तीन उदाहरण मेरे सामने मौजूद हैं। मैं समझता

सकता हूँ कि सगाई छोड़ने में लड़की वाले को व आपको दुःख जरूर पहुँचेगा। पर जब देखते हैं कि हमारे शर्म, प्रतिष्ठा या दुःख के डर के मारे, एक निरपराध लड़की को जो नहीं चाहता है उसके साथ विवाह करा के, उसे आजन्म दुखी करना तो हमारे लिए अधर्म होगा। अतः मेरी तो साफ राय है कि आप यह पत्र पहुँचते ही लड़की वाले को सूचना कर दें। मैंने भी इसकी एक नकल लड़की वाले के पास भिजवाई है। ज्यादा क्या लिखूं? आप प्रेमपूर्वक. . . . का हृदय समझ लें व उचित न्यायपूर्वक मार्ग निकालें।"

प्रायः पिता अपने विचारों, विश्वासों और रुचियों को बच्चों पर लादने का प्रयत्न करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि बच्चों के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास नहीं हो पाता। दूसरा परिणाम यह भी होता है कि कभी-कभी बच्चे दृढ़ता से अपने ही रास्ते पर चल पड़ते हैं और माता-पिता का कहना नहीं मानते। ऐसी स्थिति में पिता क्रोध से पागल होकर मारने-पीटने लग जाते हैं, जिससे स्थिति सुधरने के बजाय उल्टे बिगड़ने लगती है। जमनालालजी ने अपने बच्चों पर कभी कोई चीज लादने का प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने हमेशा उनके विकास के लिए अनुकूल क्षेत्र व वातावरण उपलब्ध करा देने का प्रयत्न किया और जिन बातों को सही और अच्छा समझते थे उन्हें करने के लिए प्रेरणा देते रहे। जो बात वे पसन्द नहीं करते थे उन्हें दूर करने के लिए उन्होंने अहिंसक मार्ग ही अपनाया। बच्चों के आलस्य को दूर करने के लिए उन्होंने स्वयं अपना आलस्य दूर किया। इसी तरह उनके विवाह जैसे मामले में भी उन्हें काफी स्वतन्त्रता से सोचने और निर्णय करनेका मौका दिया। इस संबंध में हम उनके कुछ पत्र यहां दे रहे हैं।

१४–१२–३१

"चि० कमल,

. . . साहस तो अच्छी चीज है, यह मैं भी जानता हूँ। पर बिना काम

दुःसाहस करना बुरा है। तुम में आलस्य है, वह बुरा है, इसका तुमको भी खयाल है, तुम उसको हटाने का प्रयत्न करते हो यह अच्छा है। पर मुझे अब इसके लिए तुम्हें कुछ कहने की इच्छा नहीं होती। मैंने इसका उपाय सोच लिया है और शुरू भी कर दिया है। मुझे अपना आलस्य दूर करना चाहिए यही उसका उपाय है, मैंने उसके लिए कोशिश भी शुरू कर दी है।

चि० कमल, १०-९-३५

मेरा कानपुर से भेजा हुआ पत्र मिला होगा। तुमने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा। तुम्हारी जो राय हो वह मुझे साफ तौर से लिख भेजना। मेरे मन में तो यही जंच रही है कि अगर चि०....प्रसन्नता पूर्वक तुमसे संबंध करने तैयार हो तो तुम तो यही सम्बन्ध ज्यादा पसन्द करते होगे। अगर मेरी यह समझ बराबर न हो तो तुम्हें साफ कह देना चाहिए। क्योंकि अब मैं यह प्रश्न अपनी रीति से तय करना चाहता हूँ। अगर किसी कारण से तुम्हारा मोह या प्रेम न रहा हो तो साफ लिख भेजना। वैसे तो हाल में निश्चय यही हुआ है कि चि०...की इच्छा तुमसे संबंध रखने की रही और तुम्हारी भी, तो दिसबर में संबंध पक्का हो जायगा; वहां तक देखना चाहें तो दोनों ही दूसरे संबंध देखभाल सकते हैं। मुझे तो लगता है कि बहुत संभव है, कुछ देख-भाल के बाद वह यह संबंध पसन्द करे। यदि तुम्हें इस संबंध से संतोष है तो मुझे रहेगा ही; परन्तु मेरे मन में दो प्रश्न उठते हैं—एक तो चि०...बहुत मजबूत (स्वास्थ्य में) नहीं है, दूसरे उस पर पश्चिमी ढंग के वातावरण का अधिक असर हुआ है। शायद हम लोग जैसा चाहते हैं उस प्रकार, धार्मिक कहो चाहे नैतिक, सिद्धांतों पर उसका विश्वास दृढ़ नहीं दिखाई देता। अगर उसमें सत्य का आग्रह होता तो इतनी कमजोरी सामने नहीं आती। खैर यह तो संगत पर आधार रखता है। तुममें पूरा आत्म-विश्वास हो कि इस नाजुक व उड़नेवाली लड़की से

संबंध हो जाने पर तुम भी दृढ़ रह सकोगे और उसे भी अपने मार्ग पर लाकर सुखी बना सकोगे तो मुझे फिर कोई चिंता नहीं रहती। मैंने तो जैसा उसे भुवाली में वचन दिया है वैसा अपनी लड़की के माफिक ही प्रेम से उसकी उन्नति चाहता रहूँगा।"

यह सगाई आखिर जमी नहीं।

जमनालालजी एक जागरूक पिता थे। बच्चों का सही मार्गदर्शन करने और उन्हें सच्चरित्र बनाने के लिए वे सदैव सचेष्ट रहते थे। इस संबंध में उन्होंने अपने जो विचार एक लेख में लिखे हैं उससे उनकी इस जागरूकता का परिचय मिलता है —

"लड़कियों के बारे में मेरा यह विश्वास हो गया है कि माता-पिता अपने लड़कों से उन्हें निर्भय कर उनकी मनोदशा, संगति आदि जान लेने का हमेशा प्रयत्न करते रहें और उनमें डर या जो मिथ्या संकोच है उसे निकाल कर वे अपनेको बलवान अनुभव करें ऐसी स्थिति बना दें जिससे वे लुच्चे-लफंगों के दाँव-पेच को समझ सकें। यह बात भी उन्हें उदाहरण देकर समझा दें। लेकिन ऐसे उदाहरण देते समय काफी सावधानी से काम लेना चाहिए। याने उसका बुरा परिणाम न हो। उदाहरण में भी असत्यता तथा दूसरों के प्रति अन्याय न होने पावे। मुख्य वस्तु जो मां-बाप कर सकते हैं वह यह कि अपने घर का वातावरण शुद्ध बनावें। बालकों को उत्तम संगति प्राप्त हो इसका प्रधान ख्याल रखें व कभी भी बालक पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष असर पड़े इस प्रकार का विनोद, स्पर्श आदि अपनी पत्नी से न करें।

"जब से मैंने बोर्डिंग (विद्यार्थी गृह) चलाना शुरू किया और उसमें कई लड़कों की खराब आदत का पता लगा तो मुझे मालूम हुआ कि उनके घर में माता-पिता के व्यवहार से इस प्रकार की बातों की जानकारी की उनमें इच्छा हुई। बड़े शहरों में सिनेमा नाटकों और खासकर सिनेमा से

ही मन चंचल होता है और उसका बुरा परिणाम होता है। बंबई में संध्या के बाद युरोपियन, हिन्दुस्तानी व पारसी जिस बीभत्सता के साथ अपनी या अन्य स्त्रियों के साथ व्यवहार करते हैं वे भी चंचलता व बुरे विचार मन में लाते हैं। दुःख की बात है कि कई जगह तो मन्दिरों पर भी अश्लील चित्र व मूर्तियां देखी जाती हैं जैसे कि जगदीश के मन्दिर पर हैं। जगदीश के राजा के मन्त्री से भी मैंने कहा व महात्माजी ने भी इसके बारे में लिखा व कहा सुनी की पर वहां के पण्डे लोग भद्दे चित्रों को हटाने नहीं देते।

"सच्ची और अच्छी बात जो युवक-युवतियों के लिए हो सकती है, वह यह कि बड़ी उमरवालों को सदैव उद्योग-पूर्ण परिश्रम व काम में मशगूल रहना चाहिए, जिससे मन को भटकने या दूसरा विचार करने का मौका ही न मिले। सबसे रामबाण इलाज यही मालूम होता है।"

बच्चों को प्रोत्साहन देने और उनकी प्रगति की पूरी जानकारी प्राप्त करने का वे हमेशा प्रयत्न करते रहते थे। उनकी आदत थी कि अपने कामों के सिल-सिले में वे बच्चों तक की राय लेते थे। करते वही थे जो उन्हें ठीक लगता था लेकिन पूछ सबसे लेते थे। इससे बच्चे लोगों का तो उत्साह बढ़ता था और उन्हें यह लाभ होता था कि छोटे-छोटे बच्चों तक के विचारों की जानकारी मिल जाती थी। बच्चे उनके साथ बड़ी आजादी से बातचीत करते थे—यहां तक कि उनसे हँसी मजाक भी कर लिया करते थे और वे उसमें रस भी लिया करते थे। बच्चों के साथ इतने घुल-मिल जाने के बाद भी वे हमेशा बड़े सतर्क रहते थे। कभी-कभी बच्चे या परिवार के लोग कांग्रेस कार्य-समिति में जो चर्चाएँ होती थीं उनकी जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करते, लेकिन वे इस संबंध में एक भी बात मुँह से नहीं निकालते थे।

जीवन के अंतिम वर्षों में तो वे जनसेवा के कार्यों में इतने तल्लीन हो गये थे कि घरवालों से उनका करीब-करीब संबंध टूट ही गया था। वैसे

वे सबका खयाल रखते थे। दूर के रिश्तेदारों से पत्र-व्यवहार करते थे, लेकिन निकट के रिश्तेदारों और आत्मीयों पर अधिकाधिक कम ध्यान देने लगे थे। घरवालों को हमेशा उनसे यह शिकायत रहती थी कि बाहर के लोग छोटी-छोटी बात के लिए उनका समय ले लेते हैं लेकिन घर के बच्चों को उनसे बात करना का भी मौका नहीं मिलता है। कभी आवश्यकता पड़ने पर तो बच्चों को भी बातचीत करने के लिए पहले से समय तय करना पड़ता था। परिवार वालों की यह शिकायत यह बताती है कि उनका 'स्व' कितना विशाल होता जा रहा था

उनके घर अतिथियों का जमघट रहा करता था। कभी-कभी तो अतिथि इतने ज्यादा बढ़ जाते थे कि बच्चों को भी अपने कमरे खाली कर देने पड़ते थे और उनके पढने-लिखने के लिए भी स्थान नहीं रहता। बच्चों को कभी-कभी यह अच्छा नहीं लगता था; लेकिन अब वे स्वयं कहते हैं कि जब वे कहीं बाहर जाते हैं तब देश के सभी श्रेणी के छोटे-बड़े कार्यकर्ता उनसे मिलते हैं और जमनालालजी के बारे में बड़ी आत्मीयता की बातें कहते हैं। जमनालालजी के बच्चे होने के नाते उन पर भी अपना प्रेम बरसाते हैं। उनकी ये सब बातें देखकर उनका हृदय गद्गद् हो जाता है। वे आश्चर्य करते हैं कि जमनालालजी देश के कोने-कोने के कार्यकर्ताओं से इतना निकट सम्बन्ध जोड़कर उनके लिए स्नेह की कितनी बड़ी विरासत छोड़ गये हैं। आज भी उन्हें कितना स्नेह और कितनी आत्मीयता मिल रही है।

अपने बच्चों को सुशिक्षित और सच्चरित्र बनाने का खयाल उन्हें हमेशा रहता था। वे जब कभी बाहर जाते तब बच्चों को पत्र लिखकर इस प्रकार की प्रेरणा किया करते थे। इस संबंध में यहां उनके कुछ पत्र दिये जा रहे हैं—

"चि० मदालसा, ११–४–३९

तुमने भी 'सुख आणि शान्ति' पढ़ना शुरू किया सो ठीक किया.

तुमने पूरी कर दी होगी। तुम्हें जो प्रसंग ठीक मालूम हुए वह नोट कर रखे क्या? मैंने यह पुस्तक अन्दाज से बीस वर्ष पहले भी पढ़ी थी, फिर दुबारा पढ़कर सुख मिला। तुम किशोरलाल भाई की 'विदाय वेलाये' व 'तिमिरमां प्रभा' (ये दोनों पुस्तकें गुजराती में अंग्रेजी से अनुवाद की हुई हैं) समय मिले तब पढ़ना। मुझे बहुत पसन्द आई है।"

वर्धा १७-७-३७

"चि० मदालसा,

मेरी राय में तो गहने न पहनने का आग्रह करने का तुम्हें पूरा अधिकार और न पहनने का ही आग्रह तुम्हें रखना चाहिए। तुम प्रेमपूर्वक उन्हें समझा सकोगी।

१-८-२१

"चि० कमल,

तुम्हारा लिखा हुआ पत्र मेरे नाम व निकला तुम्हारी माता के नाम का। लिफाफा तुम्हें देखने को भेजा है। आशा है, अब भविष्य में कम से कम ऐसी गलती तो नहीं करोगे। तुम्हारे अक्षर मुझसे भी खराब हैं। पत्र शुद्ध लिखना नहीं आता। भविष्य में पत्र लिखा करो तो श्री धोत्रे या अन्य हिन्दी अध्यापकों से बराबर शुद्ध कराके सुन्दर अक्षर में लिखने का अभ्यास रखोगे तो उत्तम पत्र लिखने की आदत पड़ जावेगी। और वह तुम्हारे लिए जरूरी है।"

ऐसे सत्पिता को पाकर कौन अपने को धन्य न मानेगा? एक राष्ट्र-पिता का पुत्र सत्पिता ही हो सकता है।

ये दोनों पुस्तकें हिन्दी में 'मंडल' से 'अंधेरे में उजाला' और 'जीवन संदेश' के नाम से प्रकाशित हुई हैं।

: ४ :

सत्याग्रही

"सत्यान्नास्ति परो धर्मः
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सत्यमेव जयते नाऽनृतम्"

"मेरे इस भारत देश मे खासकर मेरे कुटुम्ब में सच्चे सत्याग्रही जितने ज्यादा हो सकेंगे उतने बनाने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।"

—जमनालालजी

(मृत्यु-पत्र, कार्तिक शु० ११-१९८९ वि०)

मनुष्य-मात्र की यह स्वाभाविक जिज्ञासा है कि जगत् क्या और जगत् मे सत्य क्या है। जानने के बाद उसका आग्रह रखने से सत्य की उपलब्धि होती है। गाधीजी ने जो 'सत्याग्रह' शब्द प्रचलित किया है उसके दो अर्थ होते है—एक सत्य की खोज, सत्य का ज्ञान और दूसरे असत्य का मुकाबला। पहले मे सत्याग्रही एक शोधक व जिज्ञासु होता है, दूसरे मे साधक या सैनिक। पहले का स्वरूप दार्शनिक व दूसरे का लडायक। पहला साध्य व दूसरा साधन-कोटि म आता है। बापू ने सदा इस बात पर जोर दिया है कि सत्य की सिद्धि सत्य के ही द्वारा करो। यही साधन-शुद्धि का रहस्य है। जमनालालजी दोनो अर्थ मे सत्याग्रही थे। यह ठीक है कि सत्य का उनका ज्ञान पूर्ण नही था—परन्तु, सत्य की जिज्ञासा उनमें खूब थी और आग्रह भी उतना ही तीव्र था। जीवन के प्रत्येक पहलू मे वे सत्य ही का आग्रह रखते थे।

अपने सबसे छोटे पुत्र रामकृष्ण को वे ९-९-३५ के पत्र मे उपदेश देते

है— मेरी तो यह समझ है कि जो बालक सत्य का आग्रह रखता है यानि हर हमेशा सत्य बोलता है उसे किसीका डर नही लगता। डर तो झूठ बोलनवाले को लगना चाहिए। तुम्हारा बैर है ही नही तुम तो उसे भी कह सकते हो और उसकी गलती हो और वह नही मान तो फिर तुम्हारे हित चितको को अवश्य कह सकते हो।

बापूजी कहते है सत्याग्रही वही हो सकता है जो विनयशील हो। सत्याग्रह के पहले सविनय विशेषण वे हमेशा लगाया करते थ। अपनी योग्यता की प्रशसा से लज्जित सकुचित होना विनय का लक्षण है। एक बार स्व० महादेव भाई ने जमनालालजी के एक सम्मेलन के भाषण व उसम उनकी सारी कार्यप्रणाली को देखकर उन्हे पुरान सतो की श्रेणी म गिना। इस पर उलाहना देते हुए जमनालालजी उन्हे १३–४–३७ के पत्र म लिखते ह —

आपन मुझ पुरान सतो की श्रेणी म बैठाया है। आपका मेरे प्रति जो प्रेम ह उस सबध म तो म क्या लिखू परन्तु आपके मेरे सबध को देखते हुए तथा आपकी डिग्निटी (गौरव) का खयाल रखते हुए मुझ इस प्रकार के उदगारो से काफी सकोच ही होता ह।

पडित सुन्दरलालजी न एक पुस्तक लिखी थी— भारत म अग्रेजी राज्य। युक्त प्रान्त की सरकार न उसे जब्त कर लिया था। बावजूद जब्ती के जमनालालजी न उसकी एक प्रति अपन सग्रहालय म रख छोडी थी। व उस जब्ती को अन्यायपूर्ण मानत थ और उन्होन एक सत्याग्रही की तरह उस आज्ञा को न मानने का निश्चय किया। जब पुलिस को पता लगा कि पुस्तक की एक प्रति जमनालालजी के यहा ह तो पुलिस न उसे उनसे मागा। जमनालालजी न उसके उत्तर म लिखा कि जरूर पुस्तक मेरे यहा है। पर उसकी जब्ती को अन्याय और अत्याचारपूर्ण मानता हूँ। उसकी तलाश म भारत भर म जो मकानो की तलाशिया ली जा रही ह उन्ह बहुत आपत्ति

जनक और अपमानकारक मानता हूं । . . . .मैंने उस पुस्तक को पढ़ा है और मेरी निश्चित राय है कि वह बिलकुल आक्षेपयोग्य नहीं है, बल्कि अहिंसा की शिक्षा हृदय पर अंकित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न है । अतः युक्त-प्रांत की सरकार के इस हुक्म के विरोध में मैं वह पुस्तक आपको नहीं दूंगा । आप तलाश करके भले ही ले जाइए ।"

खुद बापू ने भी २०–६–२९ के "यंग इण्डिया" में जमनालालजी के इस रुख का समर्थन किया । उन्होंने लिखा—"जमनालालजी जैसा स्वाभिमानी व्यक्ति पुलिस को दूसरा जवाब दे ही नहीं सकता था । जमनालालजी का यह कहना सही है कि जो पुस्तक बिल्कुल निर्दोष है, जिसमें अहिंसा के पाठ पढ़ाने का प्रशसनीय प्रयत्न किया गया है, उसे जब्त कर लेना व उसकी खोज में जगह-जगह तलाशियां लेना बहुत आपत्तिजनक व अपमानकारक है और इसे सरकार का अत्याचार ही कह सकते है ।"

सत्याग्रही अपनी नम्रता व सेवा के द्वारा दूसरों का सुधार चाहता व करता है। जमनालालजी के ऐसे एक प्रयत्न का उल्लेख राजाजी ने अपनी रेल-यात्रा के एक अनुभव (यंग इण्डिया : १४–२–२९) में किया है । "एक यात्री बार-बार रेल के डिब्बे में ही थूक दिया करता था। लोगों को बड़ी घिन आती थी पर वह अपनी आदत से लाचार था। जमनालालजी को यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपने फलों की गठड़ी से एक कपड़े का टुकड़ा फाड़ा और मुस्कराते हुए उससे उसका कफ व थूक पोंछ डाला और खिड़की से बाहर फेंककर पाखाने के नल में हाथ धो डाले। वह मुंह बाये आंख फाड़े भौचक्का-सा देखता ही रह गया ।"

समय पड़ने पर 'ना' कहना सत्याग्रही का एक गुण होता है । जमनालालजी इसमें पक्के थे । एक बार जवाहरलालजी के पत्र 'नेशनल हेराल्ड' के लिए उनसे सहायता या कर्ज चाहा गया तो उन्होंने (जुलाई १९४०) में लिखा—

नेशनल हेराल्ड के बारे में लिखा। मेरे इस संबंध में जो विचार हैं उनसे पंडितजी अच्छी तरह वाकिफ हैं। मुझे अखबारों के कर्जे के मामले में उत्साह नहीं है। मुझे अफसोस है कि किसी मित्र के जरिये भी मैं यह काम नहीं कर सकता। आशा है आप क्षमा करेंगे।"

जमनालाल

श्री महादेव भाई एक जगह लिखते हैं—"सत्य का विचार व न्याय की बुद्धि उनमें इतनी तीव्रतर हो चुकी थी कि उन्हे अपने राई से दोष पहाड़ से प्रतीत होते थे।"

जमनालालजी सेठ कनीरामजी के औरस पुत्र थे। कनीरामजी की मृत्यु पर, पुरानी परिपाटी के अनुसार, मोसर ब्रह्मभोज आदि के प्रश्न उठे। पुराने विचार के लोगों ने जमनालालजी पर वजन भी डाला। लेकिन जमनालालजी इन बाह्याचारों को गलत मानने लगे थे। वे अपने सत्यमत पर डटे रहे और किसी भी गलत रूढ़ी का पालन नहीं किया। जो रुपया मोसर में व्यर्थ जाता वह (३५००) उनके स्मारक के लिए अलग सुरक्षित रख दिया। यही नहीं, बल्कि उनके भतीजे राधाकृष्णजी से जिनके हाथ से उत्तरकार्य हुआ था, उस प्रसंग के अनुरूप गीता पर प्रवचन करा के समाज की गति को ठीक दिशा में मोड़ा। यह सन १९२८ की बात है। गांधीजी के संपर्क में उन्होंने सत्याग्रह का खासा पाठ सीख लिया था।

गांधीजी का व जमनालालजी का पिता-पुत्र संबंध अनुपम तथा जग-विख्यात है। गांधीजी का निर्णय जमनालालजी को मान्य न हो—ऐसा क्वचित ही हुआ हो। सब जमनालालजी को गांधीजी का "डिटो" (जी-हुजूर) मानते थे। परन्तु, दो अवसर ऐसे आये हैं जहां जमनालालजी और गांधीजी दोनों के पारस्परिक संबंध में उच्चतम सत्याग्रही वृत्ति के दर्शन होते हैं। पहला अवसर तो था पटना की (१९३४ ई०) महासमिति (ए० आई० सी० सी०) की बैठक के समय, जब कि सत्याग्रह को स्थगित

करने का प्रस्ताव महात्माजी ने रखा था और जमनालालजी मतदान के समय तटस्थ रहे। वैसे जमनालालजी बहुत-सी बातों में बापू से लड़ा करते थे, मतभेद भी रखते थे, किन्तु विधिवत् मतदान के समय हमेशा उनका साथ ही दिया करते थे। किन्तु इस अवसर पर उनके अन्तःकरण ने गांधीजी का साथ नहीं दिया और उन्होंने एक सत्याग्रही के योग्य साहस का परिचय देकर अपना मत उनके पक्ष में नहीं दिया।

बाद में इससे भी बढ़िया एक और अवसर वर्धा में आया। १९४१ की बात है। बापू बारडोली थे। और कांग्रेस-महासमिति की बैठक वर्धा में बुलाना ठीक समझा था। वर्धा में जब कोई ऐसा आयोजन हो तो उसकी व्यवस्था की जिम्मेदारी जमनालालजी पर ही आजाती थी। जमनालालजी के कारण बापू ऐसे अवसरों पर सदा आश्वस्त रहते थे। अतः इधर तो बापू ने जमनालालजी पर अपनी यह इच्छा प्रदर्शित की कि बैठक वर्धा बुलाई जाय, उधर बैठक वालों को भी लिखा दिया कि वर्धा में बैठक रख लो। किन्तु, जमनालालजी उन दिनों गो-सेवा में एक-निष्ठा से लगे हुए थे। उनका मन दूसरी बातों की ओर जाता ही नहीं था। अस्वस्थ भी थे। अतः बापू को सूचित किया यदि व्यवस्था का प्रबंध कोई और सज्जन संभाल लें तो बैठक वर्धा बुलाई जाय, मेरी जिम्मेदारी पर नहीं। लेकिन बापू तो उनका उत्तर आने से पहले ही बैठक बुलाने की प्रेरणा कर चुके थे। अतः उनकी स्थिति बड़ी विषम हो गई। किन्तु उन्होंने अपनी असावधानी पहचानी, उसमें हिंसा देखी, और जमनालालजी को लिखा —

२७-१२-४१

चि० जमनालाल,

"मैं कैसा बेवकूफ हूँ और स्वार्थी भी। तुम्हारी तबियत का कुछ ख़याल नहीं किया, सिर्फ मेरा ही किया। तुम्हारी इजाजत मांगी और

मैंने राह भी नहीं देखी, और कमेटी से आग्रह किया कि मीटिंग वर्धा में रखी जाय। उसमें मैंने हिंसा की, वह भी मामूली नहीं। मित्रता का, तुम्हारी उदारता का दुरुपयोग किया। तुम्हारे पास मांफी मांगने से प्रायश्चित्त नहीं होता है। सच्चा प्रायश्चित्त तो वही होगा जिससे मैंने तुम्हारे प्रति जो निर्दयता बताई है ऐसी कभी दुबारा तुम्हारे प्रति या अन्य भाई के प्रति न बताऊँ।

"तुम्हारे प्रति तो धन्यवाद ही है। तुम्हारे दिल की बात कहने की तुमने हिम्मत बताई और अपनी मर्यादा का स्वीकार किया, यह छोटी बात नहीं है। जरा-सी भी चिंता न की जाय। तुम्हारे इन्कार से मेरा आदर और प्रेम बढ़ा है—अगर वृद्धि की गुंजाइश थी तो........"

बापू के आशीर्वाद

इन बाप-बेटों की बलिहारी है। "गुरु-गोविंद दोनों खड़े काके लागू पायं ?" जैसी स्थिति पाठक की इस समय हो जाय तो कौन आश्चर्य है ?

जीवन के हर प्रसंग में जमनालालजी सत्य का आग्रह रखते थे। और सो भी सूक्ष्मता के साथ। इसके दो नमूने यहां लीजिए—

१९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय जमनालालजी व पू० विनोबा जी दोनों ही नागपुर जेल में रखे गये थे। उनके सबसे छोटे पुत्र रामकृष्ण ने मैट्रिक की परीक्षा देकर अप्रैल ४१ में सत्याग्रह किया था और उन्हें भी पकड़कर नागपुर ही भेज दिया गया। उनके भी जेल आ जाने से जमनालालजी को बहुत खुशी हुई। जमनालालजी हमेशा अपने कुटुम्बियों को जेल जाने व कष्ट सहने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे। शायद ही कोई कुटुम्बी ऐसा बचा हो जो कम से कम एक बार जेल न गया हो। दो-दो, तीन-तीन बार जाने वाले तो कितने ही हैं। जब कोई जेल जाता तो वे फूले न समाते थे। वे जिस रोज पकड़े गये थे तभी रामकृष्ण ने उन्हें कहा था कि मैट्रिक की

परीक्षा देकर मेरा भी जेल आने का विचार है। उन्होंने तुरन्त ही बड़ी खुशी के साथ परवानगी दी थी और कहा था कि पूज्य बापूजी इजाजत दें तो अवश्य सत्याग्रह कर सकते हो।

रामकृष्ण के जेल जाने के कुछ ही रोज बाद जमनालालजी ने एक रोज रामकृष्ण से कहा था कि जहां तक घरेलू मामलों का संबंध है वहाँ तक तुम्हें मेरी राय से चलना चाहिए पर जहां राजनीतिक बात का संबंध है यदि मेरी और विनोबाजी की राय में फरक हो तो तुम्हें विनोबाजी की राय से ही चलना चाहिए। यद्यपि जमनालालजी भी पू० बापूजी के खास लोगों में से थे, कांग्रेस वर्किंग कमेटी के मेंबर थे, पर सत्याग्रह के सिलसिले में तो बापूजी ने विनोबाजी को ही प्रथम सत्याग्रही चुना था। अतः सत्याग्रही का उचित अनुशासन का पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने रामकृष्ण को यह सूचना दी।

नागपुर-जेल की ही बात है। जमनालालजी 'अ' वर्ग में थे और रामकृष्ण 'बी' वर्ग में; पर 'अ' और 'ब' वर्ग के लोगों को एक साथ ही रखा गया था। एक बार किसी साथी कैदी के लिए बाहर से बड़े अच्छे आम आये थे और उनमें से कुछ उन्होंने जमनालालजी के लिए भी भेज दिये थे। जमनालालजी को 'अ' वर्ग होने की वजह से बाहर की वस्तु मंगाकर खाने का हक था; पर उन्हें यह नहीं मालूम था कि 'ब' वर्ग के लोगों को यह अधिकार है या नहीं। उनको तो वे आम खाने नहीं थे, पर इस वजह से वे आम उन्होंने रामकृष्ण को भी नहीं दिये, बल्कि उनके लिए काम करने वाले कैदी को दे दिये। दूसरे रोज जेलर से उन्होंने पूछा तब पता चला कि 'ब' वर्ग के लोग भी बाहर से फल मंगाकर खा सकते हैं पर दूसरी चीज नहीं। उनकी यह सूक्ष्म सत्याग्रही-वृत्ति ध्यान देने योग्य है।

अपने जीवन को सत्याग्रही बनाने का वे जागरूक प्रयत्न करते थे। उसके अनुकूल जहां कोई बात उन्हें मालूम होती उसे तुरत ग्रहण कर लेते।

जेल में उन्होंने 'मुसलिम संत' नामक पुस्तक पढ़ी। उसमें उन्हें सत्याग्रहियों के दर्शन हुए। ९ मई, १९३९ की डायरी में उन्होंने लिख लिया—

"उर्दू पढ़ी, चरखा काता, 'मुसलिम-संत' पढ़ा, यूसुफ हुसैन, अल हुसैन, नूरी, बगदादी, हुसैन मन्सूर इन संतों का जीवन चरित्र पढ़ा। मन्सूर का चरित्र पूर्ण सत्याग्रही। इन सब सन्तों के जीवन में अहिंसा, सत्य कट-कूट कर भरा हुआ है।"

सत्याग्रही मौत के बारे में उदासीन रहता है। बल्कि वीरोचित मृत्यु को पसंद करता है। जमनालालजी हमेशा कहा करते थे—"मौत हो तो ऐसी कि जरा बीमार हुए और चल दिये।" जयपुर सत्याग्रह के समय जेल-वास में उनके घुटने का दर्द बड़ी चिन्ता का विषय बन गया था। २४ जून, १९३९ की डायरी में वे लिखते हैं—

"गोड़े का दर्द भी निकल जावेगा। खैर, जो होना होगा सो हो जावेगा। चिन्ता से क्या लाभ, जब मरने तक की पूरी तैयारी है।"

× × ×

"चित्रा" और "सावधान" दो मराठी पत्रों पर जमनालालजी ने मान-हानि का एक मुकदमा चलाया था। ये पत्र उनपर ऐसे झूठे और निराधार आरोप लगाते थे कि जिनसे जमनालालजी की साख को आंच आती थी। कांग्रेस के खजांची और फिर व्यापारी होने के कारण उनके लिए साख का मूल्य बहुत अधिक था। सहन तो काफी किया, फिर भी उन्हें ऐसा लगा कि उन पर मानहानि का मुकदमा करके इनकी झूठ का यकीन जनता को कराना उचित है। लेकिन मुकदमे में वकील, मुनीम-गुमाश्ता, कोई भी प्रति-पक्षियों के साथ अशिष्टता, असभ्यता, असत्यता से काम न लें इस बात की वे पूरी सावधानी रखते थे। उन्होंने कह दिया था कि हम हारें या जीतें परवा नहीं, सत्य को धक्का न लगना चाहिए। इस जमाने की अदालतों में और आज के वकीलों को जमनालालजी के कारण किस तरह तलवार की

धार पर चलना पड़ा होगा, इसकी कल्पना पाठक सहज ही कर सकते हैं। जमनालालजी जो सही समझते थे उसे निधड़क करने के लिए बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाने को सदा तैयार रहते थे। अन्त में मुकदमा जमनालालजी के पक्ष में फैसल हुआ और मुलजिमों को ६-६ मास की सजा हुई।

एक और मुकदमा उनकी जायदाद और मिल्कियत का चला था। वह उनके एक कुटुम्बी श्री हरिकिशन ने चलाया था। बच्छराजजी के तीन भाई थे, जिनमें से एक का देहान्त हो गया था। शेष दो भाई श्रीरामचन्द्र और श्रीहंसराज नागपुर में अपना कारोबार अलग करते थे और बच्छराजजी वर्धा में। बच्छराजजी की मृत्यु के बाद नागपुरवाले रामचन्द्रजी और हंसराजजी के परिवार के साथ जमनालालजी ने अपने ही परिवार की तरह व्यवहार किया और समय-समय पर उन्हें मदद भी की। नागपुरवाले जमनालालजी के लगभग सवा लाख रुपये के कर्जदार हो गए। इधर जब जमनालालजी राजनीति में आये तो सरकार का कोप बढ़ने लगा। इस स्थिति से लाभ उठाकर रामचन्द्रजी के पोते हरिकिशनजी बजाज तथा हंसराजजी के पुत्र गोवर्द्धनजी ने जमनालालजी पर साझी—हक का दावा कर दिया। इस पर जमनालालजी ने भी अपने कर्ज के सवा लाख रुपये का दावा उनपर किया। दोनों मामले अदालत में चलने लगे। नागपुरवालों ने काफी डर दिखाया तथा जमनालालजी को दबाने के अन्य उपाय भी किये, लेकिन जमनालालजी ने अपने मन में किसी प्रकार की कटुता को स्थान न दिया। उन्होंने अपने कर्मचारियों से भी कह दिया कि वे सत्य ही कहें और विरोधी पक्ष के साथ किसी भी प्रकार का अशिष्ट व्यवहार न करें। इसी बीच लक्ष्मीनारायण-मन्दिर हरिजनों के लिए खोलने का सवाल आया। कट्टर-पन्थी लोग तो इसके विरुद्ध थे ही। मुनीम तथा अन्य लोगों ने कहा—यदि इस समय इस प्रश्न को उठाया गया तो मारवाड़ी लोग इस मामले में आपके विरुद्ध हो जायंगे और खिलाफ गवाही दे देंगे। जमनालालजी ने कहा कि यदि यही बात

हो तो मन्दिर हरिजनों के लिए इसी समय अवश्य खोला जायगा। और जमनालालजी ने मन्दिर हरिजनों के लिए खोल भी दिया। इसी तरह मुकदमे के विरोधी पक्ष ने सं० १९२३ वि० की एक बही अदालत में पेश करने के लिए कहा। मुनीमों के पास वह थी तो लेकिन उन्हें डर था कि उसके पेश करने से मामले में कहीं अपने विरुद्ध निर्णय न होजाय। अतः उसे पेश करने में उन्होंने आनाकानी की। लेकिन जमनालालजी ने उनसे कहा कि यदि बही है तो उसे जरूर पेश कर दो। इसकी चिंता मत करो कि हम हार जायंगे। जो बात सत्य है वही सामने आनी चाहिए। बही पेश कर दी गई। परन्तु बही में ऐसी कोई बात न निकली जो जमनालालजी के विरुद्ध जाती। बल्कि उससे जमनालालजी के अनुकूल फैसला होने में ही मदद मिली। अन्त में जमनालालजी दोनों मुकदमे जीत गये और नागपुरवालों पर डिग्री हो गई।

श्री हरिकिशन को अपने इस दुर्व्यवहार के लिए बड़ा दुख और पश्चाताप हुआ। और उन्होंने इसके लिए जमनालालजी से माफी मांगी। जमनालालजी ने डिग्री के रुपये माफ कर दिये और हरिकिशनजी तथा उनकी पत्नी की समय-समय पर काफी मदद की। गोपीकिशनजी को जमनालालजी ने हिन्दुस्तान हाउसिंग कंपनी की ओर से एक मकान बनवा दिया, जिसकी आय से उनका बहुत-सा काम चलता है। मुकदमे के दौरान में भी जमनालालजी, जब-जब समय आता, उनकी मदद करते थे।

एक घटना उनकी चढ़ती जवानी की है—जब वे आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। उस समय उनसे कहा गया कि पतलून पहनकर कचहरी किया करें। यह उन्हें बहुत अखरा और उन्होंने साफ कह दिया—मैं हमेशा धोती पहनता हूँ और धोती पहनकर ही आ सकता हूँ। वे अन्त तक देशी पहनाव में धोती ही पहनकर कचहरी जाया करते थे।

'मारवाड़ी शिक्षा-मंडल' के छात्रावास की जमीन सरकार से मिली थी।

जब जमनालालजी रायबहादुर थे, जन-कार्य के लिए वह मांगी थी। पर बाद में जब उसनें सरकारी परीक्षाएं नहीं चलाई तो सरकार की तरफ सेकहा गया कि जमीन छोड़ दो और अपने मकानात उठा लो। तब सब ट्रस्टी और श्री जाजूजी भी चिन्ता में पड़ गये। लेकिन, जमनालालजी अड़ गये— कहा, जो कुछ करें, करने दो। उनको अखरता हो तो मकानात भी उन्हींको उठाकर ले जाने दो। देखें, मनुष्य कहां तक नुकसान पहुँचा सकता है ? एक-एक ईंट उखाड़कर फेंक दें तो भी मुझे इस सबात का दुख नहीं है। वैसे भी देखें कि सरकार कहां तक जुल्म करती है। इस डटे रहने से आखिर तक परीक्षाएं वैसे ही चालू रहीं और मकानों का भी कुछ नहीं बिगड़ा।

बच्छराजजी के समय पार्टियों में निषिद्ध चीजें भी परोसी जाती थी। इसका जमनालालजी को बड़ा दुःख रहता था। रायबहादुरी मिलने के उपलक्ष्य में जो पार्टी दी गई उसमें उन्होंने निषिद्ध पदार्थों की सख्त मनाही कर दी थी। उनके इस सत्याग्रह का उस समय सब पर बड़ा असर पड़ा था। उनके जीवन को 'सत्यमेव जयते' का अच्छा उदाहरण कहना चाहिए।

सन् १९३३ में व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रश्न जमनालालजी के सामने आया था। वे सब बातों में जाग्रत व्यक्ति थे। अपनी बीमारी के कारण बार-बार सत्याग्रह में भाग लेने से रुक गये थे। लेकिन उनकी अन्तरात्मा को यह रुचता नही था। अपना यह मन्थन उन्होंने पूज्य बापू के सामने नीचे लिखे पत्र के द्वारा प्रकट किया था। यह उनके अन्तःकरण की सचाई पर अच्छी रोशनी डालता है, और सत्याग्राही को कितना जागरूक रहना चाहिए, यह भी बताता है।

"पूज्य श्री बापूजी,

चित्त की बड़ी दुविधा में यह खत आपको लिख रहा हूँ। कानन के सविनय भंग के ऊपर और कांग्रेस के कार्यक्रम के ऊपर पूरा विश्वास होते हुए भी मैं अभीतक जेल में पहुँचा नहीं हूँ, इसका मुझे बहुत रंज है। मैं

ता० ४-४-१९३३ को जेल से छूटा तब मेरे कान की व्याधि खतरनाक गिनी जाती थी। उसका यथासंभव इलाज करके मैं शरीर-स्वास्थ्य ढूंढता आल्मोड़ा गया। इधर आपने २१ दिन के उपवास किये, जिसके साथ सत्याग्रह-आन्दोलन तीन महीने के लिए स्थगित रहा। उन्हीं दिनों में एक अत्यंत जरूरी कौटुम्बिक प्रकरण में मुझे बहुत दिनों तक गवाही देनी पड़ी। आपने भी मुझे आज्ञा दी थी कि 'अच्छा शरीर लेकर ही जेल जाना चाहिए'। इन्हीं दिनों पूना की खानगी कांफ्रेंस हुई और सामुदायिक सत्याग्रह का रूपांतर व्यक्तिगत सत्याग्रह में हुआ।

मैं जानता भी हूँ और मानता भी हूँ कि ऐसी हालत में जिनका सविनय भंग पर अटल विश्वास है, ऐसे लोगों को तो इस वक्त अन्य कामों का लोभ छोड़कर खसूसन जेल में ही जाकर बैठना चाहिए। मैंने ऐसा निश्चय भी किया था। लेकिन शरीर और मानस स्वास्थ्य जितना चाहिए उतना नहीं सुधरने के कारण दिल में कुछ कमजोरी-सी आ गई और इस कारण मैंने गुरुजन और मित्रगण के कुछ दिन ज्यादा बाहर रहने के आग्रह को मान लिया और १२ नवंबर तक बाहर रहने की अवधि निश्चित की।

मेरा विश्वास मुझे कहता है कि व्यक्तिगत सत्याग्रह के आज के दिनों में जिसका शरीर कुछ भी चलता है उसको तो जेल में ही जाना चाहिए। लेकिन, जेल में कान का दर्द फिर बढ़ने का डर रहता है। जेल में जाकर 'ए' या 'बी' क्लास में रहना, इस बात को मैं पसन्द नहीं करता। क्योंकि वर्गों का भेद देश को नुकसान पहुँचाता है।

मेरी जैसी हालत में वर्किंग कमेटी से मुझे त्याग-पत्र दे देना चाहिए था। मैं मानता हूँ कि जिसका निश्चय और विश्वास सविनय भंग पर और कांग्रेस के प्रोग्राम पर नहीं, उसे कांग्रेस में कोई जवाबदारी का स्थान नहीं लेना चाहिए। इसी तरह से इन दोनों पर पूरा-पूरा विश्वास होते हुए भी मेरे सरीखे जो लोग तबियत सुधारने के कारण जेल जाना टालते हैं, उनको

भी जवाबदारी का स्थान छोड़ना चाहिए। मैं देखता हूँ कि तबियत सुधारने के वास्ते मुझे और भी कुछ समय देना चाहिए। ऐसी हालत में मेरा वर्किंग कमेटी का मेम्बर और कांग्रेस का खजांची रहना सर्वथा अनुचित है। मुझे इस्तीफा देना ही योग्य था। इसलिए अभी मेरा यह इस्तीफा आपकी सेवा में भेज देता हूँ। तुरन्त कोई दूसरा खजांची न मिले तो नया खजांची नियुक्त होने तक मैं वह काम वर्किंग कमेटी का सदस्य न रहते हुए करूँगा।

इसका मतलब यह नहीं कि कांग्रेस के कार्यक्रम को यथाशक्ति पार पाड़ने के मेरे कर्तव्य से मैं मुक्त हूँ।

मेरे इस्तीफे से कांग्रेसवालों में कुछ गैर-समझ फैल जाना संभव है, ऐसा मैं जानता हूँ। लेकिन देश के कामों में स्वच्छता रखने की आवश्यकता अधिक है और अन्त में उससे लाभ ही होगा।"

× × ×

जहाँ अधिक घनिष्ठता, प्रेम, आत्मीयता होती है वहाँ राग-द्वेष से अपने को परे रख सकना कठिन हो जाता है। परन्तु एक सत्याग्रही को इस कठिन परीक्षा में से पास होना पड़ता है। जमनालालजी के एक पत्र के नीचे वाले अंशों से पाठक देखेंगे कि वे ऐसी परीक्षा में से पास होने का कितना हार्दिक प्रयत्न करते थे—

"....मैं तो आपसे इतना ही कह सकता हूँ, अगर आप विश्वास कर सकें तो, कि इतनी सब घटनाएँ होते हुए भी मैं आपको पूज्य मानता हूँ। आपमें कई गुणों को देखता हूँ। आपकी बहादुरी व जिस काम को हाथ में लेना उसे सफल कर के छोड़ना—इस पर तो मैं मुग्ध हूँ। दूसरे लोगों से आपकी बड़ाई सुनकर मुझे सुख मिलता है। वह लोग अगर आपकी निन्दा करते हैं तो स्वाभाविकतया उनसे लड़ भी लेता हूँ। यह सब क्यों? इसलिए कि आपको मैं अपना समझता हूँ। एक कुटुम्ब में मतभेद हो, त्रुटियाँ

दिखाई दें तो भी वह छूट नहीं सकते। मैं आपमें त्रुटियाँ व आपके स्वभाव में दोष व कम जोरियाँ भी देखता हूँ। पूज्य बापू व आपके-मेरे मित्रों के सामने कभी-कभी चर्चा भी हो जाती है, बहुत कम परिमाण में; परन्तु मेरा उद्देश तो यही रहता है कि वे त्रुटियाँ भी आपमें न रहें। मैं आपको पूजते रहना चाहता हूँ आपके गुणों व कुटुम्बी-संबंध के नाते, न कि आपकी कमजोरियों को गुण समझ कर। मैं एक बार फिर दुहरा देना चाहता हूँ कि आपकी जितनी ज्यादा प्रतिष्ठा बढ़ेगी व हम लोगों के मित्र लोग हृदय से आपका आदर व प्रेम करते रहेंगे तो मुझे जितना सुख मिलेगा उनका कम लोगों को मिलना संभव है। मैं नहीं चाहता कि मित्र लोग व कार्यकर्ता आपसे डर कर प्रेम करें। बस अगर फरक हो सकता है तो इतना ही हो सकता है।

"आपने एक बार कहा था कि इस प्रकार की स्थिति में आप मेरे यहाँ ठहरना भी पसंद नहीं करते। मैंने जब यह बात सुनी तो मुझे चोट लगना स्वाभाविक था। इसमें आपका दोष भी मैं नहीं निकालता। हाँ, दोष एक तरह से दे सकता हूँ। अगर आप मेरा घर आपका भी मानते हों अथवा मेरा घर मेरे अकेला का ही नहीं है, जानकी देवी, कमलनयन, मदालसा, राधाकृष्ण वगैरह सब का है, व वे सब तो प्रायः आपको पूज्यता और प्रेम से देखते हैं—इनमें से बहुतों को तो अभी तक हम लोगों के मतभेद का भी पता नहीं है—वैसी हालत में आपके मन में ऐसा विचार आने से क्या उनके प्रति अन्याय होना सम्भव नहीं है? आप यह अवश्य कर सकते हैं कि मेरे साथ किसी भी राजनैतिक या सार्वजनिक विषयों पर चर्चा न करें—जब तक आपका व मेरा समाधान न हो जाय। पर घरेलू बातें हास्य-विनोद क्यों नहीं किया जाय? आप विचार कर के देख लें। मैं तो (आपके बच्चों के) पास जरूर जा सकता हूँ, खा सकता हूँ वे कान भी पकड़ सकता हूँ। आपसे मतभेद हो गया तो

क्या सब बालकों से भी हो जाना चाहिए, यह कहाँ का न्याय ?"

× × ×

बिजोलिया-यात्रा के समय उदयपुर के स्व० महाराणा सा० से मिलने की इच्छा हम सबकी थी ही। लेकिन वहाँ नियम था कि महाराणा सा० से साफा या पगड़ी बाँध कर ही मिला जा सकता था। जमनालालजी के सामने मामला पेश हुआ तो उन्होंने फौरन कहा—गाँधी टोपी उतारनी पड़ती हो तो हम श्री महाराणा सा० से बिना मिले लौट जाना पसन्द करेंगे। जब महाराणा सा० तक यह खबर पहुँची तो उन्होंने हम लोगों के लिए यह नियम ढीला कर दिया था—मुझे उस समय स्मरण आया था—"तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लो हाथ।"

सत्याग्रह-आन्दोलन के सिलसिले में एक कार्यकर्ता ने अपना नाम बदल दिया था, इस पर वे उसे सजग करते हैं—

"तुमने नाम बदला ऐसा सुना है। मुझे विश्वास नहीं होता। अपनी लड़ाई का मूल सत्य पर है। नाम बदलने की बिलकुल कोई भी हालत में जरूरत नहीं मालूम होती जो कुछ ईश्वर की इच्छा है, वही होता है मनुष्य को बिना कारण का मिथ्या अभिमान पैदा हो जाया करता है। तुम इससे बचोगे ऐसी ईश्वर से प्रार्थना है।"

: ५ :

नेता और बुजुर्ग

'स-धन अ-धन का था आप्त, सुप्राप्य नेता'

जमनालालजी का विकास बहुविध हुआ था। जैसे वे एक नम्र सिपाही व साधक थे वैसे ही वे एक महान् नेता और बुजुर्ग भी थे। दुर्दमनीयता तो उनमें बचपन से ही दिखाई पड़ती थी। अन्याय और अत्याचार का विरोध करने वाली तेजस्विता उनमें प्रारंभ से ही थी। आत्माभिमान, स्वाभिमान तथा देशाभिमान उनमें एक से एक बढ़ कर थे। नेता में इस गुण की बहुत आवश्यकता होती है। विकट परिस्थिति में तुरंत रास्ता निकालने की सूझ-बूझ और साहस से निश्चित मार्ग पर चलने की दृढ़ता भी उनमें थी, जोकि एक नेता के लिए आवश्यक गुण होता है। अपने साथ लोगों को खींच ले जाने और बहा ले जाने का गुण भी उनमें ठीक मात्रा मे था। लेकिन, अपना नेतृत्व उन्होंने कभी किसी पर थोपने का प्रयत्न नहीं किया। दूसरों को पीछे ढकेलकर, धक्का देकर, आगे बढने का प्रयास भी उन्होंने कभी नहीं किया। काँग्रेस के काम में, खासकर १९२१ के बाद, दिलचस्पी लेते रहे, लगन से सहयोग देते रहे, कई जगह बड़े पदाधिकारी भी रहे, काँग्रेस के खजांची, जब से बने तब से, तो प्रायः अंत तक ही रहे। एक बार कार्याध्यक्ष भी कुछ समय तक रहे, काँग्रेस के हाई कमांड में थे। कई 'नेता' कहे जाने वालों से हर तरह श्रेष्ठ थे। परंतु यह सब स्थिति उन्होंने अपनी सेवा और योग्यता के बल पर प्राप्त की थी। छीना-झपटी से नहीं। एक-दो बार उन्होंने मुझसे बातचीत के सिलसिले में कहा

था कि 'इन-इन कारणों से मैं कांग्रेस का सभापति बनने के बिलकुल योग्य हूँ। (वे सब कारण उन्होंने विस्तार से गिन कर बताये थे) जो लोग मुझसे पहले सभापति बने हैं, उनमें से भी कुछ लोगों से कुछ गुण और योग्यताओं में मैं श्रेष्ठ हूँ। मेरे मन में सभापति बनने की इच्छा भी होती है। परन्तु, किसी-न-किसी तरह सभापति बन बैठने की अशुभ इच्छा आज तक नहीं हुई। बल्कि जब-जब किसी भी जगह पद-प्रतिष्ठा लेने का अवसर आया है तो मैंने अपनी योग्यता और अयोग्यता की नाप अपनी बुद्धि के अनुसार बापू के सामने रखकर अंतिम निर्णय उन्हींपर छोड़ा है। बहुत-सी बार उसको स्वीकृत किया है और अपने लिए उसे शुभ भी माना।' इस प्रकार वे उच्च आकांक्षी और योग्यता-संपन्न होते हुए भी व्यक्ति-गत महत्वाकांक्षा से मुक्त थे। उनका जीवन बापू को समर्पित था। अतः शक्तिशाली नेता की योग्यता व क्षमता रखते हुए भी वे अंत तक बापू के नम्र अनुयायी रहे। पढ़े-लिखे कम होने के कारण सरदार पटेल और श्री घन-श्यामदासजी बिड़ला जैसे अक्सर उनका मजाक उड़ाया करते थे। बिड़ला तो उन्हें 'नेताजी' ही कहा करते थे और प्रेम से उनकी 'नेतागिरी' की हँसी उड़ाया करते थे। उसके कुछ दिलचस्प नमूने क्रमशः देखिए :--

"जब-जब मैं वर्धा आता हूँ तब-तब आप और ही कहीं रहते हैं। सिर्फ एक बार मैं आया तब आप वहीं थे, लेकिन तब भी आपको नेतागिरी के काम से फुरसत नहीं मिलती थी। कम से कम इस बार मैं आऊं तब तो नेतागिरी से फुरसत रहनी चाहिए। इस नेतागिरी के काम को वैसे तो आप कुछ कम कर दें तो अच्छा; क्योंकि नेताओं की सप्लाई आजकल बहुत है, इसलिए दाम गिरते जा रहे हैं। खैर इस बार मैं आऊँ तब आप और कमल की माँ दोनों ही वहाँ हो तो कुछ दिन शान्ति के साथ बैठ कर गप-शप करने का भी मौका मिल जाय और आपको भी इससे आमोद-प्रमोद और विनोद मिल जायगा।

"एक और शिकायत है। कमल की सगाई हुई उसमें मेरा भी कुछ हाथ था। कुछ मिठाई भेजना तो रहा दूर, आपने इसकी खबर तक नहीं की। इसका बदला भी वहीं आने पर लूंगा। कमला की मां के लिए भी यही शिकायत है।"
नई दिल्ली, २४ अगस्त १९३६

"अिस तार का अुत्तर तार से तो आया ही नही। पर अुसकी पहुँच भी पत्र द्वारा स्वीकार नहीं की गई। अिससे पता चलता है कि नेताओं को चिट्ठी लिखने की फुरसत भी नहीं मिलती, सोने की फुरसत तो मिलती है? आप अच्छे होंगे।"
कलकत्ता, ८-६-३८

आजकल मुझे नेताओं से चिढ बढती जा रही है। पर क्या करे, अिनके बिना काम ही नही चलता। हमारा विचार भी नेता बनने का है। कांग्रेस में कोई जगह खाली हो तो लिखना। राष्ट्रपति के नीचे की कोई पोस्ट नहीं चाहिए है। क्या-क्या शर्तें हैं, सो लिख भेजना।"
कलकत्ता. २२ जून, १९३८

"प्रजामंडल के लिए मैंने कह दिया है कि अिस काम में हम लोग कुछ भी सहायता बंटावेंगे तो आपको काफी असंतोष होगा। यह आपकी चीज है और आपकी नेतागिरी छीनने का अिन लोगों का कतई इरादा नहीं है। अिन लोगों से मैंने कह भी दिया है कि एक पैसा भी यदि ये लोग प्रजामंडल के लिए देंगे तो आपको अत्यन्त कष्ट होगा। इसलिए प्रजामंडल के लिए यहाँ से एक पैसा भी जाने वाला नहीं है।

"आपकी कोअी बदनामी नहीं की है प्रशंसा ही प्रशंसा की है। आप निश्चिन्त रहियेगा।"
७ जनवरी, १९४१

"मास्टर साहब एक इण्टरव्यू देना चाहते हैं। आपकी अखबार वालों से दोस्ती हो तो इसे सी० पी० के अखबारों में प्रकाशित करा दें। उनका शौक आपकी इण्टरव्यू देखकर चर्राया है।

"मास्टरजी नेता बनना चाहते हैं। दिल्ली कब आइएगा।?"
अमृत निवास, मसूरी, २६-९-४१

× × ×

राजनैतिक क्षेत्र में उनके नेतृत्व का प्रारंभ नागपुर कांग्रेस से मानना चाहिए, जबकि वे उसके स्वागताध्यक्ष बनाये गए थे। कांग्रेस के पदों को छोड़ दें तो उनके एक सत्याग्रही के रूप में प्रत्यक्ष नेतृत्व की योग्यता का परिचय नागपुर झंडा-सत्याग्रह के समय पर मिला। उसके बाद जयपुर-सत्याग्रह का नेतृत्व और संचालन उन्होंने, बापूजी के आशीर्वाद से परंतु स्वतंत्र-रूप से, किया। बड़ों के प्रति उचित नम्रता, बराबर वालों के प्रति सौहार्द और छोटों के प्रति समभाव रख कर उन्होंने अपने नेतृत्व को सार्थक किया है। अपने नेतृत्व के बोझ से मेरे साथी या कार्यकर्ता या सैनिक दब न जायं, इसका वे सदैव खयाल रखते थे। समझकर उनकी बात और आदेश को लोग स्वीकार करें, यह वे सदैव चाहते थे। अनुशासन के वे बड़े हामी थे। वे स्वयं नियमों का पालन—केवल अक्षरों का नहीं बल्कि स्पिरिट का—बड़ी लगन से करते थे। एक बार का जिक्र है कि मैं गांधी सेवा-संघ का एक सदस्य था और वे उसके अध्यक्ष। मैं श्री नृसिंहदासजी अग्रवाल (बाबाजी) की प्रेरणा से अजमेर प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के चुनाव में दिलचस्पी लेने लगा और चुनाव कमेटी का अध्यक्ष भी बनना मंजूर कर लिया। वैसे मैंने जमनालालजी से चुनाव में दिलचस्पी लेने की साधारण बातचीत कर ली थी। पर अपनी अनुभवहीनता और भोलेपन में उसे स्वीकृति मान ली। गांधी सेवा-संघ के अध्यक्ष से विधिवत् स्वीकृति नहीं ली थी, और तत्संबंधी आवश्यक कार्यवाही बाकी रह गई थी। जो-कुछ

मैंने चर्चा की थी, उसे उनकी स्वीकृति नहीं कहा जा सकता था। परंतु, मैंने बातचीत को ही स्वीकृति समझ चुनाव में भाग लेने का निर्णय कर लिया और बाबाजी को वचन दे दिया। इससे जमनालालजी की स्थिति विषम हुई। उन्होंने मुझे कहा था कि यह तो अनुशासन का भंग है। मैंने भी महसूस किया। परन्तु, मैं साथियों को दिये हुए अपने वचन को तोड़ नहीं सकता था और जमनालालजी भी इस कठिनाई को महसूस करते थे। मैंने कहा कि मैं कदापि यह पसन्द नहीं करूँगा कि अनुशासन-भंग का दोषी आपकी निगाह में ठहरूँ और आपको और लोगों के उपालम्भ का पात्र बनने दूं। इसका उपाय यह है कि मैं गांधी-सेवा-संघ से इस्तीफा दे दूँ। उन्होंने भी कहा कि "हां, दे दो।" मगर साथ ही वे यह महसूस करते थे कि एक भले कार्यकर्ता की असावधानी का यह बड़ा दंड उसे मिलेगा। वे मुझे गांधी सेवा-संघ से अलग नहीं होने देना चाहते थे। फिर भी उन्होंने संघ की कमेटी में मेरा इस्तीफा रखा और जोर के साथ यह प्रतिपादन किया कि ऐसे अनुशासन भंग की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यहां तक कि बहुतेरे सदस्यों को लगा कि जमनालालजी मुझ पर आवश्यकता से अधिक कठोर हो रहे हैं। अंत में यह तय हुआ कि पहला कसूर होने से मुझे चेतावनी देकर छोड़ दिया जाय और मेरा इस्तीफा वापस कर दिया जाय।

१९३५ का एक और प्रसंग है। मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं विचार, स्वभाव, या कार्य से जमनालालजी को पूरा संतोष नहीं दे पाता हूँ। मैंने सुझाया कि मैं गांधी-सेवा-संघ से अपना निर्वाह-व्यय लेना बन्द कर दूं। जमनालालजी उसके अध्यक्ष थे। इसपर १५-९-३५ को उन्होंने मुझे जो-कुछ लिखा उससे उनकी एक महान् नेता के ही योग्य हृदय की विशालता व आत्मीयता प्रगट होती है। इसे जनतन्त्रभाव का अच्छा नमूना कह सकते हैं —

"संघ से निर्वाह-व्यय लेने के बारे में आपके विचारों से मैं बिलकुल सहमत नहीं हूँ। संघ को आपसे संतोष है। मुझे व्यक्तिगत, आपका मेरा

अधिक प्रेम का परिचय होने के कारण, आपकी कई योजनाओं में मतभेद रहता है। मेरी समझ से आपके हाथ से जरा भी भूल हो तो मुझे अधिक दुःख होता है, जैसा जानकी देवी, राधाकृष्ण, आदि के बारे में हुआ करता है। इसका अर्थ दूसरे प्रकार के असंतोष का नही होता है। इस बारे में मिलने पर अधिक साफ बातें हो जावेंगी। आपको बिलकुल विचार नहीं रखना चाहिए; आवश्यकता हो वह संघ से प्रसन्नतापूर्वक, नियम के अन्दर, लेते रहना चाहिए।"

इनसे जहां उनके नेतृत्व की महिमा प्रकट होती है, वहां उनकी व्यावहारिकता और वह सहानुभूतिशीलता प्रकट होती है जो उनके साथियों को खुशी-खुशी उनके अनुशासन में रहने का प्रोत्साहन देती थी।

जिस शर्त को वे पूरा नहीं कर सकते थे, जिस नियम का वे पालन नहीं कर सकते थे उसका अपवाद अपने लिए करते हुए उन्हें बहुत दुख होता था और दूसरों को उसका आग्रह करने में वे हिचकते थे। गांधी सेवा-संघ के अध्यक्ष बने, परन्तु, हमेशा कहा करते थे कि मैं उसके योग्य नहीं हूँ। उसके सभापति के लिए जितना अपरिग्रह और जितनी निर्मलता होनी चाहिए उतनी अभी मुझमें नहीं है। और इसलिए कई बार उससे हटने का प्रयास किया। कभी-कभी तो अपनी महानता में मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को भी कह दिया करते थे कि एक बार तुम इस पद के योग्य हो सकते हो, मैं नहीं। त्यागशील, सेवा-भावी, निरभिमान, नम्र कार्यकर्ताओं का वे सदैव आदर किया करते थे और हृदय से उनको अपने-से बड़ा मानते थे। यदि बड़े मानी और सुप्रतिष्ठित कहे जाने वालों के सामने उनको अधिक नम्र रहते देखते या उसके सामने कहीं उनका अपमान होता हुआ या यथोचित मान न मिलता हुआ दिखाई देता तो वह उन्हें अच्छा नहीं लगता। और वे कोशिश करते कि उनको यथोचित मान मिले। एक बार वर्धा में एक बड़े सेठ, जो उनके बहुत मिलने-जुलने वालों में से थे, वर्धा आये। जमनालालजी

वहाँ नहीं थे, यह देखकर में उनको लिवा लाने के लिए स्टेशन चला गया। जमनालालजी उनके उतारने आदि का प्रबन्ध तो कर गये थे। परन्तु, उनके घर का कोई आदमी जानेवाला न देखकर में गया था। जब जमनालालजी लौटे और उनको यह मालूम हुआ तो उन्होंने मुझे उलहना देते हुए कहा कि आपको स्टेशन जाने की क्या जरूरत थी। मैंने कहा कि वे आपके निकटवर्ती थे। आप मुझे अपने कुटुम्ब का मानते हैं। मैंने सोचा कि घर का कोई आदमी नहीं होने से ठीक नहीं रहेगा। इसलिए में चला गया। उन्होंने कहा कि आप मेरे कुटुम्बी हैं तो सेवा के क्षेत्र में आप मेरा प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। धन के क्षेत्र में नहीं। धन को मैंने कभी सेवा से उच्च पद नहीं दिया है और धनी के स्वागत के लिए जब आप गये यह मुझे आपके आत्म-गौरव के अनुरूप नहीं मालूम हुआ। सेवक का भी अपना गौरव होता है और मैं चाहता हूँ कि प्रत्येक सेवक उसका अनुभव करे और में अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मैं उसकी रक्षा करूँ।

उनके विलक्षण साहस, निडरता और सूझ-बूझ के कुछ उदाहरणों से मालूम होगा कि मृत्यु का उनको डर नहीं था, सत्य के आगे उनको राजा-महाराजा का लिहाज नहीं था और तुरत निर्णय करके विकट परिस्थिति को कैसे संभाल लेते थे।

एक बार वे मध्यप्रदेश का दौरा कर रहे थे। खामगांव पहुँचने से पहले रास्ते में संत पाचलेगांवकर और उनके सांप कटवाने के अद्भुत प्रयोगों का जिक्र श्री अंबुलकर ने किया। खामगांव पहुँचकर जमनालालजी ने महाराज के बारे में पुछवाया। संयोग से वे उस रोज वहीं थे। अंबुलकर और जमनालालजी उनसे मिलने गये। महाराज ने अपने पास के सांपों को, उनके गुण-धर्म और जहरीलेपन का वर्णन करते हुए दिखलाया। महाराज एक कोब्रा (नाग) ले आये, जिसके काटने से तुरन्त मृत्यु हो सकती थी। उसके जहरीले दांत दिखाकर जमनालालजी से कहा कि बोलो कटवाओगे?

एक पल का भी विलंब न करते हुए उन्होंने अपना दाहिना हाथ सामने कर दिया। कोब्रा तैयार था ही! जोर से उसने जमनालालजी को काट खाया। वे उससे तनिक भी अस्वस्थ नही हुए और आगे की यात्रा को चल दिये। थकान के कारण रात में थोड़ा ज्वर हो आया। श्रीमती जानकीदेवी कुछ घबड़ाई। साथी लोग भी घबड़ाए। रात में श्री अंबुलकर खामगांव जाकर महाराज से रक्षा (भस्म) लेकर बड़े सबेरे वापस मलकापुर पहुँचे। पर जब जमनालालजी को इसका पता चला तो वे साथियों की कमजोरी पर बहुत हंसे और उन्हें उलहना दिया।

जयपुर के बन्दीवास (करणावतों के बाग) से जमनालालजी ने जयपुर के महाराजा साहब को एक मर्म-स्पर्शी पत्र बड़े अत्मीय-भाव से लिखा था जिसका प्रस्तुत अंश नीचे दिया जाता है। इससे सद्भावना के साथ उनकी तेजस्विता भली-भाँति प्रकट होती है--

'प्रिय महाराजा सा०,

......आपने कराची में प्रेस-प्रतिनिधियों को जो मुलाकात दी वह मैंने पढ़ी। परन्तु आपके उस निश्चय से आपकी रिआया को कोई लाभ व समाधान नहीं मिल सकता। आपको तो सबसे पहले अपनी रिआया को पूरी तौर से विश्वास में लेना चाहिए। उनके दुःखों को दूर करना चाहिए। आपको साफ-साफ तौर से घोषित करना चाहिए कि रिआया के सुख से आप सुखी हैं, उनके दुख से दुखी हैं। उनके दुःख दूर करने में आप अपने सुख को भी छोड़ने को तैयार हैं। इस प्रकार आप घोषित करेंगे व उसपर अमल करना शुरू करेंगे तो मेरा विश्वास है यहां असली शांति स्थापित हो जावेगी। कानूनकी व तोप-बन्दूक की मदद से जनता का हृदय जीतना असंभव है।

"आप तो विदेश की हालत से वाकिफ है। अगर हिटलर, मुसोलिनी

अपनी प्रजा के दिल तोड़कर रात-दिन सेवा नहीं करते तो आज वहां के लोग उनके पीछे पागल नहीं होते। जिस रशिया से इतनी बड़ी ब्रिटिश सरकार घृणा करती रही उसीसे आज समझौते के लिए कितनी आतुर व बेचैन है। यह वही रशिया है जिसने अपने बादशाह को ही नहीं उसके सारे परिवार को कत्ल कर डाला था।

"मुझे यह जानकर थोड़ी खुशी हुई कि आपने एक हिंसक शेर को खत्म किया। पर साथ में दुःख भी हुआ कि उस शेर ने मरते-मरते आपकी प्रजा में से एक को आपके सामने ही मार डाला। आपकी गैर हाजिरी में, इस प्रकार के हिंसक प्राणियों द्वारा, आपकी असहाय प्रजा की क्या क्या दशा हो रही है इसका अगर आप खयाल करेंगे तो आपका हृदय द्रवित हुए बिना न रहेगा। मोरांसागर व यहां मुझे रहने का मौका मिला जिससे शिकारखाने व जंगलात के जुल्मों के कारण कई बार रोना आ जाता है। मेरी समझ में नहीं आता कि जिससे राज्य को कोई विशेष लाभ न हो उस प्रकार के कानूनों द्वारा उस राज्य की जनता के सर पर दुःख व मौत का खतरा हर घड़ी बनाये रखने में क्या बुद्धिमानी है? आपको शिकारखाने व जंगलात के कानूनों को एक दम, ब्रिटिश सरकार में जिस प्रकार हैं कम से कम उस मुताबिक तो कर ही देने चाहिए। मेरा विश्वास है कि ऐसा आप शीघ्र ही कर देंगे तो पीड़ित जनता अपना आजतक का दुःख भूलकर आपको हृदय से प्रेम करेगी व आशीर्वाद प्रदान करेगी।

"आपके बाद जो वातावरण अधिकारियों ने पैदा कर रखा है उसका खयाल करते हुए और आपसे मिलकर सादर प्रार्थना करने का मौका न मिल पावे इससे, मनमें आपके प्रति सद्भावना रहने के कारण, मैंने अपने हृदय की भावना लिख भेजी है। परमात्मा आपको सद्बुद्धि प्रदान करे जिससे राजा व प्रजा में सच्चा प्रेम व विश्वास का संबंध बढ़ता रहे।"

सन् १९२२ में मध्यप्रांत के भंडारा जिले में राजनैतिक परिषद् होने

वाली थी। सब तैयारी हो गई थी। पर एकाएक मजिस्ट्रेट ने शहर में १४४ दफा लगाकर सभा वगैरा करने पर पाबन्दी लगा दी। दूर-दूर से आये हुए लोग किंकर्तव्यमूढ़ हो गये। जमनालालजी ने तुरत ही सबोंको जोश और साहस दिलाते हुए शहर से पांच मील दूर (स्टेशन के पास) परिषद् करने की योजना की और उसे सफल बनाया।

नेता का एक और गुण होता है बुजुर्गी। वह समाज का बड़ा-बूढ़ा भी होता है। जिस प्रकार एक बुजुर्ग घर के आपसी बेबनाव और झगड़े-टंटों का ठीक-ठीक निपटारा करता है और दोनों पक्षों में समझौता करवा कर परिवार में शांति व सद्भावना बनाये रखने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार नेता समाज के अनेकानेक झगड़ों, मतभेदों और वैमनस्यों को मिटाने के लिए भी प्रयत्नशील रहता है और चाहता है कि समाज में शांति और सद्भावना का प्रसार हो। इस काम के लिए नेता में सच्चाई, न्यायप्रियता और सबका हित साधन करने की भावना होनी चाहिए। उसका व्यक्तित्व इतना ऊँचा व पवित्र होना चाहिए कि दोनों पक्ष उस पर विश्वास कर सकें, दोनों ही अपना हृदय उसके सामने खोलकर रख सकें और दोनों ही उसके निर्णय पर अमल करने के लिए तैयार रह सकें। जमनालालजी में ये सब गुण थे। राव-से-रंक तक सबके प्रति समभाव रखते थे। और सदा न्याय की भावना रखते थे। इसीसे वे कई बड़े-बड़े मामलों में पंच भी बने। बड़ौदा कन्या-विद्यालय के मामले में बड़ी कटुता फैल गई थी। तब उनको पंच बनाने का प्रस्ताव किया गया था। १९३८ में नागपुर म्युनिसिपल कमेटी के प्रेसिडेंट श्री ढवले और जनरल अवारी तथा श्री शाल्वे में झगड़ा हुआ और मामला महात्माजी तक पहुँचा तो उसमें भी जमनालालजी ने बीच में पड़कर झगड़े का अन्त करा दिया। सीमेंट फैक्ट्री-संबंधी मामले में डालमियाजी और मोदीजी के

झगड़े को भी उन्होंने आपस में सुलझवा दिया। राजस्थान के राजा-महाराजाओं तथा प्रजा के बीच के झगड़ों में तो वे कई बार पड़े और दोनों पक्षों के मत-भेदों को दूर करने का प्रयास किया।

व्यापारी व व्यवसायी होते हुए भी मजदूर और उनके नेता जमनालालजी पर कितना विश्वास रखते थे इसका निदर्शक श्री गुलजारीलाल नंदा का एक पत्र देखिये—

अहमदाबाद, २६ मार्च, १९३०

"मिल मालिक-संघ, अहमदाबाद की तरफ से हमसे कहा गया है कि हम अहमदाबाद के मिल-मजूर और मिल-मालिक के बीच के झगड़े को निपटाने के लिए बने पंच-मंडल में मालिकों की तरफ से बनाये गये पंच सेठ मंगलदास पारेख के साथ महात्माजी के स्थान पर बैठने के लिए किसी दूसरे पंच का नाम दें। हमने आपका नाम दिया है और मालिक-संघ ने हमें लिखा है कि झगड़े के मामले के कागजात आपको भेज दें।

"हम चाहते हैं कि महात्माजी जो काम मजदूरों के पंच के रूप में करते थे वह आप करें। मैं जानता हूँ कि देश के दूसरे महत्वपूर्ण कामों में आपका समय लगा रहता है। लेकिन यहांके श्रमजीवी भी आपके समय पर अपना अधिकार रखते हैं।"

राजनैतिक प्रश्न तो वे हल करते ही थे लेकिन ऐसे कई परिवारों का भी विश्वास उन्हें प्राप्त था जो अपनी घरेलू बातें उनके सामने निस्संकोच-भाव से रखते थे और वे दोनों पक्षों में समझौता करवाते और सही रास्ता दिखाते थे। उन्होंने कई पति-पत्नियों के, पिता-पुत्रों के, भाई-भाई के और कई निकट-दूर के रिश्तेदारों के झगड़े निपटाये और उनमें सद्भावना स्थापित कराने का प्रयत्न किया। इसके दर्जनों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

एक बार स्व० रामनारायणजी रुइया, जो जमनालालजी के परम

मित्र थे, के परिवार के लोग एक सामाजिक संकट में पड़ गये—उसमें जमनालालजी उनका बड़ा सहारा रहे। रुइयाजी की धर्मपत्नी से हुआ यह पत्र-व्यवहार उसका एक नमूना है।

बंबई
१–३–३७

प्रिय भाई जमनालालजी,

"..... इस वक्त मेरे को कुछ सूझ नहीं पड़ता। आप योग्य समय पर आकर इस बहिन को अपनी अमोलक सलाह देकर मेरे मन की चिन्ता दूर करोगे। मैं आपके आने की राह मिनट-मिनट देख रही हूँ। आप कम-से-कम ८–१० दिन बंबई ठहर सकें, इतना अवकाश जरूर निकालना। लिखना बहुत है, परन्तु आप मेरे मन के भाव को जानते हैं। इसलिए अधिक क्या लिखूं और क्या लिखना यह भी ध्यान में नहीं आता। आपसे मिलके ही अपने मन को धीरज मिलेगा। यही आशा है।"

आपकी बहिन
सुव्रता

श्री बहिन सुव्रताबाई,

"मुझे यहां कर्तव्यवश आना पड़ा है, परन्तु तुम्हें जिस स्थिति में छोड़कर आना पड़ा उसका विचार तो बना ही है। मेरे यहां आने के बाद मुझे बराबर एक सरीखे काम में लगा रहना पड़ा है। कल तो दिल्ली जाना है। आशा है तुमने हिम्मत पकड़ी होगी। प्रिय बहन! मैं तुमसे अधिक हिम्मत, उदारता व परमात्मा में विश्वास की आशा रखता हूँ। उसीसे तुम्हें शांति, सच्चा सुख व समाधान मिलेगा। मुझे देहली बिरलाओं के पते से तार व पत्र भिजवाना। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह तुम्हें अपना सच्चा कर्तव्य सुझाये। और तुम हिम्मत-पूर्वक बहादुरी

से अपना भावी जीवन समाज-सेवा में बिताने का निश्चय पूरा कर सको।"

वर्धा १३-३-३७ जमनालाल

नेता का एक सबसे बड़ा गुण है संगठन-शक्ति। संगठन के लिए अनेक गुणों की जरूरत होती है। कार्यकर्ताओं को अपना बनाने और उनसे अपने आदेशानुसार कार्य करवाने के लिए नेता को उनसे निकट का संबंध जोड़ना पड़ता है। उनकी कठिनाइयों को समझने, उन्हें सहारा देने, उन्हें प्रोत्साहित करने, आगे बढ़ाने, उनमें अच्छी भावनाएं भरने तथा सुख-दुख में उनके साथ एक-रूप होने की क्षमता होनी चाहिए। इसके साथ ही उसके सामने अपना लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए और उस तक पहुँचने की व्याकुलता होनी चाहिए। जमनालालजी में ये सब बातें थीं। कार्यकर्ताओं के साथ वे इतने घुल-मिल जाते थे कि वे उनके साथ आत्मीयता अनुभव करने लग जाते थे। सदैव उनका स्मरण रखते थे। नौकरों-चाकरों तक के गुणों की कद्र करते थे और उनसे शिक्षा लिया करते थे। एक नौकरानी के बारे में अपनी डायरी में ४ सितंबर १९४१ को लिखते हैं—

"काशी से ठीक उपदेश लिया जा सकता है। मोह-माया बहुत कम; जिस स्थिति में रहती है उसका दुःख नहीं, अमीरी में रहने की या ऐश-आराम की इच्छा नहीं। हृदय में सच्चा ज्ञान है—तीर्थ-यात्रा, ज्यादा साधु संगत की कोई इच्छा नहीं। अंतर्मुख वृत्ति है। इसका भी जीवन संतोष कारक रीति से बीते ऐसी व्यवस्था कर देना है।"

एक महाराष्ट्रीय युवक २१-९-४१ के अपने पत्र में उनसे प्रेम की भिक्षा इस प्रकार मांगते हैं—

"मैं आपके पास एक भिक्षा मांग रहा हूँ।....की दृष्टि में परिवर्तन करने में आप अपनी शक्ति डालिए। आपमें काफी वात्सल्य और दया है।

प्रेम से दूसरों को जीतने की काफी शक्ति है। अगर आप दिल पर लें तो यह काम आसानी से कर सकेंगे। वह वहां अभी छः महिने रहेगी। पूज्य बापूजी की विचार-धारा का मुख्य केन्द्र है वर्धा। वहांके वातावरण में अगर आदमी के हृदय में परिवर्तन न हो सके तो दूसरी जगह होना असंभव है। उसी दृष्टि से इसकी पढ़ाई के लिए वर्धा भेजना निश्चित किया है। और उसने भी उसे मंजूर किया है।

"अब मेरी याचना तो यही है कि आप अपने प्रेम के बल से उसमें गांधी-जीवन का आकर्षण उत्पन्न करने की कोशिश करें। मैं इस बारे में हारा हूँ। इसलिए मैं आपकी शरण ले रहा हूँ। अनेकों के जीवन में आपने परिवर्तन किया होगा, अब . . . . . . के बारे में भी खयाल रखकर मुझे उपकृत कीजिए।"

उन्होंने कार्यकर्ताओं के लिए जितना पैसा खर्च किया, उनके लिए जितना कष्ट सहन किया और उनके स्वाभिमान का जितना खयाल रखा उतना शायद ही किसी नेता ने किया होगा। कार्यकर्ताओं को पहले वे अपने पास रखकर अपने मन्त्री का काम लेते थे; बल्कि इस प्रकार उनको शिक्षण देते थे। फिर उनको जुदा-जुदा कामों में लगा देते थेइन। की संख्या दर्जन से ऊपर पहुँच जाती है। प्रायः सबकी वफादारी उन्हें मिली। सरकारी नौकरी से रिटायर होने वालों को सार्वजनिक कामों में लगाने का भी बड़ा खयाल रखते थे।

जहां कठिनाई व संकट आ पड़ता वहा जमनालालजी अवश्य पहुँच जाते। बिहार भूकंप की सेन्ट्रल रिलीफ कमिटी की जिम्मेवारी उन्होंने ली थी। सरदार पटेल ने उस अवसर पर उन्हें जो पत्र लिखा था वह भी जमनालालजी के इस गुण पर अच्छा प्रकाश डालता है—

सेन्ट्रल प्रिजन, नासिकरोड
१–४–३४

"प्रिय भाई जमनालालजी,

बापू के पत्र से मालूम हुआ कि आप तो बिहार में ही जुट गये हो। यह अच्छा हुआ। वहां एक मंजे हुए व्यक्ति की जरूरत तो थी ही। वहां का काम कैसा चल रहा है? बाहर के लोग यदि वहां ठीक काम न करते हों तो उन सबको वहांसे हटा दीजिएगा।

हमारी वहां पूरी-पूरी परीक्षा होने वाली है। ऐसा कुछ न हो जिससे हमारी लाज चली जाय। कोई व्यक्ति ऐसा हो जिससे हमारी इज्जत जाती हो तो उसे वहां खड़ा मत रहने दीजिएगा। जब सहयोग दिया है तो उसे पूरा-पूरा सुशोभित कर देना हमारा काम है। और इसमें आपको कहने की जरूरत ही क्या है? यह तो आपकी रुचि का ही है। इसलिए आपका वहां सब ठीक-ठाक बैठ जायगा। और आपकी बुद्धि व कुशलता का पूरा उपयोग होगा।

आपकी तबियत तो अच्छी रहती है न? आपका मुख्य केन्द्र कहां रखना है? समय-समय पर समाचार देते रहियेगा। जानकीदेवी कहां हैं? उनकी तबियत कैसी है? सबके समाचार लिखिएगा।"

वल्लभ के वन्दे मातरम्

गांधीजी ने भी ३०–१–३४ को उन्हें अपने एक पत्र में लिखा था—"आप जिस काम को हाथ में ले लेते हैं वह जल्दी नहीं छूट सकता, इसमें मुझे कोई शंका नहीं रहती।"

जमनालालजी जिस बात को सही समझते थे उसे ही दूसरों को बताते थे। और उसमें उनका नेतृत्व करते थे। उनमें तथ्य की पकड़ और विचारों की निर्मलता कितनी थी यह उनकी डायरी के पन्नों में दिखाई देती है।

पार्टीबन्दी और शक्ति प्राप्त करने की राजनीति से दूर रहकर वे किस तरह राजनैतिक मामलों को सही दृष्टि से देखते थे और उन पर सही-सही विचार व्यक्त करते थे उसपर नीचे दिये गए उनकी डायरी के कुछ नोट अच्छा प्रकाश डालते हैं:—

१६ अप्रैल, १९३६

"जवाहरलाल और सरदार को मैंने अपनी स्थिति बताई। मेरा नाम आखिर कार्य-समिति में रख ही लिया गया। इससे थोड़ी अशान्ति। जवाहरलाल आये, साथ में मौलाना आजाद भी। बापू से देर तक बातचीत। मुझे भी थोड़ा क्रोध आया, जो कहना था कहा।"

२९ दिसंबर, १९३६

"सरदार व राजेन्द्र बाबू जबर्दस्ती मुझे ले गये। स्त्री-स्वयंसेविकाओं के वहां सब गये। बाद में वर्किंग कमेटी की चर्चा। बिना इच्छा उसमें भाग लेना पड़ा। और पं० जवाहरलाल, सरदार, राजेन्द्र बाबू आदि के आग्रह के कारण एक बार नाम अनाउन्स करने की इजाजत देनी पड़ी।"

२० मार्च, १९३७

"वर्किंग कमेटी ११ से १ व रात्रि में ८ से ११।। तक हुई। पं० जवाहर-लाल ने अपना खुलासा रखा और अपनी भूल हृदय व अन्तःकरण से स्वीकार की। इसका मन पर बड़ा असर हुआ और उनके प्रति आदर व भक्ति पैदा हुई। जवाहरलाल से वर्किंग कमेटी के पहले व रात के ११।। से १२ बजे तक दिल खोलकर बातें हुई। क्रोध प्रेम में परिवर्तित हुआ। आदर बढ़ा।"

२८ जुलाई, १९४०

"ठहराव पास तो हुआ, परन्तु मन में समाधान नहीं मिला। जवाहरलालजी का भाषण ठीक हुआ। राजाजी का भाषण व जवाब तो ठीक था, परन्तु बापू के बारे में अव्यावहारिक आदि समालोचना

इन्होंने व सरदार ने की वह बहुत बुरी मालूम हुई। क्योंकि इन लोगों के मुंह से इन बीस वर्षों में पहली बार इस प्रकार सुनने को मिला। वैसे तो मेरी भी राय इनके साथ थी, परन्तु वह तो कमजोरी आदि के कारणों को लेकर।"

२३ अगस्त १९४०

'बापू ने वर्किंग कमेटी के आगे विचार रखे। वर्किंग कमेटी के सर्वानुमत से प्रेसिडेंट मौलाना सा० ने बापू को पत्र लिखकर दिया। उसमें प्रार्थना की कि यह मार्ग स्वीकार न करें। बापू ने मंजूर किया।"

२४ अगस्त, १९४०

"मौलाना सेवाग्राम बापू से बिदा लेने गये। मैं भी साथ में था। बापू से बातचीत होती रही। उस पर से अधिक बातचीत होना जरूरी है। इसलिए मौलाना ने कलकत्ते जाने का विचार मुल्तवी कर दिया। फोन से मेरे कहने पर बापू ने एक मसविदा बनाकर दिया। वर्धा आकर सरदार, राजेन्द्र बाबू और भूलाभाई को दिखाया गया। मौलाना ने वह जवाहरलाल को दिखाया। वह स्वीकृत नहीं हो सका। दोपहर को फिर बापू से मिलने का प्रोग्राम। मौलाना, जवाहरलाल, राजाजी, सरदार, भूलाभाई, मैं, डाक्टर महमूद आदि गये। बातचीत के सिलसिले में यह निश्चय हुआ कि मौलाना, सरदार, जवाहरलाल, तीनों बापू से मिलकर नया मसविदा बनावें। बाकी के वर्किंग कमेटी के मेम्बर जो रह सके, भाग लें। इसलिए विचार-विनिमय शुरू हुआ। राजाजी, भूलाभाई, कृपलानी तो आज चले गये।"

२५ अगस्त, १९४०

"बापू सेवाग्राम से सवा नौ बजे के करीब आये थे। उस समय से ११ बजे तक और दोपहर में ढ़ाई से रात के नौ बजे तक बापू के साथ मौलाना आजाद

पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई, राजेन्द्र बाबू, मैं, सरोजिनी नायडू व डाक्टर सैयद महमूद बातचीत करते रहे। आखिर में संतोषजनक परिणाम निकला। बापू को संतोष हुआ। जानकर सुख मिला।"

२६ अगस्त, १९४०

"राजेन्द्र बाबू भी थर्ड में ही रहे। तबियत ठीक रही। राजेन्द्र बाबू को मौलाना आजाद ने भी एक माह तक के लिए उधर रहने की इजाजत दे दी। कल बापू ने जो निर्णय किया उस पर मौलाना ने संतोष जाहिर किया।"

१५ जनवरी, १९४१

"ए०आई० सी० सी० में मौलाना का भाषण थोड़ा लंबा व पुनरावृत्ति के साथ तो हुआ, परन्तु बहुत ही स्पष्ट, खुलासेवार, नम्रता भरा हुआ और बापू के प्रति श्रद्धा से भरा हुआ था। मेरी आंख में तो पानी आ गया—भाषण के बीच में। बापू ने भी परिस्थिति स्पष्ट कर दी। उन्होंने कहा मैं बनिया हूँ और बनिया ही मरना चाहता हूँ। मैं अपने को व्यावहारिक समझता हूँ। हवा में उड़नेवाला नहीं। मैं तो ऐरोप्लेन में भी नहीं बैठा हूँ, दूर से ही देखे हैं। जवाहरलाल का भाषण भी ठीक हुआ। उन्होंने कहा—"बापू सौ फीसदी व्यावहारिक हैं। यह मेरा अनुभव है। हां, मैं हवा में उड़ने वाला हूँ, यह मुझे मालूम है।"

१३ जनवरी १९४२

"गोपुरी में दोपहर की मीटिंग में बापूजी भी आये। ठीक चर्चा, विचार-विनिमय हुआ। मेरे त्यागपत्र के बारे में बापूजी ने कहा कि मौलाना तथा अन्य सदस्यों की वृत्ति त्यागपत्र स्वीकार करने की नहीं है। तो फिर मुझे आग्रह इस समय नहीं करना चाहिए। मैं अपने मन पर बोझ नहीं रखूंगा।"

नेता का एक बड़ा भारी गुण होता है देश और विदेश की घटनाओं पर सूक्ष्म दृष्टि रखना और परिस्थिति से लाभ उठाकर चलना लेकिन जहाँ वह परिस्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न करता है वहाँ परिस्थिति को अनुकूल बनाने का भी उसे प्रयत्न करना पड़ता है। यह काम भी सरल नहीं होता। प्रायः किसी भी आन्दोलन में कुछ विरोधी विचार के लोग होते हैं। और वे उसे असफल बनाने के लिए लोगों में बुद्धि-भेद पैदा करने का प्रयत्न करते हैं, ऐसी स्थिति में अनुकूल वातावरण बनाने के लिए नेता को अपने विचारों का प्रचार तथा भ्रमपूर्ण बातों का निराकरण करना पड़ता है। यदि उसमें अपने विचारों के प्रचार और दूसरो की भ्रमपूर्ण बातों का निराकरण करने की शक्ति नहीं है तो वह अच्छा नेतृत्व नही कर सकता। जमनालालजी यद्यपि पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन वे अपनी सच्चाई, ईमानदारी, त्याग और सेवा के बल पर देश के सर्वोच्च नेताओं में गिने जाने लग गये थे। उन्होंने स्वयं कई आन्दोलन चलाये थे। देशी-राज्यों की राजनीति में तथा ब्रिटिश भारत की राजनीति में समान रूप से दिलचस्पी ली थी और जिम्मेदारी के पदों पर काम किया था। अतः उन्हें हमेशा अपने विचारों को दूसरों के सामने रखना पड़ता था। उनके विचारों के पीछे उनके त्याग, सेवा और क्रियाशीलता रहते थे। इनके अतिरिक्त वे शुद्ध हृदय से बातें कहते थे; अतः पाडित्य का अभाव होने पर भी वह लोगों पर असर किये बिना न रहती थी। साथ ही गलतफहमी और दूसरों के द्वारा फैलाये हुए भ्रम को दूर करने के लिए भी उन्हें वक्तव्य, भाषण आदि देने पड़ते थे। उनके इन भाषणों और वक्तव्यों को जिन्होंने सुना है, वे जानते हैं कि वे कितने सीधी-सादे पर सही बात को स्पष्ट करने वाले और मार्मिक होते थे।

नेता का दूसरा बड़ा गुण है दृढ़ता। ऐसे अनेक अवसर आते हैं जहाँ उसे कठोर बनना पड़ता है। नरम और ढीला-ढाला आदमी जोर के साथ अपनी बात नहीं कह सकता। जबतक वह अपनी बातों का दृढ़ता से पालन

नहीं करता तबतक दूसरों का विश्वास भी उसपर नहीं जम सकता। जमनालालजी में कोमलता काफी थी। वे सहृदय थे। सभी लोगों के प्रति खासकर, दलितों, दुःखियों और गरीबों के प्रति उनकी जबरदस्त सहानुभूति और स्नेह था। उनका हृदय कुसुमादपि कोमल था। फिर भी जहाँ सिद्धान्तों, आदर्शों और सच्चाई का प्रश्न आता था वे वज्रादपि कठोर भी थे। उन्होंने कभी अन्याय, असत्य और अत्याचार से समझौता नहीं किया। कभी उनके सामने नहीं झुके। वे वर्षों जेल में रहे, कई तरह के कष्ट सहे लेकिन उनकी दृढ़ता कभी भी नहीं हिली। उनके राजनैतिक जीवन की दृढ़ता की बातें तो अन्य प्रसंगों में आ चुकी है। गांधीजी की बीमारी के समय डाक्टरों का आदेश पाकर वे कितने कठोर बन जाते थे इसके दो उदाहरण देते हैं:—

सन् १९३७ की बात है गांधीजी बीमार थे। डाक्टरों ने राय दी थी कि उन्हें आराम करना चाहिए और उनसे लोगों का मिलना-जुलना बहुत कम कर देना चाहिए। राजकुमारी अमृतकौर किसी काम से नागपुर आ रही थीं। उनका गांधीजी से जितना निकट का सम्बन्ध था वह किसीसे छिपा नहीं है। लेकिन जब उन्होंने गांधीजी से मिलने की इजाजत चाही तो जमनालालजी ने उन्हें नहीं दी। इस पर राजकुमारीजी ने जो पत्र उन्हें लिखा वह यहाँ दिया जा रहा है।

जालन्धर
१४-१२-३७

'प्रिय भाई जमनालालजी,

मीरा ने मुझे लिखा है कि मुझे भी बापू के पास आने की इजाजत आप देने को तैयार नहीं है, अतः मैं नागपुर से ही सीधे यहीं लौट आऊँगी।"

अमृतकौर

इसी प्रकार एक बार लीलावतीबहन तथा महादेवभाई को भी जमनालालजी की कठोर कर्तव्य-परायणता के आगे हार माननी पड़ी थी। बापू बीमार थे और जमनालालजी उनके पहरेदार। लीलावतो बहन बापू की बहुत निकटवर्तिनी थीं। उन्हें जमनालालजी ने जाने से रोक दिया तो उन्होंने महादेवभाई की शरण ली। महादेवभाई ने कह दिया अच्छा मेरे साथ चली चलना। लेकिन जमनालालजी ने फिर भी रोक दिया—तो महादेवभाई भी सहानुभूति में या शायद रूठ कर लौट आये। पर जमनालालजी अडिग रहे।

गांधी मार्गी नेता से अपने से, विरोध या मतभेद रखने वालों को अपने सौजन्य, समभाव, स्नेह से जीतने की अपेक्षा रखी जा सकती है। जमनालालजी सदैव इसमें पास होते थे। बापू से जिन-जिनका मतभेद या झगड़ा होता जमनालालजी सदैव उस खाई को पाटने का प्रयत्न करते। फिर वे जवाहरलाल हों, सुभाष बाबू हों, डा० खरे हों, मुंजे हों, जयप्रकाशजी हों या अमृतलाल सेठ हों। इसी तरह जो अपने से दूर चले गये हों, फिर वे पथिकजी हों, सेठीजी हों, रामनारायणजी हों, जयनारायणजी हों, बाबाजी हों, उन्हें नजदीक लाने का अथक परिश्रम करते। लड़ते-भिड़ते रहते हुए भी, भीतर से स्नेह का सोता सदा हरा-भरा रखते थे। नेतृत्व का यह गुण बहुत कम नेताओं में दिखाई देता है। जरा मतभेद होते ही टाँग पकड़-कर घसीटने की जो होड़ इन दिनों चल रही है उसे देखते हुए उनका यह गुण 'ईश्वरी' मालूम होता है। नेता वह है जो दूसरों को आगे ले जावे वह नहीं जो दूसरों को पीछे फेंक दें। जमनालालजी सच्चे अर्थ में नेता थे। बुजुर्ग वह जो दूसरों को, छोटों को, संकट में उनकी कमजोरियों को भूल कर संभालता रहे—जमनालालजी ऐसे ही बुजुर्ग भी थे।

: ६ :

साधु वणिक

"मेरे बाद व्यवसाय-कार्य बन्द कर दिया जाय। अगर व्यवसाय-कार्य किया ही जाय तो वह सत्यता के साथ व जिस व्यवसाय से देश को पूरा लाभ पहुँचता हो वही करना चाहिए। बाकी बन सके वहाँतक व्यवसाय के झगड़े में न पड़कर आत्म-शुद्धि के व्यवसाय में ही जीवन बिताने की चेष्टा करना, मेरे पीछे रहने वालों को, मेरी सलाह है। साधारण खर्च निर्वाह करना। व्यवसाय-उद्योग उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार करते रहने से वैश्य-धर्म का पालन भी हो सकेगा तथा आत्म-उन्नति करते निस्स्वार्थ भाव से देश-कार्य भी हो सकेगा।"

—जमनालालजी (मृत्युपत्र १५ मार्च, १९२१)

"मेरे लिए तो वही मेरी काम-धेनु थे। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उन्होंने अनीति से एक पाई भी नहीं कमाई और जो कुछ कमाया उसे उन्होंने जनता-जनार्दन के हित में ही खर्च किया।"

—गाँधीजी

"सच्चाई व्यापार की उन्नति का मूल है। जल्दी लाभ उठा लेने के लोभ से जो लोग आतुर होकर कुछ झूठ या धोखे का उपयोग करते हैं, सम्भव है, एक-दो बार सफल हो जायँ; पर उनका व्यापार चिरस्थायी नहीं हो सकता। साख से बढ़ कर व्यापारी का सहायक कोई नहीं।"

—जमनालालजी

यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत सस्तेनोदण्डमर्हति॥

—श्रीमद्भागवत् ७।१४

अर्थात् प्राणियों का अधिकार उतने ही द्रव्य पर है जितने से उसकी उदर-पूर्ति होती है। जो व्यक्ति उससे अधिक वस्तुओं पर अपना अधिकार मानता है वह चोर है तथा दण्ड का भागी है।

यह बात जमनालालजी पर सोलहों आना लागू होती है। वह व्यवसायी थे। बड़े व्यापारी थे। और यदि चाहते तो और भी अधिक धनी हो जाते। लेकिन, व्यवसायी होते हुए भी उनकी वृत्ति उस प्रकार की नहीं थी जिसको आजकल हम व्यवसायी की वृत्ति मानते हैं। कभी भी अधिक लोभ या लालच से उन्होंने झूठ का आश्रय लेकर पैसा कमाने या जोड़ने की कोशिश नहीं की। बल्कि न्याय और सच्चाई से जितना कमा सकते थे उतना ही कमाया। उनकी इस वृत्ति को देखकर ही श्री कन्हैया-लाल मुन्शी ने उनको 'साधु वणिक' कहा है।

जमनालालजी व्यवसायी वणिक के ही कुल में जन्मे व व्यवसायी के ही यहाँ गोद आये। व्यवसाय में उन्हें लगना भी पड़ा। बहुत छोटी उम्र में ही उनका श्री रामनारायण रुइया व डेविड ससून तथा टाटा जैसे बम्बई के तत्कालीन व्यवसायियों से संपर्क हो गया और वे बच्छराजजी की उपार्जित संपत्ति में वृद्धि करने लगे। संवत् १९७० में बम्बई की दुकान—बच्छराज जमनालाल का काम शुरू हुआ। उसमें मुख्यतः रुई का काम-काज ही हुआ करता था। बच्छराज जमनालाल का काम तो बढ़ाया ही, (हर साल ४०००० गाँठ का काम होता था, हर साल पौन लाख से १¼ लाख तक मुनाफा होता था) परन्तु बाद में बच्छराज कंपनी खोली, जिसमें श्री रामेश्वरदास बिड़ला, श्री रामनारायण

रुइया, श्री नारायणलाल पित्ती जैसे प्रतिष्ठित व्यवसायी सम्मिलित हुए। न्यू इंडिया इन्श्योरेन्स कंपनी कायम की। यदि वे देश-सेवा की लगन को छोड़ कर केवल व्यवसाय में ही लगे रहते तो आज भारत के चोटी के व्यापारियों व उद्योगपतियों में उनकी गणना हुई होती। उनकी बुद्धि व दृष्टि दोनों तीव्र थी व बहुत जाग्रत तथा सावधान पुरुष थे—जो व्यवसायियों का पहला गुण होता है। राजनीति उनका प्रधान क्षेत्र हो गया था, फिर भी व्यापारियों के साथ उन्होंने अपना घनिष्ठ और मधुर सम्बन्ध अन्त तक बनाये रक्खा। वे बापू तथा कांग्रेस के सामने हमेशा व्यापारियों का दृष्टि-बिन्दु रखते थे और भिन्न-भिन्न आन्दोलनों में व्यापारियों की सहानुभूति प्राप्त करने की पूर्ण कोशिश करते थे व उनको सफलता भी मिलती थी। आज क्या कांग्रेस व क्या कांग्रेसी सरकार दोनों में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं रहा जो व्यापारियों के व उनके बीच पुल का काम दे सके। वे होते तो दोनों को कई पेचीदा स्थितियों से बचा लेते। सभी लोग आज उनके अभाव को महसूस करते हैं।

लेकिन वे एक आदर्शवादी व्यवसायी थे। गांधीजी की छाप उनपर गहरी लगी थी। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की तरह व्यापार, व्यवसाय, उद्योग में भी वे सत्य पर जोर दिया करते थे। अक्सर कहा जाता है कि व्यापार अकेले सत्य के भरोसे नहीं चला करता। जमनालालजी इसे नहीं मानते थे और उन्होंने अपने व्यापारिक जीवन में इसे झूठ साबित कर के दिखा दिया। उनके अत्यन्त निकट के परिचित व्यक्ति भी यह नहीं कह सकते कि उन्होंने व्यापार में कभी असत्य के साथ समझौता किया हो। मुनीमों को हिदायत थी कि हर काम नेकनीयती और ईमानदारी से किया जाय। दुकान के कार्यकर्ताओं के खिलाफ शिकायतें बहुत ध्यान से सुना करते थे। उन्होंने व्यापार के कुछ नियम बना रखे थे, जो यहाँ दिये जाते हैं:—

१—जब तक पढ़ न लो, किसी कागज पर कभी दस्तखत न करो।

२—सिर्फ इस उम्मीद पर कि मुनाफा होगा, कभी पैसे की जोखम न उठाओ।

३—कभी इनकार करने से न डरो, अपनी बात को मनवाने की ताकत हर उस आदमी में होनी चाहिए, जो जीवन में सफलता चाहता है।

४—जो अनजान हैं, उनसे सावधानी के साथ व्यवहार करो, यह नहीं कि उनसे सशंक रहो।

५—व्यवसाय के मामले में हमेशा साफ सच्चे—बेलाग—और बेदाग रहो, और हर चीज को लिखावट में रखो।

६—किसी के जामिन बनने से पहले, उसे अच्छी तरह जान लो।

७—एक-एक पाई का पक्का हिसाब रक्खो।

८—वक्त के पाबन्द रहो, जब जिससे मिलना हो, उसे उसी वक्त मिलो।

९—जितना कर सकते हो, उससे ज्यादा की उम्मीद न दिलाओ।

१०—सच्चे बनो, इसलिए नहीं कि इसीमें फायदा है।

११—जो कुछ करना है, आज ही कर लो।

१२—सफलता का ही विचार करो, उसीकी बातें करो, और तुम देखोगे कि तुम सफल होते हो।

१३—शरीर और आत्मा की अपनी ताकत पर ही भरोसा रक्खो।

१४—कड़ी मेहनत से कभी न शरमाओ।

१५—साफ बात कहने में संकोच मत करो।

व्यापार-व्यवसाय की व्यवस्था उन्होंने १९२० में ही बाँध दी थी—वही ठेठ तक काम आती रही।

किसानों और गरीबों को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से 'बच्छराज खेतीज' के नाम से एक कंपनी खोली और ४-५ गाँव में गो-सेवा भी शुरू की थी। खेती में किस प्रकार मुनाफा किया जा सकता है, यह बताना तथा गरीबों की सेवा इसका उद्देश्य था। वर्धा जिले में पानी की कमी से बेकारी फैली तो उन्होंने कंपनी से कहा कि बेकारों के लिए काम निकालो। किसानों को बिना ब्याज के १०,०००) दिये। लाखों रुपये लेने थे, पर अदालत में जाने की वृत्ति नहीं थी। मजबूरी से ही इजाजत देते थे। भलमनसाहत में ३-४ लाख रुपये डूब गये। मकानों का नाम रखने में नौकरों के नामों का भी खयाल रखते थे जैसे राठी-निवास, डालू-निवास, आदि। 'आप तिरे औरों को तारें' इस तरह उनका व्यावसायिक जीवन उन्होंने रक्खा था।

उनकी व्यावसायिक सत्यता के कई उदाहरण हैं। एक बार उन्हें मालूम हुआ कि उनके रूई के एजेण्ट वजन बढ़ाने के लिए रूई को भिगो दिया करते थे, जिससे एक तो उसका वजन बढ़ जाता था, दूसरे वह ज्यादा लम्बे धागे की दीखने लगती थी। जब जमनालालजी के ध्यान में यह चोरी आई तो उन्होंने उसे बन्द कर देने की आज्ञा मुनीमों को दे दी; और कहा कि हम सचाई को छोड़ कर व्यापार नहीं कर सकते। पहले तो मुनीम घबड़ाये, पर अन्त को जमनालालजी की सचाई की बात फैली और लोग महंगे दाम देकर भी उनकी खरीदी रूई खरीदने लगे और उनकी आमदनी भी बढ़ी।

रूई का सौदा हुआ करता था। उसमें पहले सच-झूठ चला करता था। जमनालालजी आग्रह करते थे कि खरीदी-बिक्री व सही भाव खरीदार को बताया जाय और हलका माल ऊँचे माल में कदापि न मिलाया जाय, भले ही मुनाफा कम रहे। सट्टा नहीं होता था। जितनी माल की खरीदी होती थी उतना ही बेचा जाता था। जो माल सौदे में दिया जाता था उसकी

डिलीवरी में माल नामंजूर होने का प्रसंग कभी नहीं आया, उल्टे अधिक ही दाम आते थे।

एक बार उन्हें मालूम हुआ कि उनके मुनीम-गुमाश्ते चोरी से इनकम टैक्स बचा लेते हैं। उसका कोई ७५०००) इकट्ठा हो गया था। उन्हें यह अनुचित लगा व उसी दिन साबरमती जाकर महात्माजी से स्पष्ट कह दिया कि मुनीमों ने घूस देकर यह रकम मुझसे छिपा कर बचा रखी है। इस धर्म-संकट से छूटने का और मुनीमों को नसीहत देने का उपाय बापू ने बताया कि यह रकम परमार्थ में लगा दो। जमनालालजी ने उसी क्षण वह रकम दान कर दी और चेक ले जाकर बापू को दे दिया।

वे सदैव इस बात पर जोर दिया करते थे कि व्यापार के साधन शुद्ध हों, किसीको धोखा न दिया जाय, किसीका शोषण न किया जाय, भले ही मुनाफा कम हो। इस तरह जो बचत या मुनाफा हो उसीको वे सही या सच्चा मुनाफा या आमदनी मानते थे। हिसाब के बड़े पक्के थे, और जब बाहर जाते तो जितने रुपये लेते थे पाई-पाई का हिसाब पूरा मिलाते । जब कभी फर्क आता तो तबतक चैन नहीं पड़ती जबतक कि उसका फर्क नहीं निकल जाता।

रूई की आढ़त का जब उनके यहाँ काम होता था, तब खरीदारों को रूई की गाठें तोड़ कर नमूना बताना पड़ता था। यह रूई आढतिये की मानी जाती थी और इस 'ऊपरी आमदनी' से हजारों की आमदनी होती थी। जमनालालजी ने इस आमदनी को नाजायज माना। उनकी राय में इसके वास्तविक हकदार वही थे जो रूई खरीदते हैं। उन्होंने अपने मुनीमों को मजबूर किया कि नमूने की रूई की रकम रूई के व्यापारियों में ही बाँट दी जाया करें।

एक बार टाटा का ध्यान जमनालालजी की ओर गया। वे युवक धनियों को उद्योग की ओर आकर्षित किया करते थे और इसलिए अपने

विविध उद्योगों के हिस्से (शेअर्स) मूल कीमत में दिया करते थे—भले ही बाजार भाव ऊँचा हो। उन्होंने जमनालालजी को भी ५ हजार हिस्से ससून-ग्रूप के खरीदने के लिए कहा। उन्होंने खरीद लिय। मगर उन्हें पता चला कि इनका बाजार भाव १४ प्रति हिस्सा है, जब कि टाटा ने उनसे सिर्फ १०) प्रति हिस्सा (मूल कीमत) लिया था। उन्होंने फौरन् टाटा को पत्र लिखा कि यदि ये हिस्से खरीदना मेरे लिए आप लाभदायक मानते हों तो मैं १४) के भाव में ही इन्हें खरीद सकता हूँ, कम में नही। और हिस्से वापिस लौटा दिये। इसके फलस्वरूप टाटा जमनालालजी की ओर और भी आकर्षित हो गए। फिर जब जमनालालजी के सुझाव और टाटा की मदद से 'न्यू इंडिया' इन्शोरन्स कंपनी खुली तो टाटा ने इस कंपनी के सारे हिस्से जमनालालजी को Underwrite (अधिगोपित) कर दिये, जिससे उन्हें १२ लाख का लाभ हुआ। यह जमनालालजी की सचाई का फल था—१२ हजार खोये तो १२ लाख मिले।

सेठ रामनारायणजी रुइया बम्बई के प्रसिद्ध व्यापारी और उद्योगपति थे। ससून-ग्रूप से उनका घनिष्ठ संबंध था। ससून साहब ने अपनी वरोरा-वाली जिनिंग-प्रेसिंग फैक्टरी बेचने के लिए रामनारायजणजी से कहा। उन्होंने सब छानबीन कर के फैक्टरी जमनालालजी को बेच दी। ससून को ऐसा लगा कि इसके अधिक दाम आ सकते हैं। रामनारायणजी शशोपंज में पड़ गये। जमनालालजी ने उनकी कठिन स्थिति को फौरन समझ लिया और कहा—ससून साहब से आप कह दें, जो व्यापारी ज्यादा कीमत देना चाहते हों उन्हें फैक्टरी बेंच दें। जमनालालजी की इस सचाई और उदारता से रामनारायणजी व वे आजन्म मित्र बन गये और वे अपने एक विश्वस्त कुटुम्बी की तरह जमनालालजी पर विश्वास करने लगे।

कभी कभी जब मित्रों में व्यावसायिक मसलों पर मतभेद हो जाया करते हैं, तब उनका आपस का मिलना-जुलना और आपस में बोलना-

चालना भी बन्द हो जाया करता है। एक बार जमनालालजी का सेठ रामनारायण रूइया से मतभेद हो गया। तीव्रता देखकर लोगों ने अनुमान किया कि अब ये आपस में कभी नहीं मिलेंगे। व्यक्तिगत मामलों में अगर जमनालालजी को रूइयाजी से मिलना पड़ता तो बात अलग थी। पर सार्वजनिक काम में अपने संबंधों के कारण कोई क्षति होने देना उनको असह्य था। बम्बई के विद्यालय के लिए चन्दा एकत्र करने का काम जमनालालजी के सिपुर्द किया गया। जमनालालजी तुरन्त रूइयाजी के यहाँ पहुँचे और दान के लिए कहा। उत्तर-स्वरूप रूइयाजी ने उतना ही देने की इच्छा प्रकट की जितना जमनालालजी दें। तुरन्त जमनालालजी ने दस हजार लिख दिये और रूइयाजी से भी १० हजार का दान ले लिया। लोगों के आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। कहाँ तो एक दूसरे से न मिलने की कल्पना और कहाँ १० हजार का दान ले आने की घटना।

जमनालालजी की एक गन्ने की फैक्टरी गोला (यू० पी०) में है। एक बार सरकार ने गन्ने की कीमत पर नियंत्रण लगा दिया था। इससे स्वभावतः फैक्टरीवालों को नुकसान था और इसलिए सब फैक्टरीवालों ने उस कानून का विरोध किया। लेकिन जमनालालजी ने कहा कि अपना व्यवसाय सिद्धान्त पर अवलंबित है। हम यह बात मानते हैं कि यह नियंत्रण बिलकुल जरूरी है। इसलिए हमें इस विरोध में भाग नहीं लेना है। इस सम्बन्ध म श्री केशवदेवजी नेवटिया ने जो बच्छराज कंपनी के मैनेजिंग डायरेक्टर और जमनालालजी के परम विश्वासपात्र, सच्चे हितैषी और सात्विक वृत्ति के सज्जन हैं एक पत्र लिखा था, जिससे इस बात पर प्रकाश पड़ता है—

चि० रामेश्वर,

आशीष।

"तुमने हिसाब के साथ रिपोर्ट तैयार करके भेजी वह मुझे जरा कम

जँची। गन्ने के भाव फिक्स होने वाले हैं उनका विरोध दिखाना अच्छा नहीं रहेगा। श्री जमनालालजी से मैंने पूछा था। उनकी राय तो उसका अच्छी तरह समर्थन करने की है। वे कहते हैं कि अपनी स्थिति दूसरी मिलवालों से भिन्न है। हमें अपने सिद्धान्त नहीं छोड़ने हैं। उनकी यह भी राय है कि दूसरी मिलों के साथ में भी गन्ना-मूल्य-निर्धारण का विरोध नहीं किया जाय। मैंने अपने विचारों के अनुसार तुम्हारी रिपोर्ट पर से एक ड्राफ्ट बनाया है वह इसके साथ भेजता हूँ। सो तुम इसे देखकर और सुधारकर वापिस भेज देना। कोई बात ठीक न मालूम हो या झूठी मालूम हो तो उसे निकाल देना।"

केशवदेव की आशीष,

वह अपने व्यापार में कितने सच्चे थे यह बतानेवाली और एक घटना है। उस वक्त महाराष्ट्र के कुछ अखबार जमनालालजी पर यह आरोप करते थे कि वह कांग्रेस के खजांची-पद का दुरुपयोग करते हैं। रुपये पैसे में गड़बड़ करते हैं। जमनालालजी एक व्यापारी ठहरे। उनके लिए प्रत्यक्ष धन की अपेक्षा साख की कीमत ज्यादा थी। उन्हें लगा कि ऐसे हमलों का यदि मैं प्रतिकार न करूँ, चुपचाप बरदाश्त कर लूं तो लोग, खासकर व्यापारी, यह समझेंगे कि जरूर दाल में कुछ काला है।

इसके लिए वह कुछ उपाय सोचते थे। उनके मन में मानहानि का मुकदमा चलाने की आई। वह यह भी मन में सोचते थे कि मानहानि की नालिश करने से अपने-आप हमारे बहीखाते अदालत में पेश होंगे, सामनेवाली पार्टी को उनकी जाँच और छानबीन का अच्छा अवसर मिलेगा, जिससे लोगों का भ्रम स्वतः ही दूर हो जायगा।

इसपर गाँधीजी ने कहा कि जबतक आपके साथियों का विश्वास आपके ऊपर है तबतक आपको कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। जहाँ

तक आपके बहीखाते की शुद्धता का सवाल है वह बम्बई भेज दो और कुछ नियत समय पर लोगों को देखने के लिए खुले रख दो। उन्होंने बही-खाते तो बम्बई दुकान पर देखने के लिए रखवा दिये, किन्तु साथ ही 'चित्रा' तथा 'सावधान' दो पत्रों पर मानहानि की नालिश भी की जिसमें दोनों अखबार वालों को सजाएँ हुईं। बहीखाते की शुद्धता की जाँच भी अदालत में अच्छी तरह हो गई।

एक और किस्सा है जिससे जमनालालजी की कसौटी पूरी-पूरी हुई दिखाई पड़ती है। शुरू में केशवदेव के नाम पर एक दूकान थी जिसमें रामगोपाल हीरालाल तथा जमनालालजी साझीदार थे। बम्बई के मारवाड़ी विद्यालय को जमनालालजी ने ११,०००)दान दिये थे। यह बात रामगोपालजी को मंजूर नहीं हुई। तब जमनालालजी ने कहा कि अच्छा काम था इसलिए दी। उसे मेरे नाम पर लिख दो। लेकिन वह जिद करने लगे कि तुम फर्म से अलग हो जाओ। दूकान का सारा हिसाब नक्की करो। ६००० गांठें रूई की बची थीं वह तुरन्त ही बेंचने निकाली गईं। जीन प्रेस और मकान में से कौन सी चीजें कौन ले यह सवाल आने पर जमनालाल जी ने कहा—आपको जंचे वह चीज आप रखिए। रामगोपालजी को लगा कि जीन प्रेस चलाने में जमनालालजी को बहुत पैसा लगेगा और वह कठिनाई में आवेंगे इसलिए उन्होंने मकान और जायदाद ले ली। लेकिन बाद में रामगोपालजी को पछतावा होने लगा। जमनालालजी फिर से जीन प्रेस को वापस लौटाने के लिए तैयार हुए, लेकिन रामगोपाल ने वापस नहीं ली।

जमनालालजी ने धन कमाया; किन्तु नीति, न्याय तथा अपने सिद्धांतों के अनुकूल रह कर ही। यह नहीं कि चाहे जैसे अच्छे बुरे साधनों से सचाई ईमानदारी का बिना खयाल किये लाखों रुपये कमा लिये और उनमें से कुछ दान देकर धनी और दानी होने की कीर्ति प्राप्त कर ली। मेरी

जानकारी की एक बात है। लोगों के सुझावों व दलीलों से जमनालालजी ने अपने मन को यह समझा लिया कि कंपनी की ओर से कपड़े की मिल खरीदने व उसे चलाने में कोई हर्ज नहीं है। चरखा-संघ के अध्यक्ष या ट्रस्टी के लिए यह लाजमी है कि वह शुद्ध खादी पहने, पर यह लाजमी नहीं कि वह मिल का कपड़ा बनावे नहीं। जब वे कपड़ा-मिलों में शेयर ले सकते हैं तो फिर मिल चलाने में क्या दोष है। इस मिल लेने में उनका एक आशय यह भी था कि अन्य मिल-मालिकों का मजदूरों के साथ जो शोषण का व्यवहार रहता है उसके बजाय वे अपनी मिल में महात्माजी के विचारों के अनुसार मजदूरों को पूरी सुविधा दे सकें। सौदा तय हो गया और जमनालालजी मिल लेने चले भी गए। परन्तु जब श्रीमती जानकीदेवी को यह बात मालूम हुई तो वह महात्माजी के पास पहुँचीं और बोलीं, "बापू! हम खादी का तो प्रचार करते है और मिल के मालिक बन कर बैठेंगे तो लोग यह नहीं कहेंगे कि खुद तो मिल चलाते हैं और दूसरों को खादी का उपदेश देते हैं।" इस पर तुरन्त बापूजी ने महादेवभाई को कहा कि पत्र लिख दो कि मिल का सौदा नहीं किया जाय। बाद में ज्ञात हुआ कि पत्र पहुँचने से पूर्व ही जमनालालजी को ऐसा लगा कि उनके लिए मिल लेना सिद्धान्त का भंग करना ही है, इसलिए उन्होंने सौदा रद्द कर दिया। श्री केशवदेवजी नेवटिया के नीचे लिखे पत्र से भी इसका समर्थन होता है।

चि० रामेश्वर,

"काटन मिल लेने का जमनालालजी का विचार हुआ था। वह कोई जादा नफा होगा इस विचार से तो नहीं था। कंपनी के रूई के काम के कारण औरों से कुछ सुविधा रहती। उनका विचार जादा तो यह कर के दिखाने का था कि यहाँ मिल रिजनेबल फायदा कर के लेबर को भी संतुष्ट

रख सकती हूं। बाकी अब तो मिल (कपड़े की) कंपनी में आगे भी हो ऐसा नहीं मालूम होता। श्री जानकीदेवी आदि भी मिल लेने के खूब विरुद्ध हैं। वे समझती हैं कि खादी के पक्षपातियों को मिल के काम में नहीं पड़ना चाहिए। अच्छा हुआ मिल का उस दिन सौदा नहीं हुआ नहीं तो बिना उत्साह के काम में बहुत कठिनाइयां होतीं। खैर, अब तो कोई बात ही नहीं रही।"

इस प्रकार वे बिना सौदा किये ही लौट रहे थे कि बापू का यह पत्र मिला—

"वल्लभभाई से ज्ञात हुआ है कि आप कपड़े की मिल का सौदा करना चाहते हैं; आप यानी आपकी पेढ़ी। मुझे इसका आघात तो पहुँचा ही। जो इतनी गहराई तक खादी में उतरे हैं वह मिल के मालिक बनेंगे; यह अनुचित लगा। फिर भी मैं इस निश्चय पर न आ सका कि कुछ लिखूं। इतने में कल जानकीमैया आईं। उन्होंने जब से यह सुना है तब से उन्हें चैन नहीं पड़ती है। वे पूछती हैं कि "यह बला किसके लिए?" लड़के भी पसन्द नहीं करते। नौकर कहते हैं कि "अब तो घर की मिल होगी इसलिए सेठजी थोड़े ही खादी पहनने को कहेंगे?" यह कदम किसीको पसन्द नहीं है। इसलिए मिल यदि ली हो तो उसका विचार छोड़िएगा। अगर आप धन्दा ही करना चाहते हैं तो बहुत सारे व्यवसाय पड़े हैं। और परोपकार के लिए ज्यादा कमाना चाहते हैं तो परोपकार के बिना हम चला लेंगे। ओम[1] कहती हैं कि आप कांग्रेस के लिए धन चाहते हैं। क्या इसलिए काकाजी को मिल खरीदने की प्रेरणा कर रहे हैं?

बापू के आशीर्वाद

इसके बाद जब बापू को मालूम हुआ कि जमनालालजी ने मिल लेने

[1] जमनालालजी की सबसे छोटी लड़की उमादेवी।

का विचार त्याग दिया है तो उन्होंने उसपर अपना संतोष इस प्रकार जाहिर किया —

चि० जमनालाल,

"आपके पत्र मिले। मिल की झंझट से अच्छे बचे। उस बाघ के डर से यहाँ पर जानकी मैया और बालकों के मानस का सुन्दर अनुभव सामने आया। सब व्याकुल हो गए थे। यह मुझे अत्यन्त सुन्दर लगा। यह वृत्ति कायम रहे ऐसी आशा हम सदा करें।"

बापू के आशीर्वाद

वे सदैव यह अनुभव करते थे कि देश को गुलाम बनाने में भारतवासियों ने और खासकर व्यापारियों ने अंग्रेजों का हाथ बटाया है। व्यापारियों के लिए यह एक बड़ी लज्जा की बात है। अतः उन्होंने सच्चे मन से इसका प्रायश्चित्त किया। इस कलंक को धो डालने के लिए उन्होंने काफी प्रयत्न किया। व्यापार का सही रास्ता दिखा कर उन्होंने एक जीता-जागता आदर्श उपस्थित कर दिया। कई व्यापारियों को संकट में पड़ने पर अपने बूते से बाहर सहायता देकर काम-धन्धे से लगाया और उत्साहित किया।

चरखा-संघ के सभापति बरसों रहे। वह एक सेवा-संस्था थी। फिर भी चलती व्यापारिक पद्धति से थी। उसकी सेवा-भावना व शुद्ध प्रणाली का असर जमनालालजी के अपने निजी व्यवसायों पर भी बहुत पड़ा। उनमें भी वही भावना व शुद्ध प्रणाली प्रवेश पा गई।

लेकिन जमनालालजी के जीवन में व्यापार-व्यवसाय को प्रधान-पद कभी नहीं मिला। देश-सेवा और आत्म-साधना ही प्रधान लक्ष्य रही। उनकी अपनी बुद्धिमत्ता, कुशलता, स्नेह-सौहार्द्र या भगवान की कृपा अथवा साथियों की सहानुभूति व सहयोग-कुछ भी कहिये उसकी बदौलत बाद में उनके व्यापार-धन्धे की गाड़ी चलती रही। उनके पुण्य से उन्हें

अच्छे प्रामाणिक परिश्रमी व वफादार साथी मिल गये जिससे उनका बोझ कुछ-बहुत हल्का हो गया था। सिर्फ कभी-कभी आकर वे देख-भाल कर लिया करते थे।

बच्छराजजी की संपत्ति उन्होंने बहुत बढ़ाई तो साथ ही दान भी बहुत किया। बच्छराजजी उनके लिए पांच-छः लाख की संपत्ति छोड़ गये थे और जमनालालजी के कुल दान की ही संख्या लगभग २५ लाख हो जाती है। उन्हें व्यवसायी बड़ा कहें या दानी? यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि उन्होंने दान या सेवा के लिए ही व्यवसाय किया। और आखिर में बच्छराजजी की पूर्वोक्त कमाई के अलावा अपने पुत्र-कलत्र को कुछ देकर शेष सारी संपत्ति का 'सेवा-ट्रस्ट' बना गये।

व्यवसाय में वे सत्य का कितना ध्यान रखते थे, इस विषय में उनके गुरु विनोबा का यह प्रमाण-पत्र देखिए—

"सत्य और अहिंसा के वे अनन्य उपासक थे। व्यापार में सत्य कैसे टिकेगा, यह आजकल एक बड़ी समस्या हो गई है। वास्तव में व्यापार का टिकाव ही सत्य पर है। ईमानदारी, सच्चाई, वचन-पालन, समभाव, दयायुक्त न्यायबुद्धि, साथियों और नौकरों से कुटुम्बवत् व्यवहार करना, सबके सुख-दुःख में हिस्सा लेना, दक्षता, कुशलता, गणित-बुद्धि, दूर-दृष्टि, समाजहित-बुद्धि, सारासार विवेक, आदि गुणों के बगैर वैश्य-धर्म की कल्पना ही नहीं हो सकती। लेकिन इन दिनों जब कि लक्ष्मी को पैसे ने स्थान-भ्रष्ट कर दिया है, असत्य ही चातुर्य गिना जाता है। कठोरता कुशलता मानी जाती है, सत्य का व्यापार से नाता टूट गया है। ऐसी स्थिति में जमनालालजी जैसे हर चीज को सत्य के नाप से तोलनेवाले किस तरह व्यापार में सच्चाई रखने की निरन्तर कोशिश करते थे यह जानना बहुत लाभदायी है।" (जीवन जौहरी के 'दो शब्द' से)

: ७ :

सर्वस्व दानी

"मेरी जीवन बीमा-पालिसी की रकम १४-४-१९१९ को वसूल होने पर मारवाड़ी विद्यार्थियों को व्यवसाय-संबंधी शिक्षण-कार्य में अथवा उक्त समय पर और कोई अधिक जाति-हित का कार्य हो तो उसमें स्थायी-रूप से लगाई जावे।"

(मृत्युपत्र १९ अगस्त, १९१४ ई०)

"मेरे स्मारक के लिए मारवाड़ी शिक्षा-मंडल कमेटी वर्धा को रुपये एक लाख नकद या स्थावर जंगम स्टेट, ट्रस्टी लोग समझें उस तरह दे दें। इमारत अथवा स्कालरशिप के लिए कमेटी उचित रूप से वह कार्य करे। मेरी इच्छा तो उससे अधिक रुपये मण्डल को देने की है। सो ट्रस्टी लोग उस वक्त का मौका सब तरह से देखकर, अगर ज्यादा दे सकें तो ठीक ही है नहीं तो इतनी रकम तो अवश्य ही दें।"

(मृत्युपत्र १८ अप्रल, १९१६ ई०)

"मेरे बाद मेरे हिस्से के रुपयों या स्टेट में से कम से कम बारह आना हिस्सा महात्मा गांधी के सिद्धांत के अनुसार सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा तथा अन्य जगह, अगर सीकार-राज्य में संभव हो तो वहां पर उपरोक्त प्रकार का आश्रम खोलकर खर्च किया जाय अथवा मासिक सालाना के तौर पर भी जिस तरह से करने में आदर्श सत्याग्रह आश्रमों को विशेष लाभ पहुँचे, वैसा किया जाय।"

(मृत्युपत्र १५ मार्च, १९२१ ई०)

दान के बारे में संसार में दो विचार प्रचलित हैं—एक तो यह कि सत्पात्र को ही दान देना चाहिए। दूसरा यह कि जिसने तुम्हारे सामने आकर हाथ फैलाया उसकी पात्रता की जांच और क्या करनी थी? और फिर तुम पात्रापात्र का निर्णय करने वाले भी कौन हो? तुमने क्या सन्मार्ग से ही धन कमाया है? इसमें जमनालालजी किस विचार को पसंद करते थे यह तो निश्चित रूप से कहना कठिन है; परन्तु यह निर्विवाद है कि उन्हें दान देने में उतना ही आनन्द और संतोष मालूम होता था जितना कि एक भूखे आदमी को स्वादिष्ट भोजन पाने में। धन कमाने में वे भरसक न्याय और नीति का ध्यान रखते थे। अपने मुनीम गुमाश्तों और सहायकों को भी सावधान किया और रखा करते थे। फिर भी यह संभव है, उनके घर में कभी 'अशुद्ध कौड़ी' आ गई हो, लेकिन यह कोई नहीं कह सकता कि जहाँ दान की जरूरत थी वहाँ जमनालालजी का दान गुप्त या प्रकट रीति से नहीं पहुँचा। कई ऐसे अवसर आये हैं कि जमनालालजी ने खुद होकर व्यक्ति और संस्थाओं को दान दिया है। बल्कि वे कहा करते थे कि दान या सहायता लेने के लिए कार्यकर्ताओं और जरूरतमन्दों को धनवानों के पास आना पड़ता है यह दुःख की बात है। वास्तव में तो धनी लोगों को यह अपना सौभाग्य समझना चाहिए और दान लेनेवाले का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने उन्हें दान देने का सुअवसर दिया। वह कहा करते थे कि हम लोगों का जितना धन अच्छे कामों में लग जाता है उसीका सदुपयोग हुआ समझो। अपने इन्हीं विचारों के अनुसार वे सदैव अपने धन का सदुपयोग करने का प्रयत्न करते थे। कृपण को धन संग्रह करने में जितनी खुशी होती है उससे अधिक खुशी उन्हें दान देने में होती थी। शायद ही कोई राष्ट्रीय कार्यकर्ता और राष्ट्रीय संस्था इस देश में ऐसी होगी जिसको जमनालालजी की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहायता न मिली हो। बड़े-बड़े नेताओं और पुण्य पुरुषों के चरणों में तो सब कोई भेंट चढ़ाते हैं, परन्तु साधारण कार्यकर्ता तथा अपने से

मतभेद रखनेवालों को भी उन्होंने मुक्त हृदय से सहायता दी। इसमें जात-पात का कोई लिहाज उन्होंने नहीं रखा। यह उनकी खास विशेषता थी। 'अन बोलत मेरी बिरथा जानी' वाली कहावत उनपर चरितार्थ होती थी। कई लोगों को गुप्त रूप से सहायता दी और उन्हें बड़े प्रेम और आग्रह के साथ समझाया कि इस सहायता को स्वीकार कर लें। यही कारण है कि वे कार्य-कर्ताओं के हृदय को पकड़ लेते थे और कार्यकर्ता भी उनसे अपनी एकजीवता अनुभव करते थे। हां, देने से पहिले वे व्यक्ति या संस्था की छान-बीन जरूर कर लेते थे। कोरी भावुकता में आकर सहायता नहीं देते थे। परन्तु इस बात का सदैव ध्यान रखते थे कि सच्चा अर्थी और सुपात्र सहायता से वंचित न रह जाय।

१९२५ की बात है। खामगांव के तिलक राष्ट्रीय विद्यालय का विद्याभवन बनाने के लिए एक हजार रुपयों की जरूरत पड़ी। श्री पंढरी-नाथ अंबुलकर जमनालालजी से मिले और आवश्यकता का जिक्र किया। इसके पहले ही वर्ष जमनालालजी विद्यालय के वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष रह चुके थे। दो दिन के मुकाम में उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार संस्था का बारीकी से अध्ययन कर ही लिया था। उनको संस्था में हरिजन विद्यार्थी की कमी बहुत अखरी। जाते-जाते इस बात का उन्होंने इशारा भी किया था।

उपरोक्त एक हजार रुपये के दान का चेक देते समय जमनालालजी ने हरिजन विद्यार्थी संस्था में रखने की नैतिक शर्त रख दी थी। ऐसा विद्यार्थी न मिलने की दलील को उन्होंने सुन लिया, और एक ही महीने के अन्दर एक हरिजन विद्यार्थी वहां भेजा। मौका कसौटी का था। वह भरती कर लिया गया। उस हरिजन-विद्यार्थी के कारण संस्था के प्रति जमनालालजी का आत्मीय भाव और ज्यादा रहा। संस्था के बारे में पूछताछ करते समय वे हमेशा उस विद्यार्थी का क्षेम-कुशल प्रथम पूछते थे। इसी

आत्मीय भाव की बदौलत जमनालालजी पूज्य बापूजी को १९२७ में खामगांव ले आये और उनका मुकाम और सभा आदि का सारा कार्यक्रम विद्यालय में ही करवाया; और पूज्य बापूजी से विद्यालय के तेजस्वी अल्पारंभ की हृदय से सराहना कराई।

वर्धा के मुसल्मानों को जमनालालजी ने बहुत अपनाया। वे किसी साम्प्रदायिक संस्था को दान नहीं देते थे; किन्तु वर्धा के मुसल्मानों के बच्चों की शिक्षा के लिए उन्होंने दान दिया। जमनालालजी के प्रेम के खातिर वहाँ के मुसल्मानों ने गो-वध बन्द कर दिया था और जब शंकराचार्य कुर्तकोटी वर्धा गये तो उन्होंने एक गाय को शृंगार करके उन्हें भेट दी थी। जमनालालजी के प्रेम व सत्याग्रह की यह अपूर्व विजय थी।

प्रायः धनी लोग जब दान देते हैं तो उनके मन में अहंकार की भावना प्रबल हो जाती है। वे यह समझने लगते हैं कि वे स्वयं बड़े हैं और जिसे दान दे रहे हैं वे छोटे हैं। जब दानी में अहंकार आ जाता है तब न तो उसे अपने दान का उचित फल मिल पाता है न दान लेने वाले के मन पर ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। जमनालालजी हमेशा सात्विक भावना से ही दान दिया करते थे। उन्होंने अपने रुपयों का अधिक महत्व आंक कर कभी अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा नहीं समझा। वे प्रायः कहा करते थे—"रुपयों के लिए कोई काम नहीं रुक सकता। काम तो इसलिए रुक जाता है कि सच्चा काम करनेवाला नहीं मिलता।" उनके इन शब्दों में जहां अपने रुपयों को बहुत छोटा समझने की भावना निहित है वहां कार्यकर्ताओं को बड़ा समझने की भावना भी समाई हुई है। यही कारण था कि उनके आसपास कार्यकर्ताओं का एक बड़ा भारी समुदाय इकट्ठा हो गया था जो देश हित की अनेकानेक प्रवृत्तियों को चला रहा था। उन्होंने अपने धन के प्रति जो दृष्टिकोण रखा था उसे देखकर एक समाजवादी नेता ने कहा था—"यदि संसार

में श्री बजाजजी की भाँति धनियों का हृदय उदार और उनकी वृत्ति समाज-हित के लिए धन-वितरण करने की बन जाय तो समाजवाद की आवश्यकता ही न रहे।"

दानी प्रायः हिसाब लगाता है और जब देखता है कि जो कुछ वह दान दे रहा है उसके बदले में उसे काफी यश, मानप्रतिष्ठा या आर्थिक लाभ होने वाला है तभी दान देता है लेकिन इस प्रकार का दान कोई अच्छा दान नहीं होता। जमनालालजी ने दान देने के पूर्व कभी ऐसा कोई हिसाब नहीं लगाया। वे तो हमेशा यह देखते थे कि जिस कार्य या व्यक्ति को दान दिया जा रहा है वे अच्छे और प्रामाणिक हैं या नहीं। यदि वे अच्छे और प्रामाणिक हैं तो फिर वे इस बात की भी चिन्ता नहीं करते थे कि वह व्यक्ति या वह कार्य उनके अपने मत या विचार के अनुरूप है या नहीं। यही कारण था कि भिन्न-भिन्न विचार और विश्वास के लोगों को भी जमनालालजी ने उसी तरह आगे बढ़कर दान दिया जिस तरह अपने विश्वास और विचारों से मेल खाने वाले व्यक्तियों को। सन् १९३७ में उन्होंने श्री मणिबेन कारा को एक हजार रुपये वार्षिक की सहायता देना और दिलाना प्रारंभ किया था और बहुत दिनों तक देते रहे थे, जब कि मणि बेन के तथा जमनालालजी के विचार और विश्वासों में बड़ा अन्तर था।

दान देने में जो अहंकार की भावना दानी के मन में आ जाती है उससे उसे मुक्त करने के लिए हमारे यहां गुप्त दान की प्रथा शुरू हुई है। जमनालालजी को गुप्तदान बड़ा प्रिय था। दान उनके लिए अपने आत्म-संतोष का साधन था, किसी बाह्य लाभ का नहीं। एक बार जब सन् ३८ में डाक्टर जाकिर हुसेन बीमार हुए और जमनालालजी ने यह अनुभव किया कि उन्हें सहायता की जरूरत है तो उन्होंने डा० साहब के एक निकटस्थ व्यक्ति को चुपचाप २००) भेज दिये और लिखा—"मैं सहायता के लिए २००) भेज रहा हूँ। इसे आप सिर्फ उनकी दवादारू में ही खर्च करें। यह बिलकुल

निजी सहायता है। आप इसका किसीसे भी जिक्र न करें। और भी मेरे लायक कोई काम इस सिलसिले में हो तो आप मुझे लिखने में जरा भी संकोच न करें।" यह तो एक छोटा-सा उदाहरण है। इस प्रकार गुप्त रूप से न जाने कितने लोगों को उन्होंने सहायता दी है।

जमनालालजी ने ईमानदारी और सच्चाई से व्यापार किया और जो कुछ मिला उसे जनहित के कार्यों में लगा दिया। कुल मलाकर कोई २५ लाख का दान किया। वर्धा जाकर देखिए,उनकी जमीन और मकान संस्थाओं की जमीन और मकान बन गये हैं। ग्रामोद्योग संघ, सेवाग्राम-आश्रम, तालीमी-संघ, गोपुरी, परंधाम आश्रम, महिलाश्रम, काकावाड़ी सभी जमनालालजी के दान और त्याग के जीते-जागते स्मारक हैं। सत्याग्रहाश्रम, वर्धा का सारा खर्च वे उठाते थे। उन्होंने इन संस्थाओं में धन ही नहीं तन और मन भी लगा दिया था। पैसा देने वाले धनी बहुत मिल जाते हैं लेकिन धन के साथ अपना तन मन भी लगा देने वाले बहुत कम होते हैं। जमनालालजी का स्थान दुनिया के ऐसे गिने-चुने व्यक्तियों में है।

जब मगनलालजी गांधी का एकाएक स्वर्गवास हुआ तो जमनालालजी को बड़ा दुःख हुआ। उनकी स्मृति में मगन संग्रहालय की स्थापना हुई तो उन्होंने अपने बगीचे की सारी जमीन व मकान दे दिये, जो अब मगनवाड़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके बाद वहां ग्रामोद्योग संघ तथा विद्यालय बनवाने के काम में भी काफी पैसा दिया और उनकी सारी प्रवृत्तियों में दिलचस्पी ली। महिलाओं की उन्नति, गोसेवा, राष्ट्रभाषा-प्रचार, हरिजन-सेवा के लिए उन्होंने जो कुछ किया वह तो अलग-अलग अध्यायों में दिया जा रहा है। लेकिन ऐसी सैकड़ों संस्थाएं थीं जिन्हें उन्होंने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में तथा अन्य प्रकार की सहायता देकर व स्वयं काम करके बनाया था और जिनके काम में उन्होंने दिलचस्पी ली थी।

अपना बगीचा दान कर देने से पुराने लोग बहुत नाराज हुए। कहने

लगे—यह गांधी जमनालालजी का सब कुछ ले लेगा। उसके तीन ही दिन बाद जमनालालजी को सेवाग्राम मिल गया। यह एक विधवा का था जिस पर जमनालालजी का बहुत-सा रुपया लेना था, लेकिन मिलने की कोई खास आशा नहीं थी। उसने अपने आप इच्छा प्रकट करके पौन लाख के कर्ज में वह गांव जमनालालजी को दे दिया। तब लोगों ने सब से कहा-इस सेठ का नसीब बड़ा है, एक हाथ से देता है तो दूसरे हाथ से पाता है। पाठक जानते ही हैं कि यह सेवाग्राम भी जमनालालजी ने गांधीजी को दान कर दिया था।

जमनालालजी यद्यपि स्वभाव ही से दानी थे, फिर भी उन्हें गांधीजी जैसे आदर्श भिक्षुक से शिक्षा मिलती रहती थी। यहां गांधीजी के दो पत्र दिये जाते हैं जिनसे मालूम होगा कि वे दाता को किस प्रकार से अन्तः-करण पूर्वक दान देने के लिए प्रोत्साहित करते थे।

नडीयाद

सुज्ञ भाई जमनालालजी,

"मैं मुंबई से कल रात को आया। भ्रमण में रहने से पत्र आज तक नहीं लिख सका। आपका पत्र आने से मैं निश्चिंत हो गया हूँ। भाई अंबालालजी ने रु० ५००० भेज दिया है और भाई शंकरलाल बैंकर ने रु० ४००० दिये हैं। जो भाई मेरी भिक्षा का अनादर नहीं करते हैं उनको मेरी जरूरियत सुनाने में मुझको न संकोच लगता है, न सुनाना अशक्य होता है। इसलिए मेरी तीव्र इच्छा है कि जब मेरी भिक्षा स्वीकारने में हरज हो उस वखत अस्वीकार करने से मेरे पर अनुग्रह होगा।"

जे० शु० १४ सं० १९७५ आपका मोहनदास गांधी

मोतीहारी

सुज्ञ भाई, जमनालालजी, श्रावण शुक्ल १

"आपका खत और हुण्डी रुपिया १५०० की मिली है। मैं ऋणी हुआ

हूँ। आपका दान हिन्दी-शिक्षा-प्रचार में ही रखा जायगा। यदि दूसरे कोई इस ही काम के लिए सिर्फ भेज देंगे और कुछ धन बचेगा तो आपका दान दूसरे कार्य में भी खर्चा जायगा। मेरा फिर वर्धा आने का विचार होगा तो खबर दे दूंगा।"

आपका
मोहनदास गांधी

गाँधीजी से मुलाकात होने पर उन्होंने उनसे पूछा कि आपका निजी खर्च कितना है। उत्तर मिला— करीब १२५) मासिक। जमनालालजी ने इसके लिए २५०००) देकर कहा कि आप इसके ब्याज से खर्च चलाइए। दूसरी जगह से लेने की जरूरत नहीं है।

गांधीजी को जमनालालजी की इस दानशीलता पर बड़ा भरोसा था। गांधीजी के इशारे पर वे अपना सब कुछ लुटाने को तैयार रहते थे। गांधीजी इशारा भर करते थे और जमनालालजी बिना किसी हिचकिचाहट के रुपया दे देते थे। तिलक स्वराज्य फण्ड और असहयोग आन्दोलन के समय वकीलों की सहायता के लिए उन्होंने एक एक लाख की बड़ी धनराशि दो बार दान कर दी थी। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले सभी कार्यकर्ताओं और सभी संस्थाओं को मदद देने के लिए वे हमेशा तैयार रहते थे। डा० जगदीशचन्द्र बसु को २००००) की मदद ऐसे समय की जब उनकी बात कोई सुनता नहीं था और धनाभाव के कारण शायद उनके प्रयोग भी सफल नहीं होते। उन्होंने इस काममें लाखों रुपया दिया और इससे कहीं अधिक दान मांग कर एकत्र किया। यदि उस सब का हिसाब लगाया जाय तो वह एक बहुत बड़ी धन-राशि हो जाती है और उसके बाद भी एक बड़ी ऐसी धन-राशि बच जायगी जिसका किसी को पता भी नहीं है। इसी प्रकार जिन संस्थाओं और व्यक्तियों को उन्होंने सहायता दी है उनकी भी सही सूची बनाना बड़ा कठिन है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने एक लेख में लिखा है—

"इसका पता किसी को नहीं होगा कि उन्होंने कितनों को आर्थिक सहायता दी होगी। जिसको जरूरत पड़ती थी या तो वह जानता था या वे स्वयं जानते थे। सहायता भी ऐसी नहीं कि कोई आसानी से भूल सके। गाढ़े समय में बहुतेरों को उन्हींकी सहायता से सांस लेने का और जीवित रहने का मौका मिला है। वह भी इस तरह पहुँचा दी जाती थी कि पाने वाले को कभी यह खयाल न होने पाये कि वह कुछ एहसान ले रहा है। इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। और उस मीठे अनुभव को कभी भूला नहीं जा सकता। सच्चे दान का गुण यह है कि वह दाहिने हाथ से दिया जाय तो बायां हाथ भी न जानने पाये। सेठजी के दान ऐसे ही हुआ करते थे। जो दान सार्वजनिक संस्थाओं को दिये गए उनमें अनेक प्रकट रुप से दिये गए क्योंकि ऐसा करना आवश्यक था। पर प्रकट दान के अलावा सेठजी के गुप्त दानों की तालिका उनके दफ्तर में ही मिलेगी। और किसीको पता नहीं होगा।"

यहां उनकी डायरी से कुछ उद्धरण दिये जाते हैं जिनसे उनके अपने सर्वस्व दान की उमंगों का पता चलता है—

२० मई १९४०

"जमनालाल संस—कमलनयन के खर्च आदि के बारे में विचार विनिमय। बच्छराज जमनालाल में बीस हजार अंदाज साल की पैदा बढ़ाना या खर्च कम करने की आवश्यकता। अब फिर से मुझे इस काम के लिए विशेष खयाल से देखना होगा। बच्छराज जमनालाल संस ने सट्टा बिलकुल नहीं करने का निश्चय किया है। जमनालाल संस में पांच लाख शेयर हैं। वह मेरे पास ही रखूं। उसका ब्याज मेरे मेहमानों के खर्च में लगाता रहूँ। मेरे बाद मेरे मृत्युपत्र के अनुसार उसका उपयोग हो।"

३० सितंबर, १९४१ (दशहरा)

"इस जायदाद वगैरा का चार आना सैकड़ा ब्याज व कम से कम पचास हजार साल की किस्त आवेगी। वह सब मेरी इच्छा सार्वजनिक कार्य में व्यक्तिगत सहायता वगैरा में लगाने की है। मैं जिऊँ वहां तक मेरी इच्छा के मुताबिक व बाद में मैं लिखकर जाऊँ उस मुताबिक।"

श्री रामेश्वरदासजी बिड़ला ने एक घटना का जिक्र किया जिससे उनके सर्वस्व त्याग की वृत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। श्री रामनारायण जी रुइया का हिस्सा बच्छराज कंपनी में से श्री रामेश्वरदासजी ने, जमनालालजी की इच्छानुसार खरीद लिया—जितना रुपया रामनारायण जी ने मांगा उतना दे दिया। तब से श्री बिड़लाजी का संबंध जमनालालजी से बहुत गाढ़ा हो गया। बाद में जमनालालजी की वृत्ति व्यापार-व्यवसाय को समेटने की होने लगी। तब उन्होंने शुगर फैक्ट्री बेचना चाहा। श्री रामेश्वरदासजी से सौदा भी हो गया—किन्तु बिड़लाजी को ऐसा लगा कि जमनालालजी ठीक नहीं कर रहे हैं। उन्होंने उन्हें समझाया कि बच्चों के लिए कुछ चीजें तो रखना ही चाहिए। सुनार और लोहार अपना एरण और हथौड़ा तभी बेचते हैं जब प्राण जाने लगते हैं; ऐसा ही हमें भी करना चाहिए। तब जमनालालजी ने वह विचार त्याग दिया।

: ८ :

अतिथिदेवो भव

"मैं नहीं मानता कि कोई भारत में आपके जितना अतिथि-सत्कार का बोझ उठा सकता है। यदि कोई इतना बोझ उठाने के लिए तैयार हो जाय तो भी आपकी तरह सारा कुटुम्ब उसके अनुकल तो नहीं हो सकेगा।"

सरदार वल्लभभाई पटेल

"......उनका हृदय और उनके घर के दरवाजे राष्ट्रीय कार्य-कर्ताओं के स्वागत के लिए हमेशा खुले रहते थे। उन्होंने केवल पैसा कमाना ही नहीं सीखा था, परन्तु वे उसे व्यय करना भी जानते थे। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं, परन्तु उनकी सेवाओं के फल हमेशा ताजा रहेंगे। और उनकी स्मृति कभी धुंधली नहीं होगी।"

मौलाना अबुलकलाम आजाद

"सेठ जमनालालजी जिसे पात्र समझते थे उसे बिना किसी जाति, धर्म, आयु और स्थान-भेद के अपनाते थे।"

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

हमारे प्राचीन धर्म-शास्त्रों में अतिथि को देवता कहा गया है और यह आदेश दिया गया है कि अतिथि का सत्कार और उसकी सेवा देवता की ही तरह की जाय। आजकल के जीवन में शास्त्रों का वह आदेश पुस्तकों में ही लिखा हुआ रह गया है, व्यवहार में बहुत मुश्किल से दिखाई देता है। जमनालालजी के संबंध में यदि यह कहा जाय कि वे अतिथि को देवता के बराबर मानते थे तो संभव है, कुछ लोग उसे अतिशयोक्ति कहेंगे। पर

बात बिलकुल सच है। जिन लोगों को उनके आतिथ्य का सौभाग्य मिला है उन्होंने उनके इस गुण की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है और कहा है कि उनका अतिथि-सत्कार एक नमूना था।

जमनालालजी आत्मार्थी थे, अतः वे हमेशा विद्वानों, गुणियों, सन्तों और महापुरुषों की तलाश में रहते थे। बड़े प्रयत्न करके उन्होंने गांधीजी को वर्धा बुलाया था और बसाया था। माता आनन्दमयी को बुलाने के लिए भी उन्होंने बेहद प्रयत्न किया था। इसके अतिरिक्त देश के सभी बड़े-बड़े लोगों का वर्धा आना-जाना महात्माजी के कारण होता ही रहता था। रचनात्मक-कार्य की कई प्रवृत्तियां वर्धा में शुरू हुई थीं और उन्हें देश के कोने-कोने में फैलाना था, अतः उन्हें कई कार्यकर्ताओं से संबंध जोड़ना पड़ा था। वे स्वयं एक बड़े भारी व्यापारी थे। अतः उनका संबंध देश के बड़े-बड़े व्यापारियों से भी था। वे स्वयं कांग्रेस के बहुत बड़े नेता थे और गांधीजी की उपस्थिति के कारण कांग्रेस-संबंधी बड़ी-बड़ी बैठकें प्रायः वर्धा में ही हुआ करती थीं। अतः मेहमानों का एक बहुत बड़ा तांता वर्धा में लगा रहता था। अतिथि-सत्कार का इतना बड़ा भार जमनालालजी पर ही रहता और वे उसे खुशी-खुशी उठाते थे। उन्होंने अतिथि-सत्कार के लिए बजाजवाड़ी में एक अतिथि-गृह बनवा लिया था जहां अतिथियों के खाने-पीने, ठहरने, कपड़े धोने आदि की सारी व्यवस्था कर दी थी। फिर भी ऐसे अनेक निकट के मित्र और साथी लोग आते रहते थे और कभी-कभी उनकी संख्या इतनी बढ़ जाती थी कि उनके बंगले पर भी अतिथियों का मेला-सा लग जाता था, लेकिन वे बड़े प्रेम से, बड़ी कुशलता और तत्परता से सबका आतिथ्य करते थे और ऐसा प्रयत्न करते थे कि किसीको किसी प्रकार का कष्ट न उठाना पड़े। इस काम में उन्हें काफी रुपये खर्च करने पड़ते थे, काफी कष्ट सहना पड़ता था और अपना समय भी इस काम में देना पड़ता था, लेकिन वे यह सब काम खुशी-खुशी करते थे। आज तो वस्तुओं के मूल्य बहुत बढ़

गये हैं. लेकिन उस सस्ते जमाने में भी उनके अतिथि-गृह का खर्च प्रति वर्ष लगभग २० हजार रुपया होता था ।

अतिथियों के भोजन का वे विशेष ध्यान रखते थे । वे अपने साथियों और अतिथि-गृह के व्यवस्थापकों से हमेशा कहा करते थे कि अतिथियों के लिए जो भोजन बनाया जाय वह सात्विक, स्वास्थ्यप्रद और शुद्ध हो । सफाई का अधिक से अधिक ध्यान रखा जाय । यह जरूरी नहीं कि भोजन में स्वादिष्ट, गरिष्ठ और मंहगी चीजें ही हों । अधिक-से-अधिक ग्रामोद्योग की वस्तुएँ ही काम में ली जायं । दूध और संभव हो तो घी भी गाय का ही काम में लिया जाय । प्रत्येक आदमी के भोजन में प्रति दिन आधा सेर से तीन पाव तक दूध, तीन तोला घी, सवा तोला तेल, ताजी सब्जी तथा फल होने चाहिए । वे खुद ही हमेशा देख-रेख करते थे और प्रयत्न करते थे कि इन बातों का पूरी तरह पालन हो । अतिथि-गृह में मेहमानों के लिए जो भोजन बनता था उसमें प्रातःकाल दाल, भात, गेहूँ के फुलके, ज्वार की रोटी, और दो शाक—एक पत्ता भाजी और दूसरा फल शाक, दही, व छाछ तथा एक चटनी हमेशा रहते थे । कच्ची चीजों का सलाद व पापड़ भी रहते थे । सायंकाल के भोजन में खिचड़ी, फुलके, दो शाक, चटनी और कढ़ी रहती थी । दूध और फल दोनों समय भोजन के बाद दिये जाते थे । नाश्ते में दूध-चाय, फल और चिवड़ा रहता था । भोजन में मिर्च-मसालों का प्रयोग अधिक नहीं किया जाता था । इस प्रकार उनके अतिथि-गृह का भोजन बिलकुल सादा रहता था । यद्यपि उनके मेहमानों में देश-विदेश के बड़े-बड़े लोग रहा करते थे तथापि वे ऐसी शान शौकत का आतिथ्य-सत्कार पसन्द नहीं करते थे जिसमें फिजूलखर्ची हो । वे सादा, स्वास्थ्यप्रद तथा मौसम और प्रकृति के अनुकूल भोजन करने और वैसा ही मेहमानों को कराने के हिमायती थे ।

वे आतिथ्य में अतिथियों की रुचि का अवश्य खयाल रखते थे, लेकिन

अपनी ओर से स्नेह तथा सत्कार में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होने देते थे। सब के लिए एक-सा भोजन और एक-सी सुविधाएँ उपलब्ध करवाने का वे प्रयत्न करते थे। भोजन का समय भी निश्चित था, जिसका पालन सबके लिए समान-रूप से जरूरी था। पं० जवाहरलालजी नेहरू के लिए उनकी रुचि के अनुकल वे रुखे फुलके, मक्खन और आलू की सब्जी का प्रबन्ध करते थे। मौलाना आजाद के लिए मोटी रोटी, राजाजी के लिए इमली का रसम् तथा खान अब्दुल गफ्फार खाँ के लिए खिचड़ी में गर्म घी का प्रबन्ध करने की बात वे नहीं भूलते थे। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित मेहमानों का ध्यान तो सभी लोग विशेष रूप से रखते हैं, लेकिन भोजन में चाहे कोई बड़ा हो, चाहे छोटा, चाहे गरीब हो, चाहे धनी, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे अछूत वे सबके साथ एक-जैसा व्यवहार करते थे और सबको एक पंक्ति में बैठाकर खिलाते थे। कांग्रेस तथा रचनात्मक कार्य में लगे हुए कार्यकर्ताओं के आतिथ्य का वे बहुत खयाल रखते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि त्याग और सेवा-भावना से अपनेको काम में खपा देनेवाले तो ये ही लोग हैं। ये ही सारे बड़े कामों की जान हैं। अतः इनका सत्कार पूरे स्नेह और आत्मीयता के साथ होना चाहिए।

वे अपने अतिथियों के समुचित सत्कार का कितना ध्यान रखते थे, इसकी कल्पना श्री ऋषभदासजी रांका की "जीवन-जौहरी" नामक पुस्तक में दी हुई एक घटना से अच्छी तरह की जा सकती है—"एक दिन नागपुर के जनरल अवारी करीब साढ़े बारह बजे वर्धा पहुँचे। वे स्टेशन से बजाजवाड़ी गये। स्नान आदि करने में उन्हें डेढ़ बज गया। भोजनालय में ११ बजे पहली पंक्ति बैठ जाया करती थी, अधिक मेहमान होते तो दूसरी पंक्ति भी लगभग १२ बजे समाप्त हो जाती थी। उनके आने के पूर्व चौका उठ गया था। पर आते ही जमनालालजी ने रसोइये से कह दिया था। रसोइये का ऐसा प्रबन्ध था कि जब भी मेहमान आये और जैसा भोजन चाहे बना देना

चाहिए। उस दिन रसोइये ने ११ बजे का बना हुआ ठंडा भोजन ही परोस दिया। जमनालालजी आराम करके उठे और रसोइये से जनरल अवारी के भोजन के बारे में पूछा। उसने कहा कि वे भोजन कर रहे हैं। जमनालालजी उठकर उनके पास ही पहुँच गये। सुबह की बनी ठंडी चीजें थाली में देखकर उन्हें काफी वेदना हुई। उस समय तो वे कुछ नहीं बोले, लेकिन बाद में रसोइये को डांटा। उन्होने पूछा—"क्या कोई बड़ा नेता होता तो तुम ऐसा ही भोजन सामने रख देते? मेरे पास रहकर और मेरे विचारों से परिचित होकर भी तुमने यह भूल की? इसके मूल में मैं अपनेको ही दोषी पाता हूँ।" और उन्होंने एक दिन का उपवास किया।

केवल भोजन आदि की व्यवस्था करके ही वे अपने अतिथि-सत्कार की इतिश्री नहीं समझते थे। वे अतिथियों को वर्धा की सभी संस्थाएं दिखाते और उनको भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियां से परिचित कराते, वर्धा के कार्यकर्ताओं से उनका परिचय कराने का भी वे काफी खयाल रखते थे।

अतिथियों को यदि थोड़ा भी कष्ट या असुविधा होती तो उनको बड़ा दुःख होता था। अेक बार उत्तर-प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त की पशमीना की शाल मेहमान घर से चोरी चली गई। जब उन्होंने यह बात सुनी तो उन्हें बहुत दुःख हुआ, उन्होंने अपने साथियों से जिन पर इस व्यवस्था की जिम्मेदारी थी, कहा—"अपने यहां आने वाले मेहमानों को पूरा आराम दिया जाना चाहिए। उनकी वस्तुओं की चोरी जाना हमारे लिए शर्म की बात है। वहां पर जो लोग रहें उनकी प्रामाणिकता की पूरी जांच कर लेनी चाहिए। मेहमानों को कह देना चाहिए कि वे जोखम की चीजे रुपये पैसे दफ्तर में जमा करवा दें। जब ज्यादा मेहमान आवें तब एक आदमी इस काम के लिए नियुक्त कर देना चाहिए कि वह देखता रहे कि कोई अैरा-गैरा आदमी आहाते में न आने पावे।

डा० राजेन्द्रप्रसाद ने उनके आतिथ्य-सत्कार के संबंध में लिखा है—
"उनके अतिथि-गृह में सारे देश के नेता और कार्यकर्ता ठहरा करते थे। वर्किंग कमेटी के जलसे इधर कई वर्षों से प्रायः वर्धा ही हुआ करते थे। और सब मेम्बर उन्हींके अतिथि होकर वहां ठहरा करते थे। गेस्ट हाउस के नौकरों ने सबको जान लिया था। और वहां के कमरे भी प्रायः हम लोगों के नाम से मशहूर हो गये थे, जैसे राजेन्द्रबाबू का कमरा, भूलाभाई का कमरा, डा० पट्टाभि का कमरा, इत्यादि। सेठजी वर्धा में रहें, चाहे न रहें, हम सब के लिए वहाँ इन्तजाम हमेशा रहता था। और जब से हम वर्धा स्टेशन पर पहुँचते, उस समय से जबतक हमारी गाड़ी वर्धा स्टेशन से फिर वापसी के लिए रवाना न हो जाय, सेठजी स्वयं और उनके कर्मचारी तथा उनकी स्त्री, लड़के-लड़कियाँ हमारी खातिरदारी में सब-के-सब लगे रहते थे। जिस बंगले में सेठजी स्वयं रहते थे उसमें भी कांग्रेसी लोग ठहरा करते थे, क्योंकि गेस्ट हाउस काफी नहीं होता था। ऐसा मौका अक्सर आता था जब कि सेठजी को अपना कमरा छोड़ देना पड़ता था। उधर सेठानी जानकी देवी को अपना कमरा छोड़ कर शहर के अपने पुराने मकान में जाकर रहना पड़ता था, तो सेठजी अक्सर महिला-आश्रम में जाकर सोया करते थे। लड़के-लड़कियाँ अपने-अपने कमरे छोड़कर महिला-श्रम में अथवा शहर के मकान में चले जाते। इस प्रकार की अतिथि-सेवा में खर्च भी काफी पड़ता था और औसत में शायद दो ढाई हजार मासिक भी पड़ जाता हो तो आश्चर्य की बात नहीं। पर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि कोई भी अतिथि ऐसा महसूस नहीं करता था कि वह अपने घर में नहीं है। सेठजी अपनी बातचीत से, अपने प्रेम से हर आदमी को अपने घर का ही बना लेते थे। और सभी निसंकोच भाव से वहां आराम से रहते थे और वहांके कर्मचारियों से काम लेते। अतिथियों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। नेता, कार्यकर्ता, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई,

सवर्ण, अवर्ण, हरिजन सब एक ही पंक्ति में भोजन करते थे। ठीक समय से सबको नाश्ता, भोजन मिल जाता—नहाने के लिए गर्म जल मिल जाता और कपड़े धुल जाते थे। सेठजी स्वयं दिन-रात में अेक-दो बार वहां आकर सबसे मिल जाते और पूछ-ताछकर लेते। यह अतिथि-सत्कार कोई बनावटी चीज नहीं थी। यह उनके हृदय का उद्‌गार था और स्वाभाविक था।"

उनके अनेक गुणों में अतिथि-सत्कार अेक ऐसा गुण था जो सब के देखने में आ जाता था, पर उनकी असली उदारता जिसका यह एक बाह्य रूप था, महान् थी। ईश्वर ने उनको धन दिया था। उसका वे सदुपयोग किया करते थे अपने ऊपर खर्च करना उनको बहुत अत्र गुजरता था। उनको सफर बहुत करना पड़ता था और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक उन्होंने कई बार सफर किया होगा। उन्होंने नियम बना लिया था कि वह तीसरे दर्जे में ही सफर किया करेंगे। शरीर भारी था। लम्बे तो काफी थे ही, पर बीमारी के पहले शरीर की स्थूलता भी कम नहीं थी। तीसरे दर्जे के डिब्बे में जो बेंच हुआ करते है उनको हम जानते ही हैं। शरीर का आधा हिस्सा भी उस बेंच पर आराम से रखा नहीं जा सकता है, पर हफ्तों का सफर वे उसी बेंच पर किया करते और कभी यह किसीको पता नही लगने देते कि उनको इसमें कुछ कष्ट होता है। जहां एक्के में काम चल सके वहां घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ना नापसन्द करते थे, क्योंकि एक्के में पैसे कम लगते हैं। उनके मित्र तो देश के बड़े-से-बड़े धनी लोग थे। उनके महलों में भी जाकर ठहरा करते थे, पर वहां भी वही सादगी और मितव्ययिता। धनी मित्र इसका मजाक भी उड़ाते थे। पर साथ ही उनकी इस सादगी और मितव्ययिता के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव रखते थे। अपने जीवन में उन्होंने लाखों के दान दिये, दान देने में उनको आनन्द आता था। पर ठग कर उनसे कोई एक पैसा भी नही ले सकता और न दबाकर। जहां पत्र से काम चल सकता था वहां यदि कोई तार भेज दे तो उनको बहुत बुरा मालूम

होता था। पोस्टकार्ड के बदले में लिफाफा लिख दिया जाय तो वे तुरन्त टोक दिया करते थे। कांग्रेस के कुछ लोगों की आदत बहुत तार भेजने और टेलीफोन करने की होती है। अैसे लोगों की वे बहुत समालोचना किया करते थे। और इस प्रकार के अनावश्यक खर्च को वे बहुत बुरा समझते थे। जहां जरूरत हो वहां चाहे जितना भी खर्च हो जाय वह परवाह नहीं करेंगे। पर अेक पैसे का भी गैर-जरूरी खर्च उनको अखरता था और वे उसे करना नहीं चाहते थे।

जो लोग जमनालालजी के संपर्क में आते थे उनके साथ उनका संपर्क अधिकाधिक घनिष्ट होता जाता था और वे उनके परिवार जैसे ही होते जाते थे। गांधीजी के साथ जो लोग वर्धा आये या कांग्रेस के सिलसिले में जिन-जिन लोगों से उनका संबंध हुआ वह उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया और वे उनसे इतने अभिन्न होते गये कि वे उनका दुःख सेठजी का दुःख और उनका सुख सेठजी का सुख हो गया। काकासाहब कालेकर ने अपना इसी संबंध का एक संस्मरण इस प्रकार लिखा है:—

"जब मुझे हैजा हुआ तब मैं हरिजन-छात्रालय में रहता था। पता चलते ही जमानालालजी दौड़कर मुझे देखने आये और कहने लगे—'काकासाहब, यहां पर आपकी परिचर्या शायद ठीक नहीं होगी। मैं आपको अपने बंगले पर ले जाता हूँ, वहां पर हम लोग आपकी ओर पूरी तरह ध्यान दे सकेंगे।' उनकी यह बात सुनकर मैं स्तंभित रह गया। मैंने उन्हें कहा—'आप किस तरह ऐसी बात करते हैं। मुझे हैजा हुआ है, हैजा संक्रामक रोग है।'—'कोई हर्ज नही।' कहकर वे आग्रह करने लगे। मैंने कहा—'आपका प्रेम और आपकी निर्भयता मैं जानता हूँ, किन्तु घर में आप अकेले नहीं हैं, बालबच्चे भी हैं, उन्हें इस तरह खतरे में डालने का आपको क्या अधिकार है? गृहस्थाश्रमी को दोनों पहलुओं पर ध्यान रखना पड़ता है।'—'सो कुछ भी हो, मैं आपको ले जाये बिना

नहीं रहूँगा।' मैंने दृढ़ता से कहा—'आपने मुझे जीत लिया, लेकिन मैं यहां से कहीं भी जानेवाला नहीं हूँ। इतने लोग हैं, दिन रात मेरी सेवा करते हैं। यहां किसी चीज की कमी नहीं है और कुछ भी हो मैं इस वक्त हरिजन-छात्रालय नहीं छोड़ूंगा।' लाचार होकर वे लौट गये, लेकिन उनके मुँह पर जो प्रेम और आत्मीयता का भाव झलक रहा था उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। आत्मीयता के आगे बड़ा या छोटा, अपना या पराया, अमीर या गरीब अैसा भेद उनका मानव-हृदय स्वीकारता न था।"

अपने मेहमानों का वे इतना खयाल रखते थे कि उनके लिये बड़ा-से-बड़ा कष्ट उठाने को हमेशा तैयार रहते थे। वे इस प्रकार के कष्ट को चुपचाप सहन कर लेते थे। इस संबंध में श्री महावीरप्रसाद पोद्दार की सुनाई एक घटना का वर्णन करना उपयुक्त होगा।

अंतिम दिनों में उन्होंने गो-सेवा का काम अपने हाथ में लिया था। उसके सिलसिले में गोपुरी में एक नई झोपड़ी बनाई और उसमें रहने लगे। अेक दिन श्री महावीरप्रसाद पोद्दार उनसे मिलने आये और उनके साथ वहीं ठहरे। जमनालालजी रात को ९ बजे मौन ले लिया करते थे और वह प्रातःकाल साढ़े चार बजे तक रहता था। नौ बजे वे सो भी जाते थे। महावीरप्रसादजी सवा नौ बजे गोपुरी, उनकी झोपड़ी पर, पहुँचे। जमनालालजी झोपड़ी के बाहरी हिस्से में अपने तख्त पर सोये हुए थे। उस दिन आकाश में बादल थे और ऐसा लगता था कि कुछ बूँदाबाँदी होने वाली है। महावीरप्रसादजी अन्दर जाकर सो गये। रात को जोर का पानी बरसा और जमनालालजी पर भी पानी टपका। हवा भी जोर से चली, तख्ता भीग गया, उनके कपड़े भी गीले हो गए। यह सब देखकर वे उठे और अपने बिस्तरे को सिकोड़कर रात के दो बजे से जागते बैठे रहे। वे चाहते तो महावीरप्रसादजी तथा अपने सेक्रेटरी को, जो अन्दर सोये हुए थे, जगा सकते थे, लेकिन केवल मेहमान को कष्ट न होने देने के

खयाल से चुपचाप कष्ट सहते रहे। विशेषता यह कि प्रातःकाल उन्होंने इस बात की किसीसे चर्चा भी नहीं की। वे बड़े मूक कष्ट-सहिष्णु थे। कलकत्ते में एक दुर्घटना में चक्कर खाकर गिरे और अस्पताल जाकर बिना शीशी सुँघाये १२ टांके लगवा लाए।

यह बात नहीं कि जमनालालजी केवल बड़े आदमियों के आतिथ्य की ही चिन्ता रखते थे; उनके लिए छोटे-छोटे मेहमान यहां तक कि मेहमानों के नौकर भी उतने ही आदर, सम्मान और आतिथ्य-सत्कार के पात्र रहते थे जितने कि बड़े आदमी। यही उनकी वह बात है जो सिद्ध करती है कि वे अतिथि को देवता के रूप में मानते थे। यही उनकी महानता है। इस संबंध में श्री रैहाना बहन की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

"जब पहली बार वे मुझे वर्धा लाये तो मुझे अपने यहाँ ही रखा। मेरी तबियत खराब थी, मेरे साथ एक बूढ़ी बाई (नौकरानी) भी थी, जो मेरी खबर रखती थी। जमनालालभाई ने मुझसे और उससे कुछ इस तरह का बर्ताव किया कि अभी बड़ौदा में उनके देहत्याग का समाचार सुनकर वह बिलख-बिलख कर रोई है—गोया उसके खानदान का ही कोई बुजुर्ग मर गया है। उन्होंने उसे कभी महसूस नहीं होने दिया कि वह नौकरानी है और रात-दिन मेरी ऐसी खबर रखते रहे कि अभी उसने मुझसे रोकर कहा—"साहब, आपके तो सहारा गये हैं जो पिता जैसे ही थे।" उनके घर में रहकर मेरी बूढ़ी सूग्ज और मैं इस बात से बेहद प्रभावित हुए कि पूज्य जमनालालभाई अमीरों और गरीबों में कोई फर्क नहीं करते थे।"

सन् १९१४-१५ की एक बात है। श्री रामनरेश त्रिपाठी से नया-नया ही परिचय हुआ था। वे जब बंबई गये तो उनके आग्रह से उनके पास ही ठहरे। सुबह दस बजे के समय नौकर ने सूचना दी कि रसोई तैयार है। जमनालालजी ने त्रिपाठीजी से चलने के लिए कहा। दोनों चले, लेकिन जमनालालजी लघुशंका के लिए चले गये। त्रिपाठीजी चौके में गये। वहां दो आसनों के

सामने दो अलग-अलग प्रकार के बरतन थे। एक के सामने चांदी की थाली, कटोरियां और गिलास था, दूसरे के सामने मुरादाबादी कलई के। नौकर ने चांदी के बरतन के पास वाले आसन पर बैठने को त्रिपाठीजी से कहा। त्रिपाठीजी को संकोच तो हुआ पर बैठ गए। पीछे से जमनालालजी आए और दूसरे आसन पर बैठ गए। भोजन परोसा जाने लगा। भोजन भी दो प्रकार का था—त्रिपाठीजी के लिए कई तरह के स्वादिष्ट पदार्थ और जमनालालजी के लिए ज्वार और बाजरे की रोटियाँ, बिना मिर्च की दो शाक तथा दही। त्रिपाठीजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—"शायद चांदी के बरतनों में बाजरे की रोटी शोभा नहीं देती होगी? जमनालालजी ने हँसकर उत्तर दिया—कल से आपको भी पीतल की ही थाली मिलेगी। आज अतिथि हो, कल घर के हो जाओगे।" दूसरे दिन सचमुच पीतल की थाली ही में त्रिपाठीजी को भी भोजन परोसा गया, लेकिन खाने के पदार्थों का अन्तर वैसा ही बना रहा। जब उसके बारे में भी उन्होंने पूछा तो जमनालालजी ने कहा—"अभ्यास डालता हूँ, कभी पास में पैसा न रहा तो गरीबी अखरेगी नहीं।" बाद में गांधीजी के संपर्क में आने के बाद तो खास-खास मौकों पर भी सबके ही लिए सादा भोजन बनवाते थे।

इस सिलसिले में हम अेक और घटना दे रहे हैं। एक बार जमनालालजी के भतीजे श्री राधाकृष्ण बजाज की वर्ष-गांठ थी। डा० राजेन्द्रप्रसाद, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा अन्य प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ जमनालालजी की वृद्धा माता भी उसी पंक्ति में बैठी थीं। जमनालालजी ने कहा—"आज आपके लिए एक अच्छा भोजन तैयार कराया गया है। यह भोजन हमारे यहाँ ऐसे ही अवसरों पर बनाया जाता है।" लोग उत्सुकता से देखने लगे। सबसे अखीर में वह पदार्थ आया—वह मोटे आटे का देहाती किस्म का हलुआ था, उसमें पानी और गुड़ तथा घी के अलावा और कोई

चीज नहीं थी। राजेन्द्र बाबू ने उसे चखने के बाद पूछा—"यह क्या चीज है ?" उत्तर मिला—"यह लापसी है। यह हमारे देश का खास पदार्थ है और विशेष अवसरों पर बनाया जाता है।" यह घटना यह सिद्ध करती है कि उनकी सादगी अधिकाधिक व्यापक बनती जा रही थी। विशेष अवसरों पर भी वे सादा भोजन ही करते और अतिथियों को भी कराते थे।

अतिथि-सेवा में वे न पैसे की चिंता करते थे, न अपने समय या स्वास्थ्य की। जब तक अतिथि को देवता जैसा समझने की भावना न हो तबतक इतना होना कठिन है। जमनालालजी के पास एक दिन कुमारी पद्मजा नायडू का तार आया कि वे वर्धा से गुजर रही हैं। स्टेशन पर दो घंटे ठहरेंगी। यदि स्टेशन पर आराम करने व उनसे मुलाकात की व्यवस्था हो सके तो अच्छा रहे। तार पढ़ते ही जमनालालजी ने सारी व्यवस्था करने की आज्ञा दे दी। नौकरों ने भूल से मदालसा बहन (उनकी पुत्री) के गद्दे, तकिये, चद्दरें ले लिये। पद्मजा नायडू को उस समय क्षय हो रहा था। उन्होंने कहा—"मेरा अपना बिस्तर है, मुझे उसी पर बैठना चाहिए।" लेकिन सेठजी ने उनसे आग्रह किया कि वे उसी बिस्तर का उपयोग करें। रात को जब सब सोने लगे तो मालूम हुआ कि मदालसा बहन का बिस्तर नहीं है। तलाश करने पर मालूम हुआ कि वह तो स्टेशन पर गया है।

जमनालालजी का घर मानो मुसाफिरखाना था। अतिथि-सत्कार के पीछे घर के लोगों को कष्ट होगा, इसकी वे चिन्ता ही नहीं करते थे। छोटा-सा घर था और उसमें भी मेहमानों का तांता लगा रहता। कभी-कभी तो ओढ़ने-बिछाने के कपड़े भी मेहमानों को दे दिये जाते और घर के लोगों को जैसे-तैसे अपना काम निकालना पड़ता था। एक बार ऐसी कठिनाई देखकर जानकी देवी स्वयं खादी-भण्डार गईं, रजाई का कपड़ा खरीदा और उसे घर लाईं। नौकर ने कपड़ा एक कुर्सी पर रख दिया। इसी समय एक तांगा स्टेशन से आ गया।

तांगे में एक मुसलमान बहन थी। उसके बदन में फोड़े हो रहे थे और उसे १०३ या १०४ बुखार था। सेठजी दौड़े, उन्होंने उसे तांगे से उतारा और उसे कमरे में ले गए। उन्होंने पलंग पर उस नई रजाई के कपड़े को ही बिछा दिया और उस बहन को लिटा दिया। थोड़ी देर में जानकी देवी आईं। उनको देखते ही कहने लगे—"...बहन आई हैं। वे बीमार हैं। उनके पास जाकर कुशलता पूछ लो।" जानकी देवी गईं, उन्होंने कुशलता पूछी, लेकिन अपनी रजाई की दुर्दशा देखकर स्तंभित रह गईं।

उनके अतिथि सत्कार पर सरदार पटेल ने अपने विनोदी ढंग से इस प्रकार चुटकी ली थी—

बंबई
२६–६–३६

भाई श्री जमनालालजी,

"......इस बार आपने बहुत से लोगों को निमन्त्रण दिया मालूम होता है। कहते हैं कि चातुर्मास में साधु-संतों का और देश-सेवकों का आतिथ्य करने से बहुत पुण्य मिलता है। इसलिए इस समय आपको बहुत भारी पुण्य मिलने वाला है। इतने सारे को इस मौसम में रखोगे कहां?"

वल्लभ के वन्दे मातरम्

उनकी सादगी और निरभिमानता की कोई हद नहीं थी। उनमें यह घमण्ड तो कभी आया ही नहीं कि मैं लखपति तथा बड़ा भारी देशभक्त हूँ। अयोध्या नगरी में सरयू नदी में स्नान करते समय वहां की पवित्र और मनोहर रेती से अपने देहाती मित्र द्वारा अपनी पीठ रगड़वाने और बदले में उसकी पीठ रगड़ने में उनको उतना ही आनन्द आता था। बादाम-पिश्ता और हलुवा खाने जितना ही नमक रोटी खाने में तथा चने चबाने में भी आनन्द लेते हुए उन्हें देखा है। अनूपशहर में जब गंगा में स्नान करने के बाद नौकर उनके कपड़े धोने लगा और उनके देहाती मित्र ने कहा कि

आर्य-संस्कृति तो यह कहती है कि कम-से-कम गंगा में तो अपने कपड़े खुद ही धोने चाहिए तो फिर क्या कहना ? वे खुद बड़े प्रेम से अपने कपड़े धोने लग गए ।

स्व० महादेवभाई ने उनके बारे में एक जगह लिखा है:—

"मौज उड़ा सकें इतना धन होते हुए भी उन्होंने कभी मौज नहीं उड़ाई। वे पाई-पाई का हिसाब रखते थे और दूसरों से भी यही अपेक्षा रखते थे, दान तो लाखों का दिया है। पर संस्था की हां बात आई कि कौड़ी-कौड़ी के हिसाब और ब्यौरा देखे बिना उनको संतोष नहीं होता था। आवश्यकता होने पर रेल के पहले दर्जे में बैठने में संकोच नहीं करते थे पर गरीबों का हमेशा खयाल रहे, इसलिए वर्षों से तीसरे दर्जे में ही सफर करते रहे।"

इतने बड़े दानी, नेता, व्यवसायी और धनी होते हुए भी उनकी सादगी कितनी अधिक थी यह श्री सियारामशरण गुप्त के [illegible]न शब्दों से प्रकट होती है:—

"सन्ध्या के भोजन के लिए मेरे एक श्रद्धेय मुझे वहां ले गए। मैं सोच रहा था, कि वहां श्रीमानों के जैसा भोजन होगा। इसके विपरीत की मुझे कल्पना न थी। इसलिए थाली देखकर जब मैंने यह जाना कि यहां भी आश्रम ही है, तब विस्मय के साथ आनन्द भी मुझे कम नहीं हुआ। यह पहला परिचय सूक्ष्म बहुत था, पर इतने ही में मेरे निकट उनका आन्तरिक स्वरूप जैसे स्पष्ट हो गया हो ।

"इस घटना के दो-तीन साल बाद हरिजन-बस्ती में कुछ और निकट से उन्हें देखने का अवसर मिला। संभवतः वे शिमला के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटे थे। वह गांधी-जयन्ती की तिथि थी और उस रात हरिजन बस्ती के कार्यकर्ता रातभर अखंड रूप से हाथ-चक्की चला रहे थे। प्रातः-कालीन प्रार्थना में जिसमें स्वयं बापू उपस्थित थे, जमनालालजी को न देख-

कर मैंने कारण पूछा। पता चला कि वे इस समय हाथ-चक्की पर आटा पीस रहे हैं। उन्होंने कहा—"मैं यहाँ प्रार्थना जैसे ही पवित्र कार्य में लगा हूँ।"

श्री घनश्यामदास बिड़ला जमनालालजी की खानपान आदि की सादगी का बहुत मजाक उड़ाया करते थे। एक बार वे वर्धा पहुँचे। इत्तफाक से वहां न जमनालालजी थे, न जानकीमैया। इस पर फबती कसते हुए उन्होंने जमनालालजी को लिखा——

वर्धागंज
१२-११-३९

प्रिय भाई जमनालालजी,

"हम और मास्टर साहब दोनों यहां पहुँच गये हैं किन्तु बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि न तो जैपुर दीवान हमको स्टेशन पर लेने को आये, न कोई जोड़ी, न चौकड़ी, न रोल्सरायस गाड़ी स्टेशनप र थी। आप जानते हैं कि हमारे साथ कैसे बड़े-बड़े मोज्जिज लोग हैं, जिनको खाने के लिए काबुली मेवे बदाम, पिश्ता, किशमिश चाहिए और विलायती फ्रूट चाहिए। हम कोई जाट तो नहीं जो खिचड़ा खा सकते हों। इसलिए आदमी की हैसियत के मुआफिक और कम-से-कम मास्टरजी की इज्जत के मुआफिक फौरन बन्दोबस्त करा देना चाहिए। रुपये-पैसे की पर्वाह न करनी चाहिए।

"हमने सुना है कि जैपुर वालों ने आपके सब दांत तोड़ डाले हैं; सो यह बड़ी खुशी की बात है; पर इसमें आपका खर्चा बहुत बढ़ जायगा; क्योंकि आपको रोज हलवा खाने को चाहिएगा, सो इस बारे में कमल की मां से सलाह कर लेनी चाहिए कि आपका बजट क्या होगा। और मास्टरजी आपसे बहुत नाखुश हैं; पर अगर आर्य समाज के लिए चन्दा यहीं पर भेज दें तो खुश हो सकते हैं, और अगर कोई बड़ी रकम हो तो हम भी खुश

हो सकते हैं। और कमल की मां से नमस्कार और यह भी कहना कि सेठजी ने खर्च के डर से अपने लड़के को घर जंवाई करके कलकत्ता भेज दिया है। सेठजी अपने मतलब के पूरे मालूम होते हैं।"

स्नेही
घनश्यामदास

इसका जवाब जानकीमैयाजी ने संक्षेप में। पर उतने ही विनोद के साथ, दिया——

पूना
१८-११-३९

श्री घनश्यामदासजी,

"आपका पत्र तो पढ़ा ही। इनका मजाक उड़ाने में तो मुझे भी खूब आनन्द आता है। पर इन पर तो कुछ असर ही नहीं होता। और मास्टरजी को तो चिढ़ाने को कोई शब्द ही नहीं मिलता। पर उनको आजकल सुलतानी माल पचता तो सूने घर में छिप-छिप कर कैसे आते?

"खाने-खिलाने में बजट बढ़ाना तो इन जाटों को यदि आता तो सीरे (हलुए) की जरूर आशा करते। पर इनसे तो रेल, तार, डाक्टर ने ही मांगत मांग रखी है। सतरंज के खिलाड़ी हैं। ऊँट गया जिधर गया। दांत १४ अभी बाकी हैं। देखें खुशी मनाने को कितना मौका रहता है?"

कमल की मां का नमस्कार

: ९ :

हृदय-शोधक

डायरी लिखना आत्म-परीक्षण का बहुत महत्त्वपूर्ण अग है। उससे हम जान सकते है कि हम दिन प्रति दिन क्या कर रहे है—कितनी प्रगति कर रहे है। जमनालालजी नियमित रूप से डायरी लिखने लगे थे। उनका यह काम बापू के सम्पर्क मे आने के बाद शुरू हुआ था। दिन भर के काम की सब महत्त्वपूर्ण बाते थोडे मे, जहाँ तक हो सकता है, डायरी के एक ही पन्ने मे लिख लेने की अजीब कला उन्हे सिद्ध हो गई थी। यदि कोई अच्छी किताब पढी है, तो उसका जिक्र और उसका महत्व उसमे उन्होने अकित कर दिया है। यदि किसी व्यक्ति से कोई खास बात हुई है तो उसका भी उल्लेख डायरी मे किया मिलेगा। यदि कोई खास विचार—अच्छे या बुरे तीव्र रूप से मन मे आये है, कोई हर्ष या शोक का प्रसग हुआ है तो वह भी डायरी मे लिखा मिलेगा। डायरी क्या है—उनके दिन भर के काम का ही नही, बल्कि हृदय और मस्तिष्क का प्रतिबिब है। अच्छे उपदेश, अच्छी कहावत, अच्छे भजन या श्लोक, सत-महात्माओ के—खासकर विनोबा और एकनाथ के वचन उनकी डायरी मे—खासकर १९४१ की डायरी में जहाँ-तहाँ भरे मिलते है। खास-खास अवसरो पर जगह-जगह भगवान से सद्बुद्धि देने, जीवन को पवित्र बनाने और सेवामय रखने की प्रार्थना की हुई मिलती है। राजनैतिक विषय और घटनाओ पर भी अपने विचार और प्रतिक्रियाए डायरी मे दर्ज हुई मिलेगी। एक तरह डायरी कैसे लिखा जाय, इसका उसे नमूना ही समझना चाहिए। एक शिष्य, साधक या विद्यार्थी की तत्परता मे वे डायरी लिखते थे। वे

मुलाकातियो और सलाह लेनेवालो के उल्लेख से भरी रहती थी। नागपुर-जेल की डायरी मे एक पक्ति उर्दू की भी मिली है। वहा उन्होने उर्दू सीखने का भी प्रयत्न किया था। उनकी सारी डायरी यदि पढ लें तो उनसे उस समय का इतिहास झलक जाता है। प्राय सभी बडी-छोटी घटना आ गई है। इसके अलावा कई छोटे-बडे कार्य-कर्ताओ की नामावलि भी बन सकती है।

यात्रा प्राय तीसर दर्जे म किया करते थे। परन्तु, यदि स्वास्थ्य के कारण से या प्रसगवश दूसरे दर्जे म यात्रा की हो तो उसका भी उल्लेख डायरी म अवश्य मिलता था। उनकी डायरी, यात्रा और पत्र सब अपना अलग महत्व रखते है। एक-एक शिक्षालय जैसे है, ऐसा कह तो अत्युक्ति न होगी।

सचमुच यह आश्चर्य होता है कि जिन्ह एक मिनट भी बात करने या आराम करने की फुर्सत नही रहती थी, व नियमित रूप मे डायरी लिखने के लिए समय कैसे निकाल लेते थ। जो लोग अक्सर अधिक काम होने का बहाना पश करते है रोज डायरी न लिख पाने के लिए, उनके लिए जमनालालजी अच्छे मार्ग-दर्शक थे। बापू प्राय रात को डायरी लिखा करते थ और जमनालालजी दूसरे दिन सुबह, प्रात स्मरण के बाद सब से पहले पिछले, दिन की डायरी लिखने का काम करते थे।

उनकी पूरे दिन की डायरी के कुछ नमूने यहाँ दिये जाते है—

(१)

उदय ६-२१ अस्त ५-३९

हरिपुरा

२० फरवरी १९३८ फाल्गुन शु० ६
रविवार सवत् १९९४

पत्र-व्यवहार। बगाल—कलकत्ते से प्रभुदयालजी वगैरे आये थे। उनसे मिलने गये, आये।

विषय-निर्वाचिनी सुबह ९ से १२-३० तक चली। मै १०-३० तक बैठा। मिनिस्टरी के ठहराव पर सरदार का प्रथम भाषण सुन्दर हुआ। आखिर का ठीक नही हुआ, ऐसा मित्र लोगो ने कहा। मै हाजिर नही था। हिन्दी प्रचार-सभा का कार्य २ से ३-३० बजे तक हुआ। लोग ठीक जमा हुए थे। खुला अधिवेशन ५-४५ से १० तक हुआ। सुभाष ने कमजोरी दिखाई।

जयरामदास का भाषण बहुत ही सुन्दर, खासकर आखिर का जवाब—सरदार भी ठीक बोले।

आज मन व स्वास्थ्य खराब रहा—आपसी अन्दर के मतभेदो के कारण।

नारियलवाला का पत्र—मदनमोहन के बारे मे पढकर दुख व चिन्ता हुई।

(२)

उदय ६-२९		अस्त ५-३१
४ नवंबर १९३८	पवनार, वर्धा	कार्तिक शु० १२
शुक्रवार	जन्मदिन	संवत् १९९५

सुबह प्रार्थना। विनोबा के साथ, मनुष्य अगर अपनी कमजोरी न निकाल सके तो आत्म-हत्या में क्या दोष—इस पर भली प्रकार विचार विनिमय। अप्पा पटवर्धन आदि भी थे। विनोबा के साथ घूमना। अप्पा पटवर्धन साथ, बापट, साने गुरूजी, सत्याग्रह पर विचार सुने।

बालूभाई मेहता आये। सेवक के खर्चे के बारे में विचार विनिमय। ज्यादा में ज्यादा २०) बस हो सकते हैं एक आदमी को, विनोबा ने प्रमाण देकर समझाया।

दादा, राधाकिशन, आया। बाबूराव हरकरे के बारे में दादा ने विनोबा से बातें कहीं। मैंने भी मंजूर कीं। अगर सचमुच में हृदय ने पलटा खाया है यह विश्वास हो जाय तो।

पूज्य बापू, सरदार, जानकी देवी, कमल को अपने हृदय के उद्गारों के दुख व जो मन्थन चल रहा है उसके पत्र लिखे। कुछ पत्र विनोबा ने देखे। राधाकृष्ण ने नकलें कीं।

चर्खा—वर्धा, शाम को बालकों के आग्रह से भोजन—बजाजवाड़ी में प्रार्थना वगैरे। मैंने मेरे मन के भाव कहे। दर्द-दुःख भी कहा।

(३)

उदय ५-३८ मोराँसागर अस्त ६-२२

(जयपुर रियासत, नजरबंदी में)

१८ अप्रैल १९३९ मंगलवार बैशाख व० १४, १९९६ वि०

प्रातः घूमने —रामनाथ साथ में। आज भी कमजोरी मालूम होती थी। करीब अढ़ाई मील घूमकर आना। रामनाथ ने अपनी स्थिति दासपने वगैरे की, बेपरवाई की, साफ की। समाधान तो नहीं हुआ। मैंने जो भवसिंग को कहा था वही इसे कह दिया।

अखबार देखना। नेतरामसिंग आदि किसान-मित्रों की हालत ठीक नहीं, पढ़ कर चिन्ता हुई।

आज सुस्ती मालूम होने के कारण दूसरी बार यहाँ आने के बाद काफी दूध में ली। आज भी भोजन नहीं किया। आज चौथा रोज है। जीभ तो ज्यादा खराब रहती है। कल से पेट भी साफ नहीं हुआ था। आज शाम को साफ हुआ।

चर्खा देर तक। शतरंज एक बाजी उमरावसिंग[१] के साथ।

ठा० भवानीसिंहजी[१] गढ़वालों से धार्मिक, सामाजिक, रूढ़ी आदि पर विचार। कुशलसिंगजी[१] के लिए मोटर वापस भेजी। रात को नौ बजे करीब आये। पत्र अखबार लाये। १२ बजे तक पढ़ना।

चि० राधाकृष्ण के नाम पत्र लिख रखा। १७, १८ के अखबार पढ़े। राजकोट के गिरासिये (भयात) लोगों ने प्रार्थना के समय जो भद्दा देखाव किया वह पढ़कर दुख व आश्चर्य हुआ। मुझे तो अब विश्वास हो रहा है कि राजकोट ठाकुर का व वीरावाला का विनाशकाल नजदीक आ रहा है। वहाँके मुसलमानों को लीग (जीना) ने भड़काया मालूम देता है। राजकोट का मामला ठीक पेचीदा बन गया। इसका बुरा असर सारे स्टेटों में पहुँचेगा।

सर किवलू का चार्ज ता० १५-४ को मि० टाड, भरतपुर के पोलिटिकल एजेण्ट, ने ले लिया।

कलकत्ते में आल इंडिया की सभा हो रही है। भविष्य ठीक नहीं मालूम दे रहा है।

---

[१] जयपुर बंदीवास के अरदली।

(४)

फाल्गुन १३ मगलवार २५ माच १९४१

नागपुर जल

आज सवा पाच बज करीब फ्रुट साल्ट—चार बडी चमच ऊपर तक भर कर ली। साढ दस बज करीब एक पतला दस्त लगा। ११½ बज करीब सन्तर का रस सवा छ घण्ट बाद लिया। स्नान करत समय चक्कर-सा आ गया था। कमजोरी थोडी बढ रही है।

उर्दू की दूसरी किताब आज पूरी हुई। अलका खाण्डकर की लिखी हुई मराठी कादम्बरी भी आज पूरी हुई। ठीक लिखी गई है। श्री खाण्डकर स परिचय करन की इच्छा बढता जाती ह।

आज की चर्चा का विषय अगर मर सरीखा मनुष्य गरीब होकर मरना चाह तो किस प्रकार व्यवहार म यह आ सकता है। चर्चा पूरी नही हो पाई। मरी इच्छा गरीब व पवित्र होकर मत्यु मिल तो समाधान स शरीर छटगा अन्यथा भी मत्यु का स्वागत करन की तो हमशा ही तयारी है। परतु उसम कमजोरी का कारण विशष है।

आज प्यारलाल न मालिश करी। महादव को बताई।

श्री रविशकर शुक्ल सावनर स यहाँ इलाज क लिए लाय गए उनस मिलना।

विनोबा की प्रार्थना मे। विनोबा न जल मे मिजवानियाँ वगैर का विरोध। अ ब क वग की स्थिति समझाई।

(५)

मिती माघ वदी		८ जनवरी १९४२ ई०
सं० १९९८	गोपुरी	गुरुवार

३,३-३० प्रार्थना, पत्र-व्यवहार। हरिभाऊजी, पूनमचंदजी रांका से बातचीत। चि० शान्ताबाई, सुशीला के साथ बंगले से ७-५ पर मशाला रवाना। ९-१५ को वहाँ पहुँचना। वर्धा ९ माइल करीब है। बैली से जाना हुआ। शिवनारायणजी भी साथ दूसरी रेंगी में आये। वहाँ पहुँचने पर खेत-बाड़ी तीनों कुएं देखे। शाम को पहाड़ी ऊपर का दस एकड़ का खेत, पत्थर की खदान देखी।

बातचीत देर तक, जवारी की रोटी, दाल, साग स्वाद लगे। आज कई वर्षों बाद बेर छोटे-बड़े खाये। चने, संतरे भी। शान्ताबाई को यह ग्राम तो बहुत पसंद आ गया। यह ग्राम किसकी ओर लगाया जाय? साढ़े सत्तावीस हजार में। मैंने कहा तीन चिट्ठियां डालो। महिला-सेवा-मण्डल, लक्ष्मीनारायण-मंदिर, शान्ताबाई, परन्तु बाई ने कहा दो ही डालनी चाहिए, मन्दिर की नहीं। तब दो चिट्ठियां सुशीला ने डाली। शान्ता ने उठाई। महिला-सेवा-मण्डल के नाम की चिट्ठी आई। उसी खाते करने का निश्चय रहा।

चि० सुशीला से बातें। उसने कई भजन सुनाये। लौटते समय हवा कम हो गई। इससे तीन घंटे में आना हुआ। ५-८ को थोड़ा दूध-फल। पत्र लिखे।

उनकी डायरी से कुछ ऐसे नोट भी दिये जाते हैं जिनसे उनके मन की प्रतिक्रियाओं की कुछ झलक मिलती है—

१२ अप्रैल १९३९

"आंवडा ग्राम—चीजें बहुत थोड़ी मालूम हुई। मिट्टी के बरतन व टोकरियाँ व थोड़ा लोहे का सामान मिला। बाकी विदेशी वस्तु बहुत ज्यादा थीं। इस जिले की गरीब जनता-जनार्दन के ठीक दर्शन हुए। उनके रीति-रिवाज भी देखे। गरीबी में भी लोगों को उत्साहित व आनंदित देखा। शिक्षण मिला। पुरुषों से स्त्रियाँ ज्यादा बहादुर व मिहनती हैं। यह ग्राम एक ठाकुर का है। खेड़े के पास ही है।

ऊँट महाराज एकाएक बैठ गये—दूसरे ऊँट भी बैठ गये। सच तो यह मालूम होता था कि ऊँटदेव मेला छोड़कर बिल्कुल आना नहीं चाहते थे।....इन मेलों में अश्लील गीत मर्द व औरतें गाती हैं—मैं तो नहीं सुन सका (बराबर)। नाच तो देखा ही नहीं। उनमें सुधार होकर अच्छे गीत उपदेशपूर्ण-गायन आदि की प्रथा हो जाय तो ठीक हो।"

१९ अप्रैल १९३९

"राजकोट की हालत खराब होती जा रही है। अखबार वालों ने बापू को कोसना शुरू कर दिया है। प्रजा में भी तड़ पड़े जा रहे हैं। मुझे तो इसमें बेशक पोलीटिकल एजेंट व वायसराय के मंत्री पर भी संदेह होने लगा है। जयपुर के कारण भी।"

२८ अप्रैल, १९३९

"राजकोट के मामले पर बापू ने जो दुःखित हृदय से स्टेटमेंट दिया वह पढ़ा। एक बार तो बुरा भी लगा। दुःख भी पहुँचा; तथापि यह विश्वास है कि परमात्मा ने किया तो जल्दी ही कोई समाधान-कारक रास्ता निकल आवेगा। बापू व सरदार को खूब दुःख और कष्ट पहुँचना स्वाभाविक है।

"सुभाष बाबू—कलकत्ते का वातावरण खूब गंदा हो रहा है। सरदार आल इंडिया में नहीं जावेंगे। बापू का स्टेटमेंट देखा; एक तरह से यह ठीक है।

"वर्तमान में कांग्रेस, देशी रियासत, भारत व दुनिया की जो हालत हो रही है उसे देखते हुए, मेरे लिए कैद में रहने में ही मेरा सब प्रकार से लाभ है (स्वार्थ की दृष्टि से)।"

डायरियों में जहाँ वे अपने हृदय-शोधन का प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं वहाँ अपने पत्र-व्यवहार द्वारा वे दूसरों को हृदय-शोधन की प्रेरणा देते रहते थे। उनके पत्र बड़े सजीव होते थे। कामकाज, उपदेश, व्यावहारिक सलाह, कार्य करने में सुझाव आदि से भरे रहते थे। बहुत बार तो वे खुद ही पत्र लिखते थे, और इतनी तेजी से लिखते थे कि कभी-कभी तो १ घण्टे में ४० पत्र लिख डालते थे। यदि मन्त्री ने लिखा हो तो खुद अपनी कलम से एक-दो वाक्य अवश्य लिखते, जिसमें या तो स्वास्थ्य के बारे में कुछ पूछते या किसीको वन्दे, नमस्ते, प्रणाम लिखते। इस तरह उनके पत्र में एक जीता-जागता मानवीय स्पर्श रहता था। जो पत्र पाते ही पढ़नेवाले के हृदय को पकड़ लेता था। यदि कोई दुखी और निराश हो रहा हो तो उसमें उनके पत्र से आशा का संचार होता था। यदि किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ रहा हो तो उसको रास्ता दिखाई पड़ता था। यदि किसीको किसी प्रकार की सहायता की जरूरत होती तो उसमें टाल-टूल नहीं, बल्कि उचित सलाह और सही मार्ग-दर्शन मिलता था।

उनके पत्रों में एक अनोखी अपनाहट रहती थी। किसीको पत्र क्या लिखते, मानो उसके दिल में बैठ कर उसकी परिस्थिति अच्छी तरह समझ कर उससे बातचीत ही करते। इसके कुछ नमूने देखिए—

पं० जवाहरलालजी को साइमन कमीशन संबंधी लखनऊ वाली घटना के बाद लिखते हैं :—

प्रिय भाई जवाहरलालजी, ७-१२-२८

"लाहौर और लखनऊ में पुलिस ने जो अत्याचार किये हैं, उनकी खबर पाकर और सुनकर दुख होता है। एक तरफ लाहौर में पुलिस का कार्य और दूसरी तरफ लोगों की उदासीनता देखकर दुख हुए बिना नहीं रह सकता। लखनऊ में आपके ऊपर पुलिस की मार पड़ी लेकिन चोट ज्यादा न आई, यह पूज्य महात्माजी को दिये गए आपके पत्र से जान कर कुछ संतोष हुआ। लेकिन पुलिस और गवर्नमेन्ट इस तरह अपनी मनमानी कर सके यह देश के लिए कम लज्जा की बात नहीं है। देश के नेता इस बात को सोचकर कुछ रास्ता निकालेंगे तभी ठीक होगा। कलकत्ता-कांग्रेस में आप सब लोग आवेंगे ही। उस समय कांग्रेस-द्वारा कोई रास्ता निकालने से ही मन को संतोष होगा।"

जमनालाल

शोक-दुःख में धैर्य देते हुए वे लिखते हैं—

बजाजवाड़ी

प्रिय फतेचंद, २५-६-३८

"तुम्हारा २२-६-३८ का पत्र मिला। तुम्हारे पत्र से थोड़ी चिंता कम तो होती है। परन्तु मैं तो चाहूँगा कि तुम अधिक हिम्मत से काम लो तथा श्री पालीरामजी को पूरी तरह से धैर्य और हिम्मत दिया करो। संसार में कठिनाइयाँ इसीलिए आती है कि मनुष्य उनका धैर्यपूर्वक मुकाबला करे। और खासकर ऐसी बातों में जिनमें मनुष्य का कोई बस नहीं चल सकता, सिवा संतोष मानने के हम और क्या कर सकते हैं ? अगर मनुष्य चाहे तो इस प्रकार की घटनाओं से काफी लाभ उठा सकता है। 'एक रोज मरना जरूर है, अन्याय करने से सदा डरो।' यह सिद्धान्त अपने हृदय में पूरी तौर से बैठाने का प्रयत्न कर सकता है। जिस मनुष्य की मृत्यु हो जाती

है, विचार कर देखने से एक प्रकार से वह तो संसार के मिथ्या संकट से मुक्त हो जाता है। पीछे रहने वाले अपने स्वार्थ के लिए उसकी याद कर के व्यर्थ दुख किया करते हैं, जिससे किसी प्रकार कोई लाभ नही होता। आशा है, तुम अब इस प्रकार अपना कर्तव्य समझ गए होगे। तुम्हें खूब हिम्मत बढ़ा कर घर में उत्साह का वातावरण पैदा करना चाहिए। व अपना व्यावहारिक पारमार्थिक काम करने लग जाना चाहिए। श्री पालीरामजी से मेरा बन्देमातरम् कहना।"

जमनालाल का बन्देमातरम्

नीचे के पत्र में कार्यसमिति से हट जाने देने का अनुरोध किया है—

२२-१२-४१

प्रिय श्री मौलाना साहेब,

"आपको मालूम है कि एक मुद्दत से मेरा झुकाव, शान्ति के खयाल से, राजनैतिक जिम्मेदारियों से अलग हो जाने की तरफ है। इसलिए अच्छा मौका देखकर मुझे वर्किंग-कमेटी से हट जाने देने का खयाल रखेंगे।"

जमनालाल

एक ओर कर्तव्य की मजबूरी, दूसरी ओर मानवी सहानुभूति का परिचय इस पत्र से होता है—

वर्धा, सी० पी०
१४-८-३३ ई०

"आपका पत्र ता० ६-८-३३ का प्रेम भरा हुआ व दुःख से भरा हुआ पढ़कर थोड़ा दुःख हुआ।

"मिलने की तो मेरी इच्छा है, परन्तु मिलना तो देश के वर्तमान अशांत वातावरण के कारण थोड़ा कठिन हो गया है, तथापि मेरा उधर कलकत्ते आना हो सकेगा तो मिलना हो जावेगा।

"चि० रामनिवास व मेरी रकम के बारे में दावा (स्यूट) मेरी ही परवानगी से दायर किया गया है। मुझे भी आखिर दुःख के साथ यह इजाजत देनी ही पड़ी, क्योंकि मैंने जब रकम चि० रामनिवास की माता से मेरे सीर में दिलवाई थी उस समय बहुत ही स्पष्ट तौर से खुलासा हो गया था। आप लोगों से भी जो और जिस प्रकार का खुलासा हुआ था उसको मैं क्या दोहराऊँ। आपने खुद ही लिखा है। मेरी इच्छा बिल्कुल न थी। मैंने आपको कई तरह से समझाया था। मेरे अनुभव भी आप लोगों से साफ कहे थे। बाकी उसका अब यहाँ क्या उपयोग? आपने देश की जमीन हम लोगों के लिए रखी थी उसका क्या हुआ? आप लोगों को कम-से-कम वह तो हम लोगों के नाम पर कर ही देना वाजिब था। खैर। अब तो आप लोग डिग्री स्वीकार कर लेवें तो फजूल खर्च सालीसीटर आदि का ज्यादा न बढ़ने पावे। पहले तो यही करना चाहिए। बाद में दूसरी किसी व्यवस्था का विचार हो सकता है। भाई.......के चले जाने से भी कठिनाई आप लोगों की बढ़ गई यह तो मैं समझ सकता हूँ, परन्तु यह मामला तो उन्हींके सामने से ही गड़बड़ में पड़ गया था।

"मेरा तो अब भी विश्वास है कि अगर...व आपकी अब भी परमात्मा पर पूरी श्रद्धा हो और नीयत एकदम साफ हो तो उसमें भविष्य (कठिनाइयों का पूर्ण सामना करते हुए भी) उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। आप जानते ही हैं, मेरा तो......से ज्यादा परिचय नहीं है। यह काम तो केवल आपको ही समझ कर किया गया है। विशेष बात तो आपसे मिलना जब कभी होगा तब ही होगी, अभी तो और ज्यादा क्या लिखूं। आप खूब हिम्मत व बहादुरी के साथ सांसारिक व आर्थिक संकटों का सामना कर सकें, इसके लिए ईश्वर आपको पूरी ताकत प्रदान करें। और ज्यादा क्या लिखूं। फिर कभी।"

जमनालाल बजाज का वन्देमातरम्

कार्यकर्ताओं को कितनी स्पष्ट, निश्चित, समझाकर, सावधानी व सहानुभूति के साथ सलाह देते व उनका मार्गदर्शन करते थे, यह नीचे लिखे सविस्तर पत्र से प्रकट होता है । यह पत्र खुद उनके हाथ का लिखा हुआ है—

सत्याग्रह आश्रम, साबरमती
श्रावण सुदी, ३ सं० ८४

प्रिय श्री हरिभाऊजी,

आपका श्रावण वदी ८ का पत्र अभी मिला। बम्बई-अहमदाबाद रेलवे लाइन बन्द होने के कारण पत्र में देर होती है। आप भ्रमण कर अजमेर आये उस पर से ४ प्रश्न पर विचार करना जरूरी लिखा सो ठीक। मेरे वहाँ आने पर इन प्रश्नों पर खुलासेवार विचार करने का आप लोगों ने निश्चय किया सो ठीक। वहाँ आने पर विचार करेंगे। तब तक, आप अपना व श्री देशपाण्डे का अनुभव नोट कर रक्खें ताकि विचार करने में सहायता व सुगमता होगी।

अछूत पाठशालाओं का प्रश्न भी जटिल हो रहा है लिखा सो मुझे भी आपका पत्र पढ़ने से और जयपुर के कर्मचारियों की कठिनाइयों का अनुभव करते हुए बहुत संभव दिखता है कि हमें यह प्रश्न (कार्य) अपने कार्य से अलग करना होगा। तथापि खुलासा विचार तो वहीं किया जावेगा। आप काम बढ़ाने का खयाल बिल्कुल न रक्खें—जहाँतक समाधानकारक व्यवस्था न हो जाय।

श्री हीरालालजी के बारे में आपने लिखा सो मुझे याद है। मैंने आपसे इनके बारे में जिक्र किया था; परन्तु हाल में इनका विचार होते हुए भी उनपर श्री पुरोहितजी का बहुत प्रभाव है। उसका सामना करना शायद कठिन हो। दाणी विद्यालय के बारे में भी वहीं आने पर सब परिस्थिति साफ कर के नवीन घटना तैयार करनी पड़ेगी। उस समय मेरा नाम सभापति में रखना जरूरी होगा तो रख लिया जावेगा।

रावतसिंह विद्यार्थी का अगर आप पूरा उपयोग लेते हों तो ठीक है, अन्यथा उसे बिजोलिया भेज देना ठीक रहेगा। वहाँ वह अधिक उपयोगी होना सम्भव है।

श्री कपूरचंदजी को खादी काम की लगन लग गई, वह भी कुछ समय आश्रम में रहना चाहते हैं सो ठीक है। वह अगर पूरी लगन से इस काम में पड़ जावेंगे तो मुझे विश्वास है, वह खूब काम कर सकेंगे। इन्हें घर की परिस्थिति बने उतनी जल्दी अपने अनुकूल कर लेने का प्रयत्न रखना चाहिए। वह अगर मेरे साथ रह सकें तो मुझे तो बहुत संतोष मिलेगा व उन्हें भी भविष्य के कार्य के लिए बहुत सी बातें जानने को मिलेंगी।

मुझे हटूंडी ठहराने का विचार लिखा सो मुझे भी वहाँ ठहरने में अधिक सुख व शान्ति मिलेगी। वहाँ ठहरने से २-४ रोज ज्यादा भी रहना संभव हो सकता है।

श्री पूज्य काका सा० ने मराठी-हिन्दी-कोष के बारे में आपको खूब फटकारा सो ठीक। नरम आदमी से प्रायः सबको ही फटकार के सब काम करा लेने की इच्छा हो जाया करती है। पू० काका सा० ने मुझे भी कहा था। मैंने तो इस पुस्तक को छपाने की सहायता के लिए मेरे पास से २००) श्री पुण्डलीकजी को दिये हैं। मीटिंग के समय आपका व श्री आनंद स्वामी व जीतमलजी का काम था कि वे जोर के साथ यह प्रश्न रखते। अगर आप लोगों (पुस्तक निर्वाचन कमिटी) ने उसे स्वीकार कर लिया था तो मीटिंग में यह प्रश्न क्यों आया? इस प्रकार के सब प्रश्नों का मंडल के उद्देश का खयाल रख कर ही विचार किया जाना चाहिए। आपने काका सा० को जो पत्र लिखा है [वह मैंने पढ़ा है। उसमें यह वाक्य पढ़ कर मुझे सन्तोष नहीं हुआ (मुझे अपनी इस कमजोरी पर अत्यन्त खेद है। मैं मानता हूँ कि मैं तो किसी प्रकार उसको प्रकाशित करने की नैतिक जिम्मेवारी से नहीं बच सकता, पर निर्वाचन कमिटी भी न बच सकेगी)।

अगर आपकी कमिटी ने यह छापना निश्चय कर दिया तो फिर प्रश्न खड़ा ही नहीं होता—अन्यथा आपकी नैतिक जिम्मेवारी कैसे ? व निर्वाचन कमिटी की कैसे ? यह समझ में नहीं आया। आपकी हमारी नैतिक जिम्मेदारी मंडल से घाटा न उठाते हुए उत्तम साहित्य का सस्ता दाम रख कर प्रचार करना है न कि पूज्य बापूजी या काका सा० या जमनालाल या हरिभाऊ की इच्छा-पूर्ति करना है। आप इसका विचार कर मेरे वहाँ आने पर चर्चा करेंगे। मैंने इस बारे में जो इतना लिखा है सो विचार-विनिमय होने के लिए, और हम लोगों को संस्था की जिम्मेदारी अधिक माननी चाहिए, न कि व्यक्तियों की। तभी संस्था में जीवन आना सम्भव है।"

जमनालाल बजाज का बन्देमातरम्

चि० राधाकृष्ण, बम्बई ४-११-३४

"पत्र तुम्हारा २-१०-३४ का मिला देरी से। आशा है, ता० १३ को प्रचारकों से मिलना हो सकेगा। श्री थत्तेजी प्रायः ठीक हो गये, जान कर सन्तोष हो रहा है। श्री पदमावती का पूरा सन्तोष हो गया होगा। नहीं तो उसे उसके पिता के हवाले ही एक बार तो करना होगा। मौका लगे तो बापूजी, विनोबा व काका साहब से बातें करवा देना। हरिभाऊजी को अजमेर जल्दी जाना ही होगा। वहाँ की चुनाव की जुम्मेदारी लेकर आये है,उसे पूरी करना होगा। श्री धोत्रे को आराम तो पूरा मिलता होगा। श्री एन्ड्रूज व जोन से आज मैं मिल लिया था, कल फिर मिल लूंगा। हरदास साधु का पत्र भेज रहा हूँ। तुम पढ़कर उसका पत्र मेरे नाम का तुम्हारे पास रख लेना व मेरा पत्र उसे दे देना। इसकी दवा पानी की व्यवस्था पू० जाजूजी की सलाह से ठीक हो सके तो जरूर करने का खयाल रखना चाहिए। तुम उसे हिम्मत देना और जाजू साहब की सलाह से व्यवस्था करा देना।"

जमनालाल के आशीर्वाद

उनके सात्विक रोष का एक नमूना देखिए--

बजाजवाड़ी, वर्धा
२२ नवम्बर, १९३८

प्रिय सर अकबर सा०,

आपके खत से मेरे दिल को बड़ा धक्का लगा। रात भर मुझे उससे बेचैनी रही। बम्बई में जब ११-१२ ता० को आपकी मेरी बातचीत हुई थी उस वक्त की सरगर्मी कहाँ और आपके इस जवाब की बेरुखी कहाँ ? दोनों में जमीन-आसमान का फर्क !

आपने सरदार पटेल को मिलने बुलाया। पांडिचेरी में इसी तरह आपने मुझे भी निमंत्रण दिया था। २१ सितम्बर का आपका सविस्तार पत्र, जिसमें आपने कार्यसमिति की अनुकूल सम्मति के लिए उत्सुकता प्रदर्शित की थी, उसमें और आपके इस जवाब में कोई मेल नहीं है। यहाँ तक कि आपने अपने एक मित्र की सहायता को हस्तक्षेप बताया है। यह तो दरवाजा बन्द कर लेना ही हुआ न ! मुझे कहना पड़ता है कि मैं आपकी तरफ से इस सबके लिए तैयार न था।

मैं बम्बई से कल ही लौटा हूं। वहाँ मैंने सरदार वल्लभभाई, पं० जवाहरलालजी और डा० पट्टाभि से आपके पत्र के बारे में बातचीत की और यहाँ गाँधीजी को भी बताया।

आपके दामाद मुझे जुहू में मिले थे। मैंने उनका परिचय सरदार और पं० जवाहरलालजी से करा दिया है। इस बारे में वे भी हमारी भावनाओं से परिचित हो गए हैं।

सर अकबर हैदरी
अध्यक्ष, कार्यकारिणी कौंसिल
निजाम सरकार, हैदराबाद (दक्षिण)

भवदीय
जमनालाल बजाज

: १० :

श्रेयार्थी

[उपसंहार]

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्
तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षमाद् वृणीते॥

(श्रेय (कल्याण) और प्रेय (प्रिय) दोनों मनुष्य के सामने आकर खड़े होते हैं। समझदार आदमी दोनों की उचित परीक्षा करके उनमें विवेक करता है। समझदार श्रेय को ही पसन्द करता है। मूर्ख मनुष्य योग-क्षेम (ऐहिक सुख-भोग) का साधन समझ कर प्रेय को स्वीकार करता है।)

"एकहि साध सब सध सब साध सब जाय"

जमनालालजी के जीवन का जितना मैंने अध्ययन किया है उससे मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वे शुरू से आखिर तक श्रेयार्थी रहे और जबर्दस्त श्रेयार्थी रहे। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य, उनका प्रायः प्रत्येक पत्र और डायरी का प्रायः प्रत्येक पन्ना इसी भावना से ओतप्रोत दिखाई देगा। अपने मार्गदर्शन, उद्बोधन और अन्तर्जागरण के लिए नित्य भजन, मनन और चिन्तन के लिए वे अपनी डायरियों में प्रति वर्ष कुछ स्तोत्र, भजन आदि लिख लेते थे। यद्यपि मोक्ष को वे पहचानते थे फिर भी, पवित्रता और जन-सेवा उनको अधिक प्रिय थी।

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ।।

यह ध्येय वाक्य उन्होंने फ्रेम में जड़वा कर टाँग रक्खा था। इसके लिए बापूजी का बताया सत्य और अहिंसा का मार्ग उनके हृदय में बैठ गया था। वे मुख्यतः व्यावहारिक आदमी थे, इसलिए सत्य और अहिंसा की उन्होंने प्रारंभ में व्यावहारिक व्याख्या बना ली थी और उसका वे दृढ़ता से पालन करते थे। कुछ समय तक उससे उनको संतोष भी मिलता था। परन्तु, बाद में, जब उस काम-चलाऊ व्याख्या से या उसके कामचलाऊ पालन से समस्याएं पूरी तरह सुलझती नही दिखाई दीं और उनके मन को शांति नहीं मिलने लगी तब वे उसमें गहरे उतरने लगे और अंत में इसका ऐसा गाढ़ा रंग उन पर चढ़ गया था कि सच्चे अर्थ में श्रेयार्थी कहलाने के अधिकारी हुए थे। जबतक हमारी दृष्टि लोक-व्यवहारू होती है तबतक साधारणतया समाज-व्यवहार में या कार्य-सिद्ध में हमें सहज ही अधिक कठिनाई का अनुभव नहीं होता और न अपयश ही मिलता है; क्योंकि हम जैसा बने वैसे निबाहने की, काम चलाने की और काम निकालने की फिराक में रहते हैं और काम बना भी लेते हैं। लेकिन जब किसी सिद्धान्त, आदर्श और लक्ष्य को सामने रख कर और उसको दृढ़ता से पकड़ कर चलते हैं, तब कार्य-सिद्धि से अधिक महत्व की वस्तु हमें सिद्धान्त, आदर्श या नीति मालूम होने लगती है। उसके अनुकूल जो सफलता हो वही हमें अपने लिए वास्तविक सफलता मालूम होती है, उसको छोड़ कर जो सफलता हमें मिलती है वह असफलता दिखने लगती है। यहीं से मनुष्य की नैतिक भूमिका का श्रीगणेश होता है। फिर उसके बाद जब यह श्रद्धा होने लगती है कि सत्-कार्य का जो भी परिणाम निकले वह शुभ ही है, सत्य और अहिंसा की साधना का जो भी फल निकले, वह शुभ ही होगा और अशुभ फल में से भी शुभ के दर्शन होने लगते हैं, तब हम आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने लगते हैं। यह ईश्वर-श्रद्धा

का प्रारंभ है। पटना से लिखे (२९-६-३४) के पत्र से उनकी यह श्रद्धा भलीभाँति प्रकट होती है—

"पूना की दुर्घटना में पूज्य बापूजी बचे ही, साथ में चि० ओम भी बच गई । जिसको ईश्वर बचाने वाला है, उसे कौन मार सकता है ? इस प्रकार की घटनाओं से ईश्वर की शक्ति (अस्तित्व) में विश्वास बढ़ता है।"

अंतिम दिनों में, जमनालालजी आत्मिक जगत् मे विहार करने लग गए थे। लेकिन इस सब के पीछे उनकी लम्बी सेवा और साधनाका एक तांता है। नीचे ऐसे कई महत्वपूर्ण उद्धरण दिये गए हैं जिनसे यह भली-भाँति सिद्ध होता है। अपने वसीयतनामे मे एक जगह वे अपने कर्मचारियों आदि को संबोधन करके लिखते हैं:—

"........अब वह अपना भविष्य का जीवन इस मायावी संसार में आज तक बिताते आये उस मुताबिक न बितावे और यह नर-देह बहुत ही पुण्य-कर्म से प्राप्त होता है, ऐसा मान कर सत्य ही मुख्य धर्म और जन-सेवा ही मुख्य कार्य (कर्म) समझ कर अपने जीवन का परिवर्तन कर दें। गृहस्थ में रह कर भी उसमे नही, ऐसा और ऊपर का ध्येय सामने रखते हुए पवित्रता से व सादगी तथा त्याग का भाव रखते हुए अपना जीवन बितावें। मुझे आशा है, उस माफिक अगर वह चलेंगे तो एक दिन अवश्य जीवन-मरण से छूट जायेंगे और परमात्मा की ज्योति में मिल जायेंगे।"

एक दूसरी जगह वसीयतनामे में ही फिर लिखते हैं:—

"मुझे पूरा विश्वास है कि निस्वार्थ-भाव से जन-सेवा (देशसेवा) करते रहने से ही शीघ्र मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। अगर कोई मुझे यह कहे कि इस तरह देशसेवा करनेवालों की इस जन्म में नही कई जन्मों के बाद मोक्ष प्राप्ति होगी, तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं होती; एक प्रकार से आनन्द ही होता है। पवित्रता के साथ जन-सेवा करते-करते कई जन्म भी

हो जायँ तो क्या फिकर? केवल मनुष्य को इस बात का ही खयाल रखना चाहिए कि कहीं वह मायाजाल में फँस कर मनुष्य-जन्मके आदर्श को न भूल जाय और अभिमान में प्रवृत्त होकर इस नर-देह का पतन न करे।"

".....मेरे अज्ञान के समय में तथा पूर्व संचित दूषित कर्मों के भोग बाकी रहने के कारण तथा मेरे कई भोले मित्रों की संगत से भी मेरे इस शरीर से कई बड़ी व छोटी गल्तियाँ हुई हैं, जो कि ऐसी हैं कि परमपिता ही दया कर माफ करें तो कर दें। मैं इस जगह फिर परमात्मा से प्रार्थना करूँगा कि वह माफ करें और मेरे उन भोले मित्रों को भी सद्‌बुद्धि प्रदान कर माफ करें।"

स्वर्गीय महादेव भाई ने उनके लिए एक जगह इस प्रकार लिखा है—

"इस प्रकार के आत्मिक आहार द्वारा जमनालालजी की मोक्ष-साधना को पोषण प्राप्त हुआ था, वे आत्मार्थी बने थे। प्रतिदिन वे आत्म-निरीक्षण करते थे और प्रायः विनोबा या बापू के सामने अपना हृदय खोल कर रख देते थे।"

उनके पुराने धार्मिक मित्र वृद्धिचंदजी पोद्दार ने एक पत्र में उनको लिखा था—

"जोगणीजी के विषय में तुमने पत्र में समाचार लिखे उसे पढ़कर तुम्हारे अन्तःकरण की पवित्रता निश्चय होती है। हमारी समझ में तुम्हें आत्म-साक्षात्कार बहुत जल्दी होना चाहिए।"

श्री घनश्यामदास बिड़ला ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"तो जमनालालजी भी परमार्थ के लिए आये। बाहरी रूप चाहे उनका नेता का रहा, पर उनका मन तो परमार्थ में बसा था। बुद्ध के समय में वह जन्मते, तो श्रमणों की सेवा में दान-धर्म करते-करते, शायद स्वयं श्रमण बन

जाते। इस जमाने में जन्मे तो राजनैतिक वातावरण से अलिप्त न रह सके। कहा जा सकता है कि उनके परमार्थ ने उन्हें राजनीति में धर घसीटा।

"जमनालालजी में न था आलस्य, न था क्रोध, न था विषाद, न था धन का लोभ। उनमें कर्मण्यता थी। वह स्नेह के आगार थे। व्यावहारिकता उनमें कूटकूट कर भरी थी। स्वदेश-प्रेम उनका एक स्वभाव बन गया था। आतिथ्य से वह कभी अघाते न थे। मैत्री करना तो उन्हें आता ही था, निबाहना भी आता था। उनमें विनय थी। उनमें सत्य का हठ था। वह निर्भीक थे। वह सेठ थे और साधु थे।"

उनकी डायरी में एक जगह यह वचन मार्गदर्शन के तौर पर लिखा मिला है—

"यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्"

(जो तेरे अन्दर हो वही बाहर हो और जो बाहर हो वही अन्दर हो।)

४ मार्च १९३६ के अपनी डायरी में वे लिखते हैं—

"बापू ने कान्फरेन्स की कार्य-पद्धति पर टीका की। उस समय बहुत ज्यादा क्रोध आया। इतने क्रोध का इन वर्षों में अनुभव नहीं हुआ था। बापू से भी ज्यादा वल्लभभाई पर क्रोध आया। मन में दुःख व विचार खूब रहा। विनोबा, किशोरलालभाई से बातचीत। आखिर बापू और वल्लभभाई से खुलासा होने पर थोड़ी शान्ति।"

एक जगह वे लिखते हैं—

"जीवन सेवामय, उन्नत, प्रगतिशील, उपयोगी व सादगी युक्त हो—यह भावना जब से मैंने होश सँभाला, तब से अस्पष्ट रूप से मेरे सामने थी।"

मार्च १, १९३९ की डायरी में वे लिखते हैं:—

"आत्मा की शुद्धि और जागृति के लिए हमें आत्मा को कमजोर करनेवाले सभी दुर्गुणों को छोड़ना चाहिए। जैसे:—

(१) नशीली चीजें, (२) गृहस्थी में भी संयम, (३) मिर्च-मसाला आदि विकारोत्पादक पदार्थों का त्याग, (४) सट्टा, जुआ न खेलना, (५) झूठ न बोलना, (६) शरीर-शुद्धि, (७) काम में लगे रहना, (८) अज्ञान को बुरा मानें, (९) ज्ञान की खोज में सदा रहें, (१०) लालच न करें, दूसरों को नुकसान पहुँचा कर अपना लाभ न करें, (११) किसी का बुरा न चाहें, पड़ोसियों से प्रेम और उदारता रखें, (१२) नम्रता व ईश्वर-परायणता।"

आगे २ अप्रैल की डायरी में लिखते हैं:—

"मैं अपने दोषों का खयाल करता हूं तो शर्म, लज्जा व दुःख से मन भर आता है। मनुष्य को हर हमेशा सत्संगत व उत्तम पुस्तकें आदि के विचारते रहने की, मरे वहाँ तक, जरूरत समझनी चाहिए।"

१९ फरवरी, १९३८ की डायरी में लिखा मिलता हैं:—

"अपने प्रति करुणा करके सब जीवों को समान मान कर उन पर करुणा करें। और अपने किसी प्रकार के भी सुख के लिए जीव-हानि करते हुए कांप उठें।

"देह की उपेक्षा न करते हुए मृत्यु का जरा भी भय न रखें।"

"देह अत्यन्त धोखेबाज है, ऐसा मान कर उसी क्षण से मोक्ष की तैयारी करें।"

डायरियों के और भी उद्धरण देखिए:—

२६ जनवरी, १९४१

"विनोबा ने तुलसी रामायण पढ़ना शुरू किया। तुलसीदासजी का जीवन जैसा उन्होंने कहा—पापमय होना सम्भव था। परन्तु सचाई से स्वीकार कर लेने के कारण व भक्ति के कारण उन्होंने अपना मार्ग ठीक कर लिया।"

१० जनवरी, १९४१

"रा० की लिखी जीवनी पढ़ना शुरू किया। आँखों में पानी देर तक

आता रहा। खुद की कमजोरियों का खयाल करके—विशेषतया बापूजी की स्वीकृति पढ़ कर।"

१ जनवरी, १९४१

"रात को नींद कम आई। विचार शुरू हुए। स्वप्न में पूज्य बापू, किशोरलालभाई वगैरा ने मेरी कमजोरियों की छानबीन की। पुरावा तो विरुद्ध साबित नहीं हुआ। परन्तु मैंने तो स्वीकार किया।"

"विनोबा का प्रवचन—हृदय-पलटा का दृष्टान्त। मुझे खुद अपने हृदय पलटने का प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"

एक बार बापू को उन्होंने लिखा:—

"मेरे मन में मलिन विचार तो आते ही रहते हैं, लेकिन अब मैं उन सबको आपके सामने उगल दिया करूँगा ताकि मेरी शुद्धि हो व मुझे शान्ति मिले।"

वे शुद्धता, पवित्रता और त्याग के पुजारी तो थे ही, हमेशा अपनेको इस कसौटी पर कसा भी करते थे। उनको हमेशा लगता था कि मैं अभी शुद्ध, पवित्र और त्यागी नहीं हुआ हूँ। लंबे अर्से से उनके मन में संघर्ष चल रहा था। १९२२ में उन्होंने गांधीजी को एक पत्र लिखा था जिससे उनकी मनोव्यथा की झलक मिलती है:—

पूज्य श्री बापूजी,

"मेरे बारे में आपने जो रास्ते बतलाये उसका मैं उपयोग करूँगा। और अवश्य उस मार्ग से लाभ पहुँचेगा, परन्तु अभी तो यही लज्जा आती है कि मुझे मन की ऐसी हालत में आपका पुत्र बनने का क्या अधिकार था, जो आप पर जवाबदारी डाल दी। परन्तु वास्तविक में जवाबदारी मेरे ऊपर है। ईश्वर आपके आशीर्वाद से यह ताकत देगा उस रोज शांति भी मिलेगी। बाहर मन क्षण भर के लिए तो जबर्दस्ती से इज्जत के लिए रोकना

भाग पड़ता है, परन्तु मेरी इच्छा तो यह है कि घर में रह कर भी मैं इससे (कामवासना से) हमेशा के लिए मुक्त हो जाऊँ, परन्तु हाल में तो सबसे कठिन यह बात मालूम होती है; परन्तु परमात्मा पर श्रद्धा बढ़ने से अवश्य किसी दिन इससे नफरत आवेगी ही। आप चिंता न करें। आपके पवित्र आशीर्वाद से कठिन-से-कठिन कार्य में अवश्य सफलता मिलेगी।"

वर्धा, बुधवार, २५-१०-२२ जमनालाल

इसी मानसिक प्रवाह में वे सदा अपनी वर्ष-गाँठ के अवसर पर छोटे-बड़े सब से सद्बुद्धि की, पवित्रता की, तथा शान्ति की आशीष व शुभ-कामना माँगा करते थे। ऐसी दो वर्ष-गाँठ पर बापू के लिखे दो पत्र यहाँ दिये जाते हैं, जिनसे इन पिता-पुत्र के आध्यात्मिक व्यापार का अच्छा पता चलता है—

(सही, सुपरिन्टेन्डेन्ट, यरवदा सेंट्रल प्रिजन, पूना)

चि० जमनालाल,

आपका पत्र मुझे अभी मिला। सुना, और उसका जवाब लिख रहा हूँ। आप जैसे चाहते हैं वैसे ही सब आशीर्वाद टोकरियाँ भर-भर के आपके जन्मदिवस पर मिलें। यदि मृत्यु जब चाहे छोटे-बड़े, गोरे-काले मनुष्य-जीव या दूसरे सब के लिए आने ही वाली है तो फिर उसका डर क्या ? और उसका शोक भी क्या ? मुझे तो बहुत बार ऐसा लगता है कि जन्म की अपेक्षा मृत्यु अधिक अच्छी चीज होनी चाहिए। जन्म से पहले माता के गर्भ में जो यातना भोगनी पड़ती है उसे तो मैं छोड़ देता हूँ। परन्तु जन्मते ही जो यातना शुरू होती है उसका तो हमें प्रत्यक्ष अनुभव है। उस वक्त की पराधीनता कैसी है ? लेकिन वह तो सब के लिए एक-सी होती है —जब कि मृत्यु में यदि जीवन स्वच्छ हो, तो पराधीनता ऐसा कुछ नहीं मिलता। बालक को ज्ञान की इच्छा नहीं होती और न उसमें किसी तरह ज्ञान की संभावना ही होती है। मृत्यु के समय तो ब्राह्मी स्थिति की संभा-

बना है। इतना ही नहीं, बल्कि हम जानते हैं कि बहुत लोगों की मृत्यु ऐसी स्थिति में होती है। जन्म के माने तो दुःख में प्रवेश ही —जब कि मृत्यु संपूर्ण दुःख-मुक्ति हो सकती है। इस प्रकार मृत्यु के सौंदर्य के विषय में और उसके लाभ के विषय में हम बहुत-कुछ विचार सकते हैं और अपने जीवन में संभवनीय बना सकते हैं। इस प्रकार की मृत्यु तुम्हें प्राप्त हो ऐसा आशीर्वाद और ऐसी कामनामें जो कुछ भी इष्ट हो वह सब आ गया—इस इच्छा में हम दोनों साक्षी हैं, ऐसा समझो।"

बापू के आशीर्वाद

चि० जमनालाल, साबरमती, २१ नवम्बर, २६

"आपका पत्र मिला। आप दीर्घायु हों और पवित्रता में वृद्धि हो। इस जगत में दूषण बिना तो कुछ भी नहीं है। हम उसे दूर करने का ही प्रयत्न कर सकते हैं। वह प्रयत्न आप कर रहे हैं। प्रयत्नशील की दुर्गति नहीं है—ऐसा भगवान् का आश्वासन है।"

बापू के आशीर्वाद

अपने इस आत्म-निरीक्षण से उन्हें ऐसा लगता था कि गांधी सेवा-संघ जैसी संस्था का ट्रस्टी और सदस्य भी उन्हें न रहना चाहिए। उनकी दृष्टि में गांधी-सेवा-संघ त्यागी और शुद्ध सेवकों की ही संस्था होनी चाहिए। और उनकी इस त्याग और शुद्धता की व्याख्या के स्टैण्डर्ड में उन्हें अपना जीवन घटिया लगता था व इसी मानसिक द्वन्द्व की अवस्था में उन्होंने श्री किशोरलालभाई को, जो गांधी-सेवा-संघ के अध्यक्ष थे, तथा जमनालालजी के अत्यंत आप्त पुरुषों में हैं, नीचे दिया हुआ पत्र लिखा, जिसमें उनकी आन्तरिक व्याकुलता और श्रेयःसाधन की तीव्र लगन प्रकट होती है।

जयपुर स्टेट कैदी
१२-६-३९

प्रिय श्री किशोरलालभाई,

"आप यह तो भली प्रकार से जानते ही हैं कि मेरी मानसिक स्थिति व कमजोरियों के कारण गांधी-सेवा-संघ का ट्रस्टी व तीसरे दर्ज का सदस्य रहने लायक मैं अपनेको नहीं समझ रहा हूं। मैंने अपनी यह इच्छा कई बार प्रकट भी की थी। पूज्य बापूजी का इस समय का वृन्दावन-सम्मेलन में दिया हुआ भाषण[१] "सर्वोदय" में पढ़ा। बापूजी ने बहुत ही स्पष्ट तौर से कह दिया है। और मेरी नम्रता व आग्रह-पूर्वक आपसे प्रार्थना है कि मुझे संघ के ट्रस्टी-पद से व तीसरे दर्जे के सदस्यत्व से जल्द-से-जल्द मुक्त कर बाधित करें। मेरा संघ से जो प्रेम है वह तो रहेगा ही। परन्तु मेरी मानसिक स्थिति और नैतिक कमजोरियों के कारण अब यह नैतिक भार में बर्दाश्त नहीं कर सकता। आशा है, आप उदारतापूर्वक मुझे इस भार से हलका कर देंगे।"

जमनालाल

इस पत्र का बहुत प्रेम-विनोद-भरा उत्तर श्री किशोरलालभाई ने नीचे लिखे अनुसार दिया है—

---

[१] "सत्याग्रही की ईश्वर में जीवित श्रद्धा होनी चाहिए। यह इसलिए कि ईश्वर में अपनी अटल श्रद्धा के सिवा उसके पास कोई दूसरा बल नहीं होता। बगैर उस श्रद्धा के सत्याग्रह का अस्त्र वह किस प्रकार हाथ में ले सकता है? आप लोगों में से जो ईश्वर में ऐसी जीवित श्रद्धा न रखते हों उनसे तो मैं यही कहूँगा कि गांधी-सेवा-संघ छोड़ दें और सत्याग्रह का नाम भूल जायँ।"

गांधी-सेवा-संघ, वर्धा
२०-६-३९

मुरब्बी भाई,

"आपका पत्र मिला। मिला, इससे आनन्द हुआ, परन्तु उसमें लिखी बातों से आनन्द न हुआ। जयपुर दरबार आपको हैरान करे, जेल में डाल रखें इसलिए हमसे रूठ जाना यह कहा का न्याय है? आपने कहा—मुझे एक साल का आराम चाहिए, हमने कहा—अच्छा मंजूर। आपने कहा—मुझे हिमालय की किसी ठंडी पहाड़ी पर जाना है। हमने कहा—मजूर। परन्तु आपने तो वहां जाने के बजाय जयपुर दरबार से लड़ाई ठान ली। उन्होंने आपको निकाल दिया, तो मजबूर होकर गये। अब वहाँ से सत्याग्रह करना हो तो जयपुर दरबार के गज़ट पढ़कर कीजिए। "सर्वोदय" पढ़कर गांधी-सेवा-संघ को क्यों धमकी देते हैं?

"परन्तु आपको यह आदत बहुत बचपन की है। जो आपको अपनाते है उन्हींको आप हैरान करते हैं। बच्छराज सेठ ने आपको गोद लिया, आपने उन्हें दादा बनाया, फिर आपने उन्हे धमकी दी कि मैं आपको छोड़कर चला जाऊँगा। बापू ने आपकी माँग मंजूर करके आपको कहा कि आप मेरे चार लड़कों मे पांचवें हुए। अब आप कहते हैं कि मै आपका पुत्र बनकर रह नही सकता। परन्तु अब कैसे छूट सकते हैं? कल आप जानकी बहन को भी छोड़ने की धमकी देंगे। तो ऐसा कहीं हो सकता है? हिन्दू-धर्म के दत्तक और विवाह रद नहीं किये जा सकते, उसी तरह गुरु-शिष्य-भाव भी रद नही किया जा सकता।

एक गुरू का आसरा एक गुरू से आस।
औरन से उदास है, एक आसविश्वास॥

"गांधी-सेवा-संघ से मुक्त होना और बापू से मुक्त होना—यह आपके लिए बराबर है। यह अब इस जन्म में नहीं हो सकता, अर्थात् यह शोभा

नहीं देगा । जो कदम उठाया उससे अब आगे कदम उठाना चाहिए । जो किया वह असत्य हो, अयोग्य व्यक्ति या कार्य के लिए जीवन को बर्बाद किया, ऐसा विश्वास हो जाय तो फिर किसी भी समय छोड़ सकते हैं और छोड़ना चाहिए । परन्तु कमजोरी का नाम तो दिया ही नहीं जा सकता । हो हो कर आखिर बिगड़ेगा क्या ? पैसा, टका, सुख, आराम सबसे ख्वार हो जाओगे; ५० या ५०० मनुष्यों को निभानेवाले न रह सकोगे। बापू फकीर बनाकर छोड़ेंगे, कदाचित् फांसी पर भी चढ़ा दें तो भी क्या ? जो कुछ है वह लड़कों को सौंप दिया है । अब आप फकीर होकर सबकी चिंता छोड़कर --गांधी सेवा-संघ का सेवक सदस्य बनने का निश्चय किया है, ऐसा बापू को बताओ, कमलनयन को बता दो। देखिए, इस निश्चय के होते ही आपमें कितना जोश आ जाता है ।

शूर, सती, अरु गुरुमुखा ज्ञानी पीछा चलत न कोई ।
जो पीछा पग धरत कुमति कर जीवत जनम बिगोई ॥

"आपके एकान्तवास के फलस्वरूप इस निश्चय पर आने की मैं आपके पास से आशा रखता हूँ । इस तरह 'सर्वोदय' को फिर से पढ़ोगे तो बापू की भाषा से दूसरा अर्थ मिलेगा । ....पढ़ो भले ही, परन्तु उसमें से ऊँचा चढ़ने का अर्थ निकालिए, निराशा का नहीं ।"

किशोरलाल का सप्रेम प्रणाम

किशोरलाल भाई के इस पत्र से जमनालालजी की मनोवेदना कुछ कम नहीं हुई । उन्होंने फिर किशोरलालभाई को बहुत ही मर्मस्पर्शी व वेदना-पूर्ण पत्र लिखा, जिसमें अपना हृदय उन्होंने खोलकर रख दिया ।

४-७-३९

"प्रिय श्री किशोरलालभाई,

आखर आपका ता० २०-६ का प्रेमवश भेजा हुआ पत्र मिला ।

आपके सच्चे प्रेम के लिए तो जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा। आपके प्रति मेरे मन में जो भाव हैं वह कागज पर नहीं लिख सकता। आपने इस पत्र में बहुत ही ऊँचे दर्जे के विनोद का उपदेश किया है, परन्तु मैं क्या करूँ? मेरा मन गवाही नहीं देता—मन पर ताबा नहीं रहा। अगर आप लोगों के सच्चे आशीर्वाद से मेरे मन पर मेरा काबू आ जावे व मुझे पूरा विश्वास हो जाय कि मेरी सद्‌बुद्धि स्थायी रहेगी तो शायद मुझमें आत्मविश्वास आवे। आज तो मैं अपने पर से विश्वास खो बैठा हूँ। जैसे-जैसे मैं अपनी कमजोरियों का निरीक्षण करता हूँ वैसे-वैसे ही मेरा मन साफ तौर से मुझे कहता है (पहले से कहता आया भी है) कि मैं गांधी सेवा-संघ जैसी उच्च व पवित्र संस्था के योग्य नहीं हूँ। बस ज्यादा नहीं लिख सकता। एक बार तो आप मुझे मुक्त कर ही डालें। पूज्य बापूजी मेरा समर्थन करेंगे। वह मेरी स्थिति से वाकिफ भी हैं।

"मुझे अपनी कमजोरियों का थोड़ा ज्ञान रहने के कारण मैंने बापू को 'गुरु' नहीं बनाया, न माना, 'बाप' अवश्य माना है। वह भी इसलिए कि शायद इन्हें बाप मानने से मेरी कमजोरियाँ हट जावें। बीच में ठीक समय-समय तक हटती मालूम भी देती थीं। परन्तु वास्तव में हट नहीं रही थीं। इन दिनों (याने इन दो वर्षों में) तो मुझे काफी हैरान, बे-चैन, निरुत्साही होना पड़ा। बापू के लड़कों में हरिलाल भी तो है। वह बिचारा प्रसिद्ध हो गया। मेरे सरीखे छिपे हुए रहे। आपने लिखा : गांधी सेवा-संघ को छोड़ना याने बापू को छोड़ना है। यह मानने को मेरा मन तैयार नहीं है। बापू के दूसरे चार लड़के भी तो गांधी-सेवा-संघ में नहीं हैं। फिर भी मैंने ही क्या इतना पुण्य किया, जिससे रह सकूँ। उनकी गति सो मेरी गति। उनमें कई तो उच्च स्थिति में हैं। पहले मैंने अहंकारवश मान लिया था कि बापू को व उनके सिद्धांत को मैं थोड़ा समझ सका हूँ। परन्तु ठीक विचार करने से यह साफ दिखाई दे रहा है कि न समझ पाया था, न समझने की

ताकत है। मैंने सत्य-अहिंसा की व्याख्या मेरे विचार के मुताबिक समझ ली थी। परन्तु वह मेरी गलती अब साफ दिखाई दे रही है। मेरी लिखने की तो और भी इच्छा होती है। परन्तु जेल के अन्दर से ज्यादा क्या लिखूं।

"आप लोगों की संगत से इतना लाभ तो जरूर हुआ कि मरने का डर प्रायः विशेष नहीं मालूम देता है। कभी-कभी तो उसका स्वागत करने का उत्साह भी मालूम होता है। वह ठीक भी है। अगर वर्तमान जीवन से उच्च जीवन बनना संभव न हो तो स्वार्थ की दृष्टि से भी मृत्यु स्वागत व श्रेयकारक ही है। यह तो मैंने वैसे ही इधर में जो विचारधारा चलती रहती है उस पर से लिख डाला है। आप चिन्ता न करें। मुझे इस हालत में ज्यादा शान्ति दूसरे किसी भी स्थान पर मिलनेवाली नहीं है। परमात्मा की यह बड़ी दया ही है कि मुझे इस प्रकार का मौका मिला है।"

जमनालाल

जमनालालजी को आत्मोन्नति के लिए जो तड़प उनके जीवन के अंतिम वर्षों में सताने लगी थी, उसकी विशेष अनुभूति पाठकों को उनके नीचे के पत्रों में मिलेगी। अपनी अन्तर्वेदना और मनोभावों को वे बापू के समक्ष खोलकर रख दिया करते, किन्तु काम की अधिकता और विशाल उत्तर-दायित्व के बोझ से लदे बापू के पास समय नहीं देख जमनालालजी अपना बोझ मन पर लिये वापस लौट आते। ऐसे ही एक प्रसंग पर उनका नीचे का करुण व्याकुल पत्र देखिए—

पौनार (वर्धा)
का० शुक्ल १२ सं० ९५; ता० ४-११-३८

पूज्य बापूजी,

"आज मिति व तारीख के हिसाब से मुझे ४९ वर्ष पूरे हुए हैं। पचासवां वर्ष चालू हुआ है। आपका आशीर्वाद तो सदैव ही रहता है, परन्तु मैं

जब विचार करता हूं तो मुझे इन दो-अढ़ाई वर्षों में ऐसा साफ दिखाई देता है कि आपके आशीर्वाद का पात्र नहीं हूं। मेरी कमजोरियों का जब मैं विचार करता हूं तब तो इन वर्षों में—खासकर छोटेलालजी की घटना के बाद—मेरे मन में आत्महत्या के भी विचार आये—जिसे मैं कायरता व पाप समझता आ रहा था, बुद्धि से तो अब भी समझता हूं। मुझे दुःख इस बात का विशेष रहता है कि मेरी उन्नति के बदले अवनति विशेष होती दिखाई दे रही है। इसके कई कारण हो सकते हैं, परन्तु उन सब की जिम्मेवारी तो मेरी ही है। देहली के पहले तक दो विचारों का जोर मेरे मन में चलता रहा, एक तो मैं सब सार्वजनिक कामों से, अगर संभव हो तो खानगी काम से भी, अलग हो जाऊँ, अगर यह संभव न हो तो ज्यादा जिम्मेवारी का काम लेकर उसमें रात-दिन फंसा रहूं। परन्तु अब तो निकलने में ही अधिक समाधान मिलना संभव है।

(१) अहिंसा व सत्य का आचरण कम होता दिखाई दे रहा है। डर है कि कहीं इस पर से श्रद्धा भी कम न हो जावे। इसी कारण असहनशीलता भी बढ़ रही है। क्रोध की मात्रा भी बढ़ती जा रही है। काम-वासना बढ़ती हुई मालूम हो रही है। लोभ की मात्रा भी। इतने सब दुर्गुण या कमजोरी जो मनुष्य अपने में बढ़ती हुई देख रहा है फिर उसे जीने का मोह कैसे रह सकता है? याने मानसिक कमजोरी के विचार तक ही बात होती तो भी फिर प्रयत्न करने के लिए उत्साह रहता, परन्तु जब शरीर की इन्द्रियों को भी मैं काबू में न रख पाता हूँ याने प्रत्यक्ष शरीर से पाप होता दिखाई देता है तब लाचार बन जाता हूँ। ऊपरी हिम्मत तो बहुत ज्यादा रख रहा हूँ—रखने का प्रयत्न भी करता रहूँगा, परन्तु मुझे यह अनुभव हो रहा है कि कहीं यही दशा रही तो या तो पागल की स्थिति पर पहुँच जाना संभव है या पतन के मार्ग पर जाने का भय है। इसलिए आज अगर स्वाभाविक मृत्यु का निमन्त्रण आवे तो मेरी आत्मा कहती है कि मुझे समाधान

(शांति) मिलेगी । क्योंकि मेरा भविष्य अंधेरे में दिखाई दे रहा है । मुझे आज यह विश्वास हो जावे कि मेरा पतन कभी नहीं होगा, मैं सत्य के मार्ग से नहीं हटूंगा तो मुझमें फिर नवजीवन, उत्साह आना संभव है । मुझे इन वर्षों में बहुत-सी मानसिक चोटें लगी हैं । कुटुम्बियों द्वारा, मित्रों द्वारा, जिसके लिए मेरी तैयारी न थी । अगर इसी प्रकार चोटें लगती ही रहीं तो पागल होने के सिवा दूसरा क्या होगा ? मृत्यु तो मेरे हाथ की बात नहीं है । आत्महत्या तो कायरता व पाप दिखाई देता है, क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता । मेरे दिल का दर्द किसे कहूँ ? कौन ऐसा है जो प्रेम से मेरी मानसिक स्थिति को सुधार सकता है । मेरा भरोसा तो आप पर और विनोबा पर ही था । परन्तु आपसे तो अब आशा कम होती जा रही है । विनोबा से अभी आशा है । शायद कोई समाधानकारक मार्ग निकल आवे ।[1]

---

[1] मन की इस दुविधा, चिन्ता तथा असमाधानकारक स्थिति में कभी-कभी उनकी आलोचना-वृत्ति भी जाग्रत हो जाती थी, जो उनकी डायरी (२८ फर० १९३९) के नीचे लिखे उद्गारों से जानी जाती है—

"वर्तमान बंबई-घटना का विचार करने से साफ मालूम देता था कि इन्साफ नहीं हो सका । महादेवभाई के व अन्य मित्रों के व्यवहार से चोट तो जरूर पहुँची, परन्तु भावी मेरे लिए परिणाम ठीक निकलेगा ऐसी एक आशा पर सहन करना व कड़वी घूंट पीना उचित समझा । बापू के अनु-यायियों में उदारता, सेवा, प्रेम की वृत्ति तो दिखाई देती है, परन्तु न्याय (जस्टिस) का माद्दा कुछ कम रहता है । यह विचार आये सो नोट कर लिये । मेरे में इतना नीचपन व हलकी वृत्ति इन वर्षों में क्यों हुई ? विचार करने पर कई बातें दिखाई दीं । परन्तु साफ कारण समझने में नहीं आया । मुझे विनोबा के संसर्ग में अधिक रहना चाहिए । उसीसे मेरा मार्ग साफ निष्कं-टक हो सकेगा व जीवन में असली उत्साह प्राप्त हो सकेगा । बापू के प्रेम व उदारता का खयाल करता हूं तो अपनेको बहुत निभाने लायक समझने लगता हूँ । बापू को समय बहुत कम मिलता है, इसलिए उनसे भी कई बार

"इन वर्षों में मैं आपके पास कई बार हृदय खोलने के लिए आया, परन्तु आपकी मानसिक, शारीरिक व आसपास की स्थिति के कारण पूरी तौर से खोल नहीं सका। इसका मेरे मन में दुःख रहा और ऐसा लगता रहा कि मैं आपको व अन्य मित्रों को धोखा तो नहीं दे रहा हूँ। क्योंकि मैं धोखे से बढ़कर पाप या नीच कृत्य नहीं मानता आया। इसलिए मैंने मेरी स्थिति कई मित्रों को, घरवालों को कहने का प्रयत्न किया; परन्तु उसमें पूर्ण सत्य न रहने के वजह से या अन्य कई कारणों से उसका जो परिणाम आना चाहिए था वह नहीं आया। अब आप कोई राजमार्ग बता सकते हैं। मुझे तो लगता है कि अभी तक मेरी बुद्धि काम दे रही है। मुझमें जो-जो कमजोरियाँ हैं व वे जिन कारणों से घुसी हैं वह भी मालूम है। उनको निकालने की इच्छा भी है। यह इच्छा तीव्र बनाई जा सकती है। परन्तु मेरे पास याने मेरे साथ कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसमें प्रेम, सेवा व उदारता भरी हुई हो—जिनके पवित्र चरित्र व प्रेममय वातावरण या सेवा से मेरे मन को शान्ति मिले। क्या इस प्रकार की बहिन या भाई आपकी निगाह में है? अगर निगाह में हो तो क्या उसको मेरे साथ रहकर मेरी सेवा करना संभव है? सार्वजनिक कार्यकर्ता के पास से काम छुड़ाकर उससे अपनी सेवा लेने की हिम्मत नहीं होती। मैंने जिन कमजोरियों का वर्णन किया है उसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे में पहले कमजोरियाँ नहीं थीं—इन वर्षों में ही आई हैं; वे पहले से ही थीं, परन्तु मुझे लगता था कि वे निकल रही हैं, परन्तु आज ऐसा नहीं मालूम हो रहा है, यही खास बात है।

"आप कोई ऐसा मार्ग निकाल सकें तो निकालें जिससे मेरी मामूली मनुष्यों में गिनती हो। लोग अधिक पवित्र व उच्च न मानें तो शायद इससे न्याय कम मिलता है। इसलिए उनसे भी कई बार न्याय के मामलों में गलतियाँ होती दिखाई देती हैं। परन्तु मेरे मन में द्वेष, ईर्ष्या, किसी का बिगाड़ हो, यह वृत्ति न होने से परिणाम ज्यादा ठीक ही आता है।"

भी मेरा कल्याण होवे। आप मेरी इस अवस्था से दुखी तो होंगे ही परन्तु मैं क्या करूँ ? समझ में नहीं आता। मुझे तो आपको प्रणाम करने में भी संकोच होता है।

"मेरे मन में जिस प्रकार विचार आये आज जन्मदिन के निमित्त लिख दिये हैं। आप जब यहां आवेंगे तब समय निकाल कर जो कहना हो सो कहें। वहा तक मैं विनोबा से मदद लेने का प्रयत्न करूँगा।"

जमनालाल बजाज

जिस तरह बँदरिया जरा खटका होते ही फौरन लपककर अपने बच्चे को गोदी से चिपका लेती है उसी तरह गांधीजी जमनालालजी को हर कठिनता के समय में अपनी छाती से लगा लिया करते थे। अपना वरदहस्त उनके ऊपर रखा करते थे। अतः मौनवार होने के कारण बापू ने उन्हें एक चिट पर यह लिखकर दिया--

"कल थोड़ी देर हम बातें कर लें या एक दो दिन रुक सको तो रुक जाओ। तुम्हारे दर्द की दवा मुझे आसान मालूम होती है। घबड़ाने का कोई कारण नही है। तुम्हारा विनाश तो है ही नहीं। लेकिन तुम्हारी कमियों को मैं समझ सकता हूँ। क्योंकि ये सब अनुभव मुझे भी हो चुके है। अभी तो इतना ही कहता हूँ कि यह उलझन यहाँ पर सुलझाकर जाना। आज रात को ही उत्तर लिख डालूंगा।"

फिर नीचे लिखा सविस्तर उत्तर दिया---

सेगांव २६-१२-३८

चि० जमनालाल,

"अभी ही अंग्रेजी में एक सुन्दर सुभाषित देखा था। उसका अर्थ यह है, कि मनुष्य अपने दोषों का चिन्तन न करे, गुणों का करे; क्योंकि मनुष्य जैसा चिन्तन करता है वैसा ही बनता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दोष

न देखे। देखने तो हैं ही, लेकिन उन्हींका विचार करते रहकर पागल न बनना चाहिए। यही विचार हमारे शास्त्रों में भी मिलता है। इसलिए तुम्हें आत्मविश्वास रखकर निश्चय करना है कि मेरे हाथों कल्याण ही होगा। हुआ तो है ही।

"तुम्हें अतिलोभ छोड़ना चाहिए। परोपकार के लिए भी व्यक्तिगत व्यापार छोड़ देना चाहिए। नहीं निकल सकें तो कठोर मर्यादा बांध लेनी चाहिए। राजनैतिक क्षेत्र से निकल जाने का प्रयत्न करो। अगर उसमें रहना ही ठीक लगे और शर्तों के अनुसार रहा जा सके तो सिर्फ मध्यप्रदेश को बनाने का कार्य करो। लेकिन तुम्हारा क्षेत्र तो पारमार्थिक व्यापार है। इससे तुम फिर चरखा-संघ में अपनी सारी शक्ति का उपयोग करो। यह प्रवृत्ति, तुम्हारी शान्ति, नीति, तुम्हारी व्यापार-शक्ति का पूरा उपयोग कर सकती है। राजनीति में बहुत गन्दगी आती रहती है। उसमें तुम्हें संतोष होने की थोड़ी ही संभावना है। चर्खा-संघ को पूर्ण सफलता मिले तो सहज ही पूर्ण स्वराज्य मिल सकता है। इसमें तुम लग जाओ तो ग्रामोद्योग, अस्पृश्यता-निवारण, इत्यादि में भी थोडा बहुत ध्यान दे सकते हो, लेकिन यह सब तुम्हारी इच्छा के अनुसार। यह तो अतिलोभ को रोकने के लिए तुम्हें पर्याप्त और मनपसन्द प्रवृत्तियों की सूचना-मात्र है।

"दूसरी वस्तु विकार है। यह जरा कठिन है। अगर तुम्हें ठीक समझ सका हूँ तो मुझे लगता है कि तुम्हें स्त्री-परिचर्या रोकनी चाहिए। सभी लोग उसे पचा नहीं सकते। अपने मंडल में स्त्री-परिचर्या करने वाला काफी अंशों में अकेला मैं ही हूँ, यह कहा जा सकता है। मेरी सफलता और असफलता का लेखा-जोखा मेरी मृत्यु के बाद ही हो सकता है। मेरे लिए अभी प्रयोगरूप ही है। मैं स्वयं सफल ही हुआ हूँ, यह भी छाती ठोंक कर नहीं कह सकता। मेरी अभिलाषा शुकदेवजी की स्थिति को पहुँचने की है। उस स्थिति से मैं कई योजन दूर हूँ। अगर तुम्हें आत्म विश्वास हो तब तो

मुझे कुछ भी नहीं कहना। लेकिन अगर न हो और मेरा खयाल ठीक हो तो तुम्हें और गहराई से विचार करके आवश्यक परिवर्तन कर डालना चाहिए। स्त्री-सेवा छोड़ने की बात यहां नहीं है।

''इसमें की एक भी वस्तु की प्रतिध्वनि तुम्हारे हृदय पर न पड़े तो उन्हें न करना। विचार विनिमय करना। निराशा के लिए कभी भी स्थान नहीं है। तुम पतित नहीं हो, तुम सत्यनिष्ठ हो। सत्यनिष्ठ का पतन संभव नहीं।''

बापू के आशीर्वाद

उनका सबसे अधिक वेदनापूर्ण आत्ममंथन उनकी ता० १४–१५ अप्रैल (१९४१) की डायरी में इस प्रकार मिलता है:—

''बापूजी इतना प्रेम क्यों करते हैं? विनोबा भी। बापूजी को मेरी इस बीमारी के कारण दो-तीन दिन बहुत बेचैनी रही। (डॉ०) दास कहते थे वे मुझे यहाँ देखने आने को भी तैयार थे। परन्तु मेरे मना करने पर व दास ने भी कहा : जरूरत नहीं, तब नहीं आये। रात में बहुत देर तक मेरे मन में यही चलता रहा कि मैं पापी हूँ। मैं विश्वासघाती हूँ, मैंने परमात्मा से प्रार्थना तो की है; सद्बुद्धि प्रदान हो जावेगी व स्वतन्त्र पवित्र सेवामय जीवन बिताते हुए देह छूट सकेगी तो ही समाधान हो सकेगा, अन्यथा जैसे कर्म किये हैं वैसा फल भोगना भाग है ही। ईश्वर की माया अपरम्पार है। विनोबा से तो जल्दी ही यहां बात कर लूंगा—देखें कोई राजमार्ग निकलता है। क्या कोई शुद्ध अन्तकरण का भाई या बहन—बहन हो तो मुझसे बड़ी उमर की —कोई दुनिया में मिल सकती है जो मुझे अपने आश्रय में लेकर बालक की तरह प्रेम-भाव से जो इस समय व्यथित हृदय हो रहा है उसमें कुछ जीवन पैदा कर सके! ईश्वर की इच्छा होगी तो यह भी संभव हो जायगा। प्रायः इसी प्रकार के विचार कई घण्टों तक चलते रहे।

बीच-बीच में नेत्र-जल भी बहता रहा। तथास्तु। बालकपन का, तरुण अवस्था का मेरा संकोच व शरमाऊ डरपोकपन का स्वभाव पूरी तौर से आज तक कायम रहता तो कितना अच्छा होता। बुरी संगत का अच्छा परिणाम व अच्छी संगत का अच्छा परिणाम व अच्छी संगत का बुरा परिणाम—क्या ईश्वर की माया है। मातृवत् परदारेषु।

"मेरी कमजोरियों का विचार करने पर तो मुझे उनके (कुटुम्बियों के) प्रेम का कोई अधिकार नहीं होता। मेरी कमजोरी दूर कर सकूं ऐसी बुद्धि ईश्वर प्रदान करेगा तब ही जीवन में असली रस पैदा हो सकेगा।"

× × ×

और अन्त को उन्हें शान्ति मिल ही गई। जो श्रेय वे साधना चाहते थे वह उन्हें मिल गया। अपना श्रेय साधने की जमनालालजी की तड़प, दिन-रात उसीकी चिन्ता, उसीके लिए सारा उद्योग—यह तत्परता हममेंसे कितनों में होती है? अपने मानसिक दोषों के प्रति भी इतनी सजगता मनुष्य-जीवन की सार्थकता का पहला लक्षण है। हम आप सबकी तरह जमनालालजी के सामने भी प्रेय, सांसारिक सुख, वैभव, विलास, पद, प्रतिष्ठा, मान, गौरव सब आते थ; बल्कि बहुत हद तक सब उनके पास व आसपास थे और मँडराते थे, किन्तु उन्होंने सदैव एक जाग्रत तपस्वी या योगी की तरह उन्हें तुच्छ, अनिष्ट समझकर ठुकराया और हर बार एकमात्र श्रेय—जीवन का परमहित, आत्मोन्नति, को ही चुना। इस महान व विकट यात्रा में जो-कुछ संघर्ष उन्हें अपने से, अपने आस पास की परिस्थिति से अहर्निश करना पड़ा उसका जीता-जागता इतिहास उनका यह जीवन-चरित्र है बल्कि यह कहना चाहिए उनका जीवन-चरित्र लिखने के बजाय जान या अनजान में उनके जीवन की यह श्रेय-कथा ही लिखी गई है।

जमनालजी के सारे जीवन पर जब मैं कुल मिलाकर विचार करता हूँ तो उनके श्रेयोमय जीवन की एक दिव्य विराट मूर्ति सामने खड़ी

हो जाती है, और मानसिक सघर्ष, जागरुकता व सावधानी तथा अन्त मे समाधान—यह उनकी सफल जीवन-कथा है। किसी जन्मजात निर्विकार, द्वन्द्वातीत, स्थितप्रज्ञ की अपेक्षा आत्म-कल्याण का यह साधक गिरता, पडता, लडखडाता हुआ, किन्तु फिर भी आशा, विश्वास, श्रद्धा के बल पर सतत चलते रहनेवाला, इधर-उधर से जहाँसे भी मिले सहारा पकडकर आगे ही बढने का दृढ़ सकल्प करने और अपूर्व मनोबल के साथ आगे कदम बढाता रहनेवाला सैनिक—हमारे हृदय को कैसे पकड लेता है ? उक्त पुरुष के नजदीक जाने की हिम्मत नही होती, जब कि इस श्रेय-साधक को देखकर चलन और चल सकने की आशा मन मे जगती रहती है। उनका जीवन गीता के इस आश्वासन की और भी गहरी छाप हृदय पर डाल देता है—

'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।"

परिशिष्ट

जन्म-लग्न

जन्म–कार्तिक शु० १२, १९४६ वि०, : ता० ४ नवम्बर १८८९ ई०

मृत्यु–फाल्गुन कृ० ११, बुधवार १९९९ वि० : ता० ११ फरवरी १९४२

: २ :
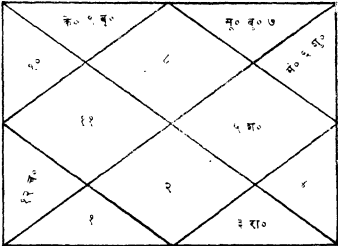
वंश-वृक्ष—१ (बच्छराजजी का)
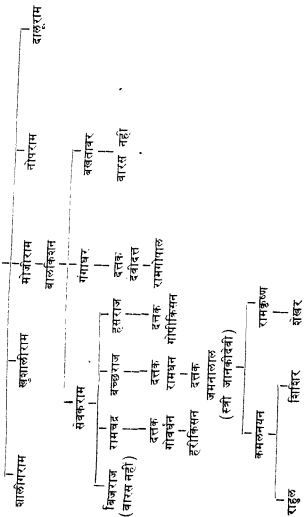
वंश-वृक्ष–२ (कनीरामजीका)
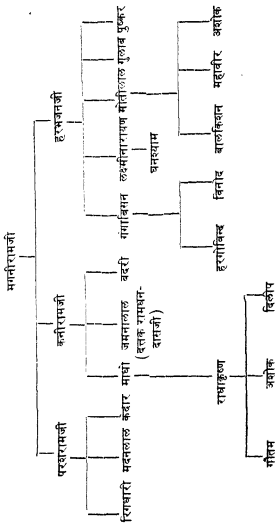
: ३ :

ऐतिहासिक त्याग-पत्र

(जमनालालजी का अपने हाथों से लिखा)

।। श्री गणेशजी ।।

सिद्ध श्री वर्धा शुभस्थान पूज्य श्री बच्छराजजी रामधनदास सूं लिखी चि० जमन का पांवांधोक वांचीज्यो। अठे उठे श्री लक्ष्मीनारायणजी महाराज सदा सहाय छे। अपरंच समाचार एक वांचीज्यो। आपकी तबियत आज दिन हमारे ऊपर निहायत नाराज हो गई सो कुछ हरकत नहीं। श्री ठाकुरजी की मरजी और गोद का लियोडा था जब आप इस तरह कह्यो। सो आपको कुछ कसुर नहीं, जिको हमाने गोद दियो जिनको कसुर छे। बाकी आप कह्यो कि तुम नालीस करो सो ठीक। बाकी हमारो आपके ऊपर कुछ कर्जो छे नहीं। आपको कमायेडो पीसो छे। आपकी खुसी आवे सो करो। हमारो कुछ आप ऊपर अधिकार छे नहीं। हमां आपसू आज मिती ताईं तो हमारे बारे में अथवा जो हमारे ताईं जो खर्च हुयो सो हुयो, बाकी आज दिन सूं आप कने सूं एक छदाम कोड़ी हमां लेवांगा नहीं, अथवा मंगावांगा नहीं। आप आपके मन मां कोई रीत का विचार करज्यो मत ना। आपकी तरफ हमारो कोई रीत को हक आज दिन सूं रह्यो छे नहीं और श्री लक्ष्मीनारायण सूं अर्ज ये है कि आपको शरीर ठीक राखे और आपने हाल बीस पच्चीस बरस तक कायम राखे। और हमां जठे जावांगा, बठे सूं थाके ताईं इस माफक ठाकुरजी सूं विनंति करांगा। और म्हारे सूं जो कुछ कसूर आज ताईं हुयो सो सब माफ करजो। और आपके मन में हो कि सब पीसा का साथी है, पीसा का ताईं सेवा करे छे, सो हमारे मनमां तो आपके पीसा की बिलकुल छे नहीं।

और भी ठाकुरजी करेगा तो आपके पीसे की हमारे मन में आगे भी आवेगी नहीं। कारण हमारो तगदीर हमारे साथ छे। और पीसो हमारे पास होकर हमां कांई करांगा। म्हाने तो पीसा नजीक रहने की बिलकुल परवा छे नहीं। आपकी दया से श्री ठाकुरजी का भजन, सुमिरन जो कुछ होवेगा सो करांगा। सो इस जनम मांही भी सुख पावांगा और अगला जनम मांही भी सुख पावांगा। और आप आपके चित्त मां प्रसन्नता रखियो। कोई रीत को फिकर करजो मत ना। सब भूठा नाता छे। कोई कोई को पोतो नहीं। और कोई कोई को दादो नहीं। सब आप आपका सुख का साथी छे। सब भूठो पसारो छे। आप हाल ताईं मायाजाल मां ही फंस रह्या छो। हमां आज दिन आपके उपदेश सू मायाजाल सू छुट गया छां। आगे श्री भगवान संसार सुं बचावेगा। और आपके मनमां इस तरह बिलकुल समझो मत ना कि हमारे ऊपर नालिस फरियाद करेगो। हमां हमारे राजी खुशी सूं टिकिट लगाकर सही कर दीनी छे कि आपके ऊपर अथवा आपकी स्टेट, पीसा, रुपया, गहना, गांठी और कोई भी सामान ऊपर आज से बिलकुल हक रह्यो नही सो जाणज्यो। और हमारे हाथ को कोई को करजो छे नहीं। कोई ने भी एक भी पीसो देनो छे नहीं सो जाणज्यो। और तो समाचार छे नही। और समाचार तो बहुत छे, परन्तु हमारे से लिख्यो जावे नहीं।

सम्वत् १९६४ मिती बैसाख वदी २, मंगलवार, पूज्य श्री १०५ दादाजी श्री बच्छराजजी मू जमन का पावाधोक बांचीज्यो।

घणे घणे मान सेती आपकी तरफ हमारो कोई रीत को लेन-देन रह्यो नहीं। श्री ठाकुरजी के मन्दिर को काम बराबर चलाज्यो और आपसूं दान धरम बने सो खूब करता जाज्यो और ब्राह्मण साधु ने गाल़ि बिलकुल दीजो मत ना और कोई ने भी हाथ को उत्तर देइजो, मुह को उत्तर दीजो मतना। ज्यादां कांई लिखां। इतना मां ही समझ लीजो। और

हमां आपकी चीजां सागे ल्यांगा नहीं। सो सर्व अठेई आपके छोड़ गया छां। खाली अंग ऊपर कपडा पहर्यां छां।"

पत्र का हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है:—

॥ श्री गणशजी ॥

सिद्ध श्री वर्धा शुभस्थान पूज्य श्री बच्छराजजी रामधनदास से चि० जमन का चरण-स्पर्श। सर्वत्र श्री लक्ष्मीनारायणजी महाराज सदा सहाय हैं। समाचार एक निगाह करें। आप आज मुझ पर निहायत नाराज हो गए सो कोई चिन्ता नहीं। श्री ठाकुरजी की मर्जी। मैं गोद लिया हुआ था तब आपने ऐसा कहा। पर आपका कुछ भी कसूर नहीं है। कसूर है उनका, जिन्होंने मुझे गोद दिया।

आपने कहा, नालिश करो, सो ठीक। पर मेरा आप पर कोई कर्ज तो नहीं है। आपका कमाया हुआ पैसा है। आपकी खुशी हो सो करें। मरा आप पर कुछ अधिकार नहीं।

आज तक मेरे बाबत या मेरे लिए जो कुछ आपका खर्च हुआ सो हुआ। आज के बाद आपसे एक छदाम कौड़ी भी मैं लूंगा नहीं और न मँगाऊँगा ही। आप अपने मन में किसी किस्म का खयाल न करें। आपकी तरफ आजसे मेरा किसी तरह का हक नहीं रहा है। श्री लक्ष्मी-नारायणजी से मेरी अर्ज है कि आपका शरीर ठीक रखें और आपको अभी बीस-पचीस वर्ष तक कायम रखें। मैं जहाँ जाऊँगा, वहाँसे आपके लिए ठाकुरजी से इसी प्रकार विनती करता रहूँगा। मुझसे आजतक जो कुछ कसूर हुआ वह माफ करें।

आपके मनमें यह हो कि सब पैसों के साथी हैं, और यह भी पैसे के लिए सेवा करता है, सो मेरे मनमें तो आपके पैसे की चाह बिलकुल नहीं है। और ठाकुरजी करेंगे तो आपके पैसे की भविष्य में भी मनमें आयगी

नहीं। क्योंकि मेरी तकदीर मेरे साथ है। और पैसे मेरे पास हों भी तो मैं क्या करूंगा ? मुझे तो पैसों के नजदीक रहने की बिलकुल परवा नहीं है। आपकी दयासे श्री ठाकुरजी का भजन-सुमरन जो कुछ होगा सो करूंगा, जिससे इस जन्म में सुख पाऊँ और अगले जन्म में भी। आप प्रसन्नचित्त रहें। किसी किस्म की फिक्र न करें। सब झूठे नाते हैं। न कोई किसी का पोता है, न कोई किसी का दादा। सब अपने-अपने सुख के साथी हैं। सब झूठा पसारा है । आप अभी तक मायाजाल में फंस रहे हैं। मैं आज आपके उपदेश से मायाजाल से छूट गया। आगे श्री भगवान संसार से बचावें।

अपने मन में आप इस तरह कदापि न समझें कि हमारे पर नालिश-फरियाद करेगा। मैंने अपनी राजी-खुशी से टिकिट लगाकर सही कर दी है कि आप पर अथवा आपकी स्टेट, पैसे, रुपये, गहना-गांठी आदि किसी सामान पर आज से मेरा कतई हक नहीं रहा है। और मेरे हाथ का न कोई कर्ज बाकी है। किसी का एक पैसा भी देना नहीं है।

अन्य समाचार कुछ है नहीं। समाचार तो बहुत हैं, पर मेरे से लिखे नहीं जाते ।

संवत् १९६४ मिती वैसाख कृष्ण २, मंगलवार । पूज्य श्री १०५ दादाजी श्री बच्छराजजी से जमन का चरणस्पर्श।

बहुत बहुत सम्मान से। आपकी तरफ मेरा कोई रीत का लेन-देन नहीं रहा है। श्री ठाकुरजी के मन्दिर का काम बराबर चलावें। आपसे दान-धर्म जो बने सो खूब करते जावें। ब्राह्मण साधु को गाली बिलकुल न दें। और किसी को भी हाथ का उत्तर दें, मुंह का उत्तर नहीं। ज्यादा क्या लिखूं ? इतने में ही समझ लें।

और मैं आपकी कोई चीज साथ नहीं लूंगा। सब यहीं छोड़ जाता हूँ। सिर्फ अंग पर कपड़े पहने हूँ।

: ४ :

जिन संस्थाओं में वे थे

१—अध्यक्ष की हैसियत से

(१) अखिल भारतीय चरखा-संघ, अहमदाबाद—वर्धा
(२) गाँधी-सेवा-संघ, वर्धा
(३) महिला-सेवा-मंडल, वर्धा
(४) महिलाश्रम, वर्धा
(५) मारवाड़ी शिक्षा-मंडल, वर्धा
(६) हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
(७) क्वेटा भूकम्प-समिति ,,
(८) जयपुर राज्य प्रजा-मंडल, जयपुर
(९) बहिष्कार समिति, बंबई
(१०) हरिजन सेवा-उपसमिति, बंबई
(११) लक्ष्मीनारायण देवस्थान, वर्धा
(१२) गुमास्ता-परिषद्, बम्बई
(१३) अग्रवाल महासभा, दिल्ली
(१४) नागपुर प्रांतिक कांग्रेस-कमेटी, नागपुर

२—ट्रस्टी की हैसियत से

(१) गांधी-सेवा-संघ, वर्धा
(२) महिला-सेवा-मंडल, वर्धा
(३) अ० भा० ग्रामोद्योग संघ, वर्धा
(४) मारवाड़ी शिक्षा-मंडल, वर्धा
(५) लक्ष्मीनारायण-मन्दिर, वर्धा

(६) नवजीवन प्रकाशन-मंदिर, अहमदाबाद
(७) बिहार रिलीफ-कमिटि, पटना
(८) बिहार-सेवा-निधि, पटना
(९) कमला मेमोरियल-ट्रस्ट, प्रयाग
(१०) ग्राम्य सेवा-संघ, बारडोली
(११) सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
(१२) बिड़ला-एजुकेशन-ट्रस्ट, पिलाणी (जयपुर)
(१३) बजाज-कमेटी, बम्बई
(१४) विलेपारले छावणी, बम्बई
(१५) भगिनी-सेवा-मण्डल, बम्बई
(१६) कनखल-धर्मशाला, कनखल (हरिद्वार)
(१७) हरनंदराय कालेज, रामगढ़ (जयपुर)
(१८) जलियाँवाला बाग स्मारक-ट्रस्ट, अमृतसर
(१९) श्री गाँधी-आश्रम-ट्रस्ट, मेरठ
(२०) अभ्यंकर-मेमोरियल-ट्रस्ट, नागपुर
(२१) रामनारायण रूईया-ट्रस्ट, बम्बई
(२२) स्वराज्य-भवन-ट्रस्ट, प्रयाग
(२३) सस्ता-साहित्य-मंडल, नई दिल्ली
(२४) हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास
(२५) श्री निवास रुइया, बम्बई
(२६) गोपीबाई बिड़ला, बम्बई

३—डायरेक्टर की हैसियत से

(१) बच्छराज एंड कम्पनी, बम्बई
(२) बच्छराज फैक्टरी, बम्बई, वर्धा

(३) हिन्दुस्तान शुगर मिल, गोलागोकरनाथ
(४) मुकुन्द आयर्न वर्क्स, बम्बई
(५) बैंक आफ नागपुर, वर्धा
(६) रामनारायण सन्स, बम्बई
(७) हिन्दुस्तान हाउसिंग कम्पनी, बम्बई
(८) साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग

४—खजांची की हैसियत से—

(१) आल इंडिया कांग्रेस कमेटी, प्रयाग
(२) अ० भा० चरखा संघ, अहमदाबाद, वर्धा
(३) कमला मेमोरियल फंड, प्रयाग
(४) अभ्यंकर मेमोरियल फंड, नागपुर

५—स्वागताध्यक्ष की हसियत से

(१) नागपुर कांग्रेस अधिवेशन, नागपुर

६—स्थानापन्न अध्यक्ष की हैसियत से

(१) कांग्रेस

: ५ :

दान-विवरण

संवत् १८८३ तक दिये

गाँधी-सेवा-संघ—महात्माजी के जेल जाने के बाद २,५०,०००)
तिलक स्वराज्य फंड—दो बार (वकीलों के लिए) २,००,०००)

मारवाड़ी-शिक्षा-मण्डल, वर्धा	८०,०००)
सत्याग्रहाश्रम, वर्धा	७५,०००)
मारवाड़ी अग्रवाल महासभा	६१,०००)
५१,०००) जातीय कोष	
१०,०००) वर्धा अधिवेशन मे खर्च	
हिन्दू विश्वविद्यालय में बच्छराज पुस्तकालय के लिए	५१,०००)
सर ज० सी० बोस को दारजिलिंग में बच्छराजजी के स्मारक स्वरूप साइंस इंस्टिटयूट के लिए	३५,०००)
माधव विद्यार्थी गृह, सीकर	२१,०००)
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	२१,०००)
मुसलमानों में राष्ट्रीय भाव पैदा करने के लिए छात्रवृत्ति	२१,०००)
सत्याग्रहाश्रम, साबरमती	२५,०००)
राजस्थान केसरी, वर्धा	१०,०००)
नासिक कुम्भ मेला सेवा-समिति	१०,०००)
नागपुर झंडा सत्याग्रह और कांग्रेस के काम में खर्च	१०,०००)
नागपुर कांग्रेस मे खर्च	१०,०००)
जलियांवाला बाग-स्मारक	७,५००)
असहयोगाश्रम, नागपुर	६,०००)
कर्मवीर पत्र के लिए	६,०००)
५,०००) जबलपुर	
१,०००) खंडवा	
फुटकर जिसमे ५,०००) से नीचे की रकमें और व्यक्तिगत सहायता शामिल है	२,००,०००)
कुल	११,०६,५००)

संवत् १९८३ के बाद दिये

(१) श्री जमनालाल सेवा ट्रस्ट में दान स्व० जमनालालजी के इच्छानुसार उनके पुत्र श्री कमलनयन व श्री रामकृष्ण द्वारा—	३,९०,०००)
(२) बजाजवाड़ी "अतिथि-गृह" में मेहमानों के लिए खर्च	२,५१,०००)
(३) स्व० जमनालालजी द्वारा कांग्रेस तथा सार्वजनिक कामों में खर्च	२,००,०००)
(४) अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, मगनवाड़ी, वर्धा को जमीन, बगीचा व इमारतें दान	१,३२,१००)
(५) सत्याग्रह-आश्रम, वर्धा	२८,५००)
(६) भारतीय भाषा भाषी संघ, वर्धा को मकानात आदि के लिए	२५,०००)
(७) ग्रामसेवा-मण्डल, नालवाड़ी, वर्धा	१९,५००)
(८) गुरुकुल कांगड़ी को गांधी अर्थशास्त्रगद्दी के लिए	१८,०००)
(९) राष्ट्रीय विद्या-मन्दिर, वर्धा	१०,१००)
(१०) सेवाग्राम में विश्राम-गृह के लिए	१०,०००)
(११) सेवाग्राम आश्रम के लिए मकानात, सड़कें आदि बनाने में खर्च	८५००)
(१२) राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा	७७५०)
(१३) उद्योग-मन्दिर आश्रम, साबरमती	६०००)
(१४) आनंद विद्यालय के लिए—तालिमी संघ, सेवाग्राम	६०००)

(१५)	कलकत्ता मेडिकल रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता को जमीन	५०००)
(१६)	देशी-राज्य-प्रजा-परिषद्, बंबई	५०००)
(१७)	गांधी-आश्रम, हटुन्डी	५१००)
(१८)	मारवाड़ में शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति	६५००)
(१९)	कमला नेहरू मेमोरियल फंड, प्रयाग	२१००)
(२०)	अभ्यंकर मेमोरियल फंड, नागपुर	२१००)
(२१)	सत्याश्रम बोरगाँव के संस्थापक सत्यभक्त पं० दरबारीलालजी	३७५०)
(२२)	विदेशी वस्त्र बहिष्कार फंड, बंबई	१५००)
(२३)	विद्या मन्दिर अगरगाँव (जिला वर्धा) को जमीन	२७००)
(२४)	कर्मवीर छापाखाना	१४००)
(२५)	माता आनंदमयी ट्रस्ट, देहरादून	१०००)
(२६)	क्वेटा रिलीफ फंड	१०००)
(२७)	रामनिवासजी गौर के मृत्यु स्मारक के लिए मकान	१०००)
(२८)	अभय आश्रम	१०००)
(२९)	महाराष्ट्र-सेवा-संघ	१०७५)
(३०)	श्री मारवाड़ी शिक्षा-मण्डल, वर्धा	२५००)
(३१)	दुकान में सहायता के जो फंड जमा थे उस रकम का ब्याज	१०,५००)
(३२)	मद्रास का बंगला श्री राजगोपालाचारीजी के पुत्र को दान	१०,०००)
(३३)	सुभाष कांग्रेस फंड	७५०)
(३४)	मारवाड़ी बालिका-विद्यालय	७५०)

(३५)	मद्रास-फेडरेशन	५०१)
(३६)	हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग	५००)
(३७)	तिलक राष्ट्रीय विद्यालय	८२५)
(३८)	मेवाड़ प्रजामण्डल, उदयपुर	६००)
(३९)	गुन्टुर बाढ़ रिलीफ कमेटी	५००)
(४०)	हिन्दी विद्या-मन्दिर	८२१)
(४१)	विद्या-भवन उदयपुर	५००)
(४२)	अग्रवाल महासभा	५००)
	फुटकर जिसमें रु० ५००) के नीचे की रकमें व व्यक्तिगत सहायता शामिल है।	९६,०००)
	कुल	१२,७७,०००)
	संवत् १९८३ तक दी गई सहायता का योग	११,०६,५००)
	कुल दान	२३,८३,५००)

: ६ :

जेलयात्री कुटुंबी

जमनालालजी के कुटुम्बी-लोग, जो राष्ट्रीय अंदोलन में जेल गए उनकी नामावली:—

(१) स्व० जमनालालजी

झण्डा-सत्याग्रह १९२३ — नागपुर जेल में रहे

नमक-सत्याग्रह १९३० — ठाना „

सत्याग्रह १९३२ — नाशिक „

जयपुर सत्याग्रह १९३९ मोरांसासर तथा करणावतों का बाग

व्यक्तिगत सत्याग्रह १९४१ नागपुर जेल में रहे

(२) श्री जानकी देवीजी बजाज सन् १९३२ में

(३) श्री कमलनयन बजाज—सन् १९३२ में युक्तप्रान्त में सत्याग्रह कर के

(४) श्री राधाकृष्ण बजाज

सन् १९३२ में—६ महीने की सजा, अकोला और खंड़वा की जेल में रहे।

सन् १९३४ में फिर गिरफ्तारी और शिवनी और नागपूर में ४ मास तक रहे।

सन् १९४२ आंदोलन मे बुलडाना, वर्धा और नागपुर की जेल में ३ साल रहे।

(५) श्री गुलाबचंद बजाज

नमक-सत्याग्रह में पुलिस ने लाठी से पीटा था जिससे आपका सिर फूट गया था।

सन् १९३० के आंदोलन में गिरफ्तारी और नड़ियाद, साबरमती और येरव्रदा जेल में तीन महीने की कैद।

सन् १९३१ मे फिर गिरफ्तारी और वर्धा, नागपुर, जबलपुर जेल में ४ महिना रहे।

(६) श्री रामगोपाल बजाज

सन् १९२६ के झंडा-सत्याग्रह में एक महिने की सजा।

(७) श्री मोतीलाल बजाज

सन् १९२६ मे झंडा सत्याग्रह में २ महिने की सजा, नागपुर में।

(८) श्री घनश्याम बजाज

सन् १९४२ के अगस्त आदोलन में तीन बार गिरफ्तारी पहिला बार वर्धा जेल में १५ दिन; दूसरी बार वर्धा-जेल में ६० बेत की सजा; तीसरी बार १३ महिने जेल में रहे।

(९) श्रीमन्नारायण अग्रवाल

सन् १९४२ के अगस्त आंदोलन में १८ महिने की सजा।

(१०) श्री प्रल्हादराय पोद्दार

सन् १९३० में दांडी-यात्रा विद्यार्थियों की टुकड़ी के साथ।
सन् १९३२ में वर्धा में गिरफ्तारी।
सन् १९३८ में जयपुर-सत्याग्रह में जेल।

(११) श्री रामकृष्ण बजाज

१६-४-४१ को १००) जुर्माना
१८-४-४१ को २००) जुर्माना
२३-४-४१ को ४ महिने की क़ैद
१४-८-४१ को ६ महिने की क़ैद
सन् १९४२ के अगस्त-आंदोलन में सजा अंदाज २॥ साल

(१२) श्री सावित्रीदेवी बजाज

सन् १९४२ के अगस्त आंदोलन मे जेल, वर्धा, नागपुर, रायपुर, जबलपुर-जेल में रही।

: ७ :

जेल-जीवन

श्री जमनालालजी नासिक-जेल में सी क्लास में रहे। सी क्लास उन्होंने मांग कर लिया था, क्योंकि दूसरे राजनैतिक कार्यकर्ताओं के साथ भेद-भावपूर्वक रहना उन्हें पसंद नहीं था। पानी खींचने का काम मिला। उसमें खूब वजन घटा और कमजोर भी काफी हो गए थे। कैदी के कपड़े पहनते थे और बाहर आकर भी चड्डी कुरता ही पहनना चालू रखने की इच्छा रखते थे। पर श्री जानकीदेवी के आग्रह से पूज्य बापूजी ने उनकी उस इच्छा को पार नहीं पड़ने दिया। जेल की दिनचर्या खुद उन्हीके शब्दों में सुनिए—

"....मैं ठाणे में प्रायः ४-४॥ बजे उठा करता था। यहाँ निद्रा ज्यादा आती है, इससे ४॥ या ५ बजे उठता हूँ। सुबह की प्रार्थना का अनुवाद आश्रम भजनावली में से पढ़ता हूँ। कभी-कभी तो आश्रम भजनावली के पान नं० ५ से ६२ तक पढ़ जाता हूँ (शाम की प्रार्थना के पान छोड कर)। बाद में टट्टी, मुंह धोना ६ बजे तक। ६ से ६॥ तक भागना, उठ-बैठ आदि व्यायाम, ६॥ से ७ श्वास बराबर होने तक विश्रांति या पढ़ना, बाद में ठंढे जल से पनघट पर खुली हवा में स्नान करना। कपड़े धोना, बरतन साफ करना और पानी छानके २४ घंटे के लिए भरकर रखना। यह काम ७॥ या ७॥। तक हो जाता है। बाद में ज्वारी की नमक डाली हुई गरम-गरम कांजी गत सोमवार से पीता हूँ।

"जेल का काम ८ से १० या १०॥ तक करता हूँ। आजकल सीने का काम मैंने मांगा था वही करता हूँ। मन तो उसमें बराबर नहीं लगता क्योंकि विचार चला ही करते हैं तथापि उल्टी सीधी सुई कपड़े पर मारा ही करता हूँ। मैं और दूसरे मित्र मिलकर जब सीने बैठते हैं उतने में ही

सुपरिन्टेन्डेन्ट आकर हमारी खैरियत पूछ जाता है। बाद में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' आता है उसे श्री नरीमान जिन्हे सादी सजा हुई है, पढ़कर सुनाते हैं।

"११ बजे के करीब भोजन आता है। गत सोमवार से सी० क्लास का भोजन लेना अपनी इच्छा से चालू किया है वही लेता हूँ। सुबह ११ बजे सप्ताह में पांच रोज जवारी की रोटी व दो रोज बाजरी की रोटी आती है, साथ में कभी तुअर की दाल व कभी चने या मूंग की दाल आती है। परन्तु जवारी बाजरी की रोटी से पचाने में खूब सहायता मिलती है। कबजी भी नही रहती। इससे कांदा खाना शुरू किया है। भोजन बाद बरतन मांजकर पढ़ता हूँ। (५-१० मिनट) फिर प्रायः एक घंटे तक आराम लेता हूँ। (सो जाता हूँ) यहाँ निद्रा बहुत आती है। आबहवा अच्छी होने के कारण अथवा जवारी की कांजी की घैल (नशा) भी शायद रहती हो। अब आगे चल कर विचार है कि दिन में सोना अगर हो सका तो बंद कर दूंगा। आराम करके उठने के बाद कभी जेल का काम रह गया हो और इच्छा हो तो करता हूँ, नहीं तो पढ़ता हूँ।

"तीन बजे के बाद एक घंटे या कुछ ज्यादा समय तक कातता हूँ। जबसे चरखा मिला है एक दिन भी खाली नहीं गया है व हमेशा १६० तार से ज्यादा ही काता जाता है। तीन-चार दिन से भोजन शाम का रोटी व साग आता है, बंद कर दिया। कारण उससे पेट में भारीपना और आलस्य मालूम देता है। हाल तो सुबह की कांजी और ११ बजे के भोजन पर ही काम चलाता हूँ। आगे इससे यदि स्वास्थ्य में हानि दिखलाई दी तो उस मुताबिक फेरफार हो जायगा। मेरे बहुत कोशिश करने पर मुझे यह भोजन मिल रहा है।

"चरखा कातने के बाद मुंह हाथ धोकर बहुत बार करीब १ घंटे सतरंज खेल या अंत्याक्षरी या मस्तिष्क का व्यायाम (सवाल बताना १५ प्रश्नो

में) आदि। बाद में एक घंटे खादी, सामाजिक सुधार आदि कई विषयों पर चर्चा करते हैं। हम लोग यहाँ पांच जने हैं। उनका नाम पंचमंडल रखा है। पांचों के नाम—श्री नरीमान, डा० चोकसी (पारसी), रणछोड़भाई अहमदाबादवाले, मुनि जिनविजयजी और मैं। बाद में मुनिजी प्रार्थना कराते हैं। भजन बोलते है, कलापी आदि अन्य कविता पढ़ते हैं और हम सब सुनते हैं। नौ बजे तक यह सब काम होता है।

"बाद में अपनी-अपनी कोठरी में जो १०×८ फुट की है, खूब उजालेदार व साफ, उसमें बंद किये जाते हैं। सामने मोटे-मोटे सलाकों वाला दरवाजा है उसमे ताला लगा दिया जाता है। तब मालूम होता है कि हम कोई विचित्र और भयंकर प्राणी-जानवर हैं, जिससे हमें उतने जाब्ते के साथ बंद किया जाता है। तुमने सरकस या बड़े-बड़े बगीचों में बाघ या सिंह को जिस प्रकार बंद किये हुए देखा होगा। उसी प्रकार हम लोग बंद होते हैं। अगर टिकिट लगा कर सरकार हम लोगों को दिखावे (जनता को) तो वैसी हालत में उसे ठीक आमदनी हो सकती है। बंद होने के बाद बिजली की बत्ती हम चाहें तो जलती रह सकती है, नहीं तो सिपाही बंद कर देता है। मैं प्रायः १० के पहले धर्मानन्द कोसंबीजी की आपबीती पुस्तक पढ़ता हूँ और फिर सो जाता हूँ। सुबह मेरी कोठरी में ४॥ या ५ बजे के बीच में बत्ती लग जाती है।

"जेल में आने के बाद मैंने कुरान का गुजराती तरजुमा पूरा पढ़ डाला। बायबल थोड़ी पढ़ी। पूज्य बापूजी का जेल का अनुभव पढ़ा और छोटी-मोटी १२ किताबें पढ़ी हैं। समय इतना जल्दी जाता है कि दिन और रात जाते देर नहीं ही लगती। अब मेरा नरीमान के साथ अंगरेजी पढ़ने का विचार है, देखें क्या पार पड़ता है। ऊपर की दिनचर्या लिखने का इतना ही मतलब है कि खूब आनन्द व उत्साह के साथ यहाँ समय बिताते हैं। अधिकारी लोग खूब प्यार और सम्मान से बरताव करते हैं।"

: ८ :

जीवन-यात्रा

कार्तिक सु० १२	१९४६ वि०	४ नवं०	१८८९ ई०	जन्म—कासी का वास में।
ज्येष्ठ	१९५१ वि०	जून	१८९४ ई०	गोद आये तथा वर्धा रहने लगे।
		१ फर०	१८९६ "	विद्यारम्भ।
		३१ मार्च	१९०० "	स्कूल छोड़ा।
वैशाख	१९५८ वि०	मई	१९०२ "	विवाह श्री जानकीदेवी से।
माघ सु०	१९६३ "	जन०	१९०७ "	लक्ष्मीनारायण मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा।
वैशाख बि० २	१९६४ "			बच्छराजजी को त्याग-पत्र दिया।
			१९०६ "	'हिन्दी केसरी' के लिए १००) चन्दा
जेठ बि० ८	१९६४ "	३ जून	१९०७ "	बच्छराजजी का देहान्त।
		दिसम्बर	१९०८ "	आनरेरी मजिस्ट्रेट बने
			१९१० "	वर्धा में मारवाड़ी-विद्यार्थी-गृह की स्थापना, मारवाड़ की यात्रा तथा अनेक शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण

			१९१२ ई०	वर्धा में मारवाडी हाई स्कूल की स्थापना।
		२७ अगस्त	१९१२ "	कमलाबाई का जन्म।
आषाढ सु० १,	१९७० वि०	५ जुलाई	१९१३ "	हीरालाल रामगोपाल से अलग हुए।
माघ सु० ७	१९७१ "			कमलनयन का जन्म।
वैशाख (द्वि) सु० ५	१९७२ "	१९ मई	१९१५ "	बंबई की दूकान (बच्छराज जमनालाल) खोली।
			"	बंबई में 'मारवाडी विद्यालय' तथा मारवाडी शिक्षा-मंडल की स्थापना; महात्मा गान्धी से परिचय और संपर्क।
			१९१७	राजनैतिक जीवन में प्रवेश; कलकत्ता-कांग्रेस में महात्माजी को मेहमान बनाया; रायबहादुर बने।
भाद्रपद स० ९	१९७४ वि०			मदालसा का जन्म।
चैत्र ० सु १	१९७६ वि०		१९१९ ई०	मारवाडी अग्रवाल-महासभा, वर्धा, के स्वागताध्यक्ष हुए।
भाद्र० बि० १	"			उमा का जन्म।

	१९७७ वि०	मारवाड़ी अग्रवाल जातीय कोष की स्थापना ।
	१९२० ई०	महात्माजी के 'पांचवें पुत्र' बने; नागपुर-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष हुए; कांग्रेस के कोषाध्यक्ष चुने गये।
	१९२१ "	असहयोग-आन्दोलन में सम्मिलित; राष्ट्रीय आन्दोलन में झोंक दिया; १ लाख का दान ।
९ अप्रैल	१९२१ "	सत्याग्रहाश्रम, वर्धा की स्थापना ; विनोबाजी का वर्धा आगमन; 'राय बहादुरी' लौटाई ।
अगस्त	१९२१ "	हिन्दी-नवजीवन' का जन्म ।
१७ मार्च	१९२२	साबरमती-जेल से बापू ने प्रसिद्ध पत्र लिखा जिसमें पहली बार उन्होंने 'चि०' शब्द का प्रयोग किया ।
	१९२२	खादी-विभाग के संचालक हुए ।
१३ अप्रैल	१९२३	नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह का संचालन ।

तिथि	वर्ष	घटना
माघ सु० ३	१९८० वि०	रामकृष्ण का जन्म ।
१० जून	,,	झंडा-सत्याग्रह में गिरफ्तार हुए ।
१० जुलाई	,,	१॥ वर्ष कैद और ३ हजार जुर्माने की सजा ।
१८ ,,	,,	मोटरगाडी आदि जब्त, जो नहीं बिकी।
	,,	कोकोनाडा कांग्रेस, खद्दर-बोर्ड के सभापति बने ।
	१९२४ ई०	नागपुर कांग्रेस कमिटी के सभापति हुए।
२३ जुलाई	१९२५ ई०	देशबन्धु स्मारक की अपील ।
	,,	खादी-प्रचार के लिए राजस्थान की यात्रा ।
अक्टूबर	,,	अ० भा० चरखा संघ का निर्माण;
	,,	चरखासंघ के कोषाध्यक्ष बने; 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना; पंचायत से जाति-बहिष्कृत ।
जनवरी	१९२६ ई०	कमलाबाई का विवाह सत्याग्रहाश्रम, साबरमती में—बापू की उपस्थिति में।

२६ मई	१९२७ ई०	अ० भा० चरखासंघ के स्थानापन्न सभापति ।
	"	माहेश्वरी सभा, पंढरपुरमें सम्मिलित, बिजोलिया (मेवाड़) की प्रथम यात्रा; भरतपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन में शरीक।
	१९२८ ई०	गाँधी आश्रम, हटुंडी (अजमेर) की स्थापना; देशी राज्य प्रजा परिषद् कलकत्ता में शरीक; राजपूताना-यात्रा; बारडोली-सत्याग्रह में वहां की यात्रा; भारत-भर में खादी-यात्रा; लक्ष्मी-नारायण मन्दिर हरिजनों के लिए खोला; भगवत्‌भक्ति-आश्रम रेवाडी में हरिजन के हाथ का भोजन किया ।
	१९२९ ई०	हिन्दी-प्रचार तथा खादी के लिए मद्रास-यात्रा; साइमन कमीशन-

	१९२९ ई०	बहिष्कार में भाग; अजमेर के कांग्रेस-दलों में समझौता कराया।
२० जून	१९२९ ई०	'भारत में अंगरेजी राज्य' की जब्ती पर विरोध, तलाशी।
	१९३० "	नमक-सत्याग्रह में विले-पार्ले छावनी कायम की; महिलाश्रम, वर्धा का प्रारम्भ; जानकीदेवी तथा कमलनयनने सत्याग्रह किया।
१० अप्रैल	"	सत्याग्रह में २ साल की जेल।
	१९३१ "	कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस परिषद के अध्यक्ष हुए बिजोलिया-सत्याग्रह में समझौता कराया।
सितम्बर	" "	बंगाल की संस्थाओं के लिए धन-संग्रह
	१९३३	बापू को वर्धा बसाया।
	"	सत्याग्रह में जेल।
अक्टूबर	१९३३	'गांधी-सेवा-संघ' के अध्यक्ष-पद से इस्तीफा।

	१९३४	कांग्रेस के कार्याध्यक्ष-कुछ समय के लिए।
	,,	बिहार भूकम्प सहायता समिति का कार्य; कान का आपरेशन।
२९ अक्टूबर	१९३५ ई०	राधाकृष्णजी की अनसूया के साथ शादी, बापू का सारगर्भित भाषण।
	,,	हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की ओर से १ लाख की थैली एकत्र की; स्वास्थ्य-लाभ के लिए भुवाली गये; सीकर के राजपूत-जाट प्रकरण में समझौता; कराया; अ० भा० चर्खा संघ की अध्यक्षता छोडी।
	१९३६	ब्यावर मिल-मजदूरों की हड़ताल में समझौता; वनस्थली बालिका विद्यालय के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व; जयपुर-राज्य प्रजामंडल का पुर्ननिर्माण।
२३ जुलाई	१९३६	कमलनयन की सगाई-सावित्री देवी से।

२७ मार्च	१९३७	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, मद्रासके अध्क्षय।
३० जून	१९३७ ई०	कमलनयन का विवाह।
११ जुलाई	,,	मदालसा का विवाह श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल के साथ।
अप्रैल	१९३८ ,,	जयपुर-राज्य प्रजामंडल के अध्यक्ष।
४ जुलाई	,,	सीकर- गोलीकाण्ड, समझौताकराया।
१३ अगस्त	,,	महर्षि रमण के दर्शन।
१५ अगस्त	,,	श्रीअरविन्द के जन्म दिन पर पांडिचेरी में उनके दर्शन।
	,,	नागपुर प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष।
२७ अक्तू०	,,	नागपुर बैंक का उद्घाटन।
२५ नवं०	,,	चित्रा-सावधान केस का फैसला; दोनों को छः-छः महीने की सजा।
२९ दिसं०	,,	जयपुर-राज्य में प्रवेश-निषेध।
४ जनवरी	१९३९	चरखा-संघ (राजस्थान) से राजनीति में न पड़ने का इकरार जयपुर-राज्य ने मांगा।

	११ जन०	१९३९ ई०	जयपुर-प्रजामंडल सरकार ने अमान्य घोषित किया।
	१ फरवरी	"	जयपुर-सरकार के हुक्म की अवज्ञा;
	५ "	"	फिर सत्याग्रह और गिरफ्तार।
	१९ मार्च	"	जयपुर में तीसरी बार सत्याग्रह और नजरबन्दी की सजा।
	अगस्त	"	जयपुर जेल से छूटे।
		"	चरखा संघकी सदस्यता छोड़ी।
		१९४१	युद्ध-विरोधी प्रचार में जेल, नागपुर-जेल में रहे।
	८ मई	"	जेल में उर्दू पढ़ना शुरू किया ४ किताब पढी।
	३ जून	"	नागपुर-जेल से मुक्त हुए।
		"	आनंदमयी के दर्शन, वहाँ शान्ति लाभ।
	१ फरवरी	१९४२	वर्धा में गो-सेवा-सम्मेलन; गो-सेवा-संघ की स्थापना।
फाल्गुन सु० ११, १९९९ वि०	११ फरवरी	"	देह-त्याग, वर्धा के निज भवन में।
बुधवार तीसरे पहर	११ "	"	गोपुरी में दाहकर्म।

: ९ :

सप्तपदी में नई भावना

कमलाबाई के विवाह के समय नये युग की नई भावना के अनुसार सप्तपदी के वचनों का जो नवीन अर्थ किया गया वह इस प्रकार है—

कन्या का पिता कहता है:—

यस्त्वया धर्मश्चरितव्यः सोऽनया सह ।
धर्मेचार्थे च कामे च नातिचरितव्या ।।

धर्म का आचरण जो तुम्हें प्राप्त हो उसे इसी कन्या के साथ करना। धर्म में, अर्थ में, काम में, इस कन्या से ही एक निष्ठ होकर रहना। विरुद्धाचरण न करना।

वर उत्तर देता है:—

नातिचरामि, नातिरामि, नातिचरामि ।

धर्म, अर्थ और काम में मैं व्यभिचार नहीं करूँगा, नहीं करूँगा, नहीं करूँगा।

सप्तपदी

वर कन्या से कहता है:—

१—इष एक पदी भव । सामामनुव्रता भव ।

इच्छा-शक्ति प्राप्त करने के लिए एक पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—मैं तुम्हारे प्रत्येक सत्य-संकल्प में सहायता करूँगी।

२—ऊर्जे द्विपदी भव । सामामनुव्रता भव ।

तेज प्राप्त करने के लिए दूसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—मैं तुम्हारे प्रत्येक सत्य संकल्प में सहायता करूँगी।

३—रायस्पोषाय त्रिपदी भव । सामामनुव्रता भव ।

कल्याण की वृद्धि के लिए तीसरा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—मैं तुम्हारे सुख में सुखी रहूँगी और तुम्हारे दुःख में दुःख अनुभव करूँगी।

४—मायो भव्याय चतुष्पदी भव । सामामनुव्रता भव ।

आनन्दमय होने के लिए चौथा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर ।

कन्या—मैं सदा तुम्हारी भक्ति में तत्पर रहूँगी। सदा प्रिय बोलूंगी। सदा तुम्हारा आनन्द चाहूँगी।

५—प्रजाभ्यः पंचपदी भव । सामामनुव्रता भव ।

प्रजा की सेवा के लिए पांचवां पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—तुम्हारे प्रजा-सेवा के व्रत में प्रत्येक पग तुम्हारे साथ रहूँगी।

६—ऋतुभ्यः षष्टपदी भव । सामामनुव्रता भव ।

नियम पालन के लिए छठा पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—यम-नियमों के पालन में मैं सदा तुम्हारी अनुगामिनी रहूँगी।

७—सखा सप्तपदी भव । सामामनुव्रता भव ।

हम दोनों में परस्पर मैत्री रहे। इसके लिए सातवाँ पग चल। मेरा व्रत पूर्ण करने में सहायता कर।

कन्या—यह मेरे पुण्य का फल है कि तुम मेरे पति हुए। तुम्हीं मेरे परम मित्र, तुम्हीं मेरे परम गुरु और तुम्हीं मेरे देवता रहो।

: १० :

मृत्युपत्र

जमनालालजी के मृत्यु-पत्र के दो नमूने यहाँ दिये जाते हैं—एक सन् १९१४ का व दूसरा १९२५ का है। ११ वर्ष के दरमियान हुए उनके विकास पर नजर डालिए—

(१)

"मैं जमनालाल वल्द रामधनदासजी बजाज (एरण गोती), रहने वाला वर्धा (सी० पी०) देश में सीकर (शेखावाटी) यह विल (मृत्युपत्र) लिख रखता हूँ कि जो मेरे बाद उपयोग में लाया जावे और मृत्यु-बाद नीचे मुताबिक कारंवाई की जावे।

(१) मेरे हाल में कमला नांव की कन्या दो वर्ष की है। इसकी सगाई, विवाह अच्छे खानदानी खुबसूरत, होशियार, सुशील, सशक्त, अच्छे चालचालन का हो व जिसकी भविष्य में राजविद्या व व्यवसाय में निपुण होने की आशा मालूम हो उसके साथ सम्बन्ध (विवाह) कर दिया जावे। विवाह कमला की १३ वर्ष की अवस्था के पहिले नहीं होना चाहिए। वर की उमर कन्या से ६ वर्ष से कमती नहीं होनी चाहिए व १० वर्ष से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। सगाई विवाह थोड़े फासले पर होना चाहिए। अगर ऊपर लिखे

मुताबिक योग्य लड़का कोई पैसेवाले का (धनी) नहीं मिले तो उच्च विचार के खानदानी साधारण स्थिति (घर के) के साथ सम्बन्ध कर दिया जावे। कमला के नाम से मेरे स्टेट में से नगद रुपया या स्थावर स्टेट रुपये पच्चीस हजार (२५०००) जमा कर दिया जावे व इन पच्चीस हजार में से इसके विवाह में रुपये दस से बारा हजार तक लगाये जावें। बाकी रुपये कमला के नाम से जमा रहे उसका ब्याज उसे दिया जावे। कमला बालिग होने पर बाकी रही रकम उसकी इच्छा हो तो चुकती उसे दे दी जावे या उसकी इच्छा मुताबिक ब्याज वगैरे मासिक या वार्षिक व्यवस्था कर दी जावे।

(२) हाल में मेरी पत्नी गरोदर है; अंदाज चार मास हुए हैं। अगर कन्या होवे तो कमला मुताबिक व्यवस्था उसकी भी की जावे व पुत्र होवे तो उसे भली प्रकार पूर्णतया विद्याध्यय कराने का व पूर्णतासे सच्चरित्र बनाने की व्यवस्था करें व उसका १८ वर्ष की उमर में योग्य सुशील घराने की कन्या के साथ विवाह कर दिया जावे।

(३) अगर मेरे सामने औरस पुत्र न हो तो मेरे बाद मेरी पत्नी की इच्छा हो तो योग्य लड़का ट्रस्टीयों की सलाह से मेरे नांव पर दत्तक लेने का पूर्णतय अधिकार है; व वह दत्तक लिया हुआ लड़का औरस पुत्र के मुताबिक समझा जावेगा। दत्तक लिये हुए लड़के का जहाँ तक यथा विधि दत्तक विधान न होगा वहाँ तक मेरी पत्नी को ट्रस्टियों की सलाह से उस लड़के को अलग करने का पूर्ण अधिकार है। दत्तक विधान लड़के की चाल-चलन, होशियारी वगैरे सब बातों की पूर्णतया निश्चय (खातरी) होने पर ही किया जाना चाहिए। तथापि इस बारे का समय पर उचित व्यवस्था करने का पत्नी को व ट्रस्टीयों को पूर्ण अधिकार है। वे मुनासिब समझें व भविष्य में ठीक परिणाम निकले वैसा प्रबन्ध करे।

(४) मेरी पत्नी को मासिक खासगी खर्च व धर्मार्थ वगैरे देने के लिए

मासिक रुपया २५०) अढ़ाई सौ दिये जावें; व ये रुपये देने के लिए रुपये ५०,०००) पच्चास हजार या इतने रुपयों की स्टेट जिसका ब्याज, भाड़ा खर्च वगैरे सब जाकर कम-से-कम रुपये २५०) मासिक आवे वह मेरे पत्नी के नाम से अलग मेरे स्टेट में से कर दिया जाये। मेरी पत्नी जहाँ तक कायम रहे वहाँ तक ऊपर मुनासिब मासिक खर्च दिया जावे; व उसके बाद उपरोक्त रकम या स्टेट उसकी इच्छा मुताबिक उसके स्मारक में अथवा और कार्य में लगाई जावे। इस रकम या स्टेट का उचित उपयोग में लाने का सब तरह से मेरी पत्नी को पूर्णतया अधिकार है।

(५) मेरे स्मारक के लिए निचय रकम हाल में मैं नहीं लिख सकता। कारण हाल में यूरोप में लड़ाई चलने के कारण रूई के व्यापार में नुकसानी है। वह नुकसानी का अंदाज अभी निश्चय हो सकता नहीं। तथापि नगद रुपये नहीं, तो स्टेट, जीन प्रेस के हिस्से आदि एक लाख रुपयों के कीमत मेरे स्मारक निमित्त मारवाड़ी जाति को पूर्णतया हित पहुँचे व अधिक आवश्यकता मालूम हो वैसे कार्य में उपयोग किया जावे। उदाहरणार्थ व्यावहारिक शिक्षण के लिए होशियार व गरीब स्वजातीय विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति, विद्यालय अथवा विद्यार्थी-गृह के लिए इमारत आदि उपयुक्त व स्थाई कार्यों में...... ।

(६) हाल में मेरे जीव का बीमा रुपये १०,०००) दस हजार का ओरियन्टल लाईफ इन्शोरेन्स कम्पनी में किया हुआ है। पोलिसी नं० ९१९२२, १४ अप्रैल १९१९ को यह रकम वसूल होने पर मारवाड़ी विद्यार्थियों के व्यवसाय संबंधी शिक्षण-कार्य में अथवा उक्त समय पर और कोई अधिक जाति-हित का कार्य हो उसमें स्थाई रूप से लगाई जावे।

(७) अगर मेरे पुत्र हो जावे अथवा दत्तक पुत्र लिया जावे उस समय मेरी जो स्थावर-जंगम स्टेट रहे उसमें से कन्याओं के नांव पर की हुई रकम, पत्नी के नाम की रकम या स्टेट , मेरे स्मारक की स्टेट या रकम

अलग-अलग नाम पर निकाल कर, बाकी जो स्थावर-जंगम स्टेट बचे उसमें से रुपये तीन लाख की स्टेट मेरे पुत्र के लिए रक्खी जावे व बाकी बचे वह स्टेट ट्रस्टी लोग मारवाड़ी जाति के हितार्थ उचित व जरूरी समझे उस मुताबिक करें।

(८) मेरे जन्म देने वाले पिता पूज्य कनीरामजी व माता जो हाल देश में सीकर नजदीक काशी के वास में रहते हैं वह दोनों कायम रहें वहाँ तक रुपये ४०) चालिस मासिक खर्च के लिए वह रहे वहाँ, भेज दिये जायं।

(९) डालूराम चौबे जो हाल में मेरे पास रहता है हमारी सेवा (कार्य) सच्ची नियत से व बहुत ही ईमानदारी सच्चरित्रपन के साथ कर रहा है। उसका बदला भुगताना मेरे से असम्भव है तथापि रुपये २५००) पच्चीस सौ मेरे स्टेट में से डालूराम को उसकी मर्जी आवे जिस तरह का उपयोग करने के लिए दिये जावें। कयास वह यह रकम न लेवे तो उसकी इच्छा मुजब कोई धर्मार्थ कार्य में लगा दिया जावे। यह बात भी मंजूर न करे तो ट्रस्टी लोग डालूराम के नाम से स्कालरशिप अथवा इमारत वगैरे जाति हितकर कार्य में उपयोग करें।

(१०) हाल में मेरी दूकान में हाजर रूई का व जीन प्रेस का लेने-देने का व्यापार किया जाता है। मेरे बाद सब रोजगार एकदम कम कर के खर्च भी घटा दिया जावे। सिर्फ स्टेट का ब्याज, भाड़ा वगैरे उत्पन्न का कार्य रहे। सट्टा, फाटका मेरे बाद बिलकुल कोई तरह का भी नहीं किया जावे। अगर किया जावेगा तो मेरी स्टेट दुकान बिलकुल जवाबदार नहीं रहेगी। करनेवाला खास सब तरह से जवाबदार रहेगा।

(११) मेरी स्टेट स्थावर-जंगम आदि में मेरे सिवाय मेरे कोई भी कुटुम्बियों का व नातगों का कोई भी प्रकार कोई तरह का हक हाल में नहीं है। व आगे मैंने लिख दिया है जिसके सिवाय दूसरे कुटुम्बी जनों का हक बिलकुल नहीं रहेगा कोई भी हालत में।

(१२) मैंने जो ऊपर लिखा है यह सब कार्य भली प्रकार सुव्यवस्थित रीत से चलाने के लिए नीचे लिखे ट्रस्टियों को निमता हूँ। उन्हें पूर्ण अधिकार रहेगा—मेरी पत्नी (जानकी), श्रीयुत पूज्य श्रीकृष्णदास जाजू वकील, पूज्य वृद्धिचंद्रजी पोद्दार, पूज्य बालारामजी चूड़ीवाले। यह चार ट्रस्टी मिलकर काम करेंगे बराबर मत होने से मेरी पत्नी को अधिक मत (कास्टींग वोट) देने का अधिकार रहेगा। इसमें से कोई ट्रस्टी कायम नहीं रहे अथवा ट्रस्टी रहने के योग्य न रहे तब बाकी के ट्रस्टीयों को वह जगह खाली रखने का या दूसरा योग्य सच्चरित्र स्टेट से पूर्णतया प्रेम रखने वाले को मुकर्रर करने का पूर्ण अधिकार रहेगा।

(१३) यह विल (मृत्युपत्र) मैं आज रोज बहुत खुशी के साथ सब बातें भविष्य की सोच कर लिख रहा हूँ। मैं जहाँ तक कायम हूँ वहाँ तक इसमें फेर बदल कर सकूगा।

ता० २९-८-१९१४

(२)

॥ श्री हरि ॥

मैं जमनालाल रामधनदास बजाज (अग्रवाल, एरण गोती) वर्धा निवासी यह मृत्यु-पत्र लिख रखता हूँ जो मेरे मृत्यु के बाद उपयोग में आ सकेगा।

(१) मेरी स्टेट जायदाद का विशेष भाग मेरे पूज्य दादाजी बच्छराज जी ने अपने स्वपरिश्रम खुद की मेहनत से बिना अपने कुटुम्ब की सहायता के.........प्राप्त की हुई है इसलिए मुझे........द्वारा विशेष प्रबन्ध करने का अधिकार नहीं है तथापि मेरे बाद मेरी स्त्री, बच्चों को मेरे विचारों का लाभ मिले तथा उस मुताबिक कार्य करने में सहायता मिले इसलिए यह मृत्युपत्र लिख रखता हूँ। इसके पहले मैंने कई मृत्युपत्र लिख रखे होवेंगे वह सब रद्द समझे जावेंगे।

(२) मेरे बाद जो कुछ स्थावर-जंगम स्टेट रहे उसमें से इस विल के लिखे हुए ट्रस्टी या चि० कमलनयन, रणजीत (रामकृष्ण) दोनों सज्ञान हो जावें अथवा दोनों में से एक सज्ञान हो तो वह सलाह कर मेरे अधुरे रहे हुए काम में उचित समझे वह रकम या स्टेट लगावें। मुझे सब से प्रिय काम तो 'खादी प्रचार' का है। दूसरा अत्यज उद्धार है तथा हिन्दी-प्रचार है। परन्तु हिन्दी-प्रचार में तो और भी सहायता मिलना संभव है इसलिए खादी-प्रचार व अंत्यज-उद्धार में ही जो कुछ लगाना हो वह लगाया जावे। (बहुमत के अनुसार)

(३) मेरे हाल में तीन कन्या (पुत्री) तथा दो लड़के (पुत्र) हैं। जिसमें कमला की सगाई पहले ही हो चुकी है। इसी वर्ष में उसका विवाह होने वाला है। इसलिए बाकी रहे हुए पुत्र तथा कन्याओं के बारे में मेरी इच्छा है कि लड़कों की सगाई विवाह १८ वर्ष तक तो बिल्कुल ही नहीं किया जाये। बाद में उन्होंकी जिस प्रकार की इच्छा मालूम हो उस प्रकार व्यवस्था की जावे। अगर परमात्मा की दया से वे आजन्म ब्रह्मचारी रहना पसन्द करें तो मेरे घर के व ट्रस्टी मित्र उन्हे अवश्य उत्साहित कर आजन्म ब्रह्मचारी रह सकें ऐसा प्रबन्ध, शिक्षण, संगत का इन्तजाम कर देवें। मेरी कन्याओं का सगाई, विवाह १६ वर्ष तक बिलकुल नहीं किया जावे। बाद में उन्होंकी इच्छा हो उस मुताबिक सगाई, विवाह का प्रबन्ध कर दिया जावे अगर उनमें से भी कोई आजन्म कुमारिका (ब्रह्मचारिणी) रहना चाहे तो अवश्य उसका उत्साह बढ़ाया जावे तथा उस मुताबिक प्रबन्ध कर दिया जावे। बालकों का (लड़के तथा लड़कियों का) शिक्षण सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, वर्धा या इसी प्रकार की कोई उच्च ध्येय तथा चरित्र बल वाले तपस्वी सज्जन कार्य करते हो वहाँ रखकर देने का प्रबन्ध करें।

(४) मेरे बाद व्यापार कम कर दिया जावे अगर संभव तथा ठीक

समझा जावे तो बन्द कर दिया जावे जिससे कम-से-कम इस प्रकार की जोखम न होने पावे कि मेरे पू० दादाजी के नाम को व्यापारी रीत का बट्टा लग सके। मेरी यह प्रबल इच्छा रही है तथा थोड़ी अभी भी है कि उनका नाम कम-से-कम जितना आज कायम है उतना तो रहे (अगर बढ़ नहीं सके तो)।

(५) मेरे धार्मिक तथा सामाजिक विचार नीचे लिखे मुताबिक आज हैं। मेरी प्रबल इच्छा है कि इन विचारों का हो सके वहाँतक मेरे घर मे काम पड़ने पर अमल किया जावे।

धार्मिक व सामाजिक—पू० महात्माजी के विचार मुझे पसंद हैं। मैं तथा मेरे घर के बालक अगर अपने जीवन में ला सकेंगे तो अवश्य लाभ (कल्याण) होवेगा ऐसा विश्वास है। खास कर सत्य अहिंसा, अंत्यजों के साथ व्यवहार तथा सेवा, विधवा-विवाह (जो लड़की ब्रह्मचर्य पालने में असमर्थ हो), वैश्य जाति में सम्बन्ध—जैसे अग्रवाल, माहेश्वरी, खँडेलवाल आदि जिनका आचार, व्यवहार, खानपान......

सेवा धर्मः—न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

यह सामने रखकर व्यापार तथा अन्य कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सामाजिक रूढ़ीः—मृत्यु का खर्च बिरादरी, ब्रह्मपुरी न की जावे। घरशुद्धि हवन आदि से कर ली जावे। पंचायत कम की जावे; विवाह में धार्मिक क्रिया आदि करने का खयाल रखा जावे।

(६) मेरे बाद मेरे उद्देश तथा इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए निम्नलिखित ट्रस्टी का सलाहकार-मंडल निर्माण करता हूँ। उनकी बहुमति से काम किया जावेगा तो ठीक रहेगा। मेरा इन पर पूरा विश्वास है कि

इन्होंमें मेरे बालकों का तथा जायदाद का तथा....बराबर पालन हो सकेगा इनमें से कोई कायम न रहे अथवा कार्य करने में असमर्थ पाया जावे तो बाकी रहे वह हो सके वहाँ तक एकमत से नहीं तो बहुमत से कार्य करें।

ट्रस्टी-सलाहकार के नाम

१—पू० विनोबाजी भावे ४—चि० राधाकृष्ण बजाज
२—पू० श्रीकृष्णदासजी जाजू ५—चि० गंगाबिसन बजाज
३—पू० मगनलालभाई गाँधी ६—चि० रामेश्वर प्रसाद नेवटिया
७—श्री जानकीदेवी बजाज

(७) उपरोक्त सिद्धान्त तथा विचार मैंने इस मृत्युपत्र में लिख रखे हैं। मेरे जीवनकाल में इसमें परिवर्तन करने का मुझे अधिकार है ही। अगर मैं कोई परिवर्तन नहीं कर सका तो यही मेरी इच्छा समझी जावे व इसके पहले के लेख इस द्वारा रद समझे जावें।

मि० कार्तिक शुक्ल ११ संवत् १९८२ (ह०) जमनालाल बजाज

मैंने उपरोक्त विचार भली प्रकार पढ़ कर समझ लिये हैं। मुझे यह सब पसन्द है (खासकर विवाह सम्बन्धी)। मैं अगर जिन्दी रही तो अमल में लाने की कोशिश करूँगी। अगर मेरी मृत्यु पहले ही हो गई तो ऊपर लिखे मेरे पति के विचार, जो मुझे पसंद है, मेरे बालक तथा कुटुम्ब के ऊपर लिखे हुए ट्रस्टी इन विचारों का पालन करने की कोशिश करें व अन्य सज्जन सहायता करें। जिससे हम दोनों को संतोष पहुँचे।

मि० कार्तिक शु० ११ संवत् १९८२ (ह०) जानकीदेवी बजाज

: ११ :

प्रिय भजन तथा श्लोक

जमनालालजी अपनी डायरियों में उन सुभाषितों, भजनों, तथा श्लोकों को अपने हाथ से लिख लिया करते थे, जो उन्हें अपने अन्तःकरण को अच्छी खुराक देते थे। आश्रम भजनावलि के कई भजन उन्हें प्रिय थे, उन पर निशान लगा दिये थे। उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं। अलग-अलग अवस्थाओं में अलग-अलग प्रकार के भाव मनुष्य को रुचते हैं और आत्मा को शान्ति देते हैं। अतः व्यक्ति का चुनाव उसकी साधना की दिशा और उसके विकास की अवस्था को भी सूचित करते हैं। यहाँ सिर्फ १९२२ तथा १९४२ की डायरियों में से कुछ नमूने दिये जाते हैं।

१९२२ की डायरी में सबसे पहले पृष्ठ पर सबसे पहला श्लोक यह है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव।
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

फिर ३३ पृष्ठ तक नीचे लिखे श्लोक भजन आदि हैं। कुछ दोहे, भजन, आदि यहाँ पूरे दिये जाते हैं, कुछ की प्रारंभिक पंक्ति-मात्र।

ॐ सहनाववतु० ....
नं त्वहं कामये राज्यं० ....
गुरुर्ब्रह्मा० ....
यदेव विद्यया करोति० ....
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः० ....

यततोह्यपि कौंतेय० ....

प्रसादे सर्व दुःखानां............

ॐ असतो मा सद्गमय........

धर्मं चरत माधर्मम्०..........

'अहिंसा सत्यमस्तेय०..........

'श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि०........

'मूढ जहीहि धनागम तृष्णा.......

सर्व ऐषा विहिता रीतिः.......

हिरण्मयेन पात्रेण.........

दुःख विरक्ति का मूल है, शाखा पश्चात्ताप।
ईश भक्ति का पुष्प है। फल है मुक्ति अमाप॥

*　　*　　*

तुकाराम तुक राम के, दोनों सेतु अभंग।
उनका सेतु भंग गया, इनका सेतु अभंग॥

*　　*　　*

मनका फेरत जुग गया, पाय न मन का फेर।
करका मनका छोड़ कर, मनका मनका फेर॥

*　　*　　*

राम राम रटते रहो, जब लग तन में प्राण।
कबहुंक दीन दयाल के, भनक पड़ेगी कान॥

*　　*　　*

और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पियाँ हि माती।
प्रेम मढ़ी को मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन राती॥ (मीरां)

जब लग तन नाहीं जरत, मन नाहीं मर जात
तब लग मूरत श्याम की सपनेहुं नाहिं दिखात ॥

*   *   *

कीजे अब सब अपराध क्षमा प्रभु मेरे ।
आया है आरतनाथ शरण यह तेरे ॥

*   *   *

मैं आया हूं भयभीत शरण प्रभु तेरी,
तेरे बिन दीनानाथ गुजर ना मेरी ॥
जग गहरी नदिया भरा मोह का पानी ।
कुछ दिखे न पारावार मती घबरानी ॥
है तेज क्रोध की धार भँवर अभिमानी,
तृष्णा की सिला में जाय नाव टकरानी ।
मैं देख रहा दृग खोल खाई है फेरी ॥ तेरे बिन०
हरि तुम्हीं लगाओ पार लगेगी नैया,
हां दिखे न दूसर अपर गुणी उतरैया ।
तेरी किरपा की चले हवा दुख दइया,
छिन भर में बेड़ा पार अभय बैठइया ।
टुक देखो दीन दयाल दीन तरहेरी ॥ तेरे बिन०
जो हुए आपके शरण मरण दुख नासा,
मिट गई मोह की त्रास हृदय परकासा ।
इक मैं भी होना चहूं चरण का दासा,
मत घबराना भगवान जान जड़ खासा ।
जिन जिन ने लगाई टेर करी ना देरी ॥ तेरे बिन०

तर गये हैं कोटन जीव नाम लै लै के,
किरतारथ हुए बहु भक्त चरण चित दैके।
अनगिनते जन जग जाल टोर के फेंके,
हो गए हैं जीवन मुक्त दरस उर ले के।
हो गया सुदृढ विश्वास कीर्ति सुन तेरी ।। तेरे बिन०

*   *   *

'मैं केहि कहों विपति अति भारी..........

*   *   *

'परहित सरिस धरम०..............से
.....प्रिय लागहु मोहि राम' तक

*   *   *

भलो भलाई पै लहहि, लहहिं निचाई नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच।।

*   *   *

बंदौ संत असज्जन चरणा। दुःख प्रद उभय बीच कछु बरना
बिछुरत एक प्राण हरि लेहीं। मिलत एक दारुण दुःख देहीं।

*   *   *

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहि बिलोकत पातक भारी।।

*   *   *

बडे भाग्य पाइय सत्संगा। बिनहिं प्रयास होहि भव भंगा।।

*   *   *

तात तुम्हार मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही।
जो पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं।। सुमित्रा

*   *   *

कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छांड़ि अब होब कि रानी।। मंथरा

स्वामि काज करिहौं रण रारी। लै हों सुयश भुवन दशचारी ॥

* * *

अजहुं प्राण रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ॥गुहक॥

* * *

हृदय हेरि हारेउं सब ओरा। एकहि भांति भलेहिं भल मोरा ॥
गुर गोसाई साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥
(भरत)

* * *

कहउं कहावउं का अब स्वामी। कृपा अम्बुनिधि अंतर्यामी ॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित शूला ॥ भरत
तात जाउं बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्मक टीका ॥ कौशल्या

* * *

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवशि नरक अधिकारी ॥ राम

* * *

प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं। मोकहँ सुखद कतहुं कोउ नाहीं ॥ सीता

* * *

जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। प्रिय बिनु तियहिं तरणि ते ताते ॥
तन धन धाम धरणि पुर राजू। पति बिहीन सब शोक समाजू ॥ सीता

* * *

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजगाई ॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी। दीन बन्धु उर अन्तर्यामी ॥ लक्ष्मण

* * *

धर्म नीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरण रति होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई ॥ लक्ष्मण

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरबान ।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन ।।

मन लागो मेरो यार फकीरी में,
जो सुख पावो नाम भजन में । सो सुख नाहीं अमीरी में ।।१।।

'प्रभुजी ! तुम चंदन , हम पानी ।
जाकी अग अंग बास समानी ।।'

(नोट—यह पद उन्हें विशेष पसंद था ।)

* * *

कान्हा कांकडली मत मारो मोरी फुटे गागड़ली ।।
तू तो तेरे घर को ठाकर मैं भी ठाकड़ली ।।कान्हा० ।।१।।
नोलख धेनु नंद घर दूजे एक न बाखड़ली ।। कान्हा० ।। २ ।।
माखन माखन सारो खा गयो रह गई छाछड़ली ।। कान्हा० ।।३
जाय पुकारूँ कंस राजसे मारे थापड़ली ।। कान्हा ४ ।।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर मन कर आकड़ली ।। कान्हा० ५।।

* * *

मगन रहै नित भजन में, चलत न चाल कुचाल ।
नारायण ते जानिये यह लालन के लाल ।।

* * *

हरि सम जग कछु वस्तु नहि प्रेम पंथ सम पंथ ।
सतगुरु सम सज्जन नहिं गीता सम नहीं ग्रंथ ।।

* * *

जब लग सुमिरे ना हरि जो संतन के मीत ।
वह दिन गिनती में नहीं वृथा गये सब बीत ।।

स्वारथ सब जीव कंह एहां । मन क्रम बचन राम पद नेहा ॥
सोइ पावन सोइ सुभग शरीरा । जो तनु पाइ भजति रघुबीरा ॥

* * *

इसके बाद भजनावलि का प्रारंभ है । इसकी सूची में निम्न भजन पंक्ति के आगे साधारण पसंदगी का ✓ निशान लगा है—

अगर है शौक मिलने का०
अंतर मम विकसित करो०
कई लाखो निराशामां०
गुरु बिन कौन बतावे बाट०
गुहक जी करो गंगाजल पार०
घुघट का पट खोल०
जनगण मन अधिनायक०
जय जगदीश हरे०
जय राम रमा रमनं शमनं०
जे का रांजले गांजले०
जे गमे जगत गुरु०
ज्यां लगी आतमा तत्व चीन्यो नहिं०
ठाकुर तव शरणाई०
टेर सुनो बृजराज०
तूं दयाल दीन हौं०
तुं हि एक मेरा०
ते मन निष्ठुर कां केलें०
दीनन दुख हरन०
दीननाथ दयाल नटवर०

दिन नीके बीते जाते हैं०
दुखियानो विसामोरे०
धीर धूरंधरा शूर०
नाथ कैसे गज को०
नाम जपन क्यों छोड़०
नियम पाळावे०
प्रभु मोरे अवगुण०
प्राणि तूं हरि सों डर रे०
प्रीति रीति रघुराई०
बिसर गई सब तात०
बीत गये दीन भजन बिना रे०
मन तोहे किस बिध कर०
मन रे परस हरि के चरण०
मुद मंगल मय संत समाजू०
मेरे तो गिरिधर गोपाल०
मेरे राणाजी में गोविन्द०
मो सम कौन कुटिल खल०
मंगल कररूहु दया करि०
मारी नाड तमारे हाथे०
ये बहारे बाग दुनिया०
रघुवर तुम को मेरी लाज०
रचा प्रभू तूने यह ब्रह्माण्ड०
वैष्ण जन तो तेने कहिये०
वो कहां प्रभु अगम अपारा०
संत पदाची जोड०

सब दिन होत न एक समान०
समज बूझ दिल खोज०
साधो मन का मान त्यागो०
सारे जहाँ से अच्छा०
सुन्दर स्वरूप जाके ; सुन्दर श्रंगार कीनो०

१९४२ डायरी में से

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग ।।

* * *

न लुटता दिन को तो क्यों रात को यूँ बेखबर सोता।
रहा खटका न चोरी का, दुआ देता हूँ राह़ जन का ।।

* * *

मन में बसे लोभ अरु आसा। लोग कहत है हरि के दासा।

* * *

जैसी बानी वैसी करनी—श्रद्धा उस पर जडंती है।
क्रिया शून्य वाचाल विषय में, जमी हुई भी उड़ती है।

* * *

जैसा करता वैसा चलता—लोग उसे आदरते हैं।
ऐसे ही उपदेशक को जन सभी एक से डरते हैं।

* * *

ऐसे बर को क्या करूँ, जो जन्मे और मरि जाय ?
वर वरिए एक साँवरो, मेरो चुड़लो अमर हो जाय ।। (मीरा)

तन, मन, धन से जगत हित ईश-भक्ति करतार।
दुर्लभ ऐसे जगत का भूतल पर अवतार॥

* * *

देव भक्त को सुख न दे, दुख हि सदा बहु देत।
सुख में फँसे न दुःख से, उन्नत हों यह हेत॥

* * *

पानी बाढो नाव में, घर में बाढो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

* * *

इनके अलावा प्रसंग-प्रसंग पर महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ, तुकाराम आदि के अभंग, ओवी, तथा विनोबाजी के वचन भी लिखे मिलते हैं, जिन्हें स्थानाभाव से यहां नहीं दे रहे हैं।

: १२ :

हृदय की पुकार

जमनालाल जी के भाषणों तथा लेखों के कुछ अंश यहां दिये जाते हैं, जो दिखलाते हैं कि उनके हृदय में कैसी आग धधक रही थी और बुराई को बिगाड़ने तथा अच्छाई को बनाने के लिए कैसे व्याकुल रहते थे।

(१)

पूज्यवरो, प्रतिनिधियो, भाइयो और बहनो......

"आज के दिन को मैं अपने जीवन का सबसे अधिक सौभाग्य का दिन समझता। हूँ जब कि लेन-देन और व्यापार के मायाजाल में फँसे हुए मुझ जैसे एक अयोग्य व्यक्ति को राष्ट्र के इस पवित्रतम मंदिर में ३१ कोटि

सन्तति की जन्मदाता अपनी इस मातृभूमि की सेवा-अर्चना के लिए एकत्रित आप सब सज्जनों का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नागपुर की जनता की ओर से इस कांग्रेस के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। और जिस उत्साह, देशभक्ति और नई-नई आशाओं से प्रेरित होकर इतनी दूर आने का कष्ट के ख्याल न कर आप लोग यहां उपस्थित हैं, इसके लिए मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ। ज्यों-ज्यों कांग्रेस के मंतव्यों की सिद्धि भयावह और कंटकाकीर्ण होती जा रही है, त्यों-त्यों प्रतिनिधियों की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। मातृभूमि को स्वतन्त्र करने की अभिलाषा ज्यों-ज्यों प्रबल होती जा रही है त्यों-त्यों दृढ़-विश्वास होता जा रहा है कि इस भयंकर राजनैतिक युद्ध में अवश्य विजय होगी। मैं ब्रिटिश मजदूर दल के प्रतिनिधि कर्नल बेजवुड, मि० बैनस्पूर और ब्रिटिश कांग्रेस के प्रतिनिधि मि० अल्फर्ड नाइट और मि० डियूबी का हृदय से स्वागत करता हूँ। यद्यपि हम लोगों ने यह दढ़ निश्चय कर लिया है कि हम लोग अपने ही सहारे खडे होंगे और अपने ही अन्तरात्मा की प्रेरणा के अनुसार काम करेंगे तथापि हम लोग इन व्यक्तियों की सच्ची मित्रता से अवश्य लाभ उठायेंगे। आज तक जितनी कांग्रेस हुई, उनमें से दो ही कांग्रेस महत्व की हुई हैं। पहली १९०६ की कलकत्ता की कांग्रेस, जिसमें कुछ अधिकार पाने की प्रार्थना करने की पुरानी प्रथा को छोड़ स्वराज का प्रस्ताव पास किया, और दूसरी पिछली सितम्बर की कांग्रेस जिसमें असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ।

"इस युद्ध ने भारत की राजनैतिक स्थिति में नया जोश ला दिया है। इंगलैण्ड और उसके मित्रों ने छोटे-छोटे राज्यों की सहायता पाने के हेतु उन्हें बडी-बडी आशायें दिलाई थी, दायित्वपूर्ण स्वराज्य और आत्मनिर्णय का स्वप्न दिखाया, पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ-साथ बराबरी में रखने का वचन दिया। पर जर्मनी और उसके साथियों के हार जाने के बाद

इंगलैण्ड और उसके मित्र एक-एक करके अपनी प्रतिज्ञाओं को छोड़ने लगे।

"इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री मि० लायड जार्ज और ब्रिटिश गवर्नमेंट की प्रतिज्ञाओं के प्रतिकूल रुम साम्राज्य का ध्वंस किया गया, खलीफा का सारा अधिकार छीन लिया गया और वह साधारण कैदी बना लिया गया। दायित्वपूर्ण स्वराज्य के स्थान पर भारतको ऐसा शासन-सुधार दिया गया, जो निहायत असन्तोष और निराशाजनक है। भारत रक्षा-कानून का दुरुपयोग किया जाने लगा और पुलिस के दुर्व्यवहारों को और बढ़ाने के लिए रौलट एक्ट बनाया गया। इन सब बातों ने हिन्दू-मुसल-मान और भारत के अन्य सन्तानों की आंखे खोल दीं और उन्हे भयंकर स्थिति का सच्चा ज्ञान हुआ। उन्हें प्रगट होने लगा कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उनकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती जायगी। इस अनादृत और पद-दलित दशा से मातृभूमि को उठाने के केवल दो मार्ग हैं। खुला गदर या सर्वत्र असहयोग। पहला भारतीय सभ्यता और सदाचार के विरुद्ध होगा। दूसरा ही ग्रहणीय और समयोचित है।

"असहयोग को सफलता भी प्राप्त हो चुकी है। नागपुर और बरार आदि प्रदेशों में तो इसका जोर प्रबलता से बढ़ रहा है। इसका उद्देश्य केवल यही है कि जहां तक हो सके शीघ्र ही ऐसी संस्थाओं की स्थापना कर दी जाय कि इन विदेशियों के रहते हुए भी हम लोग अपने को पूर्ण स्वतन्त्र कर लें और स्वतन्त्र राष्ट्र की भांति अपना सब काम करें। हमारा अभि-प्राय किसी बाहरी सहायता के बिना ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना है, इसके प्रति जो कुछ सन्देह अथवा ऐतराज उठें उनका पूरी तरह से समाधान किया और उत्तर दिया जा चुका है।

"देश के सामने इस समय निषेधात्मक काम करने का प्रश्न है। इसमें, जो प्रतिष्ठा हमारी सरकार को जनता की ओर से मिल रही है वह

कम हो जायगी और जिस प्रेस्टीज के कारण बुरोक्रेसी अभी तक अपनी जड़ जमाये हुए है उसका नाश हो जायगा। इसीमें से बनाने का काम अपने आप निकलेगा। जब असहयोगी अपनी शक्ति को दूसरी ओर लगाये हुए हें, तो सहयोगी लोग बनाने का ही काम क्यों नहीं करते ? अलीगढ़ और अहमदाबाद के राष्ट्रीय विद्यालयों की नींव निषेधात्मक काम के आदर्श अलीभाई और महात्मा गांधी ने ही डाली है।

स्कूल और अदालतों का बहिष्कार

"देश इस वक्त उन लोगों की तरफ जो कि राजनैतिक काम में मुख्य भाग लेते हैं आँख लगाये देख रहा है कि वे लोग क्या आत्मत्याग करते हैं। इस शोचनीय दशा के समय अपनी जिम्मेदारी का और उन आशाओं का जिसे कि उन्होंने देश को दिलाया है पूरा ध्यान रखना चाहिए। उन लोगों को उचित है कि अपने दिल के संदेह, डर और संकोच को त्याग कर असहयोग को सफल करने में तन्मय हो जाँय। इसकी सफलता की पहली कुंजी हिन्दू-मुसलमानों के मेल की थी। इसका बीजारोपण दिल्ली में हुआ और जलियाँवाला बाग में यह पूर्ण रूप से पुष्ट हो गया। रूम साम्राज्य के ध्वंस और खिलाफत के प्रश्न की अवहेलना ने भारतीय मुसलमानों को ब्रिटिश नितिज्ञों की नीयत का परिचय दे दिया। यदि ऐसे अवसर पर यह जान कर भी कि मातृभूमि के कष्टों को दूर करने का यही एक मात्र उपाय है, यदि असहयोग का साथ न दिया गया तो दिल्ली और जलियांवाला बाग के शहीदों का निरादर करना है, मुसलमानों के दुःख में हार्दिक सहानुभूति नहीं प्रगट करना और उनके विपत्ति में उनका साथ न देना, सदा के लिए हिन्दू-मुसलमानों के मेल की जड़ को उखाड़ना और मातृभूमि के प्रति धोखेबाज़ बनना है।

व्यापारियों से--

"आपकी भी इस भूमि की ओर जिसमें आप उत्पन्न हुए हैं कुछ विशेष जिम्मेवारी है। आप भी राष्ट्रीय संकट के समय अपनी जिम्मेवारी को सोचें और शान्ति-पूर्वक विचार करें, कि यदि ब्रिटिश राज्य के नीचे अभी तक आपने धन एकत्र किया है, तो वह देश को सुखी कर के नहीं, वरन् उसे अधिकाधिक निर्धन और दरिद्र बना कर। विदेशी व्यापार अथवा सट्टे द्वारा अपनी लाखों और करोड़ों की आमदनी पर गर्व करते समय आप को याद कर लेना चाहिए कि देश की बढ़ती हुई दरिद्रता के परिणाम-रूप इस समय लगभग दस करोड़ मर्द औरत और बच्चे इस देश में ऐसे हैं जिन्हें २४ घंटे में एक समय पेट भर अन्न मिलना कठिन हो रहा है। मेरे व्यापारी भाइयो, आपके लिए भी परीक्षा का और अपने जीवन को सफल करने का यह सबसे अच्छा समय है। यदि आप सोचें तो आपको मालूम होगा कि आपका और आपके भावी व्यापार का सच्चा हित भी इसीमें है कि अपनी वर्षों की उपेक्षा तथा कायरता को त्याग कर इस राष्ट्रीय यज्ञ मे आप पूरा-पूरा भाग लें। यदि आप इस समय चूक गये तो आप न केवल अपनी भावी संतान के लिए सच्चे व्यापार का द्वार ही सदा के लिए बन्द कर देंगे, वरन् देश तथा राष्ट्र की ओर कर्तव्य हीनता के पाप के भागी होकर अपनी आत्माओं को भी कलंकित करेंगे। और यदि आप अपने तथा अपने धन की आहुतियां हाथ में लेकर इस राष्ट्रीय यज्ञ की ज्वाला को बढ़ाने के लिए आगे बढ़ेंगे तो इस पवित्र यज्ञ की पूर्ति और उसकी सफलता के कारण बन कर आप अपने तथा अपनी जाति के यश को सदा के लिए उज्ज्वल करेंगे। मुझे विश्वास है कि भारत के व्यापारी इस परीक्षा में अवश्य उत्तीर्ण होंगे।

युवकों और युवतियों से

"यदि आप इस राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर अपनी जिम्मेवारी को समझना चाहते हैं तो इस प्रकार के संग्राम अथवा अन्य राष्ट्रीय संग्रामों के समय के अन्य देशों के इतिहासों को पढ़ लें। और इस निरुपद्रव-आन्दोलन में भारत आप से वैसी ही अनन्य और व्यवस्थित सेवा की आशा करता है जैसी रूस, आयर्लैण्ड, मिश्र, चीन इत्यादि की क्रान्तियों के समय वहां के युवकों और युवतियों ने अपने-अपने देशों की। देश को सबसे अधिक स्वार्थ-त्याग की आशा युवकों और युवतियों के पवित्र हृदयों से है।

"इस महान यज्ञ में महान् आहुति की आवश्यकता है। बिना स्वार्थ-त्याग और कुर्बानी के कोई राष्ट्रीय चेष्टा सफल नहीं हो सकती, और एक इतनी बड़ी चेष्टा को सफल करने के लिए, इस प्राचीन देश को दासता और अपमान के बंधनों से मुक्त कराने के लिए, हममें से किसी व्यक्ति को किसी कुर्बानी में भी पीछे नहीं हटना चाहिए। आवश्यकता केवल हमारे हृदयों में सत्यता, श्रद्धा और प्रेम के बल की है। सज्जनो, इस समस्त स्थिति को ध्यान से देखते हुए मेरा अपना हृदय आशा से भरा हुआ है। मुझे इस आन्दोलन की अन्तिम विजय में कुछ भी सन्देह दिखाई नहीं देता। हमें इस समय अपने छोटे-छोटे अथवा संकीर्ण विचारों को छोड़ कर केवल आन्दोलन की सफलता की ओर दृष्टि रखनी चाहिए।

"इतने बड़े संगठन के लिए धन की आवश्यकता है। आप सज्जन इसके लिए जो व्यवस्था उचित समझें कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जिस शख्स की एक हजार या इससे अधिक वार्षिक आय हो वह जितना टैक्स देता हो उतना ही इस कांग्रेस को भी दे।

"कांग्रेस के भावी उद्देश्यों में देशी राज्य और वहाँ की प्रजा को भी शामिल करना चाहिए। देशी-रियासतों में रहने वाले भी राष्ट्र के

एक अंग हूं। दूसरी बात यह है कि नये उद्देश्यों में मातृभाषा हिन्दी को प्रधान स्थान मिलना चाहिए ताकि राष्ट्रीय मामलों में विदेशी भाषा की छाया न पड़ने पावे। और अधिकाधिक भारतवासियों को कांग्रेस के काम में भाग लेने और उससे लाभ उठाने का अवसर मिल सके।"

(नागपुर-कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष की हैसियत से दिया गया भाषण)

(२)

स्वराज्य की गहरी जड़

"आज भारत के सामने स्वराज्य-प्राप्ति का विकट प्रश्न उपस्थित है, पग-पग पर "अब आगे,--अब आगे" यह समस्या खड़ी होती है। पर वास्तव में देखा जाय तो हमारी सड़क साफ है--हमारा रास्ता सीधा है। यह तो निर्विवाद बात है कि दुनिया में आजतक स्वराज्य किसी को बिना गहरे त्याग और तपस्या के नहीं मिला। चाहे अमेरिका की स्वतन्त्रता के इतिहास को पढ़िए, चाहे चीन की प्रजातन्त्र-प्राप्ति को देखिए, चाहे फ्रान्स-राज्यक्रान्ति का उदाहरण लीजिए, चाहे रूस की वर्तमान क्रान्तियों की ओर देखिए, चाहे आयर्लैण्ड पर नजर डालिए, चाहे मिश्र की बात सोचिए--सब राष्ट्रों को स्वतन्त्रता के लिए बेशुमार त्याग और बलिदान करना पड़ा है, और पड़ रहा है। त्याग और बलिदान स्वराज्य-वट की सब से गहरी जड़ है।

साधन-शुद्धि

"हमारे त्याग और बलिदान का स्वरूप दूसरे राष्ट्रों के त्याग और बलिदान से भिन्न जरूर है। वे प्रतिपक्षी को अपना शत्रु मानते थे और हम उन्हें अपना भूला-भटका भाई मानते हैं। वे उनसे घृणा और द्वेष करते थे, हम उन्हें अपने प्रेम से परास्त करना चाहते हैं। वे साध्य-सिद्धि को आवश्यक मानते थे, पर साधन-शुद्धि के कायल न थे। हमारा सिद्धान्त यह है कि शुद्ध साधनों से ही शुद्ध साध्य की सिद्धि हो सकती है।

इसलिए जहां वे सशस्त्र-प्रतिकार करते हुए त्याग और बलिदान करते थे, तहां हम सत्याग्रह के द्वारा, शान्तिमय उपायों के द्वारा, उच्च-से-उच्च त्याग और बलिदान में हम दोनों की विजय, दोनों का मंगल, दोनों की मैत्री देखते हैं। हमारा स्वराज्य-संग्राम अपूर्व है, एक दृष्टिसे अलौकिक है। अतएव इसमें विजय पाने के लिए त्याग और बलिदान भी अपूर्व और अलौकिक अर्थात श्रेष्ठ और पवित्र से पवित्र होना चाहिए। ऐसे तीव्र दान और निर्मल बलिदान से देश के मनुष्य तो क्या पशु भी अपना पशुत्व छोड़ देंगे और देवताओं का भी दिल थर्रा उठेगा।

स्वदेशी कामधेनु

"हमारा यह त्याग और बलिदान स्वदेशीमय होना चाहिए। स्वदेशी प्रत्येक देश का अटल धर्म है। स्वदेशी के बिना देशाभिमान उत्पन्न नहीं हो सकता। स्वदेशी के बिना त्याग और बलिदान की उज्ज्वल तथा पवित्र भावना उदय नहीं हो सकती। स्वदेशी-बोल-चाल में स्वदेशी, खान-पान मे स्वदेशी, रहन-सहन में स्वदेशी, वेश-भूषा में स्वदेशी, नहीं तो देश की कल्पना , देश का प्रेम, देश-सेवा की इच्छा कहांसे उत्पन्न हो सकती है ? धार्मिक दृष्टि से स्वदेशी नित्य कर्म है, धर्माचरण है, पुण्य कार्य है; नैतिक दृष्टि से स्वदेशी सादगी, उच्च जीवन और उच्च और निर्मल मनोवृत्तियों को उत्पन्न करने वाली है ; आर्थिक दृष्टि से मितव्यय का मार्ग बताने वाली, पाप के धन्धे से पीछे खींचने वाली, लोभ को दबाने वाली और राजनैतिक दृष्टि से हमारे प्यारे स्वराज्य का सुदिन शीघ्र ही दिखाने वाली, हमारी सदियों की गुलामी की बेड़ियां तोड़ने वाली, संसार में हमारा झुका सिर ऊंचा उठा देने वाली और हमें संसार में एक जीवित, उन्नत और गौरवशाली राष्ट्र बना देने वाली है। इन्हीं गुणों पर मोहित होकर महात्मा-जी ने स्वदेशी को भारत के सर्वांगीण उद्धार की कुंजी बताया है।

खादी बिना मातृभक्ति कैसी ?

"आज स्वदेशी का अर्थ है खादी ! जिसके बदन पर खादी नहीं वह स्वदेशी नहीं। वह स्वदेशी होते हुए भी, स्वदेश में रहते हुए भी विदेशी है। जिसे अपनी मां की जरूरतोंका खयाल नहीं, उनकी पूर्ति की चिन्ता नहीं, जो अपनी कमाई से अपने पुरुषार्थ से उसका पेट भर नहीं सकता, उसका बदन नहीं ढंक सकता वह मातृभक्त कैसे कहला सकता है ? और उसकी माता को भी उस पर गर्व कैसे हो सकता है ? फिर भारतमाता के खजाने में तो, उसके साम्राज्य में तो सब कच्ची सामग्री मौजूद है। जरूरत है सिर्फ थोड़ा पुरुषार्थ दिखा कर, थोड़ा परिश्रम कर के, थोड़ा कष्ट उठाकर उनकी पक्की चीजें तैयार करके माता के लिए हाजिर कर देने की।

संजीवनी बूटी

"स्वदेशी में स्वधर्म, स्वदेश, स्वराज्य सब-कुछ है। स्वदेशी से हममें व्यवस्था, संगठन और नियम-पालन की शक्तियों का विकास होगा, स्वदेशी भारत की भिन्न-भिन्न जातियों के लिए प्रेम-बन्धन होगी, स्वदेशी छुआ-छूत को दूर करने अर्थात् हमारे पाच करोड़ अछूत भाइयों का उद्धार करने का साधन होगी। स्वदेशी भारत की फाकेकशी मिटाने का, अर्थात् लाखों गरीबों को दाना-पानी पहुँचाने का कारण होगी। स्वदेशी स्वराज्य-भगवान का विराट स्वरूप है। स्वदेशी भारत के लिए संजीवनी बूटी है। भारत के घर-घर में स्वदेशी का प्रचार होना चाहिए। हर-एक बहन-भाई को नियम से धर्म-कर्म समझ कर कुछ समय तक चरखा कातना चाहिए। द्विजों के लिए तो यह एक प्रकार का सन्ध्यावन्दन ही होना चाहिए। स्वदेशी वर्तमान युग का धर्म है। इसका पालन किये बिना, किया त्याग और बलिदान फीका है।

"यदि अपनी भारतमाता के साथ आपका दिली प्रेम है, हमदर्दी है, हमारे सिरताज महात्मा गांधी आदि नेताओं के वियोग से हम व्याकुल हैं, हमारे दूसरे बीस हजार भाइयों की तपस्या की कदर करना चाहते हैं, यदि हमें सचमुच आजादी प्यारी है, खिलाफत के साथ मुहब्बत है, पंजाब के घाव हमारे दिलों में ताजा है, तो पूर्वोक्त त्याग और बलिदान के द्वारा स्वराज्य का जो बीज बोया गया है उसकी जड़ हम अपने स्वदेशीय त्याग और बलिदान के द्वारा सुरक्षित और मजबूत करें, इस समय इससे बढ़ कर हमारा दूसरा न तो धर्म है न कर्तव्य है।

नवजीवन (एक लेख से)
२० अगस्त १९२२

(३)

पण्डों से अपील

"इस दरिद्रता की एक ही दवा है—खादी। प्रत्येक चरखा चलाने वाला दस-ग्यारह पैसे रोज पैदा कर के ५६।) साल कमा सकता है। खादी और धर्म से सम्बन्ध क्या है ? वैष्णव धर्म में बीमार आदमी की शुश्रूषा करना, किसी भूखे को भोजन देना, पुण्य का काम है। परन्तु आज तो इतने करोड आदमी प्रतिदिन भूखे रह जाते हैं। खादी के प्रयोग से उन गरीब भाइयों का पेट भरेगा इससे अधिक पुण्य की बात और क्या होगी ? मेरा तो खयाल है कि खादी में धर्म कूट-कूट कर भरा हुआ है। इससे धर्म और देश दोनों की रक्षा होती है। इसके साथ देश के ६० करोड रुपये बाहर जाने से बचते हैं। तब भी यदि यहां के पंडा लोग जिनके पूर्वज हमारी श्रद्धा के पात्र थे, अपने धर्म का पालन न करेंगे तो वे स्वयं तो धर्म से च्युत होंगे ही पर अपने जजमान और अपने संतान को भी पतित बनाने के पाप भागी होंगे। आज आपसे कोई सत्याग्रह करने को नहीं कहता— हालांकि कानून भंग करना देश की स्वतन्त्रता के लिए परमावश्यक है

आपसे केवल खादी पहनने को कहा जाता है। यदि आप लोगों ने इतना भी न किया तो और क्या आशा की जा सकती है ?

व्यापारियों से

"यहां कुछ व्यापारी लोग भी मौजूद हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि जिस व्यापार से देश को क्षति पहुँचती है और जिससे देशका रुपया बाहर जाता है उस व्यापार को कदापि न करना चाहिए। मैं भी एक व्यापारी हूँ। मेरा आप लोगों से प्रेम होना स्वाभाविक बात है, इसलिए मैं विशेष आग्रह से कहना चाहता हूँ कि यदि आप इस प्रकार धन पैदा कर के कुछ लाख रुपये अपने पीछे छोड़ भी जायंगे तो आप कौन सा बड़ा काम कर लेंगे ? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप विलायती वस्त्र का व्यापार करना बन्द कर दीजिये।

"कुछ लोग कहते हैं कि मिलों की संख्या बढ़ा देने सेहमारा काम चल सकता है और हम विलायती मिलों को टक्कर भी दे सकते हैं। परन्तु यह विचार मुझे भ्रमात्मक मालूम होता है। मैं भी मिल खोलने के फेर में बहुत दिनों तक रहा हूँ। परन्तु अन्त में इसको देश के हित का वर्धन न पाकर मैंने उसे छोड़ दिया। आज जब हम सरकार के कानून तोड़ने को तैयार हैं और टैक्स तक न देने की इच्छा रखते हैं तब मिलों की संख्या बढ़ाने की बात सोचना भूल है।

"देशी मिलों का बहुत सा रुपया सरकार केकोष में जमा करना पड़ता है। इस वर्ष नागपुर मिलने कुलमिला कर (सुपर टेक्स समेत) ४० लाख रुपयों का कर सरकार को दिया है। इसलिए जो लोग देशी मिलों का कपड़ा खरीदते हैं वे सरकार को किसी-न-किसी रूप में आधा नफा दे देते हैं। इस प्रकार मिल के कपड़ को देशी खयाल करना एक

प्रकार से भूल है क्योंकि हम उनके द्वारा सरकार का हाथ मजबूत करते हैं। हां, जब स्वराज्य हो जावेगा और जब हम मिलों का टेक्स घटा सकेंगे तब मिल का कपड़ा पहिनना भले ही क्षम्य हो जाय।

"श्रीमान मालवीयजी कहते हैं कि कपड़ों की १०० मिल अगर देश में चलने लगे तो देशका दुःख दूर हो जावेगा। आजकल तो वे मिल के कपड़े पर जोर न दे कर खादी पर जोर देते है। परन्तु मैं यदि मान भी लूं कि १०० मिलें खुल भी गई तो हिसाब लगाने से पता चलता है कि २ लाख आदमियों को काम मिल जायगा। यदि एक-एक ऐसे मनुष्य पर चार चार प्राणी निर्भर मान लिये जावें तो दस लाख आदमियों का पेट भर सकता है परन्तु शेष ९ करोड़ भाइयों की समस्या आप किस तरह हल करेंगे ?

"चीन और इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान से रुई मगवाते हैं। जापान तो यहां की ही रुई से काम चलाता है, इस प्रकार रुई की पचास लाख गांठें औसत से बाहर जाती है। यहां से कपास का बाहर जाना और विलायत से उसीका कपड़े के रूप में वापस आना--इस सब के बीच में दस बारह दफा मुनाफा बांटना पड़ता है। पर यदि हम अपनी रुई खुद ही इस्तेमाल कर लिया करें तो कपड़ा कितना सस्ता हो जाय।"

सन् १९२२ (पुरी में दिये गए एक भाषण का अंश)

(४)

कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता

"आप लोगों के भाषणों से मालूम होता है कि आपको जयपुर राज्य के प्रति काफी असंतोष है। आपको गुस्सा आ रहा है, परन्तु मैं यह नहीं जानता कि गुस्सा आने पर वह चला कैसा जाता है ? जयपुर की २७ लाख लोक-संख्या में से २७ कार्यकर्ता भी निर्माण नहीं हो सके। ऐसे

समय एक दो कार्यकर्ता के साथ कोई योजना करना चाहे तो क्या कर सकता है? मैंने सुना है कि पुलिस ने जुल्म करना शुरू किया है। कार्यकर्ताओं के साथ पुलिस असभ्य व्यवहार कर रही है। पुलिस तो जनता की नौकर है। फिर वह ऐसी हरकतें क्यों करती है? इस मामले पर सरकार से बराबर लड़ाई की जा सकती है। इस प्रकार एक दो बातों को लेकर लड़ाई करने में हमारी ताकत बढ़ेगी और यही ताकत फिर काम आवेगी। अपनी उन्नति हमको ही करनी होगी। खुद प्रयत्न करें तो दूसरे भी मदद कर सकते हैं। अगर जयपुर-राज्य में आग पैदा करना है तो कुछ लोगों को कष्ट-सहन करने के लिए तैयार होना चाहिए। कांग्रेस आज ब्रिटिश भारत में लड़ाई लड़ रही है। अगर रियासतों में भी वह ताकत लगावे ऐसी आप लोगों की इच्छा अपेक्षा हो तो इसका मतलब यह है कि आप कांग्रेस को कमजोर बनाना चाहते हैं। आज जो हालत यहाँ है, १९२० में ब्रिटिश भारत में भी यही हालत थी। कांग्रेस की ताकत जैसी बढ़ी है वैसे यहाँ भी प्रजा की ताकत बढ़ाई जा सकती है। मैसोर, इन्दौर, बड़ौदा इत्यादि रियासतों में यद्यपि सत्याग्रह नहीं किया गया फिर भी वहाँ कार्यकर्ता होने के कारण ऐसा मालूम नहीं होता कि हम रियासतों में हैं। यहाँ तो पद-पद पर गुलामी का अनुभव होता है। लोग कहते हैं कि रुपयों की जरूरत है। मैं कहता हूँ कि जरूरत रुपयों की नहीं है—आदमी की है। जहाँ लगन से काम करने वाले कार्यकर्ता मिल जाते हैं वहाँ "हक" भी आसानी से मिल जाते हैं।

आन्तरिक बल बढ़ाओ

"फिर भी मैं महसूस करता हूँ कि राजनैतिक दृष्टि से ब्रिटिश भारत ने उन्नति की है जबकि देशी रियासतें पिछड़ी रहती हैं और भिन्न-भिन्न कई देशी रियासतों की आन्तरिक स्थिति भिन्न-भिन्न बनी हुई है। अतः यह

जरूरी है कि प्रत्येक रियासत में वहाँ की स्थिति के अनुसार ही काम किया जाय। यह सत्य है कि ज्योंही ब्रिटिश भारत की समस्या हल होगी रियासतों की मुसीबतें भी बहुत अंशों में मिट जायँगी। फिर भी रियासती जनता को अपनी अपनी हालत के अनुसार प्रगति की दौड़ चालू ही रखनी पड़ेगी जिससे कि समय आने पर नई जिम्मेवारियाँ उठाने में कमजोर साबित न हों। वास्तविक शक्ति तो भीतर से ही बढ़ती है। और रियासती जनता को यही ध्यान रखना चाहिए कि वे कोई भी सहायता किसी भी रूप में क्यों न प्राप्त करें, लेकिन उन्हें उसीपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। मेरा पक्का विश्वास है कि अगर कोई रियासत, किसी बाहरी मदद पर निर्भर रहने की अपेक्षा, अपनी ही शक्ति के बल पर उन्नति करती है तो उसको बाहरी मदद पाने का ज्यादा मौका मिलेगा और वह उनका अधिक अच्छा उपयोग भी कर सकेगी।

"मैं कार्यकर्ताओं से कहता हूँ कि उन्हें धैर्य और आत्म-संयम से काम करना चाहिए और जनता की ठोस सेवा करने के साथ ही उसमें राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न करानी चाहिए। प्रजा-मण्डल को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और शायद भविष्य में भी करना पड़े। हमें मुसीबतों को उठाने की ताकत रखना चाहिए, क्योंकि प्रजामण्डलों का पक्ष न्यायोचित है, किन्तु कुछ देर क्यों न हो, सच्चे पक्ष की अन्त में जरूर विजय होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हमने प्रजामंडल का काम सच्चाई और दृढ़ता से चालू रक्खा तो सफलता हमारी हो कर रहेगी।"

२१-१२-३६ (जयपुर में दिये गए भाषण से)

: १३ :

सबकी नज़रों में—१

बड़े-बड़े नेता से लगाकर छोटे-से कार्यकर्ता तक निजी और सार्वजनिक कामों में भिन्न-भिन्न रूप में उनसे संबंध रखते थे। कोई विषय ऐसा नहीं होता था जिनमें बड़े लोग भी उनसे सलाह-मशविरा नहीं करते थे और उनकी सूचना, राय या सलाह का आदर नहीं करते थे। कई तो उनकी सलाह लेने के बाद निःशंक हो जाया करते थे। उनकी आत्मीयता के भरोसे बेफिक्र रहते थे और उनके प्रति सदैव कृतज्ञता का अनुभव करते थे। ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के अनुभव नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"जमनालाल बजाज और उमर सोभानी, ये दोनों कांग्रेस कमेटी के ऐसे खजांची मिले हैं, जिन्हें सबका आदर प्राप्त है।"

यं० इं०, २०-१०-२१ गाँधीजी

"आज हमें विचार तो यह करना है कि हम उनकी जमीन पर बैठे है। सेवाग्राम के लिए उनके मन में कितना अनुराग था, सो मैं जानता हूँ। यहाँ एक-एक कौड़ी उन्हीकी खर्च होती है। उन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि यहाँ खर्च होने वाली एक-एक पाई का ठीक-ठीक हिसाब रहता है या नहीं; क्योंकि वे खुद अपनी कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखते थे। वे हमेशा इस बात का आग्रह रखते थे कि सेवाग्राम का कोई आदमी बाहर जाय तो उसका बरताव और उसकी रहन-सहन सेवाग्राम को शोभित करनेवाली होनी चाहिए।" —गाँधीजी

वे 'राय बहादुर' थे। लेकिन मेरे साथ उनका सम्बन्ध 'राय बहादुरी' से पहले ही कायम हो चुका था। मैंने उन्हें राय बहादुरी लेने दी, क्योंकि उन दिनों में सोचता था कि उसका भी कुछ सदुपयोग हो सकेगा। जब

उसे छोड़ने की बात आई, तो उन्हें उसका त्याग करने में एक क्षण की भी देर न लगी।" —गाँधीजी

"इससे ज्यादा सच्चा सन्देश और क्या हो सकता है? यह मैं कैसे, कहूँ कि मुझे उनके जाने का दुःख नहीं हुआ? दुःख होना तो स्वाभाविक था, क्योंकि मेरे लिए तो वही मेरी कामधेनु थे। आफत-मुसीबत हो, तो बुलाओ जमनालालजी को; कुछ काम करना हो, कोई जरूरत आ पड़ी, तो बुलाओ जमनालालजी को; और जमनालाल भी ऐसे कि बुलाया नहीं, और वे आये नहीं। ऐसे जमनालाल का दुःख कैसे न हो? लेकिन जब उनके किये कामों को याद करता हूँ, और हमारे लिए जो सन्देश वे छोड़ गए हैं, उसका विचार करता हूँ, तो अपना दुःख भूल जाता हूँ।" —गाँधीजी

"उनकी निर्भयता तो असाधारण ही थी। जब से 'पुत्र' बने तब से वे अपनी समस्त प्रवृत्तियो की चर्चा मुझसे करने लगे थे। अन्त-अन्त में जब उन्होंने गोसेवा के लिए फकीर बनने का निश्चय किया. तो वह भी मेरे साथ पूरी तरह सलाह-मशविरा कर के ही किया।" —गाँधीजी

"वे जिस काम को हाथ में लेते थे, उसमें जी-जान से जुट जाते थे। यही उनका स्वभाव था। जब रुपया कमाने लगे तो ढेरों रुपया कमाया; लेकिन जहाँ तक मुझे मालूम है, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अनीति से उन्होंने एक पाई भी कभी नहीं कमाई। और, जो कुछ कमाया, सो सब उन्होंने जनता-जनार्दन के हित में ही खर्च किया।" —गाँधीजी

"परन्तु उसमें जो शाश्वत था, मगर एक सीमा में बंधा हुआ था, वह अब हम सबका हो गया है। जब तक जीवित थे, जमनालालजी कुछ ही लोगों के थे, किन्तु अब वे सारे विश्व के बन गए हैं। उनके शरीर का अन्त हुआ है, किन्तु उनके व्रत, उनकी प्रतिज्ञायें, उनकी गोसेवा, उनकी खादी सेवा, सत्य और अहिंसा की उनकी लगन, ये सब तो अब हममें आकर

मिल गई हैं......हमारी विरासत बन गई हैं। उन्होंने इन सब व्रतों को सिद्ध करने के लिए जो-जो कुछ भी किया, सो सब तो अब हमारा है ही, लेकिन जितना कुछ वह अधूरा छोड़ गये हैं, उसे पूरा करने का जिम्मा भी हमारा है। अपनी मृत्यु द्वारा वे आज हमें यही सिखा गए हैं।"

—गांधीजी

"उस दिन दोपहर को बारह बजे तो वे फोन पर हमसे बातें कर रहे थे—वही हंसी, वही मीठा मजाक, सेवा की अभी उन्हें बड़ी-बड़ी उमंगें थीं। पिछले दिनों जब नागपुर-जेल में हम सब साथ थे, वे अक्सर बातचीत के दौरान में मुझसे कहा करते थे—ऐसा कोई काम या प्रवृत्ति मुझे चाहिए, जिसमें अपनी सारी शक्ति और समय लगा कर देश की सेवा कर सकूं।"

—महादेव देसाई

"आप हमारे लिए जो-कुछ कर रहे हैं उसके बारे में यदि मैं अपनी कृतज्ञता आपके प्रति प्रदर्शित करूँ तो आशा है, आप इसे अनुचित समझेंगे। आप कहेंगे कि दोस्तों और भाइयों के बीच ऐसी जाहिरदारी नहीं होनी चाहिए। कुछ हद तक यह सही है; मगर फिर भी कमला और मैं दोनों महसूस करते हैं कि इसमें कोई जाहिरदारी की बात नहीं है और हमें आपके प्रति उस तमाम प्रेम, चिन्ता और ध्यान के लिए जो आप हमारी सहायता के लिए और हमें अपने कुछ चिन्ता-भार से छुड़ाने के लिए, काम में ला रहे हैं, आपके प्रति अपनी कृतज्ञता दिखानी ही चाहिए। आपके आने से और जो-कुछ कार्रवाई आपने यहाँ की है उससे हमारा दिल बहुत हलका हो गया है।"

इलाहाबाद, १८-१२-३३ जवाहरलाल (नेहरू)

"ज्योंही कल मैं एक सभा में बोलने के लिए आया और मंच पर चढ़ा मैंने जमनालालजी बजाज की मृत्यु की खबर सुनी। मुझे सहसा उस पर

विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा जब अभी कुछ ही दिन पहिले मैं उनसे मिला और मैंने उन्हें जीवन और शक्ति से पूर्ण देखा था और जिस व्यक्ति के दिमाग में जनता की कई समस्याएं थी जिनके लिए उन्होंने जीवन समर्पित कर दिया था वह कैसे मर सकते हैं? फिर भी मेरा यह विचार अधिक देर तक नहीं टिक सका क्योंकि अन्यान्य सूत्रों से भी यही समाचार आने लगा। इस आकस्मिक आघात से मुझे बड़ी चोट लगी और मैं बड़ी कठिनाई से अपना भाषण उस बड़े समुदाय के सामने दे सका। जब मैं अन्यान्य विषयों पर बोल रहा था तब मेरा दिमाग वर्धा में ही था जो कि उनके साथ अबाधित रूप से जुड़ा हुआ है। गत २२ वर्षों से मेरा उनके साथ सार्वजनिक कार्यों में मित्रता से तथा घरेलू मामलों में भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। कार्य समिति में शायद वे ही सब से अधिक लम्बे समय तक रहने वाले सदस्य थे। सार्वजनिक और व्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के मामलों में मैं उनकी सलाह और पथ-दर्शन प्राप्त करता रहता था। आज यह अनुभव कर के मुझे दुःख होता है कि भविष्य में मुझे अपने एक प्रिय मित्र की सलाह नहीं मिल सकेगी। यद्यपि आज कई ऐसे राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय व्यक्ति हैं, जिन्होंने बहुत-सा सार्वजनिक सेवा का कार्य किया है, तथापि जमनालालजी उनमें लगभग बेजोड़ थे और ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो उनका स्थान ग्रहण कर सके। इस कठिन समय में उनका देहावसान एक जबरदस्त आघात है।"

—जवाहरलाल नेहरू

"हमारे नौजवानों को अपने देश की साहसयुक्त, निःस्वार्थ और शान्तचित्त के साथ सेवा करने का उदाहरण आपसे बढ़ कर दूसरा नहीं मिल सकता।"

मद्रास, १ जनवरी, १९३६ श्री विजयराघवाचार्य

"हममें से जिन लोगों को उन्हें निकट से जानने का सौभाग्य मिला था

उनके लिए तो सब से अधिक प्रेम करने योग्य व्यक्ति थे। उनमें हार्दिक स्नेह था, उदारतापूर्ण मित्रता थी और थी अडिग देशभक्ति। उनमें एक सरल किन्तु सच्चा आकर्षण था, जो उनके स्वभाव की मधुरता और दयालुता की उपज थी।"

सरोजनी नायडू

"आपके सुझाव के अनुसार मैं जामिया मिल्लिया के खजांची के पद का बोझ उसी हालत म उठाना मंजूर कर सकता हूँ जब कि आपकी ऐसी तीव्र इच्छा हो। लेकिन एक शर्त यह है कि जामिया के काम में आपकी रुचि पहले जैसी ही बनी रहे। आपके आग्रह को देखकर ही मैं इसे स्वीकार करता हूँ।"

११ अगस्त, १९२९ डा० अंसारी

"वे उन थोड़े से लोगों में से थे कि जो सोचते थे और कहते थे वही करते थे। भारी धनराशि के स्वामी होकर भी आदर्श सादा जीवन बिताते थे। धन का सच्चा उपयोग करते थे, बाहरी दिखावे और विलासिता में एक पैसा भी व्यर्थ न खोकर लाखो रुपयों का दान काल और पात्र को देख कर करते थे।.....इतिहास के पन्नों में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा और भारत के भावी बच्चे सदा स्नेह और आदर से उनकी कथा बाँच कर उसपर चलने का प्रयत्न करेंगे।"

—रामेश्वरी नेहरू

"....उनके मुंह पर जो प्रेम और आत्मीयता का भाव झलक रहा था उसे मैं कभी नहीं भूल सकता था। आत्मीयता के आगे बड़ा या छोटा, अपना या पराया, अमीर या गरीब ऐसा भेद उनका मानव-हृदय स्वीकारता न था। कार्य-कुशलता के साथ हृदय की ऐसी समृद्धि शायद ही देखने में आती है।

"वे कार्य का महत्व जितना समझते थे उससे भी अधिक कार्यकर्ताओं को अपना सकते थे यही उनकी विभूति की खूबी थी।"

—काका कालेलकर

"निष्कपटता बल्कि बालवत् सरलता और आदर-वृत्ति श्री जमनालाल-जी में इतनी स्वाभाविक थी कि एक बार संबंध कायम होने के बाद उनके लिए उसे निबाहने की अपेक्षा तोड़ना ही ज्यादा मुश्किल होता था।"

—किशोरलाल मशरूवाला

"वे विशेष व्यक्ति थे। उनकी जगह कोई नहीं ले सकता। उनका प्रेम व स्वभाव ऐसा था कि सबको जीत लेते थे। उनकी सादगी, नम्रता, नियम-पालन की शक्ति व निस्वार्थता से मैंने काफी सीखा।"

—राजकुमारी अमृतकुंवर

"जब से मैं हिन्दुस्तान आया हूँ, आपसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, तथापि आपके उच्च व्यक्तित्व ने शुरू से ही मुझे आकर्षित कर रक्खा है। जो भी भारत की राष्ट्रीय हलचल में दिलचस्पी रखता है वह आपके व्यक्तित्व को शायद ही ध्यान से बाहर रख सके।"

शान्तिनिकेतन, १८-१०-४० (प्रो०) तान-युन-शान

"मैंने आपके अन्दर सामाजिक सुधार और राष्ट्रीयता की भावना पराकाष्ठा को पहुँची हुई पाई है। मुझे अपनी आँखों से यह देख कर खुशी हुई है कि आप महात्माजी की शिक्षाओं के अनुसार यहाँ सब काम कर रहे हैं।"

७ जनवरी, १९३६ ——कण्डस्वामी चेट्टी

"मुझे यह जानकर दुःख हुआ कि आपने वह छोटी-सी भेंट जो हमने आपकी लड़की को शादी के समय भेजी थी, लौटा दी। हमारे दफ्तर की गलती से वह आपके पते पर भेज दी गई थी। और यदि आपकी लड़की को किसी ने कोई ब्याह-भेंट भेजी है तो आप उसका निर्णय करने वाले कौन होते हैं? मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि वह भेंट कोरी जाब्ता कारंवाई नहीं

थी, और यदि आप उसे स्वीकार कर लेते तो हमें बहुत हर्ष हुआ होता।"

अहमदाबाद, २०-७-३७ अम्बालाल साराभाई

"आपने अपने घर में मुझे जो बड़े स्नेह से समय दिया उसके लिए मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ। आपसे मिलकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। वहाँ मुझे बड़ा सुहावना लगा। काश मैं आपकी भाषा बोल पाती। उसे न जानते हुए भी मैं बरबस हँस पड़ती थी जब आप कोई मजाक करते थे। वहाँ रहकर वास्तव में मुझे बड़ा आनन्द मिला।"

—म्युरियल लिस्टर

"मेरे और आपके मत-भेद के कारण हममें अन्तराय हो ही नहीं सकता। इस विषय में आप निःशंक रहें। यह कहने की जरूरत नहीं कि प्रजाहित के काम में मुझसे जो कुछ मदद हो सकती है उसे करने के लिए मैं उत्सुक हूँ। निर्मल मन से होने वाले आपके कामों पर मैं हमेशा, प्रशंसा के भाव के साथ, दृष्टि रखता हूँ।"

बम्बई, ३-७-२९ पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास

"लोकमान्य के निधन के बाद की महाराष्ट्र की परिस्थिति से आप पूर्ण परिचित हैं। १९२० से १९३० तक महाराष्ट्र कांग्रेस-निष्ठ रहकर उसमें फिर कांग्रेस के लिए विश्वास व प्रेम उत्पन्न करने के लिए जिन लोगों ने उद्योग किया उन्हें आपकी पूरी-पूरी सहायता थी, इसलिए अन्त को वे यशस्वी हुए। १९३० के बाद कांग्रेस के इतिहास में जो महत्वपूर्ण घटना घटी है, उसमें अन्य प्रान्तों के समान महाराष्ट्र ने अपना कार्य-भाग अंगीकार किया है, यह आपको मालूम ही है। क्योंकि आप भी हमीं में से हैं और महाराष्ट्र के अबतक के काम के लिए जैसा हमें अभिमान मालूम होता है वैसा आपको भी मालूम होता है।"

पूना, ६-३-३६ शंकरराव देव

"वर्धा का बच्चा-बच्चा आपको जानता है। वहाँ सभी ही आपको बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं और राष्ट्र के हित में आपने जो महान किया है वह भी किसी से छिपा नही है, ऐसी हालत में आप सरीखे व्यक्ति की तरफ से जरा भी इशारा या झुकाव किसी छोटी-बड़ी गलतफहमी को मिटाने के लिए मिले तो सभी इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करेंगे और यह चीज उनको भी बहुत पसंद आयेगी, जिनके विचार आपसे नहीं मिलते है।"

यवतमाल माधवराव अणे

"आज नववर्ष दिन है....आपकी याद आई। दो तरह से । आप स्नेही-रूप में तो है ही। परन्तु पूज्य जन भी है। आपको संबोधन करने में मैं संयम से काम लेता हूँ। पूज्य भाव को मन में छिपा कर आमतौर पर सबोधन करता हूँ। परन्तु आज तो व्यक्त करने का मन हो आया है। समुद्र की तरह आपके हृदय की विशालता और बालक की तरह हृदय की सरलता पूजनीय है। इस नव वर्ष के उपलक्ष्य में आपको मेरा प्रणाम है।"

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती मगनलाल का प्रणाम
कार्तिक सुदी १, १९८३

•

"मैं आपको आपके दान के लिए बधाई देता हूँ, जो आपने नवीन ३०,०००) का दान हिन्दू विश्वविद्यालय को पुस्तकों के लिए दिया है। ईश्वर आपके हृदय को सदा ऐसा ही विशाल रक्खे और आपके धन का इसी प्रकार सदा सदुपयोग किया करें। ईश्वर आपको चिरायु और सुखी रक्खें।"

सेवा-उपवन, काशी २१ आषाढ़ १९८२ शिवप्रसाद (गुप्त)

"उम्र में आपसे बड़ा होने पर भी इतर सब गुणों में आप ही मुझसे कहीं अधिक बड़े हैं। अतः आपको आशीर्वाद देने का अधिकार नहीं। परमेश्वर

से मेरी प्रार्थना है कि आपको दीर्घ जीवन मिले और वह सुखमय हो।"
बेलगाँव २-११-४१ गंगाधर (देशपाण्डे)

"पूज्य म० गाँधी के आशीर्वाद से तथा पूज्य विनोबा के सान्निध्य से उनके जीवन का विकास अच्छी तरह हुआ था, उसका दृश्य फल उनके आचरण में दिखाई देता था। ऐसे उच्च कोटि के सत्वशील, त्यागी देश-भक्त का ऐसे आनबान के अवसर पर चले जाने से देश की अत्यन्त हानि हुई है।" गंगाधरराव देशपाण्डे

"मैं आपको और श्री जानकी बहन को आपकी सतत कृपा और चिन्ता के लिए बहुत धन्यवाद देती हूँ। आपके सौहार्द ने मेरे हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव डाला है। आपने जो-कुछ किया वास्तव में उसके लिए आपको पर्याप्त धन्यवाद नहीं दिया जा सका। मैं बापू को भी इस विषय में लिख रही हूँ।"
बाँदरा, ६-११-३३ कमलादेवी चट्टोपाध्याय

"उनका जीवन क्रिया का सतत स्रोत था, सेवा का शान्त और अथाह प्रवाह था, निर्भयता का निवास था, श्रद्धा का आश्रय था, उदारता का निर्विवाद निर्झर था, सादगी की पाठशाला थी, प्रेम का निर्मल निकेतन था और था सब का सहारा। उनकी शारीरिक विशालता, उनके हृदय की या भीतरी जीवन की विशालता का द्योतक थी। उनका स्थित अन्तर-पवित्रता का परिमल था और उनका सहवास शक्ति और स्फूर्ति का प्रवर्त्तक था।" ब्रिजलाल बियाणी

"आपके प्रति मेरे मन में सदैव बड़ा आदर रहा है। और उसीके अनुसार आपकी भी सद्भावना मेरे प्रति है—इसका मुझे पता है। मेरे काम में आपके जैसे बड़े-बूढ़ों के मार्ग दर्शन की मैं सदैव कद्र करूँगा।"
२७ दिसं०, १९३७ मनु सूबेदार

"जयपुर में आपने जिस धीरज, दक्षता और मधुर तत्परता से जो विजय प्राप्त की है वह देशी राज्यों में बापू की रीति-नीति को मिली ऊपर से दिखाई देने वाली पश्चात् गति के समय में कुसुमकुंज जैसा ही है। और इसलिए हम सब को वह विशेष प्रिय और आदरणीय मालूम हुई है। उसके लिए मैं आपको अभिनंदन भेजता हूँ। आपका पांव अब बिल्कुल अच्छा हो गया होगा। इस अवसर पर मेरा कुछ उपयोग हो सकता हो तो जरूर कार्ड में दो सतरें लिखिएगा।"

गांधी-आश्रम, थाना, २६-८-३९ स्वामी आनंद

"सेठजी गुणों की खान थे। उनका मानव प्रेम अनुपम था। उनकी सरलता और स्पष्टवादिता आश्चर्यजनक थी। उनकी वीरता अनुकरणीय थी। वे सादगी की मूर्ति थे। ठोस आदमी थे। कम-से-कम कहना और अधिक-से-अधिक करना सेठजी का अटल सिद्धान्त था। सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को वे अपने परिवार के अंग मानते थे। और यह मान कर उनकी सहायता करते थे। सेठजी की सहन शक्ति अटूट थी और उनके विशाल हृदय में असीम उदारता भरी थी।"

—हीरालाल शास्त्री

"आपकी सौजन्य व स्नेहमयी मूर्ति का समय-समय पर आदरपूर्वक स्मरण किया करता हूँ; यद्यपि आपके विचारों का समर्थन मन नहीं करता। आप बहुत आगे बढ़ गए और मैं पीछे हट गया। इससे विचारों में बहुत दूर का फासला हो गया है। तथापि आप अपने ही हैं। इस विचारों में मेरे मन में जरा भी फर्क नहीं पड़ा है, आपसे भी ऐसी ही आशा है।"

गोरखपुर, माघ कृ० १, १९९२ —हनुमानप्रसाद पोद्दार

"आपके पास जाकर सलाह करने में हमारे सारे कुटुम्ब का हित है।

आप सदैव से हमारे कुटुम्ब का तो हित ही सोचते आये हैं। आपने अपना जीवन ही मनुष्यमात्र के हित के लिए बना लिया है। आपकी मेरे प्रति सहानुभूति सदा से रही है। आप उन लोगों में से एक हैं जो मेरे कोई भी कार्य को अनुचित समझें तो मुझे कहने में नहीं हिचकिचाते और ऐसा कहने का साहस भी रखते हैं। आपकी बातों का मेरे पर प्रभाव भी पड़ता है।"

१०-६-४१ रामकृष्ण (डालमिया)

"यदि किसी समय भी कोई बात पत्र के सम्बन्ध में आपके सामने उपस्थित हो तो अवश्य लिखते रहें। पत्र जैसा मेरा होगा वैसा ही आपका। आपकी राय तथा इच्छा का यथासम्भव पालन करना मेरा एक प्रेमपूर्ण कर्तव्य होगा।"

बम्बई, १७-९-१९१८ (पंडित) सुन्दरलाल

"सत्यवादी विद्यालय तो आप ही का है। वर्धा में मैं जिस वक्त गया था, आपको याद होगा, उस वक्त विद्यालय का समस्त भार आपके हस्त में सौंप दिया था। मेरी अनुपस्थिति में आपने सपरिवार सत्यवादी आकर विद्यालय की ओर जैसी आपने ममता दिखाई इससे मेरा समर्पण सार्थक हुआ है। सत्यवादी विद्यालय को आपका स्वकीय अनुष्ठान समझकर ही इसके ऊपर आपकी कृपा और सहायता के लिए मैंने कभी आपको मामूली धन्यवाद नहीं दिया या कभी नहीं दूंगा। मैं भी वर्धा, राष्ट्रीय विद्यालय को मेरा समझता हूँ।"

सत्यवादी (बिहार) २०-६-२४ गोपबन्धुदास

"जमनालालजी को इस बात में आनन्द आता था कि बजाय इसके कि कोई सहायता मांगने वाला उनके पास आवे, वे स्वयं तलाश करें कि कहाँ काम, व्यक्ति या संस्था सहायता की अधिकारी है, और उसे कितनी

सहायता किस रूप में दी जानी उचित है।"

भगवानदास केला

"उन्होंने अपने जीवन द्वारा अपने को केवल कुशल व्यापारी ही सिद्ध नही किया अपितु पात्रवर्षी पर्जन्य की तरह पात्रवर्षी महादानी, कुशल सत्याग्रही, विचित्र दूरदर्शी भी सिद्ध किया। . . . .वे थे कांग्रेस-आकाश-मण्डल के दैदीप्यमान उज्ज्वल तारे। टूटते-टूटते भी वे इतना अमित प्रकाश दे गये है कि उस प्रकाश से भविष्य में भी बहुत काम निकल सकेगा।"

नरदेव शास्त्री

". . . .क्या करें? पूंजी के सामने हाथ फैलाये बिना पूंजीवाद का नाश नही हो सकता। लाचारी है। सगे-संबंधी, स्नेही, सब पूंजीवादी। आपके जैसे नेता और बुजुर्ग भी पूंजीवादी हैं। इसलिए जिस तरह कृष्ण के कहने से अर्जुन लाचार होकर रण-संग्राम में जूझा उसी तरह हमारे देश के बहुत नौजवान भी कर रहे हैं। क्या ऐसे नवजवान आपकी तरफ से सहानुभूति की आशा नहीं रख सकते?"

मणिबहन कारा

"हम कार्यकर्ता लोग आपका आशीर्वाद चाहते हैं। गुरुकुल के निर्माण में आपके जीवन का सर्वोत्तम समय लगा है। आपके परिश्रम का गुरुकुल मूर्त रूप है। परमात्मा करे कि हम इस संस्था को आपके दिखलाये हुए मार्ग पर ले जा सकें और आपके आशीर्वाद के पात्र बन सकें।"

गुरुकुल, कांगड़ी, तिथि १४-१२-१९९७ सत्यव्रत

"स्वर्गीय देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज केवल राजनीतिक नेता और समाज सुधारक ही नहीं थे, बल्कि सामाजिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। सामाजिक क्षेत्र में अपने क्रियात्मक जीवन से आपने मारवाड़ी समाज में नवजीवन की जो ज्योति जगाई थी, उसको अधिक बनाए रखना ही

उसका सच्चा स्मारक है।"

नवजीवन संघ, कलकत्ता बसन्तलाल मुरारका

"मैं जब स्वर्गीय सेठजी का स्मरण करता हूँ, तब मुझे सहसा उनके उस महान कार्य का स्मरण हो आता है जो उन्होंने महिला-समाज में जागृति पैदा करने के लिए किया था।"

अ० भा० मारवाड़ी सम्मेन, कलकत्ता तुलसीराम सरावगी

"स्वर्गीय सेठजी का महान् व्यक्तित्व देश के सार्वजनिक जीवन में सब ओर छाया हुआ था। कोई दिशा ऐसी नहीं, जिसको उन्होंने जीवन न दिया हो और जिसमें अपने सहयोग से बल एवं शक्ति का संचार न किया हो। पैसा कमा कर उसका सदुपयोग कर उन्होंने हमारे सामने भामाशाह का आदर्श उपस्थित किया था।

"उन्होंने सामाजिक मामलों में 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' की अंध-श्रद्धा को पूरी तरह तिलांजलि दे डाली थी। शास्त्राचार और लोकाचार को उन्होंने होश सम्भालने के बाद आँखें मूंद कर कभी भी स्वीकार नहीं किया। सामाजिक एवं धार्मिक मामलों में उन्होंने बुद्धिवाद की स्थापना करके जिस सामाजिक एवं धार्मिक क्रान्ति का बिगुल अपने क्रियात्मक जीवन से फूंका था, उसकी ध्वनि आज भी गूंज रही है। उनके राष्ट्रीय कार्य के पीछे उनके जीवन के इस असली पहलू को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता।"

बुद्धिवादी संघ, कलकत्ता बालचंद नाहटा

"मारवाड़ी-समाज में जीवन की जिस सादगी, सरलता तथा पवित्रता का स्व० सेठजी ने प्रचार किया था और सारे सांसारिक वैभव को लात मार कर अपने जीवन को जितना सफल बनाया था, वह हमारे लिए अब भी अनुकरणीय आदर्श है। उसकी अपने जीवन में प्रतिष्ठा किये बिना स्व०

सेठजी की पुण्य स्मृति बनाना सार्थक नहीं हो सकता।"
मारवाड़ी सभा, कलकत्ता मोतीलाल देवड़ा

"स्व० सेठ जमनालालजी बजाज सेवा की भावना से इतना अधिक ओत-प्रोत थे कि उनको सेवा की ही मूर्ति कहना चाहिए। सेवा की साधना में उन्होंने अपने को ही भी भुला दिया था। हनूमान में राम के प्रति जो श्रद्धा थी, वही सेठ जी में गाँधीजी अथवा अपने देश, राष्ट्र तथा समाज के प्रति थी।"
मारवाड़ी-सेवा-दल, दिल्ली कपूरचन्द पोद्दार

"स्व० सेठ जमनालालजी बजाज से धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों में भी मेरा गहरा मतभेद रहा है लेकिन अपने जीवन के अन्तिम दिनों में गो-माता की सेवा की ओर उनका जो ध्यान गया, उसका मुझ पर भी काफी प्रभाव पड़ा। यदि वे कुछ दिन और हम सबमें रह जाते, तो वे गो-सेवा के क्षेत्र में भी काफी बड़ा काम कर जाते।"
बम्बई चिरंजीलाल लोयलका

"स्व० सेठ जी की दृष्टि इतनी उदार और व्यापक थी कि वे वर्धा या जयपुर रहते हुए भी समस्त देशी-राज्यों और सारे ही मारवाड़ी-समाज का निरन्तर ध्यान रखा करते थे। मुझे मालूम है कि उनको हैदराबाद की स्टेट-कांग्रेस और यहाँ के कार्यकर्ताओं की कितनी चिन्ता रहती थी। हम लोग भी आशा-भरी दृष्टि से उनकी ओर निरन्तर देखा करते थे। हमारी आशा के वे आधार-बिन्दु थे। यहाँ के सामाजिक जीवन को भी उनसे अद्भुत प्रेरणा मिला करती थी। सच तो यह है कि उनके त्याग, तपस्या तथा बलिदान से मारवाड़ी-समाज के हजारों युवकों ने प्रेरणा प्राप्त की है। उनका आदर्शमय जीवन हमें आज भी सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र

में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा है।"

हैदराबाद (दक्षिण) (राजा) लक्ष्मीनिवास गनेडीवाला

"देशभक्ति और देशप्रेम सेठजी के जीवन के मोटो थे। दलितों व दीनों की सेवा उनके जीवन का व्रत था। असहायों की सहायता उनके जीवन का मिशन था। अपने जीवन को उनके ढांचे में ढाल कर उनकी इन सब बातों को अंगीकार करना चाहिए।"

आजाद भवन, फतेहपुर मोहनलाल दूगड़

"उनका जीवन इतना व्यापक और कर्मशील था कि हममें से प्रत्येक उसमें से कुछ-न-कुछ ले सकता है। सभी क्षेत्रों में काम करने वाले उनके जीवन से अनुप्राणित हो सकते हैं।"

राजस्थान-ग्रामोद्धारक-संघ, बम्बई सीताराम वैद्य

"मुझे भी स्व० सेठ जी के सैनिक के रूप में कुछ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उनको मैंने बहुत समीप से देखा है। महाराष्ट्र लोगों की संकीर्ण एवं अनुदार मनोवृत्ति के सेठजी पर सदा ही आक्रमण होते रहने पर भी वे कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। सामाजिक क्षेत्र में भी उन पर कटाक्षों की बौछार होती रही। लेकिन वे कभी भी अपने मार्ग से डिगे नहीं।"

यवतमाल विश्वनाथ सारस्वत

"मेरे जीवन में बरबस जो परिवर्तन हुआ, वह सेठजी के महान् जीवन के गहरे प्रभाव का ही परिणाम है। उनके जीवन में चुम्बक की सी शक्ति थी, जो सहसा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। वर्धा का काया-कल्प होकर उसको अपने देश की राष्ट्रीय राजधानी बनाने का जो गौरव प्राप्त हुआ, यह सेठ जी के जीवन की चुम्बक-शक्ति का ही परिणाम था। वह गाँधीजी को भी वर्धा खींच लाये और उसने वर्धा को भी राष्ट्रीय

तीर्थ बना दिया। उनको खोकर मारवाड़ी-समाज तो निश्चय ही अनाथ और पंगु हो गया है।"

नागपुर छगनलाल भारुका

"स्व० सेठजी युवकों में विशेष आशा रखते थे और हर युवक की ओर वे आशा-भरी दृष्टि से देखा करते थे। उनकी आशाओं को पूरा करने का अधिकतर भार आज भी युवकों पर ही है। मारवाड़ी-समाज के युवकों को आगे बढ़ कर सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में पूरा योगदान इसलिए देना चाहिए कि हम उनकी अपूर्ण-आशाओं को पूरा कर सकें।"

मारवाड़ी छात्र-संघ, कलकत्ता भँवरलाल बियाणी

"उनका आदर्श प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अविचल रूप से प्रतिष्ठित है। स्वर्गीय जमनालालजी ने समाज के छिन्न-विच्छिन्न सूत्रों को एकत्रित एवं संगठित रूप में संबंध करने की प्राणपण से चेष्टा की। उनकी इच्छा थी कि मातृभूमि की सेवा के अवसर पर हम सब भारतीय एकत्रित होकर एक व्यासपीठ से, एक आवाज से देश सेवा का नारा बुलन्द करें।"

बम्बई रामदेव पोद्दार

सेठजी के राजनीतिक कार्यक्षेत्र की बात छोड़िए, हमें उनके दैनिक जीवन से ही अनेक शिक्षा मिलती है और मैं तो यह कहूँगा कि उनकी केवल एक शुद्ध आत्मा ही हमारे भविष्योन्नति की सीढ़ी को चमत्कृत एवं प्रकाशमान करने के लिए एक दिव्य किरण का कार्य करती है।"

सीकर (जयपुर) पुरोहित स्वरूपनारायण

"स्व० जमनालालजी देश की उन विभूतियों में थे, जिन पर कोई भी राष्ट्र गर्व कर सकता है। उनका स्वभाव मधुर और जीवन सहज सात्विक और सेवा-परायण था। वे राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यकर्ताओं

के लिए एक बहुत बड़ा सहारा थे।"

कलकत्ता भागीरथ कानोडिया

"सरलता और सादगी के आप अवतार थे। उनसे काफी मतभेद रखने वाले एक महाशय ने मुझे बताया कि एक दिन उसने आपको गाड़ी में बैठे हुए साधारण आदमी की तरह लूखी रोटी नमक मिरच के साथ खाते हुए देखा। आपकी इस सादगी की छाप न केवल उस पर अपितु मुझ पर भी बहुत ही पड़ी।"

जयपुर (स्वामी) जयरामदास (वैद्य)

"आज जो जागृति इस मरुभूमि के इन कणों में नजर आने लगी है, उसका अधिकतम श्रेय उन्हीं को (जमनालालजी) है। उन्होंने अलग-अलग रियासतों के कार्यकर्ताओं को स्थानीय परिस्थिति के अनुसार उत्साहित किया। और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया उसीके फल स्वरूप हरेक जगह छोटे संगठन और ज्योतियाँ जगमगाती नजर आ रही हैं। जयपुर के तो वे आधार-स्तम्भ थे। जयपुर की अधिकतम संस्थायें इसका प्रमाण हैं।"

—ओमदत्त (शास्त्री)

"जन-साधारण को अपनी ओर आकर्षित करने की उनमें एक दैवी शक्ति थी। शान्ति के पुजारी होते हुए भी स्वतंत्रता- संग्राम में एक वीर की नाईं जूझ पड़ने में उन्हें सोचने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी।"

जयपुर मनोहरलाल शर्मा (एडवोकेट)

"राष्ट्रीय जीवन में सेठ जमनालालजी यों तो अपना एक विशेष स्थान रखते ही थे, पर आज एक खास दिशा में उनका अभाव खटक रहा है। आज हमारे देश में पशुधन का जो भीषण ह्रास हो रहा है उसे सोच कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। आज सेठजी स्थूल शरीर से हमारे बीच में

होते तो जरूर ही देश के पशुधन की रक्षा में उनकी कार्य क्षमता का योग मिलता।"

जयपुर सिद्धराज ढड्ढा

"स्व० सेठ जमनालालजी बजाज भारतमाता क उन वरद पुत्रों में से थे जिन्होंने अपने जीवन काल में देश और समाज की अनुपम सेवाएं कीं। मारवाड़ी-समाज के सुधार प्रेमी नवयुवकों के तो आप प्रमुख नेता थे। शिक्षा-प्रचार के कार्य में भी बहुत उद्योग किया। आपने राजस्थान के कार्यकर्ताओं में जो जीवन ज्योति जगाई वह राजस्थान के इतिहास में आपकी अमर कीर्ति चिरस्थाई बनाये रखेगी।"

कलकत्ता गंगाप्रसाद भोतिका (काव्यतीर्थ)

"राजस्थान अतीत काल से वीर और वीरांगनाओं के शौर्य त्याग और बलिदान के उदाहरणों से उज्ज्वल रहा है। आधुनिक युग में भी सेठ जमनालालजी बजाज की साधना, त्याग और बलिदान करने की भावना ने आजादी के इतिहास में खास स्थान प्राप्त कर लिया है।"

उदयपुर भूरेलाल बया

"पूज्य बजाजजी भारतमाता के उन सपूतों में से थे जिन्होंने आजीवन मातृभूमि की सेवा की ओर अपना सब-कुछ उसके पवित्र चरणों में अर्पण कर दिया। वे भारतीय स्वतंत्रता के महान् उपासक थे। अपनी श्रद्धामय उपासना को कठोरतम साधना से साधकर वे नर से देव बन गये। जहाँ वे मर मिटने वाले निर्भीक सैनिक थे वहाँ वे चतुर और स्पष्ट दृष्टि रखने वाले सेनानी भी थे। वे पक्के अहिंसक लड़वैया थे आजीवन देश की आजादी के लिए और उसीके लिए मर मिटे। भारतीय रियासती प्रजा की उन्होंने जो अमूल्य सेवाएं की हैं और समय-समय पर उसका जो मार्ग-दर्शन किया

है उसके लिए वह उनकी चिर ऋणी रहेगी। आज भी वे हमारे बीच महान् नेता के रूप में खड़े हैं। और उनका तेजस्वी तथा पुण्यपूर्ण व्यक्तित्व लाखों भारतीयों को प्रेरणा दे रहे हैं। वे मर कर भी अपनी महान् सेवाओं से अमर हैं।"

इंदौर मिश्रीलाल गंगवाल

"यों तो बृहत् मारवाड़ी-समाज में लाखों सेठ वर्तमान हैं पर सेठ शब्द के यथार्थ माने में श्री जमनालालजी बजाज ही व्यक्त होते हैं। जिस व्यक्ति का धन राष्ट्र के लिए उत्सर्ग हो, जो राष्ट्र-सभा का कोषाध्यक्ष अपने असल रूप में प्रमाणित हो। यथार्थ में वही "सेठ" शब्द का अधिकारी है।"

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, बनारस बैजनाथ केडिया

"पिछले २२ वर्षों सेठ जमनालालजी बजाज कई तरह से एक शक्ति के शिखर थे। वैसे भी वे एक प्रधान व्यक्ति थे और उनकी प्रवृत्तियों में देशी राज्य की प्रजा की जागृति मुख्य थी। कांग्रेस क्षेत्र में उनकी मृत्यु से महान् क्षति हुई है।"

पूना काका गाडगील,

"उनकी दान की कोई सीमा नहीं थी। वे जबर्दस्त व्यवहार बुद्धि और संगठन शक्ति रखते थे।"

कलकत्ता प्रफुल्लचंद्र घोष

"सेठ जमनालाल बजाज व्यापारियों में राजा जैसे थे, जिन्होंने देश के लिए बहुत कुछ बलिदान किया। कांग्रेस के लिए शक्ति के शिखर जैसे थे। मृदु, मधुर और सुसंस्कृत वे कांग्रेस को सदैव अच्छी सलाह देने में एक शक्ति थे।"

मद्रास एस० सत्यमूर्ति

(२)
पत्रों के उद्‌गार

पत्र-पत्रिकाओं ने उनको जो श्रद्धांजलियाँ समर्पित की है उनसे यह भली प्रकार मालूम हो जाता है कि उन्होंने किस तरह लोगों के दिलों में घर बना लिया था। उसके कुछ नमूने यहाँ दिये जाते है—

"वर्धा के आसपास राष्ट्रीय रचनात्मक प्रवृत्तियों की अनेक संस्थाएँ है। ये सब प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यकर्ता के लिए तीर्थों के समान है। पर क्या आप यह जानते है इन सबको वर्तमान व्यक्त रूप देने वाला इनका विधाता या विश्वकर्मा कौन है? जमनालाल बजाज। जिनका जीवन-कार्य ही था गांधीजी के स्वप्नों और मनोरथों को आकार देना। सूरत-शक्ल सीधी-सादी, व्यवहार में स्पष्टवादी, दृष्टि-बिन्दु में राष्ट्रीय, आदर्शों के प्रति एकनिष्ठ, कर्तव्य और नियम-परायण जमनालालजी ने अपने देश और ईश्वर के चरणों में क्या-क्या बलिदान नहीं किया?"

'पुष्प', मार्च, १९४२

"स्व० सेठ जमनालालजी बजाज के रूप में भारत का सच्चा सपूत दुनिया से कूच कर गया। सेठजी का राष्ट्रीय और राजनैतिक जीवन तो अद्वितीय है ही, किन्तु सामाजिक क्षेत्र में उनके कार्यों ने जो महत्व प्राप्त किया है वह सर्वथा अलौकिक है। अग्रवाल-समाज तो उनकी सेवाओं का महान् ऋणी है। आज हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शक सदैव के लिए बिदा हो गया।"

'अग्रवाल हितैषी', १९४२

उन्होंने धन का स्थान माना था महापुरुषों की चरण-रज में और उस को अत्यन्त विनम्रता के साथ वहीं बिठा कर पवित्र बनाया था। आज सारा देश व्यथित है। सारे देशी राज्यों की जनता दुखी है, सारा

राजस्थान शोकग्रस्त ह अगणित सस्थाओ के आग अधकार है।
ग्वालियर जीवन १४–२–४२

जमनालालजी को खोकर दश न राष्ट्रीय काय का एक स्तम्भ खो दिया ह और हमार सघ न तो अपना एक एसा ट्रस्टी जिसक दान की भूमि पर हमारी मगनवाडी खडी ह ।
वर्धा ग्राम उद्योग पत्रिका १९४२

रचनात्मक योग्यता क धनी होन के कारण जमनालालजी न रचनात्मक सस्थाओ की नीव मजबूत बना दी थी। खादी-काय की सफलता और स्थिरता का कम श्रय जमनालालजी को नही ह। गाँधीजी क बाद प्रारभ से ही चरखा-सघ क प्राणदाता जमनालालजी ही थ। उनकी मृत्यु स देश न अपना प्रथम श्रणी का नता दश क हजारो कायकर्ताओ न अपना प्रमभीना हितषी और पालक खो दिया ह।
मद्रास हिन्दू १९४२

उनक शान्त सजग गभीर जीवन की हम पर अच्छी छाप पडी थी। राष्ट्र को काग्रस को और महात्माजी को उनक अवसान स बडी क्षति पहुँची है।
राजकोट दि इडियन स्टटेस १९ २ ४२

सठ जमनालाल बजाज गय इतिहास के एस कठिन समय म जब कि प्रजा को अपने एक-एक कणधार की अपरपार आवश्यकता है। निष्ठुर मृत्यु न एक मज हुए कमवीर को दखत-दखते हडप लिया । कायसमिति न एक कायदक्ष साथी खोया काग्रस न एक मूक सवा व्रतधारी खोया नया अवतार लेन वाली प्रजा न अपनी अनकविध रचना त्मक प्रवृत्तियो म प्राणामृत सीचन वाल एक दिलर और दिलावर बागवाँ खोया।
बम्बई जन्मभूमि (गुजराती) १२ २ ४२

"सेठ जमनालालजी बजाज के अकल्पित निधन की बात सुनकर हमें दु ख हुआ। इस प्रान्त मे तथा अन्यत्र उनके बारे मे कितना ही भ्रम फैलाया गया हो, फिर भी इसमे कोई शक नही कि उनकी काग्रेस निष्ठा और गाँधी-निष्ठा उनका औदार्य और उनकी देश-सेवा उनके शत्रु के भी आदर का पात्र होने जितना महत्व रखती थी। यह बात हम केवल शिष्टाचार पालन के लिए नही लिख रहे है। हमारा उनका तीव्र मतभेद होते हुए भी उनके प्रति हमारे मन मे जो आदर भाव रहा है, उसे इस समय व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है।"

'भवितव्य' (मराठी), २०-२-४२

'असहयोग-काल से लेकर मृत्यु दिन तक उनके जीवन मे एक भी दिन ऐसा नही उगा जब उनके अन्त करण मे गाधीजी की राजनीति के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न हुई हो। धन-दौलत का उपयोग करने की वासना उन्होने कभी नही बताई। अधिकार-लालसा ने उन्हे कभी नही सताया। आज काग्रेस उनके व्यवहार चातुर्य और उदार सहकार्य से वचित हो गई है और उसकी यह क्षति पूर्ण होना अशक्य है।'

बम्बई 'चित्रा' (मराठी), १५-२-४२

"वे भारतमाता के एक सुपुत्र थे। वे बडे देशभक्त और देवभक्त थे। राष्ट्रसेवा को ही ईश्वर-सेवा मानते थे। उन्हे आजकल के राजर्षि कहने मे कोई हर्ज नही। जनक राजा की तरह वे वैभव रखते हुए भी बिरक्त थे।"

'भारत' (मराठी), १२-२-४२

"परिस्थिति का सुपुत्र व जनक, काग्रेस का निष्ठावान शूर सैनिक, राष्ट्रहित के लिए सन्तोष से स्वसम्पत्ति की आहुति देने वाला त्यागवीर, राष्ट्रीय सम्पत्ति को बढाकर अनेक नगो-भूखो की गिरस्ती ठीक-ठाक चलाने के लिए आतुर 'राष्ट्रसन्त को काल ने हमसे छीन लिया है। राष्ट्रीय

उद्योगों को गति देनेवाला व्यापारी गया, भारतीय व्यापारी वर्ग की मनोवृत्ति में अक्षरशः क्रान्ति करने वाला राष्ट्र-क्षितिज पर स्वयं दीप्ति से चमकने वाला 'लाल' निस्तेज हो गया।"

चांदा मजूर (मराठी), २०-२-४२

"गांधीजी ने नवीन राजनैतिक युग के उदयकाल में जादू की छड़ी की तरह जो अनेक अद्भुत रम्य चमत्कार दिखाये उनमें सेठ जमनालाल बजाज का मतान्तर भी है। ... उनकी मृत्यु से महात्माजी का एक निष्ठावान् शिष्य, कांग्रेस का आदर्श कार्यकर्ता, और देश-सेवा की अनेक-विध प्रवृत्तियों का आश्रयदाता, चला गया।"

'नवाकाल' (मराठी), १३-२-४२

"राष्ट्र की अन्यतम विभूति और हमारे प्रान्त के महान् नेता स्व० सेठ जमनालालजी बजाज अब इस संसार में नहीं है। सेठजी उन महान् आत्माओं में से थे जिन्होंने अपना सारा जीवन लोक सेवा के लिए बलिदान कर दिया था। वे बहुँमुखी प्रतिभावाले राष्ट्रनायक थे। वे निश्चय ही राष्ट्र- निर्माता थे।"

नागपुर 'नवभारत', १३-२-४२

"अपने चारित्र्य, सौजन्य और दान-शौर्य से सेठजी ने केवल इस प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में ही नहीं, सारे हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय जीवन में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था।"

नागपुर 'महाराष्ट्र' (मराठी), १५-२-४२

"आप सच्चे असहयोगी और अहिंसावादी थे। देश के लिए आपने न केवल अपना धन दिया किन्तु शारीरिक कष्ट भी उठाये और उसी में स्वास्थ्य भंग हो गया। वस्तुतः आपने अपने देश पर अपने को निछावर

कर दिया था। जमनालालजी जैसे देश सेवक किसी भी देश को सौभाग्य से ही प्राप्त होते हैं।"

काशी 'आज', १४-२-४२

"हम जीते जी जिसे आराम पाने का अवकाश न दे सके, देश और मध्य प्रदेश की वह ज्योति, जिसने अपने अस्तित्व की कीमत पर भी राष्ट्रीय तेज को प्रखरतर और चिरप्रज्वलित देखना ही पसन्द किया, हिन्दी जनता का वह गौरव, वह खद्दर, हिन्दी-प्रचार, अछूतोद्धार और सामाजिक सुधार का व्रती, और महात्माजी का "सच्चा सत्याग्रही" मौत के निर्मम हाथों हम से छीन लिया गया। जमनालालजी का राष्ट्र विरोधी शक्तियों से आजीवन संघर्ष, उनकी प्रखर तेजस्विता, और सब से बड़ी आदर्शों के प्रति उनकी अस्खलित ईमानदारी आने वाली पीढ़ी को ही वरदान के रूप में अमर रहेंगे।"

खण्डवा 'कर्मवीर', १४-२-४२

"जमनालालजी बड़े प्यारे, कीमती और आदरणीय मित्र थे। वे बुद्धिशाली व्यापारी थे। वे केवल संगठन-कर्त्ता ही नहीं, राजनीतिज्ञ भी थे। जो उनके सम्पर्क में आते उनके भी जीवन को वे सुसंगठित बना देते थे। वे अपरिग्रह के पुजारी थे। उनका जीवन गाँधीजी को पूर्ण रूप से समर्पित था।"

बंबई 'सोशल वेलफेअर', १९-२-४२

"उनका औदार्य कर्ण की तरह था। वे जितना चाहे त्याग करने के लिए सर्वदा तैयार रहते थे। महात्माजी का तो दाहिना हाथ ही चला गया है।"

'नवयुग' (मराठी), १५-२-४२

"सेठ जमनालाल बजाज फौलादी सांचे में ढले हुए एक साहसी देश-भक्त थे। भारतीय सार्वजनिक जीवन की विस्तृत दुनिया के वे एक राष्ट्रीय

यजमान (Host) थे । वर्धा-स्थित [उनका अतिथिघर . उनके स्पष्टतः उदार अतिथि-सत्कार का चिन्ह है । वे प्रसिद्धि-प्रिय नहीं थे; और अपने ढंग के एक मूक सेवक थे । उनकी मृत्यु से भारत ने एक एक-निष्ठ देशभक्त, मध्य-प्रदेश की कांग्रेस ने एक अपना एक अचूक समर्थक स्तंभ खो दिया ।"

नागपुर 'नागपुर टाइम्स', १३-२-४२

"जिस-किसी काम को उन्होंने हाथ में लिया एकनिष्ठा और दृढ़-लगन से उसे पूरा किया । उनमें नेतृत्व के अपूर्व गुण थे । परन्तु वे एक नम्र अनुयायी बन कर रहे । मारवाड़ी-जाति के वे अग्रणी नेता थे और उसमें सामाजिक सुधार कराने में उनका बड़ा हाथ था । सत्याग्रह और रचनात्मक कार्य दोनों में वे आगे रहते थे ।"

बंबई 'बाम्बे क्रानिकल', १२-२-४२

"जब गांधीजी इस देश में अपने स्वाभिमान और अहिंसा के क्रांति-कारी संदेश को ले कर आये तो जो लोग शुरू-शुरू में ही उनके जादू के प्रभाव में आये उनमें से जमनालालजी थे । देशी राज्य की जनता के हित साधने का और जयपुर राज्य प्रजामंडल को बनाने में उनका बड़ा हाथ रहा । जयपुर सत्याग्रह में उन्होंने जो कष्ट सहन किया वह उनके देशी राज्यों की जनता के प्रति प्रेम और उनके हितों की रक्षा की चिन्ता का द्योतक था । राजपूताना के कई राजा उन्हें आदर ही नहीं प्रेम की दृष्टि से भी देखते थे, जो दूसरे कार्यकर्ताओं को नसीब नहीं होता था । यह उनके चरित्र की उच्चता और उनके व्यक्तित्व के जादू पर भली भांति प्रकाश डालता है जो कि दलगत और राजनीतिगत सीमाओं से परे था ।"

नई दिल्ली 'हिन्दुस्तान टाइम्स', १३-२-४२

"गांधीजी के तत्वज्ञान से वे इतने एक रूप हो गये थे कि गांधीजी अपना आश्रम भी सेवाग्राम ले गये। उनकी मृत्यु से गांधीजी का एक निस्सीम और संपन्न भक्त चला गया इसमें कोई संदेह नहीं। वे आमरण कांग्रेस निष्ठ रहे और उन्होंने जिन-जिन आन्दोलनों को हाथ में लिया उनमें मनःपूर्वक योग दिया।"

पूना 'केसरी' (मराठी), १४-२-४२

"उनकी मृत्यु से राष्ट्र में एक महान् शोक छा गया, क्योंकि उन्होंने नाजो नियामत से पले होने पर भी देश की आजादी के लिए एक बार नहीं अनेक बार जेल में खटमल और पिस्सुओं से भरे काले कम्मलो मे दिन ही नहीं, महीनों ही नहीं, वर्षो व्यतीत किये। वे राष्ट्र के सच्चे सपूत थे, वे राष्ट्र की विभूति थे, और उस विभूति के अकस्मात खो जाने से समस्त राष्ट्र शोकाकुल है।"

कलकत्ता 'जागृति', १५-२-४२

"कांग्रेस के लिए वे भामाशाह थे परन्तु उन्होंने उसकी प्रसिद्धि नहीं चाही। छाया में रह कर और बिना प्रतिफल की आशा से काम करने में उन्हें संतोष था। अंगीकृत कार्य की सिद्धि से ही वे परम संतोष प्राप्त करते थे। देश में ऐसी स्प्रिट के लोग बहुत ही बिरले हैं। उनकी मृत्यु से इस प्रान्त का ऐसा कार्यकर्ता चला गया जिसने हमको भारत भर में प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त कराई। साथ ही कांग्रेस का जबर्दस्त, बहुमूल्य और आडंबर शून्य समर्थक तथा देश का एक सुसभ्य नागरिक चला गया।"

नागपुर 'हितवाद', १३-२-४२

"उनकी मृत्यु से भारत ने प्रथम श्रेणी के एक देशभक्त और कांग्रेस ने एक एकनिष्ठ कार्यकर्ता को खो दिया। लगभग २५ साल से वे वफा-

दारी के साथ देश की सेवा करते रहे—सो भी मूकभाव से और बिना दिखावे के। वे एक साहसी देशभक्त थे और गांधी-मत के लिए एक जबर्दस्त शक्ति-स्तंभ थे।"

बम्बई 'फ्री प्रेस जर्नल', १३-२-४२

"उनकी मृत्यु से कांग्रेस ने अपना एक जबर्दस्त समर्थक खो दिया। वे गांधीजी के प्रथम अनुयायियों में प्रमुख थे। वे बहुत मिलनसार थे। उनके व्यक्तित्व में भारी आकर्षण था। उनकी मृत्यु से कांग्रेस और कांग्रेस के बाहर व्यापक क्षेत्र के सभी मित्र शोकाकुल होंगे।"

बम्बई 'टाइम्स आफ इंडिया, १४-२-४२

"उन्होंने कभी प्रसिद्धि की परवाह नहीं की। फिर भी किसी व्यक्ति ने उनसे अधिक भक्ति के साथ कांग्रेस की सेवा नहीं की। उनको धन-ऐश्वर्य की कमी नहीं थी। लेकिन उन्होंने वह सब कांग्रेस को अर्पण कर दिया था। धनी-मानी होते हुए भी उन्होंने अपने देश के लिए श्रम और आंसू का जीवन पसंद किया। गांधीजी के इस आदर्श को पहुँचने का वे प्रयत्न करते रहे कि धनवानों को गरीबों के लिए अपने धन का ट्रस्टी बन कर रहना चाहिए।"

कलकत्ता 'अमृत बाजार पत्रिका', १३-२-४२

"सेठ जमनालाल बजाज मनुष्य और देशभक्तों में शिरोमणि थे। वे धनी-मानी थे फिर भी उन्होंने स्वेच्छा से गरीबी का व्रत धारण किया था और वे सच्चे आश्रमवासी हो गये थे। उनकी पत्नी और बच्चे सहित सारे परिवार ने उनका अनुगमन किया। वे भारत की आजादी के योद्धाओं में प्रमुख रहे। बिहार उनको एक कोने से दूसरे कोने तक जानता था। और उनका वियोग सर्वत्र अनुभव किया जायगा। उनकी स्मृति सदैव स्फूर्तिदायी बनी रहेगी।"

पटना 'सर्चलाइट', १३-२-४२

: १४ :

आभार

नीचे लिखे सज्जनों ने 'श्रेयार्थी जमनालालजी' के लिए सामग्री दी है, दिलाई है या सलाह, सुझाव आदि दिये हैं। लेखक और प्रकाशन इन सबों के बहुत आभारी हैं।

(१) बजाज परिवार के प्रायः सभी प्रमुख व्यक्ति
(२) श्री रामेश्वरदास बिड़ला, बंबई
(३) " आबिदअली जाफरभाई "
(४) " चिरंजीलाल जाजोदिया, इंदौर
(५) " " बड़जाते, वर्धा
(६) " श्रीमन्नारायण तथा सौ० मदालसा अग्रवाल
(७) " शान्ताबाई रानीवाला "
(८) " पूनमचंद रांका, नागपुर
(९) " अम्बुलकर, खामगाँव
(१०) " लक्ष्मण रसोइया, वर्धा
(११) " विट्ठल (जमनालालजी का निजी सेवक)

ग्रन्थ के प्रणयन तथा छपाई में नीचे लिखे साथियों और मित्रों से सहायता मिली है—

(१) श्री बाबूराव जोशी, हटूंडी (अजमेर)
(२) ,, रमेशचन्द्र ओझा, शाहपुरा (राजस्थान)
(३) " सीताराम गुण्ठे, मैनेजर, सम्मेलन मुद्रणालय, इलाहाबाद

नीचे लिखी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, विवरणों आदि से ग्रंथ-रचना में सामग्री व सहायता ली गई है—

१—श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखित जमनालालजी की जीवनी
२— " घनश्यामदास बिड़ला ,, "जमनालालजी"
३— " ऋषभदास रांका .. "जीवन जौहरी"
४—कांग्रेस का इतिहास
५—'समाज सेवक' कलकत्ता विशेषांक
६—'माहेश्वरी' बंबई ,,
७—'जीवन-साहित्य' नई दिल्ली ,,
८—'लोकवाणी' जयपुर ,,
९—'प्रभात' ,, ,,
१०—हरिजन, यंगइंडिया, 'हिन्दी नवजीवन', अहमदाबाद के पुराने अंक
११—'त्यागभूमि', 'मालवमयूर', अजमेर की पुरानी फाइलें
१२—श्री लक्ष्मीनारायण-मंदिर की रिपोर्ट
१३—झण्डा-सत्याग्रह (नागपुर) ,,
१४—अन्य पत्र-पत्रिकाओं की कतरनें
१५—श्री जमनालालजी की डायरी तथा पत्र-व्यवहार की फाइलें।